॥ श्रीः ॥

ईशादिपञ्चोपनिषदः

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्त्तकाचार्य-
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्य-
जगद्गुरुभगवदनन्तपादीय-

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यस्वामिप्रणीतया

'गूढार्थदीपिका' समाख्यया भाषाव्याख्यया समन्विताः

ताश्चेमा :–

श्रीपादसेवकश्रीसुदर्शनाचार्यब्रह्मचारिणः रोहतासमण्डला-
न्तर्गतडेहरीश्रीविजयराघवमन्दिराध्यक्षस्य सत्प्रेरणया
भोजपुरमण्डलान्तर्गतओझापट्टीसेमरियाश्रीमहालक्ष्मी-
नारायणयज्ञसमित्या प्रकाशिताः

सम्पादक :-

डॉ० सुदामा सिंह
एम० ए०, पी० एच० डी०
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, श्रम एवं समाज कल्याण विभाग
म० वि० वि० - बोधगया

द्वितीय सं० १०००) मूल्य २५/- रु० (गुरुपूर्णिमा, सं० २०४६

॥ श्रियै नमः ॥

॥ श्रीः ॥

ईशादिपञ्चोपनिषदः

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्त्तकाचार्य-

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्य-

जगद्गुरुभगवदनन्तपादीय

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डी स्वामीजी

द्वारा प्रणीत 'गूढार्थदीपिका' भाषा व्याख्या

श्रीपादसेवक श्रीसुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी

अध्यक्ष, श्रीविजयराघवमन्दिर, डेहरी की सत्प्रेरणा से

श्रीमहालक्ष्मीनारायणयज्ञसमिति

ओझापट्टी सेमरिया (जिला—भोजपुर) द्वारा प्रकाशित

सम्पादक :

डॉ० सुदामा सिंह

एम० ए०, पी० एच० डी०

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, श्रम एवं समाज कल्याण विभाग

म० वि० वि० - बोधगया

द्वितीय सं० १०००) मूल्य २५/- रु० (गुरुपूर्णिमा, सं० २०४६

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभय-वेदान्त-
प्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य
सत्सम्प्रदायाचार्य श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ जगद्गुरु
भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य

श्रीत्रिदण्डी स्वामीजी महाराज

श्रीमते रामानुजाय नमः

कतिपय शब्द

(प्रथम संस्करण से)

'उपनिषद्' वेद का वह भाग है जिस में परम पुरुषार्थसिद्धि का दिव्य साधन सरसता से उपवर्णित है। वेदों की महिमा अनुपम है। अनादिनिधन अपौरुषेयी वेदवाणी शब्दब्रह्म है। उस में भी उपनिषद् भाग तो चेतनों के उज्जीवनार्थ सर्वेश्वर के अनुग्रह का मङ्गलमय मधुर मूर्त रूप है। उपनिषद्विज्ञान विश्व के ज्ञानियों को चमत्कृत कर देने ाली अमर ज्योति है। इस प्रकार सर्वोत्तम हित होते हुए भी अत्यन्त दुरूह होने के कारण दुर्लभ होने से चेतनोद्धार में उसकी उपयोगिता सीमित होती देख प्राणिमात्र पर निर्विशेष वात्सल्यपरिप्लुतस्वान्त नितान्तशान्त महात्मा की शुभ प्रवृत्ति उपनिषद्व्याख्या करने में हुई, यह परम दयालु प्रभु की निर्हेतुक कृपा है।

हिन्दी माध्यम से होनेवाली तत्त्वप्रकाशन करने में समर्थ 'श्रीगूढार्थदीपिका' व्याख्या सम्प्रति 'ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक इन पाँच उपनिषदों पर प्रकाशित है। अधिकारी जनों के सौभाग्य-सूर्योदय की यह अमल प्रभा है। निःसन्देह तत्त्वान्वेषी विद्वत्समाज के लिये यह व्याख्या परम उपकारक एवं उपादेय है।

श्री १००८ मद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डिस्वामी महाराज श्रीचरणों ने अनवरत चेतनोद्धार के लिये अतुलित एवं अगणित दिव्य कार्य किये हैं। उन्हीं में से यह भी एक अमृतमय विमल कृति है जिसे देख आनन्दोद्रिक्त हृदय से कतिपय शब्द निकल कर आत्मसन्तोष के संवर्द्धक हो रहे हैं।

विश्वास है इस के आलोचन-प्रत्यालोचन से परम लाभ प्राप्त कर भावुक जन कृतकृत्य होंगे।

दास
देवनायकाचार्य रामानुजश्रीवैष्णवदास
(व्याख्यानवाचस्पति)
काशी

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रद्धाञ्जलिः

(प्रथम संस्करण से)

श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यैर्वेदान्तप्रवर्तकाचार्यैः शमदमादिकल्याणगुणगणपरिपूर्णैः श्रीभगवद्रामानुजसिद्धान्तनिर्धारणसार्वभौमैः परमहंसपरिव्राजकाचार्यैर्जगद्गुरुश्रीमदनन्तभगवत्पादीयश्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यस्वामिभिर्वीतरागोत्तंसैरनुष्ठापितशताधिकक्रतुभिर्लोकानुजिघृक्षया ब्रह्मजिज्ञासुपरममान्योपनिषदां व्याख्याने प्रवृत्तैः सर्वजनसुगमतया हिन्दीभाषया प्रणीतमन्वयार्थविशेषार्थभासुरं श्रीभगवद्रामानुजाचार्यप्रत्युज्जीवितश्रीविशिष्टाद्वैतसिद्धान्तानुयायीशाद्युपनिषदां व्याख्यानं विद्वल्लोकस्य चाविशेण महोपकारायकल्पत इति निश्चप्रचम् । एवंविधे लोककल्याणावहे सत्कर्मणि दत्तचित्तानां श्रीस्वामिचरणानां सन्निधावेवंविधविविधग्रन्थप्रणयनेन हार्दान्धकारनिराकरणावश्यकतां विज्ञापयन् श्रीस्वामिपादानामीदृशे विद्वदेकनिर्वाह्ये आचार्यकैङ्कर्ये उत्तरोत्तरमतिशयितां प्रवृत्तिं संघटयत्विति श्रीभगवन्तं प्रार्थयमानो लोकस्येदृशग्रन्थाभ्यासेनात्मकल्याणसाधनावश्यकतां प्रतिबोधयन् विरमति विस्तरात् ।

के० वि० नीलमेघाचार्यः
वेदान्ताध्यापकः
श्रीरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय
काशी

श्रियै नमः

श्रीमतेरामानुजाय नमः । श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः

❀ नम्र निवेदन ❀

विष्वक्सेनयतीन्द्राणां पादाम्बुजसुकोमलौ ।
उरस्स्थौ शंप्रदौ वन्दे प्राणिनामुपकारकौ ॥

अनन्तश्रीसमलङ्कृत श्रीमद्भगवदनन्तानन्तकृपापीयूष-सिञ्चित पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकृत 'ईशादिपञ्चोपनिषद्' की 'गूढार्थदीपिका' भाषाव्याख्या के द्वितीय संस्करण को भक्त-जनों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। "गहने ब्रह्मणि उपनिषण्णा" ऐसे गूढ़ उपनिषद् ग्रन्थों का रहस्य-विश्लेषण तथाकथित विद्वत्धुरीणों से सम्भव नहीं, वरन् वैसे परमतपस्वी द्वारा सम्भव है जिन समाधि-समधिष्ठित योगिपुङ्गव की अन्तर्दृष्टि भी सतत् उसी गहन ब्रह्म-तत्त्व में निमग्न है। आर्यावर्त्त के मानवों के लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि एतादृश 'गूढार्थदीपिका' 'शुकवद्वीतरागह्नत्' श्रीस्वामीजी की पावन लोकमंगल-कारिणी गिरा में उपलब्ध हो रही है। अन्वयार्थ एवं विशेषार्थ के व्याज से समास और व्यास शैलियों का उदात्त मणि-कांचन योग भी दर्शनीय है। भगवत्तत्त्व, आत्म-तत्त्व, भगवत्प्राप्ति के उपाय और इस महार्घ उपलब्धि के फल आदि की इस ग्रन्थ में शास्त्र-सम्मत प्रामाणिक पुष्ट व्याख्या तो मानव-समाज के लिए मानो मोक्ष-पथ-प्रदर्शक मणि-दीप की अलौकिक ज्योति संजोयी हुई है। आशा है, युग-युगान्तर तक 'गूढार्थदीपिका' रूपी इस पवित्र तरंगिणी के सुधा-सीकर से स्नात आर्य-संतति निष्पाप हो 'आत्मोद्धार' हेतु समर्थ हो सकेगी।

ग्रन्थ-प्रकाशन का सम्पूर्ण भार 'श्री महालक्ष्मी-नारायण यज्ञ समिति' ओझापट्टी सिमरियाँ (जि० भोजपुर) ने वहन किया है।

समिति के प्रति शतशः आभार व्यक्त है। श्री चरणों के गूढ़ अनुरागी
क श्रीसुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी जी, अध्यक्ष श्रीविजयराघव मन्दिर,
सत्प्रेरणा ने ग्रन्थ–प्रकाशन के इस कार्य को अवर्णनीय संबल दिया है।
महामना इन संत के चरणों में सदा अवनत हूँ। ग्रन्थ की सारी त्रुटियों
ह दीन जन स्वतः उत्तरदायी है और विज्ञजनों से करबद्ध क्षमाप्रार्थी

मेरे अनुज प्रो० विश्वनाथ सिंह (अर्थ शास्त्र विभाग
वि०—बोधगया) ने भी इस कार्य में काफी मदद पहुँचायी है। अत-
तः श्रीचरणों के समाश्रित इस दीन जन की प्रार्थना है कि अनुज
नीय हमारे मुख पर माता के आँचल की भाँति काषायाञ्चल की छाँह
रहे।

श्रीपादामृतलोलुप :-
सुदामा सिंह

विषय-सूची

अस्मदाचार्य-स्तुतिः

काषायं यज्ञसूत्रं शुचिवपुषि तथा चोर्ध्वपुण्ड्रंचभाले ।
यस्यास्ते दक्षहस्ते कलिकुमतिगिरीन्द्रेन्द्रवज्रं त्रिदण्डम् ॥
संसाराग्निप्रशान्त्यै भृतजलममलं दारुपात्रं पवित्रम् ।
श्रीविष्वक्सेनसूरेः पदकमलयुगं श्रेयसे संश्रयामि ॥
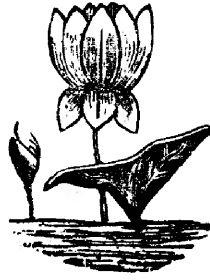
श्रीपादसेवक

श्री सुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी जी

अध्यक्ष—श्रीविजयराघव मन्दिर, डेहरी-ऑन-सोन

श्रियै नमः ।　　　　　　श्रीधराय नमः ॥

॥ अथ अभिनन्दन–पत्राणि ॥

श्रीमद्वेदमार्ग-प्रतिष्ठापनाचार्योभय–वेदान्त-राद्धान्त–निर्धारण–सार्वभौम–श्रीमच्छठरिपु-परकाल–नाथ-यामुनयतिवर–वरवरमुनीन्द्रादिप्रणीतसुदिव्य–निबन्धन–निबद्ध-मानस–जनन–मरण-संसरण-महापथबभ्रम्यमाण–जनिमत्कदम्ब–विमुक्तिघन्टापथोपदेशिक–शम–दम–दया-दाक्षिण्यसौशील्य-वात्सल्यादि–गुण–गणविभूषितानन्तश्रीसमलंकृत-श्रीमज्जगद्गुरु-भगवदनन्तपादीयानामीशादिदशोपनिषद्व्याख्यातृवर्य्याणांयोग– चरमसोपानरूप–समाधिसमधिष्ठित —ब्रह्मसाक्षात्कृतवर्य्याणामष्टोत्तर—सहस्र–श्रीसमलंकृतानां श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य्य-श्रीत्रिदण्डी स्वामिनां करकमलयोः भोजपुरमण्डलान्तर्गत-सिमरिया (ओझापट्टी) ग्रामे श्रीमहालक्ष्मीनारायणयज्ञावसरे सादर-समर्पितानि अभिनन्दन-पत्राणि :—

॥ १ ॥

'ओझापट्टीसिमरिया' वसतिरमृतभूर्विज्ञविप्रान्विता या,
सा धन्या तेऽपि धन्या य इह धृतियुताः किङ्करत्वम्भजन्ते ।
धन्यः प्रान्तो बिहारः जगति सुविदितः वैष्णवानां निवासः,
सर्वेषां धन्यतायां महितायां महितयतिवरः कारणं विष्वगार्यः ।.१॥
त्रिदण्डधारणेन यस्त्रितापनाशनक्षमः,
मनोज्ञभाषणेन येन सन्निवारितो भ्रमः ।
सुविक्रमेण तस्य पाद–पद्मयोर्मुहुर्मुहुः,

भवेदहर्निशं सुभक्तियुक्तिपूरिता नतिः ॥२॥
यदा यदाऽऽपसङ्गमं कृपाबलेन सेवकः,
तदा तदाऽनुभूयतेस्म "कोऽस्ति धन्यजीवनः" ।
इदं सुखं यथाऽस्ति हर्षदं सुभक्तिदं तथा—
सुखं कदाऽपि न क्वचित् प्रदृश्यते कथञ्चन ॥३॥
विरक्तिशक्तिपूरितं त्रितापपापचूर्णितम्
सुशास्त्रघोषगर्जितञ्चरित्र–चन्दनार्चितम् ।
प्रपन्नलोकसम्मतं विमुक्तिभावनान्वितम् ,
त्वदीयसत्कृपाबलादिदं सुजीवनं भवेत् ॥४॥
शरण्याय वरेण्याय कारुण्यामृतवर्षिणे,
विष्वक्सेनयतीन्द्राय स्यादिदञ्चाभिनन्दनम् ॥५॥

श्रीमत्कृपादपद्मपरागलिप्सुः—
जगद्गुरुरामानुजाचार्यस्वामिवासुदेवाचार्यो
"विद्याभास्करः"
अध्यक्ष, अयोध्याकोसलेशसदनस्य ।

॥ २ ॥

अये दयार्णव ! त्वदीयवन्द्यवीचिविन्दवः,
समस्ततापहारिणो विहारिणोऽमले पथि ।
ममाशुभानि संहरन्तु पावयन्तु कर्म मे,
विहारयन्तु मानसं त्वदङ्घ्रिपद्मसद्मनि ॥१॥
रमाकृपाप्रवर्षिणो रमेशभूतिभूषिणो,
जगद्विरागमञ्जुमार्गदीप्तदीपवर्त्तयः ।
प्रपत्तिशक्तिमूर्त्तयो मुकुन्दसान्द्रवैभवाः
भवन्तु मे सुमङ्गलाय शान्तये च सर्वतः ॥२॥
रजो न वर्धतां मुने तमो न बाधतां यते !
सदैव सत्त्वमेधतां गुरो प्रकाशभास्वरम् ।
ऋणत्रयप्रशोधनाय साधनानि कल्पयन् ,
दयादृशा त्रिदण्डिदेव वीक्षतां स्वकिङ्करम् ॥३॥
असम्भवञ्च सम्भवं यते त्वदीयवीक्षणे,
विधिश्च ते मनोध्वनि प्रकल्पते प्रवर्त्तनम् ।
कलिश्च सद्युगायते मलीमसोऽपि काशते
त्रिदण्डिदेव ते कृपा करोति किन्न विस्मयम् ॥४॥

जगद्विसङ्गतौ भुवो भयं प्रवर्धतेतमां
मनोऽतिचञ्चलं पदेन ते रतिं तनोत्यलम्
भिनत्ति धैर्यमाविला प्रकल्पना गरीयसी
गुरो! कृपैव ते वरा भवार्णवेऽस्ति मे तरी ॥५॥
अवश्यमेव ते समे विशेषपुण्यपीठिनः
पठन्ति ये स्तवं यते त्वदीयसन्निधिङ्गताः।
निराजनैनपूजनं तथा विशेषवन्दनं
विधाय ये कृतार्थतापदं प्रयान्त्यनामयम् ॥६॥
ततोऽपि भूरिभाग्यशालिनो भवन्ति तेजना
अनन्तपुण्यवर्षिणा समस्ततापहारिणा
महार्हसिद्धिदायिना भवत्पवित्रपाणिना
रथाङ्गशंखमुद्रया पुनन्ति ये निजां तनुम् ॥७॥
रमापत्तिप्रपतिशक्तिसौरभोद्गमः कलौ
तपस्विवषा त्रिपादभूतिदर्शको यतीश्वरः।
अशेषहर्षवर्षणं प्रपञ्चपुञ्जखण्डनं
मनीषिमार्गवर्त्तनं तनोतु नः सुमङ्गलम् ॥८॥
शठारियामुनादयस्तथा च कौशिकादयो
ऽथवा समे महर्षयः श्रुतिस्मृतिस्तुतिश्रिताः।
यदीयवर्चसाञ्चये भवन्ति दृष्टिगोचराः
स एधतां दयामयो दयैव वा मुनीश्वरः ॥९॥
सुरायते कलौ भृशं तरीयते भवार्णवे
महीयते क्षमादृशा नदीयते दयाद्रवे।
निधीयते गभीरता प्रकल्पनेऽमृतायते
त्रिदण्डिदेवदेवता प्रणम्यतेतमां हृदा ॥१०॥
खनीयतेऽणिमादिसिद्धिरत्नराशि दित्सने,
सुरद्रुमायते प्रपन्नवाञ्छितार्थपूर्त्तये।
हिमालयायते जगन्महौषधिप्रसूतये
त्रिदण्डिदेवदेवता प्रशस्यतेतमांभवे ॥११॥

कृपाश्रयः श्रीमतां—

कैलासपति त्रिपाठी, व्याकरणसाहित्यवेदान्ताचार्यः,
साहित्यविभागाध्यक्षः, साहित्यसंस्कृतिसङ्कायाध्यक्षः,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

॥ ३ ॥

विश्वामित्राश्रमभुविभावे श्रीशवात्सल्यदेहः
शेषस्यांशो दुरितसरितां शोषणेचण्डरश्मिः ।
तेजोराशिस्तपनमहसा भास्वतां कश्चिदेको
विष्वक्सेनो जयति जगतां तारकः श्रीत्रिदण्डी ॥१॥
माङ्गल्यानां विमलनिलयो वैष्णवाचारसारः
श्रीशक्तीनां निरूपमतनुर्यज्ञविद्याब्जभानुः ।
दुर्वृत्तानां विनयनमनुः सम्पदां कोऽपि कन्दो
विष्वक्सेनो जयति सुजनानन्दवर्षी महर्षिः ॥२॥
ओझाग्रामे सुकृतलहरीगाहमाने समाजे
चातुर्मास्यावसरसवने श्रौतशास्त्रोत्सवेऽस्मिन् ।
लक्ष्मीनारायणविषयके मंत्रवाचां विहारे
विष्वक्सेनो वितरति मनुं वैष्णवं भूतये नः ॥३॥
सद्भक्तानां विनयमहितं मण्डलं वैष्णवानाम्
श्रेणीबद्धं मधुररणनैः स्तोत्रवाचाममन्दम्
आरार्तिक्यं ज्वलनलसितं दिव्यकर्पूरमोदं
कुर्वंस्स्वामिन् प्रथयतितमां वैष्णवं वैभवं ते ॥४॥
भोज्यं देवा अपि तव यते ! त्वत्प्रयासैरमन्दैः,
प्राप्य प्रीत्या क्रतुषु विमलेष्वावहन्तः शुभानाम् ।
स्तोमं लोकान् विदधतियुगेऽस्मिंश्च माङ्गल्यमूर्त्तीन्,
स्वामिँस्तेजो भवतु भवतां भूतये नमः समन्तात् ॥५॥

श्रीमतां चरणाब्जरेणुरुषितः--
उपेन्द्राचार्यः, साहित्याचार्यः, कर्मकाण्डरत्नः
(उमेश प्रसाद उपाध्याय)
उच्च विद्यालय सरमेरा, (नालन्दा) ।

●

॥ ४ ॥

भोजस्यमण्डलपुरे सरिता सनीरा ।
धर्मप्रचारसुनिभा मुनिसेव्यमाना
राराजते प्रवहिता तृणपुञ्जशुभ्रा ॥
धर्मावतीचशुभदा तमसा यथास्यात् ॥१॥
लोकाय यज्ञनिरतो मुनिराजमौलिः ।

समागतश्च गुरुवर्यसुदिव्ययोगी ।
चातुर्मासयजनस्य समापने वै ।
पुण्यं विचिन्त्य मनसा कृपया तवैव ॥२॥
सर्वेजनाश्च सुधियो भुविचात्रयात्वा ।
कुर्वन्ति कार्यसकलं शुभकर्मजातैः ।
शास्त्रार्थचिन्तनपराः सुजनाः विभान्ति ।
श्रुत्वा च शास्त्रवचनं गुरवः प्रसन्ना ॥३॥
श्चात्मैव ढौकितसुधा विषगोऽपिनागः ।
दृष्ट्वा गुरोश्च चरणौ कलिकालदेहः ।
नत्वा पुनश्च फलकं नतमस्तकोऽयम् ।
व्यक्तीकरोति मनसा नमनं गुरोश्च ॥४॥
प्रोक्तं बुधैश्च कवने तवकीर्तिजातम् ।
तुच्छातितुच्छरसिता च मदीयवाणी ।
पूता सदैव भवतीती न जातशका ।
इत्थं विभाति तवकीर्तिसुधाधरोऽयम् ॥५॥
केचिद् वदन्ति कलिदुःखनिवारकं त्वां ।
केचिद् वदन्ति जनमानसराजहंसं
गृह्णन्ति केचन जनाः कलिवासुदेवं
प्रथनाम्यहं प्रतिपदैर्जनमोक्षकारम् ॥६॥
प्रामाण्यसिद्धघटनास्तवपादपद्मे ।
नैका विधाश्चघटिताः जनता मुखाग्रे ।
जेगीयमान वचनैः सुधियो लिखन्ति
पश्यन्ति विस्मयकरं गजरूद्रसिद्धम् ॥७॥
जानन्ति देवनिकरः शशिशेषपूज्यम् ।
भक्ता भजन्ति सततं कलिसौख्यदं त्वां ।
विप्रा वदन्ति सुधियो भुवि भाष्यकारं ।
थनाम्यहं प्रतिपलं ममलक्ष्यकारम् ॥८॥

श्रीमताञ्चरणारविन्दचञ्चरीकोऽयं:—
दीनबन्धुदीनानाथाचार्यः
या० सा० न्या० वेदान्ताचार्यः, प्राचार्यः
अधिकाशि श्रीविश्वनाथगुरुलसंस्कृत-
महाविद्यालयीयः ।

|| ५ ||

श्रीमद्वादिभयङ्करार्यसुकुले ख्यातोमणिः साम्प्रतम्
शेषाचार्यमतावलम्बियतिराट् शेषावतारोऽपरः ।
श्रीमद्यामुनदेशिकस्यमुखकञ्जोल्लासको भास्करः
विष्वक्सेनमुनिः सदा विजयते लोकोपकारे रतः ॥१॥

लोकानां समुदायमध्यगभुजङ्गेशो भुजङ्गो भवन्
तत्रस्थैर्मनुजैर्विलोकितवपु स्त्वं द्रष्टुमागात् किम्
नाश्चर्यं करणीयमत्रविषये मन्ये शरीरान्तरे
वैशिष्ट्यं निजपूर्वतन्वसुलभं तद्द्रष्टुमत्रागतः ॥२॥

श्रीमद्भोजपुराख्यमण्डलवरे प्रान्ते विहारे शुभे
ग्रामे सेमरियाभिधे सुसलिला धर्मावतीराजते ।
तद्दक्षीयतटे सुपर्णरचिते रम्ये कुटीरे हरे
ध्यानेनैव समाधिसिद्धविधिना राराज्यते मे गुरुः ॥३॥

सूर्याश्वश्रुतिशून्यकर्णलसिते श्रीवैक्रमाब्दे शुभे
कन्यार्केसुदिविष्णुवासररवौ श्रीविष्णुभेनान्विते ।
चातुर्मास्यविधिं विधाय विधिवत् विश्वोपकाराय वै
लक्ष्मीशाख्यमखं प्रकल्प्य बहुशः संशोभते योगिराट् ॥४॥

अशेषपापनाशकं स्वभक्तभीतिभञ्जनम्
सुरद्रुमाभिकल्पकं समस्तकामपूरकम् ।
तमः छिदं प्रभाकरं बुधैः सदा समर्चितम्,
गुरोः पदाम्बुजद्वयं भजामिशान्तिदायकम् ॥५॥

श्रीमच्चरणसरोजरेणुधूसरितः—
श्रीनिवासाचार्यः (पं० शिवपूजन त्रिपाठी)
शास्त्रार्थमहारथी, व्या० सा० आयुर्वेदाचार्यः,
प्राचार्यः, पटनासिटीस्थ स्व० सेठरामनिरञ्जनदास मुरारकासंस्कृत
महाविद्यालयस्य ।

॥ ६ ॥

जगद्वन्द्य स्वामिन् कृपालो वरेण्य
चिदानन्दरूपोऽसि परमं शरण्यः
अविकार निसङ्ग पापघ्न देव
त्वदन्योऽस्ति को रक्षको मे त्रिदण्डिन् ॥१॥

दक्षहस्ते स्थितं गुरो ते त्रिदण्डम्
दृष्ट्वा कलिः प्लायते चान्तकोऽपि च।
रक्ष मां यते निर्बलं निःसहायम्,
क्व यामि गुरो त्वच्चरणं विहाय ॥२॥

दीनः प्रपन्नस्तव दासानुदासः
निरालम्बोऽहं कं शरणं व्रजेयम्।
यदातः प्रपन्नोऽस्मि शरणे त्वदीये
न कुत्रापि बाधा न च भूत–भीतिः ॥३॥

कालजयिन्! सुरतरो विष्वक्सेन
त्वमसि गुरो केवलं मे शरण्यः।
हे ज्योतिर्मय जङ्गमस्तीर्थराजः
वितरसि क्रतुभिः सर्वतो भद्रम ॥४॥

न जानामि कांचित् क्रियां नैव योगम्,
स्मरामि त्वदीयां तनयां सदैव
अशीतिवर्षस्य जनार्दनस्य
गृह्यतां गुरो मेऽन्तिकोऽयं प्रणामः ॥५॥

श्री चरणकमलचञ्चरीकः—
जनार्दन मिश्रवैदिकः
ग्रा० पो०—सुहिया, (भोजपुर)

ग्रामे सेमरियाभिधे भोजस्य राज्ञः पुरे
चातुर्मास्यकृते त्रिदण्डियतिराड् भक्ताग्रहादागतः ।
तत्रत्यं प्रवदामि नूतनतरं वृत्तं महाश्चर्यदम्
श्रुत्वाच्छन्दसि मे रुचिः सुरुचिराभूद्यज्जनाः साक्षिणः ॥१॥

धर्मावत्याः प्रवाहे प्रवहति पवनात्कश्चिदेकः शवो यः
रात्रावेवागतः सन् यतिवररुचिरस्नानघट्टे हिलग्नः ।
सिस्नासुस्वामिवर्यैः प्रचकितमनसालोक्य तं सन्निधानात्
पृष्टो भो ब्रह्मचारिन्! किमिदमिति कुतः पश्य किं त्वं बिभेषि ॥२॥

श्रुत्वादेशं तदस्थस्त्वरिततरमयन् स्वामिपादाब्जभृङ्गः,
दृष्ट्वा तं व्याकुलः सन् प्रवदति भगवन्! ब्रह्मचारी शवोऽयम् ।
नात्र स्थेयं कलापि प्रचलतु झटिति स्नातु दूरं हि गत्वा
स्वामी शिष्यानुरोधान्निखिलविहितकृद्दूरगः स्वाश्रमेऽयात् ॥३॥

प्राप्ते काले प्रभाते यतिवरवदनोद्भूतशावप्रसङ्गे,
केनाप्युक्तो हि स्वामिन्! प्रबलविषधरेणातिदष्टो मृतः सः ।
श्रुत्वा सान्निध्यसंस्थं कथयति रभसा देहि गुम्मारसं ते,
मत्वा दत्तश्च तस्मै मुनिवरकृपया जीवितस्तेन सोऽभूत् ॥४॥

ज्ञाते वृत्ते जनास्तु प्रचकितनयनैस्तं युवानं हि दृष्ट्वा,
बारम्बारं स्वरोच्चैर्यतिजयमतुलं कारयन्तस्तदानीम् ।
ध्यायन्तः पादपद्मं यतिवरमहिमोद्गाहने सम्प्रवृत्ताः,
मोदामुग्धा ह्यभूवन् स च गृहविरतः स्वामिनः सेवकोऽभूत् ॥५॥

धन्यः स्वामिंस्त्वदीयं प्रखरतरतपो वर्णने कः समर्थः
दृष्ट्वा तेजः प्रभावं जगति मनसि को विस्मयो यस्य न स्यात् ।
धन्यार्हास्तेऽपि भक्ता यतिवरचरणसेवनासक्तचित्ताः

सौभ्यागेनेव किञ्चिद् वयमपि भवतां सम्मुखे वक्तुकामाः ॥६॥

श्रीचरणमानसहंसः—
मदनमोहन द्विवेदी, व्याकरणाचार्य,
काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न,
प्रवक्ता महात्मागाँधी इन्टर कालेज, दलन छपरा।

●

॥ ८ ॥

प्रभोरादेशाद्यः क्षितिसुतलमागत्य भगवान्।
विभुर्विष्वक्सेनः यतिपतिवरः साधुचरितः।
सदा लोकालोके विचरति पृथिव्यां गुरुवरः।
त्रिदण्डी श्रीस्वामी वसतु सततं चित्तपटले ॥ १ ॥

यथाशेषाचार्यः लसितनिजक्रोडे प्रभुवरम्।
कुमारं संरक्ष्य प्रमुदितहृदाशास्य प्रथितम्।
प्रचक्रेतद्वन्मे यतिशिखरचूडामणिरिहं।
स्वसौम्याङ्के शैलाधिपशुभदमाङ्गल्यमिरितः।
त्रिदण्डी श्रीस्वामी वसतु सततं चित्तपटले ॥ २ ॥

समेदासाः प्रेम्णा यतिनिकटमागत्य विधिना।
प्रणामं साष्टाङ्गं विदधति हृदातान् यतिवरः।
शुभां विष्णोर्गाथामघहरतरांश्रावयतियः।
त्रिदण्डी श्रीस्वामी वसतु सततं चित्तपटले। ३॥

चतुर्मासे नाथः नृपतिवरभोजस्यनगरात्
सुदूरे सद्ग्रामे द्विजमुखसमूहैः समुदिते।
नदीधर्मावत्याः सुभगतटपार्श्वे सिमरिया।
शुभाख्ये सद्देशे यजति विधिपूर्वं हरिमखम्
त्रिदण्डी श्रीस्वामी वसतु सततं चित्तपटले ॥४॥

परमाचार्यणां वन्देऽहं चरणाम्बुजम्।
यत्कृपालवप्रसादेन वेंकटेशं समाश्रितः ॥५॥

विष्वक्सेनस्तवं नित्यं यः पठेत् श्रद्धयान्वितः ।
शान्तिं दान्तिं च भक्तिं च ज्ञानं प्राप्नोत्यसंशयः ॥६॥

परमाचार्यचरणाब्जरेणुलोलुपः—
राजनारायणाचार्य "शास्त्री"
साहित्याचार्यः
श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर चरित्रवन बक्सर भोजपुर, बिहार

॥ ६॥

त्रिदण्डिदेवं वै यतिवरसुसेव्यः बुधवरैः
भ्रमेण भ्रान्तो हि जडमतिरसूयः गतधियः
सुचितं ध्यानं वा न च मम वचोऽप्यस्त्यविकलम्
यथाने सान्निध्यात् यतिवर ! तवार्चासुविमलाम् ॥१॥

महर्षे वेदानां गुरुतरविधानेन चकितः
दुरारोहच्छास्त्रादतितरभयार्तोस्मिशतशः ।
अशक्तो दुखार्त्तः कलमलविकारेण विकलः
तथापीत्थं तृप्तः तवचरणसेवासुनिरतः ॥२॥

नमोऽस्तुते दण्डधरायनित्यं, दिव्याय काषायसुशोभिताय ।
कमण्डलुश्रेष्ठकरस्थिताय, भालोर्ध्वपुण्ड्राय, महामनीषिने ॥३॥

धर्मावती दक्षिणतीरभागे पर्णासने सिद्धपदे विराजितः
व्यनीय मासान् चतुरः महर्षिः लक्ष्मीशयागं विधिना चकार ॥४॥

आश्विने मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां शुभान्विते ।

सिमरियेतिशुभेग्रामे प्रददे ते पदाब्जयोः ॥

श्रीपादसेवकः

रामसुरेशपाठकः, छपरास्थसोऽहंसंस्कृतोच्चविद्यालयस्य

प्रधानाध्यापकः,

व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्राचार्यः ।

॥१०॥

शरणागतानामभयंकराय, भवाम्बुधौ मग्नशुभंकराय ।
दिव्याय देवार्चनतत्पराय, त्रिदण्डिदेवाय नमोनमस्ते ॥१॥

वर्णाश्रमीयार्थविवेचकाय, सद्धर्मसंस्थापनतत्पराय
यज्ञार्थकाराय जगद्धिताय, यज्ञात्मकायैव नमो नमस्ते ॥१॥

सत्साधकानां पथदर्शकाय, सदा सदाचारव्रतेरताय ।
यशस्विने पूर्णतपस्विने पुनः, त्रिदण्डिदेवायनमो नमस्ते ॥३॥

तपस्कृते क्वापि चमत्कृताय, श्रद्धालुकानां भवतारकाय ।
काषायवस्त्राय च यज्ञमूर्त्तिणे, त्रिदण्डिदेवाय नमो नमस्ते ॥४॥

तपोमयं तीर्थमयं तपस्विनम् त्रिदण्डिनां दे वमयं तपोधनम् ।
त्रितापतस्त्राणकरं पयोव्रतं, त्रिदण्डिदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५॥

पञ्चपद्यात्मकं पुष्पग्रन्थितं माल्यं सुभक्तिकम् ,
नागेशेनार्पितं स्वामिन् ! गृह्यताम् भवतारक !

भावत्क एव दासानुदासः—

डा० नागेश शास्त्री, एम० ए०, पी० एच० डी०
जी० ए० एम०एस०,
भूतपूर्व निदेशक, देशीचिकित्सा स्वास्थ्य विभाग,
(बिहार) शेखपुरा, पटना ।

॥११॥

मण्डले भोजनृपतेः ग्रामे सिमरियाभिधे।
चतुर्मासव्रतं स्वामी कृतवान् हरितुष्टये ॥१॥

सप्तवेदनभोनेत्रवैक्रमे भानुवत्सरे।
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यां तिथौ शुभे
धर्मावतीनदीतीरे वेदविद्यासु संयुक्तैः।
देवानाहूय शालायां विधिना कारितो मखम् ॥२॥

श्रीसत्यपालनपारायणसक्तचित्तम्
मुक्त्यर्थसेवितपथं विबुधैरुपास्यम्
विज्ञानज्ञान निरतंसुजनैः सुसेव्यम्
स्वामित्रिदण्डिनमहं शरणं प्रपद्ये ॥३॥

सम्पादितम् विविधयज्ञमनेकरूपम्,
येनैव कारितमिदं भुवनं पवित्रम्।
सर्वत्र सर्वविधिना परिवर्धमानम्
स्वामित्रिदण्डिनमहं शरणं प्रपद्ये ॥४॥

श्रीस्वामिचरणाब्जभृंगः--
भुवनेश्वर त्रिपाठी, व्याकरण, साहित्याचार्यौ
विशारदश्च, संस्कृताध्यापकः
राज्यसम्पो० श्रीरामनारायण संस्कृतोच्च विद्यालय,
वरडीहाँ (रोहतास)।

●

॥१२॥

चिरकृतपुण्यपवित्राः सेमरियाग्रामवासिनो ये ते।
जनहितविरताविप्रा यदुपरि दया योगिवर्य्यस्य ॥१॥

काषायं वस्त्रमच्छं शुभतनुविलसच्चोर्ध्वपुण्ड्रं च भाले,
दक्षे हस्ते त्रिदण्डं निजजनहितकृद् दुष्टसंघातघाति।
वामे हस्ते प्रशस्तं शुभकरमनिशं वारिपात्रं सतां च,
तं वन्दे योगिराजं नयनपथगतं वंशमञ्चोपविष्टम् ॥२॥

किं मे वा कस्यचिद् भो अपि ते मृदुमना लोककल्याणकर्त्ता,
मन्दं मन्दं प्रगच्छन् पथिपतितनरानुद्धरन्नेधमानः ।
उद्भाभिर्वाग्भिरात्तं सकलमुनिमतं ब्रह्मतत्त्वं गृणाति,
वन्दे वन्द्यंवदान्यं मम निखिलधनं श्वेतयज्ञोपवीतम् ॥३॥
रागद्वेषादिशून्यं कलिमलदलनं पापपूगाद्रिवज्रम्,
श्रीमद्वादीभसिंहं स्वमतरतहितं शास्त्रसारज्ञपूज्यम् ।
साङ्गं योगं दधानं श्रुतिविहितविधीन् पालयन्तम् महान्तम्
शेषस्याशेषवाचामवनविसरणासक्तदेवं समीडे ॥४॥
वित्तं पुत्रं कलत्रं यश इति च परामृद्धिमाप्तुं प्रहृष्टाः,
आधिं व्याधिं च चिन्तां भयमिति च परित्यक्तुमाशान्विताश्च ।
संश्रीभूयाव्रजन्ति प्रथितिरियमिति प्राप्तकामा भवन्ति
वन्दे स्वाचार्यपादं बहुजनिताशेषपाप्मापहं तम् ॥५॥
पद्यानीमानि पुष्पाणि दत्तानि पदपद्मयोः
तुष्ट्यै सन्तु विकीर्णानि विष्वक्सेनार्ययोगिनः ॥६॥

भवच्चरणचञ्चरीकः—
चन्द्रकुमार त्रिपाठी (चक्रधरः)
प्रधानाचार्यः,
राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, राँची (बिहार)

॥१३॥

अन्ते प्रसूतषड्वर्गविनाशको यः
विघ्नानाँश्च भञ्जनकरो धृतवान् त्रिदण्डम् ।
श्रीमत्फणीशयतिराज जनैः प्रसिद्धः,
अद्वैतारिदेव भगवँस्तव भव्यमस्तु ॥१॥

धर्मावतीनदीसेमरीतिनाम्नि
सत्काश्यपेयद्विजवर्णप्रसिद्धग्रामे ।
यज्ञश्रुत्युक्तविधिना शुभमङ्गलाय
यज्ञावतारभगवँस्तव भव्यमस्तु ॥२॥

कुतर्कपाषण्डमतावलम्बिनाम्
पञ्चाननो भूय कुतूहलेन ।
प्रकाश्यश्रुत्यर्थं कदर्थभञ्जक
सिंहावतार भगवँस्तव भव्यमस्तु ॥३॥

कुसङ्गे दुःसङ्गे रिपुबहुलयूथात् हि त्रसिते,
विषाग्नौ रोगाग्नौ दुःखाग्नौभवाब्धौ च पतिते
इतीत्थे दुशीले नहिजगति त्राता यतिवर ।
मदीयेयमाशा श्रुतिप्रथिताचार्य चरणयोः ॥४॥

श्रीमतां चरणाश्रितः—
त्रिपाठिकेशरीनन्दनाचार्यः, व्याकरण शास्त्री,
आयुर्वेदाचार्यः ।
ग्राम—पेरहाप (भोजपुर)

●

॥१४॥

सुधेव तुल्यं भवतो मुखाब्जात् ,
सुशास्त्रयुक्तं मुनिभिः प्रणीतम् ।
श्रुत्वोपदेशं सततं तु दुर्जनाः,
कुलोचितं कर्म समाचरन्ति ॥१॥

तृणरचितकुटीरः पुष्पदामैर्विभाति ।
वसति यतिवरस्तु योगनिष्ठः सदावै ।
वसनकटिकषायं वस्त्रयज्ञोपवीतम्

अरुणरविमिव भाति ज्ञानदाता गुरुर्मे ॥२॥

नदीनां सत्प्रान्ते विचरति यतीन्द्रः गुरुवरः,
सदा शस्तं मार्गं विदधति जनानां सन्निकटे ।
यतीनां मार्तण्डः स्मृतिनिधिज्ञः सुचरितः,
धरायां वन्द्यस्त्वं जयति सततं मे यतिवरः ॥३॥

प्रान्ते विहारे मनुजस्य लोके,
सन्मण्डले भोजपुरे प्रसिद्धे ।
श्रीसेमरी ब्राह्मणवासभूमौ,
चक्रे तपो मासयुगं यतीन्द्रः ॥४॥

शून्याङ्कनवचन्द्राब्दे आश्विनमासे सितेदले
पूर्णातिथिसमायुक्ते यज्ञं जातं सुशोभनम् ॥५॥

शांडिल्यसुकुलेजातः अम्बिकानामसंयुतः
शिष्यस्ते पादपद्मस्य विदधात्यभिनन्दनम् ॥६॥

भवच्चरणचञ्चरीकः—
अम्बिका त्रिपाठी
साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्यः
भूतपूर्व प्रधानाध्यापकः
ग्राम—पो॰ गोड़ारी (रोहतास)

॥१५॥

यतिर्ग्रामे ग्रामे विलसतितरां योगनिपुणः,
कथामुक्त्वा विष्णोर्जनगणवरान् शिक्षयतियः ।

समाधौ सन्मग्नः भजति हरिपादाम्बुजमहो
सदाध्येयो गेयः सकलजनवर्गैः प्रमुदितैः ॥१॥

सकलशास्त्रजज्ञानधृतः प्रभो,
तव मुखात्पतितं रससुन्दरम् ।
पिबति भक्तजनः सुसमाहितः,
भवति तेन सुखं परमाद्‌भुतम् ॥२॥

भवदीयचरणचञ्चरीकः--
बलराम त्रिपाठी, अध्यापकः
लक्ष्मीनारायणमन्दिर, चरित्रवन बक्सर ।

●

॥१६॥

धर्मावतीतट--विराजित--भूमि--भागे
धर्मस्मृतिं जनयतीह भुजंगनाथः
शेषावतारपुरुषेण समाहितश्च
शेषेश्वरस्य चरणौ महसा पुनाति ॥१॥

दृष्ट्वा जनाश्च पुरतस्तव पाद--पद्मम्
गायन्ति लौकिकपरां गुणकीर्तिगाथाम् ।
अत्रावतीर्णगुरुराजमिषेण दिव्यः
व्याजान्तरेण पुरुषोत्तमयोगिराजः ॥२॥

राराजते भुजगभोजसुराज्य भागे
व्याख्यात धर्म सकलं सुरभारतीभिः
भाषानिबद्ध विविधं द्विविधं च शास्त्रं
प्रामाण्य वाद लसितं जनवक्त्रभागे ॥३॥

पूर्वोक्तकीर्ति-गुनगान-विराजमानं
वेदान्त-शास्त्रमितिमेयपदार्थभाजं

भक्त्या भजन्ति मनसा सकलं विहाय
लोकाश्च तं तिलकचिह्नविभक्तकायं ॥४॥

दृष्ट्वा गुरो तव पुरः चरणान्तिकोऽयं
गानं च गायति पुनः निजकार्यहेतोः
मन्त्रार्थलक्ष्यगुरुराज सुकाव्यरूपं
स्वेनैव निर्मितवचस्तव कृष्णदेवः ॥५॥

श्रीभगवद्दासानुदासः—
कृष्णदेवपाठकः साहित्याचार्यः विशारदः स्नातकश्च ।
प्राध्यापकः
नाउरस्थ एम० जी० एम० के० उच्च विद्यालयस्य,
औरंगाबाद (बिहार)

॥१७॥

काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम्,
हस्ते त्रिदण्डं सुमनोहरञ्च ।
चक्रं च शंखसुविराजितं वै
श्रीशस्वरूपं च गुरुंभजेऽहम् ॥१॥

नमोनमः यतीन्द्राय श्रीविष्वक्सेनार्ययोगिने ।
नमोनमो मुनीशाय श्रीसंप्रदायवर्द्धिने ॥२॥

धर्मावतीनदीतीरे सेमरियाशुभे पुरे ।
लक्ष्मीनारायणास्य वै यज्ञं चक्रे मुनीश्वरः ॥३॥

काषायवसनं यस्य यस्य हस्ते कमण्डलुः ।
श्रीत्रिदण्डं करेयस्य स योगीशः विराजते ॥४॥

श्रीसंप्रदायवद्ध नाथ ज्ञानाञ्जनशालाकया ।
नमोनमः योगीशाय श्रीगीतार्थप्रकाशिने ॥५॥

श्रीमतां चरणाब्ज-चञ्चरीक :—
सुरेश त्रिपाठी, व्या० साहित्याचार्यः
तिवारीडीह (रोहतास)

॥१८॥

सकलविघ्ननिवारक हे गुरो,
विनयता सहिता तव पादयोः
स्तुतिरवदैव मदीयमनो भवा,
यशविभूतियुतं कुरु शिष्यकम् ॥१॥

प्रातर्नमामि यतिराजपदारविन्दम् ,
सन्मानवैः प्रतिदिनं परिपूजितं वै ।
शास्त्रेषु चित्तसततं सुकरं च यस्य,
तं ब्रह्मनिष्ठमहमार्त्तविनाशहेतुम् ॥२॥

सम्यक् नमामि निजदेशिकपादपद्मम् ,
अष्टाङ्गयोगनिपुणं सकलार्थदञ्च ।
दुःखार्त्तप्राणिजनहर्षसुदत्तचितं,
श्रीमत्त्रिदण्डियतिराजशिरःसुरत्नम् ॥३॥

मंगलमभिनन्दनं ब्रह्मतत्त्वविधायिने ।
श्रीयुतसेनन्तविष्वक्स्वामिने श्रीत्रिदण्डिने ॥४॥

श्रीमतां चरणचञ्चरीकः—
विजयराघव पाण्डेयः व्याकरणाचार्यः
ग्राम० कैथी (रोहतास)

॥१६॥

यत्पादपङ्कजपरागनिपानमग्नाः
आर्षप्रभावबहुसंचितकर्मनष्टाः ।
स्वामिप्रपत्तिसुयाननिवेव भक्ताः
तस्यान्तरात्मकृपयागतिहीनवन्द्याः ॥१॥

स्वाम्यङ्घ्रिपूज्ययुगलाम्बुजवंदनार्हाः
संसारभावविधुताखिलकर्मपुंजाः ।
कामात्तभूतिरहिताश्च मदान्धनीचाः
सर्वे भवन्त्यमलदास्यसुभावभक्ताः ॥२॥

ये तु त्वदीयचरणाब्जपरागगन्धं
जिघ्रन्ति कर्णसुपुटैः श्रुतिनीतभावम् ।
भक्त्यावृताङ्घ्रियुगलः परया च तेषाम्
नापैषि पूज्यहृदयाब्जगृहीतकोशात् ॥६॥

पराविद्यापूर्णं सकलजगकल्याणनिरतं
दयागारं पारं सुपरहितकाषायवसनम् ।
प्रशान्तं कामारिं कमलनयनं धीरमनघम्,
नतोऽहं मोहारिं नयनपथगामीभवतु मे ॥४॥

श्रीस्वामिचरणाम्बुजमधुव्रतः—
डा० शिवनाथ मिश्र "शिवेशः"
एम० ए० त्रय, पी० एच० डी०
आचार्यद्वय, ए० ए० एम० एस०
प्रधानपुस्तकाध्यक्षः,
एच० डी० जैन कॉलेज आरा

||२०||

अनन्ताचार्यशिष्याय, पयोव्रतरताय च।
विष्वक्सेनयतीन्द्राय, यतिराजाय ते नमः ||१||

रम्येयं मखशालावै, राजते सुखदायिनी।
अत्रस्थिताः सुराः सर्वे, पूजां गृह्णन्ति सर्वशः ||२||

ज्ञानोपदेशमाख्यानं, सभायां कुरुते मुनिः।
नारायणस्वरुपं वै, मन्यन्ते ते सभासदाः ||३||

मुनेर्भीतः सदादूरे, पापं तिष्ठति सर्वदा।
सेवतेऽमुं सदापुण्यः, सादरं यतिनायकं ||४||

चिदचिद्ब्रह्मतत्त्वस्य, उपदेष्ट्रे महात्मने।
वादिभीकरसिंहाय, सेनेशाय सदा नमः।५||

कन्याऽर्के सिते पक्षे, गुरुवारे पूर्णातिथौ।
शास्त्रार्थस्य सभायां वै, कुरुते चाभिनन्दनम्।।

श्रीमच्चरणचञ्चरीकः
उपेन्द्राचार्यः (उपेन्द्रनारायण शुक्ल)
कर्मकाण्डी, साहित्याचार्य पौरोहित्याचार्यस्च
श्रीत्रिदण्डिदेव सत्संग आश्रम, डिहरी ओनसोन रोहतास।

||२१||

धर्मावत्यास्तटेयाम्ये भोजपुरे सुमण्डले।
सिमरियेति विख्यातो ग्रामश्चात्र विराजते ||
शंखचक्रसमायुक्तः पुष्पमाला सुशोभितः
विष्णुरूपाय देवाय गुरुवर्याय ते नमः ||

अनन्ताचार्यशिष्याय पयोव्रतरताय च
विष्वक्सेनयतीन्द्राय गुरुवर्याय ते नमः । ॥६८॥

काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ,
सुदारुपात्रं परमं पवित्रम् ।
सुशिष्यवृन्दाखिलपापहारिणम् ,
नमाम्यहं स्वामिवरं यतीन्द्रम् ॥

पद्यपुष्पाञ्जलिं स्वामिन्
मनोभावेन गुम्फितम्
कृष्णप्रपन्न दासोऽहं
अर्पये ते पदाम्बुजम् ॥

श्रीमतांचरणाब्जचञ्चरीकः—
कृष्ण मोहन त्रिपाठी
ग्राम—पोखराहाँ (रोहतास)

॥२२॥

पुण्या कीर्तिर्वचसि मधुरा काऽपि पीयूषधारा,
दृष्टौ तेजस्तपसि ललिता लोक--कल्याण-लीला ।
दिव्या चर्या दुरितहरणे यस्य सूर्य--स्वरूपा,
सोऽस्माकं स्यात् समुदयविधौ मार्गदाता यतीशः ॥१॥

दीर्णा दुःखैरहमहमिकाभिः समायान्त्यजस्रं
पादच्छायाधिगमनधिया यस्य पुण्यं कुटीरम् ,
प्रीता गेहं मुदितमनसा वाञ्छितार्थानवाप्य
स्वामिन् यान्ति प्रभववरदो मय्यपि प्रीति-सान्द्रः ॥२॥

सेवार्हत्वं मयि नहि गुरो ! नापि सत्त्व--प्रकाशो
मोहध्वान्ते पतति चरणः क्वापि गर्तेऽनिवर्त्ये
ग्लानिम्लानं मम तनु-मनो यत्नशून्यत्वमेति
स्वामिन् प्रीत्या प्रहर जड़तामुन्नतिं प्रापयाग्राम् ॥३॥

स्वामिचरणानां कृपाश्रयः
स्वाधीन त्रिपाठी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालये
बी० एस० सी० आनर्स छात्रः

॥२३॥

प्रसिद्धे भोजपुरमण्डलवरे शस्यादिसंशोभिते ।
नौमि ज्ञानविभूषितं यतिवरं काषायवस्त्रावृत्तम् ॥
दक्षेहस्तत्रिदण्डराजितशुभम् वामे कमण्डलुधरम् ।
सुन्दराञ्चितभालपटतिलकं मध्ये श्रीपूर्णेन वरम् ॥
अरूणशुक्लाय संज्ञः स्वामिचरणाब्जसेवकः ।
भक्तिभावेन संयुक्तः कुरुते एवाभिनन्दनम् ॥

दासानुदासः--
पं० श्री अरुण कुमार शास्त्री
मानस व्याख्याता, पौथू (औरंगाबाद)

●

॥२४॥

नमामि संत राज शत शत नमामि धर्मराज,
भजामि भेद–भय-भ्रम-भव-भार हार भक्तराज ।
चमत्कार यश प्रचार विषद प्यार बेसुमार,
एक हजार आठ श्री त्रिदण्डी जी निर्विकार ।
पुण्यात्मा धर्मात्मा स्वरूप तुम परमात्मा,
अथाह अन्तरात्मा महात्मा जगदात्मा ।
त्रिदोष नाश की अखण्ड शक्ति है त्रिदण्ड में,
योग शास्त्र शान्ति सत्य नीहित उर्ध्वपुण्ड्र में ।
प्रचण्ड रोष कुण्ड पाप पुंज को जला रहा,
अनन्य भक्त भाव द्वेष राग को मिटा रहा ।
अधर्म का पता न टिक सका समक्ष आपके,
आनन्द मयूर बनके नाचता प्रत्यक्ष आपके ।
भीषण तप की ज्वाला लपट वस्त्र पहने जो,

गंगाजल पावन पेय कर में कमण्डल जो।
ज्ञानोपदेशक तट गंगा विहार करें,
शास्त्रानुसार नित गौ दूध आहार करें।
प्रशस्त पथ प्रदर्शक, है नियम का अद्वितीय विधान,
यश वृहत् पुण्य क्षेत्र का अमिट कीर्तिमान।
शूर हो सनातनी तु सर्व संत सारथी,
हुजूर ! धर्म-धाम कंठ राजती है भारती।
प्रतिमूर्ति हो तु शक्ति की, सिन्धु सत्य शौर्य के
महान् हो तु भिज्ञ भी समस्त वेद मंत्र के।
हे समुंद्र चार वेद शास्त्र हे सुजान हे,
विराजमान कंठ में अठारहों पुरान हे।
अराधना करें तो किस तरह न समझ पा रहा,
विहीन शक्ति साधनों से मुर्ख मैं सदा रहा।
असंख्य कंठ खोलकर अगण्य लेखनी लिये,
न शब्द है विशाल प्रेम "लक्ष्मण" हृदय लिये।

श्री चरण-कमल-भ्रमर
लक्ष्मण तिवारी "प्रसून"
ग्राम सोनवरसा (भोजपुर)

●

॥२५॥

जगि भगवान बईठल बानी, स्वामी के मरम केहू नहिं जानी ॥ टेक
बैकुण्ठ नाथ द्वार भईल बटोरवा।
करे परचार धरती जाई के धरमवा ॥
इन्दिरा भेजली आपन जानी ॥१॥ टेक

यतिवर स्वामी देव भाषा सरल कइलीं।
हूदल गरन्थ उपराई भाषा लिखलीं॥
बेद-शास्त्र याद बा जबानी ॥२॥ टेक

अदना प्रेमी भगत राउर नाम फोटो धईके।
सगरे धरम जगवलन जगि कीरतन कईके॥
जगि भगवान के करदानी ॥३॥ टेक

लछुमन, बलराम रूप आईल धरती।
धरम बिरोधियन के खेत परल परती॥
शेष फुफुकार बा निशानी ॥४॥ टेक

देवतन के नेवता देके जगिमें बोलाइना।
देव, सन्त, भगत जन के मजे में पवाईना॥
हनुमान करेलन दरवानी ॥५॥ टेक

भगतन के तारे खातिर गाँव-शहर घूमिना।
पाप धोई-२ जीव के चमके खातिर मालिना॥
देंह के दूबर एसे बानी ॥६॥ टेक

रामानुज स्वामी के बाग हरिअरबा।
भारत में सगरे श्रीधरम फहरतबा॥
गंगा पिआवस आके पानी ॥७॥ टेक

रामनारायण स्वामी अइसन दिहीं अउरी धनवाँ।
प्रेमवा आपस में बैठो धरम गहनवाँ॥
होईहें निहाल सब प्रानी ॥८॥ टेक

दास रोज पान करो, चरन धोई जलवा।
सदा अँखिया में रहो मुनि के चेहरवा॥
मतियाँ सुधारे रउरा जानी ॥९॥ टेक

दासानुदास :—
रामजी पाठक
कनीय अभियन्ता
डिहरी-ऑन-सोन (रोहतास)

म

||२६||

विनय करिले बारम्बार ए यतिवर विनय करिले बारम्बार
काषाय वस्त्र रउवा तन पर विराजत बाड़े।
हाथवा कमण्डल त्रिदंडवा से सोभत वाड़े ||
तनवा से ज्योतिया अपार ए यतिवर
विनय करिले बारम्बार

रग रग तनवा के तप से तपाई दीहनी।
धर्म के धुरिया के चारो ओर विखेर दीहनी ||
सोहेले त्रिपुण्ड लिलार ए यतिवर
विनय करिले बारम्बार

दुनिया के व्यंजन के तृन सम त्यागि कर।
खरह कर घरवा मचान चौकी वास कर ||
दूधवा के करिले अहार ए यतिवर
विनय करिले बारम्बार

बार-बार हम रउवा चरण परत बानी ||
दया दृष्टि राउर होखे अरज करत बानी ||
भूल चूक छमबि हमार ए यतिवर
विनय करिले बारम्बार
विनय करिले बारम्बार ए यतिवर
विनय करिले बारम्बार

आपका पाद सेवक—

अवध किशोर पाठक

एम. ए. एल. एल. बी. द्वितीय वर्ष

नगवाँ (बलियाँ)

||२७||

हथवा जोड़ीला अरजिया हमार गुरुवर ।
रउवा भउवाँ देईं लेईं हम पखार गुरुवर ॥
रउवा के पग धुरिया के हम सुनले हई बयान ।
हरन ताप त्रय विमल ज्योति के कारण सन्त महान ॥
विद्युत माल अइसन लाल लाल भाल गुरुवर ॥ रउवा० ॥ १
छवि अनंग के मर्दान लागे कर त्रिदण्ड महान ।
ऊर्ध्वपुण्ड्र की झलक पलक में बैठ गए भगवान ॥
दर्शन पद प्रक्षालन कइले बेड़ा पार गुरुवर ॥ हथवा० ॥ २
यतिवर के आगमन जनम यज्ञोपवीत अरु ज्ञान ।
सलिल सुधा रस पूर्ण कमण्डल जे भारत के शान ॥
प्रतिमा न्यारी चमके जइसे रवि हजार गुरुवर ॥ रउवा० ॥ ३
गुरु-पूजन के दिन देवता छिपले पीपल डार
हरष के आँसू अँखियन्ह उमड़त चूवत सरस रस धार ।
पाँति पाँति थिरकत देत गजब के ताल गुरुवर ॥ हथवा ॥
पश्चिम पराशर, पूरब शाण्डिल गौतम उत्तर हजार ।
कश्यप गोत्र के विप्र सेमरियाँ सेवा करत अपार ॥
धनि-धनि खुलल इनका किस्मत के दुआर गुरुवर ॥
हथवा जोड़िला अरजिया हमार गुरुवर ॥ ४ ॥
धर्मावती नदी किनारे सजी समाधि ध्यान ।
लहराइल जल धार नदी हट गइलीं आज्ञा मान ॥
"शिव धनी" मंगल सारा जग के कर्ण धार गुरुवर ॥ हथवा०॥

रचयिता :—
शिवधनी सिंह यादव
रामचन्दीपुर (वाराणसी)

॥२८॥

भक्तों पर दया हे दीनबन्धो क्यों नहीं करते ।
तुम्हारे दास हो कब तक भला हम दुःख रहें भरते ॥ १ ॥
सुना है आप रीझते हैं, प्रभो ! भक्तों की भक्ति पर ।
बिना भक्ति के मोती लाख भी तुम को न बस करते ॥ २ ॥
पुकारे जब तुझे स्वामी, तुम्हें दुख में दुखी होकर ।
उसी दम नष्ट उसका दुःख, दुख भंजन हो स्वयं करते ॥ ३ ॥
दया तुमको है आजाती, दयालो भक्तों को लखि के ।
मगन हो जाते हैं त्रयताप, तेरेपास आरुदन करके ॥ ४ ॥
अधम पापी दुराचारी, सभी तारे प्रभो तुमने ।
स्वामी नाम लेते हैं, भला हम क्यों नहीं तरते ॥ ५ ॥
हुये अपराध जो भी हैं क्षमा अब तो प्रभो कर दो ।
हम पाप की लज्जा से, स्वामी आप हैं भरते ॥ ६ ॥
शुभं शरण्यं दीप्तमुखं दयालुं, सर्वाधिपं सर्वगुरुं सुरेशम् ।
दुःखापहारं दनुजेशनाशं, तं विष्वक्सेनम् शिरसा नतोऽहम् ॥७॥

चरण सेवक :—

कमलेश पाण्डेय "सचित्र"

श्री त्रिदण्डिदेवसेवाश्रम देवहरा (औरंगाबाद)

॥२९॥

॥ अभिनन्दन-पत्र ॥

हे धन्य धर्मनायक प्रभो !

अनन्त शयन होकर भी भगवान् को सतत् चिन्तारहती है – कहीं धर्म लताकी चहक घट न जाय । करुणाधाम की ऐसी दिव्य चिन्ता का ही परिणाम है कि आज भारत भूमि का हृदय मूर्तिमान धर्म स्वरूप श्रीमान के चरणारविन्द मकरन्द की मधु गन्ध से सुवासित हो रहा है । कलि के खूंखार पंजों से आर्य-संस्कृति की मरालिनी को मानों छुड़ाकर प्रशान्त धर्म सुधा-सिन्धु में तैरने का आप स्वर्णिम अवसर प्रदान कर रहे हैं ।

वैष्णव जगत् के मार्त्तण्ड !

मायावाद का तामिस्रतम जब जब सघन होना चाहता है, जगन्नायक की अहैतुकी कृपा से तब तब धर्मरक्षक किसी न किसी वैष्णवाचार्य की लोलार्क सी गुलफाम अरुण किरणों की हेम प्रभा भी खिल उठती है। वैसे वैष्णवादित्यों में प्रबल तेजस्वी आप मार्त्तण्ड स्वरुप हैं। श्रुति स्मृति रुप अमृत–कुण्डों से ली गयी जो बहुमूल्य बूँदे भास्वान्-स्वरुप आप की तेज किरणों में चमक रही है, उनकी स्वर्ण-प्रभा की दमक में विमत का कुहा छिन्न भिन्न हो रहा है, पाखंडवादिता वेहाल करिनी-सी विमल बुद्धि यति सिंह की गर्जना से बारंबार कम्पित हो रही है।

हे अवनी तल के तारकेन्द्र !

यह कृशकाय धर्मावती युग-युगान्तर से इस रमणिक भू-खण्ड को प्रक्षालित कर रही है। आपके श्रीचरणों को धो-धोकर मानों अपने सौभाग्य पर यह लघु सरिता इतरा उठी। उधर पादोदकी लोल लहरों में बेचैनी सी आ गयी। गंगा कब तक धैर्य रखती ! अचानक ही उसकी शत-शत लोल लहरियाँ पहुँचकर अठखेलियाँ करने लगीं। हे तारकेन्द्र। मानव नहीं, मानवेतर के हृदय में भी तरने की लालसाश्री चरणों के प्रति समाश्रित है।

करुणासिन्धो !

सेमरिया ओझापट्टी एवं अगल बगल ग्रामों की अनाड़ी एवं अल्हड़ जनता आप के सान्निध्य की रत्न-मंजूषा को संजोती रही। शायद मोह में रहे या ठगे रहे कि यह मंजूषा हमारी है, लेकिन भ्रान्ति की दीवाल ढ़ह सा रहा है। समय यह बतलाता है कि राम काशल्या के ही नहीं वरन् शबरी के भी हैं। हर पल सरकते हुए एक दारुण सत्य भी आ रहा है जो उस बहुमूल्य तिजोरी को, रत्न-मंजूषा को हमारे दुर्बल हाथों से ले लेगा। दीप-शिखा आगे बढ़ जायेगा पीछे छुटे भवन सा फिर हम काश ! अंधकार की गोद में न चले जायें।

गमनोत्सुक परिव्राजक !

किरात गूँजा और मोती में अन्तर नहीं कर पाता है— अनाड़ी जो होता है। संभवतः हमारी सेवा, हमारी पहचान ऐसी ही सीमाओं में जकड़ी रही। आज हमारी मोह निद्रा को तोड़कर श्रीमान् गमनोत्सुक हैं। ऐसी करुण वेला में हम दीन जनों की हार्दिक याचना है कि नन्दी ग्रामवासी भरतसूरे की भाँति हमारे चित्त-पट पर श्रीमान् की काषाय–मण्डित तेजोमयी छवि सदा विद्यमान हो।

श्री चरणों में समाश्रितः—

श्री महालक्ष्मीनारायण यज्ञ–समिति

सेमरिया ओझा पट्टी

(भोजपुर)

॥३०॥

हे सुरनर मुनि भावनत्रिभुवन भूषण !

सुयशकारी ! आपके पदकंज जहाँ पधार जाते हैं, वह पुण्यस्थली महातीर्थ बन अतिशय मन भावनी एवं लुभावनी बन जाती है। हे सबके प्रिय सबके हितकारी संतशिरोमणि ! भगवान् की यह असीम अनुकम्पा ही है कि धरित्रि का कण–कण आप जैसे दिव्यात्मा, प्रभुपार्षद भूषण को पाकर धन्य हो रहा है।

हे ब्रह्मविशारद ! सुत्रिदण्डधारी यतीन्द्रप्रवर !

आपके मुखाम्बुज से ब्रह्मविद्या की अमृतधारा के विमल प्रवाह से न जाने कितने अपावन पावन बन चुके, असंत संत बन चुके, यह सौभाग्य ही है। हे आर्यश्रेष्ठ ! आप आर्य-संस्कृति की रक्षा के लिये इस धरा-धाम पर वेदव्यास, वाल्मीकि, नारद, शुकदेव, सनकादि, याज्ञवल्क्य एवं वशिष्टादि बनकर आये हैं।

हे संतसरोरुहकानन, भानु ! हे नयनानन्द के दाता !

आपके शुभ समागम से संतहृदय तो प्रफुल्लित होता है, साथ ही अपना भाग्योदय मान अपार जनसमुद्र उमड़ कर आपकी जैसी मंगलमूर्ति के सुपावन दर्शन कर, श्रद्ध, प्रेम, भक्ति स्वरूप सुमनांजलि समर्पित कर अपने आप को अतीव पुण्यवान समझता है।

हे अशरण-शरण बिरदसंभारी ! हे कोमलचितअतिदीनदयालु शरणागतवत्सल भगवान् ! आर्तबंधो !

आप कृपा की वर्षा कर शरणागति प्रदान करते हैं। और यह पुनीत शरणागति हमारे लिये आरती हरनसुखदायक बन जाती है। धन्य हैं ऐसे चरण-कमल जिनके दर्शन से मनुष्य क्या नहीं पा लेता !

नित्य वंदनीय श्री सद्गुरुदेव !

"श्री गुरपदनखमनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥"
मंत्रानुसार आपके पदाम्बुज स्मरण मात्र से हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न करने वाले हैं। ऐसे पदारविन्दों के प्रति सहस्र साष्टांग प्रणिपात।

श्री चरणचंचरीक :—

रमेश सिंह, चन्देश्वर सिंह

झौवाँ (भोजपुर)

॥ ३१ ॥

Humble and respectful homage to

Shri Tridandi Swami Maharaj

The most brilliant jewel on earth !

Formally you are a great upholder of the 'Shree Sampradaya' of 'Vaishnavism' but truly speaking unflinching devotion to God is your passion and selfless service to humanity, your creed.

Goddess of learning incarnate and the greatest champion and patron of education !

The Vedas, the Upanishadas, the Puranas, the Geeta a d other scriptures are at your finger-ends. Your commentries on the Geeta are really original and remarkable and as such deserve special mention. The Tridandi Deo Sanskrit High School at Charitra Van in Buxar. The Tridandi Deo Sanskrit Research Institute and Sanskrit College at Kaikeyee Ghat in Ayodhya and several other educational institutions spread throughout the length and breadth of 'Aryavarta' speak eloquently of your deep love for education.

Unrivalled philanthropist !

No body, irrespective of caste, creed or religion, gets back disappointed from your hermitage. Every body is granted whatever he earnestly yearns for. Thus you may very well be compared with 'The Danveer Karna' of the Mahabharat age.

Lying prostrate at your benign feet and craving for your mercy.

Your humble servent

Jang Bahadur Pandey

M. A. (English), Dip-in Ed.

Retired Teacher, Zila School, Arrah

Bhojpur (Bihar)

॥१२॥

With the best of Reverence and unexpressible gratitude

Dedicated to **Sri Swamiji**

The Death of deaths
&
The Destroyer of graves.

Hail Thee !

Shrine of Purity anb Sacrifice,
Free from all avarice and vice,
Thou art the ocean, I a wave
From tidal woes myself Thou save.

Thou art the sun, I a ray,
For ceaseless help, I always pray.
Thou the eternal parents, I a child,
Rescue me O Mildest of the Mild.

The Unfailing guide, the best of friend,
The worst of times, immediately mend.

O Holiest of the Holy !
At Thy Lotus feet lies,
The lowliest of the lowly,
O Listen to Jagdish's cries.

Jagdish Prasad Pandey
Professor, Department of English
Maharaja College, Arrah.

॥३३॥

जय अरुण नव पद अरुण मुत्र श्री अरुण शोभा पा रही।
काषाय-कञ्चित गात्र-छवि अरुणाभ शान्त सुहा रही।
पादान्त - अरुण - तरुण- कमल - श्री प्रीति-रस बरसा रही।
अम्भोज पद-रस-लिप्त - जन-भृङ्गावलि यश गा रही ॥१॥

छविधाम ललित ललाम पद-तल चूम यह धर्मावती।
प्रतिबिम्ब धर उर-धार में कन्या कवेर लुभावती।
पद - अंक - चिह्नित निर्मला भू सम नहीं अमरावती।
यतिराज पद-रज-पाविता पुरी सप्त आज रिझावती ॥२॥

यह मधुप मन बेचैन हो पद – पद्म-मधुरस चाहता।
फँसकर सुमन संसार में गतिहीन नाथ पुकारता।
हे कल्पतरो! पद - कञ्ज - मधु - कन में हमारा वास हो।
श्रीचरण - प्रीति - गीत-गुम्फित छन्द ही प्रति श्वास हो ॥३॥

नाथ! त्वदीयपदङ्कजबद्धरागः
लीलायतां तु सुमनो मम भक्तिपूर्णम्।
संसारभारबहुकष्टयुतं न, भूत्वा
पीयूषपूर्णपदकञ्जरसेषु लिप्तम् ॥४॥

उत्फुल्लपदराजीवरसलोलुपः—

डा० सुदामा सिंह, एम० ए० पी० एच० डी०
यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
श्रम एवं समाज कल्याण विभाग
म०वि०वि० — बोधगया

ॐश्रीधराय नमः ।

शुक्लयजुर्वेदीया

ईशोपनिषद्

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥

❀ गूढार्थदीपिकाव्याख्या ❀

मङ्गलाचरणम्—

अनन्तगुणपूर्णाय दोषदूराय विष्णवे ।
नमः श्रीप्राणनाथाय भक्ताभीष्टप्रदायिने ॥१॥
ईशाद्युपनिषद्व्याख्या श्रीभाष्याद्यनुसारिणी ।
गूढार्थदीपिकाभाषा क्रियते शिष्ययाश्रया ॥२॥

अन्वयार्थ—(जगत्याम्) अखिल ब्रह्माण्ड में (यत्) जो (किं+च) कुछ भी (जगत्) स्थावर जंगमस्वरुप संसार है (इदम्) ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त यह (सर्वम्) भोक्तृभोग्यरूप सब जगत् (ईशा) सर्वेश्वर परब्रह्म नारायण से (वास्यम्) व्याप्त है (तेन) भोग्यता भ्रमविषयक उस समस्त जगत् करके (त्यक्तेन) अपनेपन के संबन्ध को त्याग कर (भुञ्जीथाः) सम्पूर्ण हेयगुणगणों से रहित एकतान श्रीलक्ष्मीनाथजी को भोगते रहो (कस्य) किसी के (स्वित्) भी (धनम्) धन की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा करो ॥१॥

विशेषार्थ—शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनीशाखानुसारिणी काण्वशाखा के चतुर्थ दशक के दशम अध्याय के प्रथम अनुवाक को 'ईशोपनिषद्' कहते हैं। वाजसनेयिसंहिता के चालीसवें अध्याय में शब्दकृत अनेक भेद हैं। तथापि मौलिक अर्थ में प्रायः भेद नहीं है। मुमुक्षुओं के प्रति मातापिता से भी अधिक कल्याण चाहनेवाली श्रुति आदेश देती है कि अखिल विश्वब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जडचेतनात्मक जगत् है, यह ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त समस्त भोक्तृ भोग्यस्वरुप, सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वकल्याणगुणस्वरुप परब्रह्म श्रीमन्नारायण से व्याप्त है। महानारायणोपनिषद् में लिखा है—

'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वंव्याप्य नारायणः स्थितः ॥'

(महानारायणोप० १३।१)

जो कुछ देखने सुनने में जड़चेतन स्वरूप जगत् है उसके भीतर और बाहर व्याप्त होकर परब्रह्म नारायण स्थित हैं ॥१॥ श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥'

(गीता अध्याय ६, श्लोक ४)

मुझ अव्यक्त मूर्ति से यह समस्त जगत् व्याप्त है ॥४॥ उस समस्त जगत् को दुःख-मूल, दुःखमिश्र, दुःखोदर्क, आदि समझकर आसक्ति तथा फल की कामना का त्याग कर अथवा लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा को छोड़कर वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य आदि दिव्यगुणविशिष्ट श्रीमन्नारायण का अनुभव करते रहो।
महानारायणोपनिषद् में लिखा है—

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।'

(महाना० १२।३)

कुछ लोग कर्म से, प्रजा से और धन से नहीं किन्तु केवल त्याग से अमृत स्वरूप परब्रह्म नारायण को प्राप्त हुए ॥३॥ किसी बन्धु या शत्रु के धन या भोगने योग्य विषयों को भोगने की अभिकाङ्क्षा मत करो। अब यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि 'ईश' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण कैसे होता है ? इसका उत्तर यह है—

'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥'

(मुण्डकोप० मुण्डक ३ खण्ड १ श्रुति २)

'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥'३॥

जब भक्तों से नित्य सेवित अपने से भिन्न परब्रह्म नारायण को और उनकी महिमा को यह जीव देखता है तब शोक रहित हो जाता है ॥२॥ जब द्रष्टा जीवात्मा ब्रह्मा के भी आदिकारण समस्त जगत् के रचयिता प्रकाशस्वरूप परमपुरुष परब्रह्म नारायण को देखता है ॥३॥

'व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।'

(श्वेताश्वतरोपनि० अध्याय १ श्रु० ८)

'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ ॥'६॥

व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप इस विश्व का परब्रह्म नारायण धारण और पोषण करते

हैं ॥८॥ जीव और परब्रह्म ये दोनों अजन्मा हैं परन्तु परब्रह्म नारायण सर्वज्ञ और सर्व समर्थ हैं और जीव अज्ञानी तथा असमर्थ है ॥९॥

'विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति ॥'

(श्वे० अ० ३ श्रु० ७)

सब विश्वको सब ओर से घेरे हुए उस एक परब्रह्म नारायण को जानकर प्रपन्न अमर हो जाते हैं ॥७॥

'तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ॥'

(गीता अ० ११ श्लो० ४४)

इसलिए मैं दण्डवत् प्रणाम करके स्तुति करने योग्य परब्रह्म नारायण आपको प्रसन्न करता हूँ ॥४४॥ इन प्रमाणों से तथा -

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'

(यजुर्वे० अध्या० ३१ मं० २२)

श्रीदेवी और भूदेवी आप नारायण की स्त्री हैं ॥२२॥ इस श्रुति से श्रीपति नारायण के सिद्ध होने से परमैश्वर्ययुक्त परब्रह्म श्रीकान्त का ही वाचक 'ईश' शब्द है। क्योंकि अदादि पठित 'ईश ऐश्वर्ये' इस धातु से ईश शब्द निष्पन्न होता है।

'शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् ।'

(नारायणोपनि० श्रु० २)

शुद्ध देव एक परब्रह्म नारायण हैं, दूसरा कोई नहीं है ॥२॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से तथा जगत्कारणवादिनी श्रुतियों के यथार्थ विवेचन करने से 'ईश' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है।

यहां पर 'सर्वम्' पद से भोक्ता तथा 'जगत्' पद से भोग्य और 'ईशा' शब्द से प्रेरिता का निर्देश करके—

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा ।'

(श्वे० अ० १ श्रु० १२)

भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता इन तीनों को जानकर ॥१२॥ इस श्रुति में प्रतिपादित तत्त्वत्रय अनादि वाद कहा गया है। और व्याप्यव्यापकभाव का प्रतिपादन करके -

'तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ॥'

(श्वे० अ० १ श्रु० १५)

तिल में तेल, दही में घी, स्रोतों में जल और अरणियों में अग्नि जैसे रहती है ॥१५॥ वैसे ही चराचर में व्याप्त परमात्मा है। इस श्रुति के अनुसार व्यापक परब्रह्म नारायण साकार प्रतिपादित किये गये हैं। शुक्लयजुर्वेदसंहिता (अ० ४ मं० १) में भी

प्रस्तुत श्रुति है। श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'स्तुतयेऽनुमतिर्वा।'

(शारीरकमीमांसा अ० ३ पा० ४ सू० १४)

के श्रीभाष्य में ईशावास्योपनिषद् की पहली श्रुति का पहला पाद उद्धृत करके 'ईशावास्यविद्या' के अत्युत्तम माहात्म्य प्रतिपादन किया है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (कर्माणि) नित्य नैमित्तिकादिक निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्य में (कर्म) कर्म (न) नहीं (लिप्यते) संलग्न होता है (इतः) इससे (अन्यथा) प्रकारान्तर (न) नहीं (अस्ति) है ॥ २ ॥

विशेषार्थ—इस कर्मभूमि भूलोक में सन्ध्यावन्दनादि विहित विद्याङ्ग कर्मों को करते हुए सौ वर्षपर्यन्त जीवित रहने की इच्छा करे, क्योंकि श्रुति कहती है—

'शतायुर्वै पुरुषः'

सौ वर्ष की आयुवाला ही पुरुष है। यजुर्वेद में भी लिखा है—

'पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम् ॥'

(यजुर्वे० अ० ३६ मं० २४)

हम सौ वर्ष तक भगवान् को देखें तथा सौ वर्ष पर्यन्त जीते रहें और सौ वर्ष तक भगवच्चरित्रों को सुनें तथा सौ वर्ष तक भगवच्चरित्रों का कथन करें और सौ वर्ष पर्यन्त हम अदीन रहें ॥ २४ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥'४५॥

(गीता अ० १८ श्लो० ४५)

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥'४६॥

अपने अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य परमपद की प्राप्तिरूप संसिद्धि को पाता है ॥ ४५ ॥

अपने कर्म से उस परमात्मा को पूजकर मनुष्य सिद्धि को पाता है ॥ ४६ ॥

तुम्हारे लिए आसक्ति तथा फल का त्यागकर कर्म करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। इस प्रकार से कर्म करने के अतिरिक्त और कोई ऐसा मार्ग नहीं है कि जिसके द्वारा कर्मका लोप न हो और सहज में परमपद प्राप्त हो। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कर्मविधि विद्वद्विषयक नहीं है। इसका उत्तर छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि परम ज्ञानी अश्वपति केकय ने उन महर्षियों से कहा है—

'यक्ष्यमाणो ह्वै भगवन्तोऽहमस्मि ॥'

(छान्दो० अध्या० ५ खण्ड ११ श्रु० ५)

ऐ भगवन् महर्षियो, मैं निश्चय करके यज्ञ करने वाला हूँ ॥ ५ ॥ और ब्रह्मवेत्ताओं में अग्रगण्य जनक राजा के विषय में भी लिखा है—

'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥'

(गीता अ० ३ श्लो० २०)

ज्ञानियों में अग्रगण्य जनकादि राजर्षिगण भी कर्म के आचरण से ही मुक्ति को प्राप्त हुए ॥ २० ॥ महाभाष्य में लिखा है—

'यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो बभूवुः प्रत्यक्षधर्माणः परापरज्ञाः विदित-वेदितव्या अधिगतयाथातथ्याः। ते तत्रभवन्तो यद्वानस्तद्वान इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाण इति प्रयुञ्जते याज्ञे पुनः कर्मणि नापभाषन्ते।'

(महाभाष्य अध्या० १ पाद १ आह्निक १)

'याज्ञे पुनरिति। अनेन तत्त्वज्ञानिनामपि कर्माधिकारं सूचयति ॥'

(उद्योत)

इन प्रमाणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्त्वज्ञानियों का कर्म में अधिकार है। इससे कर्मविधि विद्वद्विषयक है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

'भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥'

(गीता अ० ८ श्लो० ३)

भूतों के भाव को उत्पन्न करनेवाले विसर्ग का नाम कर्म है। ईशोपनिषद् की दूसरी श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० २) में भी है। यतीन्द्र श्रीमद्रामानुजाचार्य ने **'नियमात्।'** (शारीरकमी० अ० ३ पा० ४ सू० ७) और **'नाविशेषात्।'** (शारीरकमी० अ० ३ पा० ४ सू० १३) के श्रीभाष्य में ईशावास्योपनिषद् की दूसरी श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है तथा ज्ञानियों के कर्माचरण को देखकर ही महर्षि बादरायणाचार्य ने—

'आचारदर्शनात्।' (शारीरकमी० अ० ३ पा० ४ सू० ३)

का निर्माण किया है ॥२॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

अन्वयार्थ—(असुर्याः) असुरों के निवास भूत अतिदारुण (नाम) शास्त्र-प्रसिद्ध (अन्धेन) अतिगाढ (तमसा) अन्धकार से (आवृताः) ढके हुए (ते) वे (लोकाः) नरक लोक हैं (ये) जो (के) कोई (च) भी (आत्महनः) आत्मा की हत्या करनेवाले (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे सब प्राण-पोषण में तत्पर (प्रेत्य) इस शरीर का त्याग कर (तान्) उन भयङ्कर रौरवादि लोकों को (अभिगच्छन्ति) बार बार प्राप्त होते हैं ॥३॥

विशेषार्थ—जो केवल प्राणों के पोषण में तत्पर रहते हैं वे असुर हैं। ऐसे असुरों के निवास स्थान अतिदारुण नरक नाम से गरुड़ादिक महापुराणों में प्रसिद्ध हैं। जो लोक अतिगाढ अन्धकार से अच्छादित हैं। जो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि आत्महत्या करनेवाले हैं अर्थात् आत्मा को नहीं जाननेवाले हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

'असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत् ॥'

(तैत्तिरी० आनन्दवल्ली १ अनुवाक ६)

जो ब्रह्म नहीं है ऐसा जानता है वह सत्ताशून्य ही हो जाता है ॥६॥ परब्रह्म नारायण को नहीं जाननेवाले मर करके कूकर शूकर आदि योनियो में या रौरवादि लोकों में बार बार जाकर अत्यन्त दुःख भोगते हैं। शास्त्र में एक असुरयोनि का भी वर्णन है—

'ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥'

(यजुर्वे० अ० २ मं० ३०)

पितरों का अन्न श्राद्ध में भक्षण करने की इच्छा से अपने रूपों को पितरों के समान करते हुए जो असुर पितृ स्थान में विचरते हैं तथा जो असुर स्थूल और सूक्ष्म देहों को अपना अपना असुरत्व छिपाने के लिये धारण करते हैं उल्मुकरूप अग्नि उन असुरों को इस पितृयज्ञ स्थान से हटा दें ॥३०॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्।
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥

(मनु० अध्या० १ श्लो० ३७)

यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, गरुड और पितृगण को भी प्रजापतिने उत्पन्न किया ॥३७॥

'भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्म बलिहरणादि ग्रहोपशमनार्थम् ।'

(सुश्रुत सूत्रस्थान ११)

भूत विद्या नाम से प्रसिद्ध यह है कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, नाग आदि ग्रहों करके व्याप्तचित्तवाले पुरुषों की ग्रहशान्त करने के लिये शान्तिकर्म बलिप्रदान आदिक है ॥११॥ इन प्रमाणों से स्पष्ट असुरयोनि सिद्ध होती है। अब यहां पर यह प्रश्न होता है कि नरक है इसमें क्या प्रमाण है। इसका उत्तर यह लिखा है—

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।'

(योगशा० अध्या० १ पाद ३ सू० २४)

'तस्य प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोको मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्षलोकस्ततः परः स्वर्लोकः पञ्चविधो माहेन्द्रस्तृतीयलोकश्चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकस्त्रिविधो ब्राह्मः, तद्यथा जनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति । ब्रह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्रजापत्यस्ततो महान् । माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजाः ॥'

(व्यासभाष्य)

सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है ॥२४॥ उस भुवन का विस्तार सात लोक हैं। अवीचि नाम के स्थल से लेकर सुमेरु पर्वत की पीठ तक भूलोक है १ और सुमेरु की पीठ से लेकर ध्रुवपर्यन्त नक्षत्र तारा आदिकों से सुशोभित अन्तरिक्ष लोक है २ तथा उससे परे पाँच प्रकार के स्वर्गलोक हैं ३ और तृतीय माहेन्द्रलोक है तथा प्रजापतिका चौथा महर्लोक है ४ और तीन प्रकार के ब्रह्मलोक हैं— जनलोक ५, तपोलोक ६ और सत्यलोक ७ ॥

'ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतलातलपातालाख्यानि सप्त ।'

(व्यासभाष्य)

इसके बाद नीचे महातल १, रसातल २, अतल ३, सुतल ४, वितल ५, तलातल ६ और पाताल ७ ये सात लोक हैं ॥

'तत्रावीचेरुपर्युपरि निविष्टाःषण्महानरकभूमयोघनसलिलानलानिलाकाशतमःप्रतिष्ठाः महाकालाम्बरीषरौरवमहारौरवकालसूत्रान्धतामिस्राः। यत्र स्वकर्मोपार्जितदुःखवेदनाःप्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घमाक्षिप्य जायन्ते ।'

(व्यासभाष्य)

वहां पर अर्वाची नाम के स्थल से ऊपर ऊपर रचित छः महानरक स्थान हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा अन्धकार में प्रतिष्ठित हैं। महाकाल १, अम्बरीष २, रौरव ३, महारौरव ४, कालसूत्र ५, अन्धतामिस्र ६ ये उनके नाम हैं। जिन स्थानों में अपने कर्मजन्य दुःख-वेदनायुक्त प्राणी कष्टरूप दीर्घायु को प्राप्त होकर जन्म लेते हैं। इससे सिद्ध होता है कि नरक एक कोई पृथक् स्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥'
(गीता अ० १ श्लो० ४१)

'उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥'४४॥

वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में डालने वाला होता है। अतः उनके कुल में पिण्ड और जलदान की क्रिया लुप्त हो जाने के कारण उनके पितरों का नरक में पतन होता है ॥४२॥ हे जनार्दन, जिनके कुलधर्म नष्ट हो चुके हैं उन मनुष्यों का अवश्य ही नरक में निवास होता है ऐसा हमने सुना है ॥४४॥

'अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥'
(गीता अ० १६ श्लो० १६)

'त्रिविधं नरकस्यैतद्द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥'२१॥

अनेक संकल्पों से जिनका चित्त अत्यन्त भ्रमित है ऐसे मोह जाल से घिरे हुए, भोगों के उपभोग में फँसे हुए मनुष्य घोर नरक में गिरते हैं ॥ १६ ॥ काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के द्वार आत्मा का पतन करने वाले हैं। इसलिए इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये ॥२१॥

'स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम्।
तद्भेदाः—तपनावीचिमहारौरवरौरवाः ॥'
(अमरको० काण्ड १ वर्ग ६ श्लो० १)

'संघातः कालसूत्रं चेत्याद्याः सत्त्वास्तु नारकाः।
प्रेतावैतरणी सिन्धुः स्यादलक्ष्मीस्तु निर्ऋतिः॥'२॥

नारक १, नरक २, निरय ३, दुर्गति ४ ये चार नाम नरक के हैं इनमें दुर्गति

शब्द स्त्रीलिंग में होता है। उस नरक के भेद—तपन १, अवीचि २, महारौरव ३ और रौरव ४ ॥१॥ संघात ५, कालसूत्र ६ इत्यादिक हैं। नरक में होने वाले प्राणी प्रेतसंज्ञक हैं। नरक की नदी वैतरणीसंज्ञक है और नरक की अशोभा निर्ऋतिसंज्ञक है ॥२॥

'नरके पच्यमाने तु यमेन परिभाषितः।
किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः।'

(पाण्डवगीता)

नरक में पकते हुए पुरुष से यमराज ने कहा कि तुमने क्लेशनाश करनेवाले केशव भगवान् का पूजन क्या नहीं किया ॥ इन प्रमाणों से स्पष्ट नरक ज्ञात होता है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ। जिसको अधिक जानना हो वह गरुड़पुराण आदि का अवलोकन करे। ईशावास्योपनिषद् की तीसरी श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४ मं० ३) में भी है परन्तु संहिता में "प्रेत्यापि" ऐसा पाठभेद है ॥ ३ ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वादधाति॥४॥

अन्वयार्थ—(अनेजत्) परब्रह्म नहीं काँपनेवाला (एकम्) प्रधानतम अद्वितीय (मनसः) वेदवाले मन से (जवीयः) अत्यन्त वेगवान् है (देवाः) ब्रह्मा, रुद्र आदिक देवता (पूर्वम्) पहिले (अर्षत्) प्राप्त हुए (एनत्) इस परमेश्वर को (न) नहीं (आप्नुवन्) प्राप्त कर सकें (तत्) वह परब्रह्म नारायण (तिष्ठत्) सर्वत्र स्थिर रहता हुआ (धावतः) दौड़नेवाले (अन्यान्) दूसरों को (अत्येति) अतिक्रमण करके जाता है (तस्मिन्) उस परब्रह्म के होने पर (मातारिश्वा) अन्तरिक्ष में गमन करनेवाला वायु (अपः) जल अर्थात् मेघ, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदिक को (दधाति) धारण करता है ॥४॥

विशेषार्थ—वह परब्रह्म नारायण किसी के भय से काँपने वाला नहीं है।

'भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चमः॥'

(तैत्तिरीयोप० वल्ली २ अनुवाक ८)

इस नारायण के भय से वायु चलताहै, सूर्य डर से उदय होता है, इसके भय से अग्नि जलाती है और इन्द्र शासन करता है तथा पाँचवी मृत्यु दौड़ती है ॥८॥ इस श्रुति के प्रमाण से नारायण के भय से सब काँपते हैं। वह

अचल एक प्रधानतम है। उसके समान या अधिक कोई नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—

'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।'

(श्वे० अ० ६ श्रु० ८)

उस नारायण के समान और बड़ा कोई दूसरा नहीं दिखता है ॥ ८ ॥ संकल्प विकल्प करनेवाले अतिचंचल मन से भी अधिक वेगवाला नारायण है। क्योंकि देह में स्थित मन संकल्पमात्र से क्षणभर में बक्सर से काञ्ची में जा पहुँचता है। इससे लोक में प्रसिद्ध है कि मन बड़ा वेगवाला है। परन्तु सर्वगत होने से मन के पहुँचने से पहले ही काञ्चीपुरी में परमात्मा पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। इससे मन से भी शीघ्रगामी नारायण हैं। विभु होने से पहले से प्राप्त परब्रह्म को कर्म से संकुचित ज्ञानवाले तैंतीस करोड़ देवता आचार्योपदेशके बिना केवल अपनी बुद्धिसे नहीं प्राप्त कर सके। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'तद्यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि संचरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ।'

(छा० अध्या० ८ खण्ड ३ श्रु० १)

जिस प्रकार पृथ्वी में गड़े हुए सुवर्ण के खजाने को उस स्थान से अनभिज्ञ पुरुष ऊपर ऊपर विचरते हुए भी नहीं जानते इसी प्रकार यह सारी प्रजा नित्यप्रति ब्रह्मलोकको जाती हुई उसे नहीं पाती क्योंकि यह अनृतके द्वारा हर ली गयी है ॥२॥ देवताके विषयमें शुक्लयजुर्वेदसंहितामें लिखा है—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रो देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ।'

(यजु० अ० १४ मं० २०)

अग्निदेव, वायुदेव, सूर्यदेव, चन्द्रदेव, आठ वसुदेव, ग्यारह रुद्रदेव, बारह आदित्यदेव, उञ्चास मरुतदेव, विश्वेदेवदेव, बृहस्पतिदेव, इन्द्रदेव, वरुणदेव हैं ॥२०॥

'त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तु मा ।'

(य० अ० २० मं० ११)

श्रेष्ठधनवाले ब्रह्मादिक तीन देव, ग्यारह रुद्रदेव, तैंतीस देव पुरोहित बृहस्पतिदेव प्रभृति सब देव नारायण की आज्ञा में वर्तमान होते हुए सत्य आदि देवों के साथ मेरी रक्षा करें ॥११॥

'त्रीणि शतानि त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरास्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥'

(यजु० अ० ३३ मं० ७)

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिए कुशा को आच्छादन करते हुए होता को होतृकर्म में नियुक्त किया ॥७॥ अथवा "त्रीणि शतानि" ३०० तीन सौ "त्रीणि सहस्राणि" ३००० तीन सहस्रगुणित अर्थात् ९०००० 'त्रिशत् नव च" और उन्तालीस ९०००३९ देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं । अथवा

'नवैवाङ्कास्त्रिरुद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः ।
ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदतः ॥'

इस आगम प्रमाण से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की शक्ति रूप से ३३३३३३३३३ इतने देवता होते हैं ॥७॥ अधिक देवता के विषय में जानना हो तो मेरी बनाई हुई 'पुरुषसूक्त' की 'मर्मबोधिनी' टीका को सज्जन लोग अवलोकन कर लें । वह परब्रह्म सर्वत्र स्थित रहता हुआ भी शीघ्र चलनेवाले काल, वायु आदि को अतिक्रमण करके चला जाता है । सर्वत्र नारायण स्थित हैं । बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'यः पृथिव्यां तिष्ठन् ॥'

(बृह० अध्या ३ ब्राह्मण ७ श्रु० ३)

'योऽप्सुतिष्ठन् ॥४॥ योऽग्नौ तिष्ठन् ॥५॥ योऽन्तरिक्षे तिष्ठन् ॥६॥ यो वायौ तिष्ठन् ॥७॥ यो दिवि तिष्ठन् ॥८॥ य आदित्ये तिष्ठन् ॥९॥ य दिक्षु तिष्ठन् ॥१०॥ यश्चन्द्रतारके तिष्ठन् ॥११॥ य आकाशे तिष्ठन् ॥१२॥यस्तमसि तिष्ठन् ॥१३॥ यस्तेजसि तिष्ठन् ॥१४॥ यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् ॥१५॥ यः प्राणे तिष्ठन् ॥१६॥ यो वाचि तिष्ठन् ॥१७॥ यश्चक्षुषि तिष्ठन् ॥१८॥ यः श्रोत्रे तिष्ठन् ॥१९॥ यो मनसि तिष्ठन् ॥२०॥ यस्त्वचि तिष्ठन् ॥२१॥ यो विज्ञाने तिष्ठन् ॥२२॥ यो रेतसि तिष्ठन् ॥२३॥'

जो नारायण पृथ्वी में रहता हुआ ॥३॥ जो जल में स्थित रहता हुआ ॥४॥ जो

अन्तरिक्ष में रहता हुआ ॥५॥ जो अग्नि में रहता हुआ ॥६॥ जो वायु में रहता हुआ ॥७॥ जो दिवलोक में रहता हुआ ८॥ जो आदित्य में रहता हुआ ॥९॥ जो दिशा में रहता हुआ ॥१०॥ जो चन्द्रमा और ताराओं में रहता हुआ ॥११॥ जो आकाश में रहता हुआ ॥१२॥ जो तम में रहनेवाला ॥१३॥ जो तेज में रहनेवाला ॥१४॥ जो समस्त भूतों में स्थित रहनेवाला ॥१५॥ जो प्राण में रहनेवाला ॥१६॥ जो वाणी में रहनेवाला ॥१७॥ जो नेत्र में रहनेवाला ॥१८॥ जो कानमें रहनेवाल ॥१९॥ जो मनमें रहनेवाला ॥२०॥ जो त्वचामें रहता हुआ ॥२१॥ जो आत्मामें रहता हुआ ॥२२॥ जो वीर्यमें रहता हुआ ॥२३॥ सर्वावास उस परब्रह्म नारायणमें अवस्थित अन्तरिक्षमें गमन करनेवाला वायु, मेघ, ग्रह, तारा आदिक को धारण करता है। महाभारत में लिखा है—

'द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥'

(महाभारत अनुशासनपर्व विष्णुसहस्रना० श्लो० १३४)

चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र के सहित द्युलोक, आकाश, दिशायें, पृथ्वी और समुद्र महात्मा वासुदेव भगवान् के वीर्य से धारण किये गये हैं ॥१३४॥

'एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसंभेदाय ।'

(बृहदा० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० १२)

यह परब्रह्म नारायण इन लोकों की मर्यादा भङ्ग न हो इस प्रयोजनसे इनको धारण करनेवाला सेतु है ॥ २२ ॥ ईशोपनिषद् की चौथी श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४ मं० ४) में भी है। परन्तु पूर्वमर्शत्' ऐसा पाठ है अर्थात् तालु शकारयुक्त है ॥४॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह परब्रह्म नारायण (एजति) काँपता है (तत्) वह परब्रह्म (न) नहीं (एजति) काँपता है (तत्) वह परब्रह्म (दूरे) अज्ञानियों के दूर है (तत्) वह परब्रह्म (उ) निश्चय करके (अन्तिके) भक्तों के अत्यन्त समीप है (तत्) वह परब्रह्म (अस्य) इस चर अचरस्वरूप (सर्वस्य) सब ब्रह्माण्ड के (अन्तः) भीतर है (तत्) वह परब्रह्म नारायण (उ) निश्चय करके (अस्य) इस स्थावर जंगमका स्वरूप (सर्वस्य) समस्त जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ– वह परब्रह्म नारायण लीलाविभूति में श्रीराम, श्रीकृष्ण

आदिक अवतार लेकर चलता है । 'तत्' नारायणका नाम है यह श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।'

(गीता० अ० १७ श्लो० २३)

ॐ तत् सत् ऐसा तीन प्रकारका ब्रह्मका निर्देश—नाम बतलाया गया है ॥२३॥

'किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।'

(विष्णुसहस्रना० श्लो० ६१)

किम् १, यत् २, तत् ३ पदम् ४, अनुत्तमम् ५ ॥ ६१ ॥ ये नारायण के नाम हैं । वह परब्रह्म नारायण सर्वत्र स्थाणु है इससे नहीं चलता है । वह परब्रह्म आसुर-स्वभाव वाले अज्ञानियों को करोड़ों जन्मों में भी निश्चय करके प्राप्त नहीं होता है इससे अत्यन्त दूर है और वह परब्रह्म देवस्वभाववाले भक्तों के हृदय में रहने से तथा वहाँ पर दर्शन देने से अत्यन्त समीप है । ऐसा शौनक महर्षि ने भी कहा है—

'पराङ्मुखा ये गोविन्दे विषयासक्तचेतसः ।
तेषां तत्परमं ब्रह्म दूराद् दूरतरे स्थितम् ॥१॥
तन्मयत्वेन गोविन्दे ये नरा न्यस्तचेतसः ।
विषयत्यागिनस्तेषां विज्ञेयं च तदन्तिके ॥'२॥

जो विषयासक्तचित्तवाले गोविन्द भगवान् से विमुख हैं उन सबों के अत्यन्त दूर परब्रह्म नारायण स्थित हैं ॥१॥ भगवन्मय होकर जो नर गोविन्द भगवान् में चित्त समर्पण कर दिये हैं उन विषयत्यागी भक्त पुरुषों के अत्यन्त समीप में वे नारायण रहते हैं ॥२॥ कठोपनिषद् में लिखा है—

'आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।'

(कठो० अध्या० १ व २ श्रु० २०)

नारायण इस जीव के हृदयरूपी गुफा में स्थित है ॥२०॥

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।'

(श्वे० अ० ५ श्रु० ११)

एक नारायणदेव सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी समस्तजीवों की अन्तरात्मा है ॥११॥ वह परब्रह्म नारायण सर्वान्तर्यामी होने से समस्त विश्व के भीतर है । बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'य आत्मा सर्वान्तरः ।'

(बृह० अ० ३ ब्रा० ४ श्रु० १)

जो नारायण सब के भीतर है ॥१॥ सर्वव्यापक होने के कारण वह परब्रह्म

नारायण इस सकल स्थावर जंगमस्वरूप संसार के बाहर भी विराजमान है। इस श्रुति में 'उ' निर्धारण अर्थ में प्रयुक्त है। क्योंकि लिखा है—

'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।'

(श्वे० अ० ४ श्रु० २)

वह निश्चय करके अग्नि है, वह सूर्य है, वह वायु है और वही चन्द्र है ॥ २ ॥ इस श्रुति में निर्धारणार्थक 'उ' का प्रयोग हुआ है। महानारायणोपनिषद् में लिखा है—

'अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥'

(महाना० १३।२)

समस्त जगत् के भीतर और बाहर व्याप्त होकर परब्रह्म नारायण स्थित हैं ॥२॥ ईशोपनिषद् की पाँचवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० ५) में भी है ॥५॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ— (तु) परन्तु (यः) जो मुमुक्षु पुरुष (सर्वाणि) ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त (भूतानि) भूतों को (आत्मनि) परब्रह्म नारायण में (च) और (सर्वभूतेषु) समस्त प्राणियों में (आत्मानम्) परब्रह्म नारायण को (एवं) निश्चय करके (अनुपश्यति) निरन्तर देखता है (ततः) उस कारण से (न) नहीं (विजुगुप्सते) किसी से घृणा करता है अथवा निन्दा करता है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—भगवद्विषयाधिकृत मुमुक्षु पुरुष जो है वह ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियों को सर्वाधार परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा में देखता है और सर्वान्तर्यामी परमात्मा को निश्चय करके समस्त भूतों में देखता है। उस कारण से किसी की निन्दा नहीं करता है अथवा किसी से घृणा नहीं करता। श्रीमद्भगवद्गीता में भी लिखा है—

'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥'

(गीता० अ० ६ श्लो० २६)

'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥'३०॥

योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदृष्टिसम्पन्न पुरुष सब भूतों में आत्मा को और सब

भूतों को आत्मा में स्थित देखता है ॥२९॥ जो सर्वत्र मुझ परमात्मा को और सबको मुझ परमात्मा में देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है ॥३०॥ ईशावास्योपनिषद् की छठवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० ६) में भी है। परन्तु संहिता में **'भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति'** और **'विचिकित्सति'** ऐसा पाठभेद है ॥६॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिस प्रणिधान समय में (विजानतः) परब्रह्म नारायण को भली भाँति जाननेवाले प्रपन्न पुरुष के (सर्वाणि) समस्त ब्रह्मादि-स्तम्बपर्यन्त (भूतानी) भूत (आत्मा) आत्मा (एव) निश्चय करके (अभूत्) हो जाता है (तत्र) उस समय में (एकत्वम्) एकता को (अनु-पश्यतः) निरन्तर देखनेवाले भक्त के (मोहः) मोह स्वतन्त्रादिलक्षण (कः) कौन सा होता है और (शोकः) पुत्रादिमरण में शोक (कः) कौन सा होता है ॥७॥

विशेषार्थ—जिस प्रणिधान समय में ईशावास्योपनिषद् की पहली श्रुति से लेकर छठवीं श्रुति पर्यन्त प्रतिपादित स्वतन्त्र वस्तु भेद को विचार कर परब्रह्म नारायण को जाननेवाले ज्ञानी पुरुषके ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणी आत्मा ही हो जाते हैं अर्थात् सर्वभूतशरीरक परब्रह्म नारायण प्रतीत हो जाता है। उस आदि प्रणिधान समय में स्वतन्त्र तथा भ्रमादि लक्षण मोह नहीं हो सकता है और सब वस्तु को परमात्मा की विभूति जान लेने पर पुत्रादिमरण तथा राज्यादिहरण होने पर भी शोक नहीं हो सकता है। इस श्रुति में समस्त जड़चेतनस्वरूप जगत् परब्रह्म नारायण का शरीर है। यह सामाना-धिकरण्य वाक्यसे प्रतिपादन किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है —

'यस्य पृथिवी शरीरम् ॥'

(बृह० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० ३)

'यस्यापः शरीरम् ॥४॥ यस्याग्निः शरीरम् ॥४॥ यस्यान्तरिक्षं शरीरम् ॥६॥ यस्य वायुः शरीरम् ॥७॥ यस्य द्यौः शरीरम् ॥८॥ यस्यादित्यः शरीरम् ॥९॥ यस्य दिशः शरीरम् ॥१०॥ यस्य चन्द्र-तारकं शरीरम् ॥११॥ यस्याकाशः शरीरम् ॥१२॥ यस्य तमः

शरीरम् ॥१३॥ यस्य तेजः शरीरम् ॥१४ यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम् ॥१५॥ यस्य प्राणः शरीरम् ॥१६॥ यस्य वाक् शरीरम् ॥१७॥ यस्य चक्षुः शरीरम् ॥१८॥ यस्य श्रोत्रं शरीरम् ॥१९॥ यस्य मनः शरीरम् ॥२०॥ यस्य त्वक् शरीरम् ॥२१॥ यस्य विज्ञानं शरीरम् ॥२२॥ यस्य रेतः शरीरम् ॥'२३॥

जिस परब्रह्म नारायण का पृथ्वी, शरीर है ॥३॥ जिसका जल शरीर है ॥४॥ जिसका अग्नि शरीर है ॥५॥ जिसका अन्तरिक्ष शरीर है ॥६॥ जिसका वायु शरीर है ॥७॥ जिसका दिवलोक शरीर है ॥८॥ जिसका आदित्य शरीर है ॥९॥ जिसका दिशा शरीर है ॥१०॥ जिसका चन्द्रमा औरा तारा शरीर है ॥११॥ जिसका आकाश शरीर है ॥१२॥ जिसका तम शरीर है ॥१३॥ जिसका तेज शरीर है ॥१४॥ जिसकां सब भूत शरीर है ॥१५॥ जिसका प्राण शरीर है ॥१६॥ जिसकी वाणी शरीर है ॥१७॥ जिसका नेत्र शरीर है ॥१८॥ जिसका श्रोत्र शरीर है ॥१९॥ जिसका मन शरीर ॥२०॥ जिसका त्वक् शरीर है ॥२१॥ जिसका विज्ञान-आत्मा शरीर है ॥१२॥ जिस नारायण का वीर्य शरीर है ॥१३॥ और सुबालोपनिषद् में भी लिखा है—

'यस्य पृथिवी शरीरम् ॥ यस्यापः शरीरम् ॥ यस्य तेजः शरीरम् ॥ यस्य वायुः शरीरम् ॥ यस्याकाशः शरीरम् ॥ यस्य मनः शरीरम् ॥ यस्य बुद्धिः शरीरम् ॥ यस्याहङ्कारः शरीरम् ॥ यस्य चित्तं शरीरम् ॥ यस्याव्यक्तं शरीरम् ॥ यस्याक्षरं शरीरम् ॥ यस्य मृत्युः शरीरम् ॥'

(सुवा० खं० ७)

जिसे परब्रह्म नारायणका पृथ्वी शरीर है। जिसका जल शरीर है। जिसका तेज शरीर है। जिसका वायु शरीर है। जिसका आकाश शरीर है। जिसका बुद्धि शरीर है। जिसका अहङ्कार शरीर है। जिसका चित्त शरीर है। जिसका अव्यक्त शरीर है। जिस नारायण का अक्षर जीवात्मा शरीर है। जिसका मृत्यु शरीर है ॥ ७ ॥

'जगत्सर्वं शरीरं ते ।'

(वाल्मीकिरामा० युद्धकां० ६ सर्ग० १२१)

समस्त संसार आपका शरीर है ॥१२१॥ इस श्रुति में 'देवोऽहम्' 'मनुष्योऽहम्' यहाँ पर जैसे शरीरात्मभाव सम्बन्ध माना जाता है, वैसे ही शरीरात्मभाव सम्बन्ध से ही जगत् और ब्रह्मका सामानाधिकरण्य वैदिक जन मानते हैं। ईशोपनिषद् की सातवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० ७) में भी है ॥७॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतो-
ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

अन्वयार्थ—(सः) सर्वभूतान्तरात्मब्रह्मदर्शी वह प्रपन्न पुरुष (शुक्रम्) स्वप्रकाश परम तेजोमय (अकायम्) कर्मकृतहेयशरीररहित (अव्रणम्) कर्मजन्य शरीर का अभाव होने से क्षतरहित या प्राकृत छिद्ररहित (अस्नाविरम्) प्राकृत हेय शिराओं से रहित (शुद्धम्) अज्ञानादिदोष के गन्ध से रहित शुद्ध (अपापविद्धम्) शुभाशुभकर्मसंपर्कशून्य परब्रह्म नारायण को (पर्यगात्) अच्छी प्रकार से प्राप्त कर जाता है। जो उपासक (कविः) व्यासादिकों के समान ब्रह्मस्वरूप रूप दिव्य गुणादि प्रकाशक प्रबन्ध विशेष के निर्माता अथवा सर्वद्रष्टा (मनीषी) बुद्धिमान् अथवा स्थितप्रज्ञ (परिभूः) कामक्रोधादिकों का तिरस्कार करने वाला (स्वयंभूः) अन्यनिरपेक्षसत्तावाला स्वात्मदर्शी पुरुष (याथातथ्यतः) यथार्थ विचारकर (शाश्वतीभ्यः) अनादि (समाभ्यः) वर्ष अथवा कालसे (अर्थान्) प्रष्टव्य प्रणवादिक अर्थोंको (व्यदधात्) हृदय से धारण किया ॥८॥ अथवा (सः) वह परब्रह्म नारायण (शुक्रम्) स्वप्रकाश (अकायम्) अशरीर (अव्रणम्) छिद्ररहित (अस्नाविरम्) नाड्यादिरहित (अपापविद्धम्) पापरहित (शुद्धम्) शुद्ध जीवात्मा को (पर्यगात्) सब प्रकार से भीतर बाहर व्याप्त होकर स्थित रहता है। जो परब्रह्म नारायण (कविः) भूत भविष्य और वर्तमान को जाननेवाला या श्रीपाञ्चरात्रादि कविता करनेवाला (मनीषी) मनका नियन्ता (परिभूः सर्वव्यापी सबसे श्रेष्ठ (स्वयंभूः) स्वेच्छासे प्रकट होने वाला (याथातथ्यतः) यथार्थ विचारकर (अर्थान्) समस्त कार्यपदार्थों को (शाश्वतीभ्यः) निरन्तर (समाभ्यः) वर्षों के लिये अर्थात् प्रलयपर्यन्त रहने के लिए (व्यदधात्) बनाया या उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

विशेषार्थ सर्वभूतान्तरात्मब्रह्मदर्शी पुरुष स्वप्रकाश कर्मकृतहेयशरीर रहित दिव्यमङ्गलमय विग्रहयुक्त कर्मजन्य शरीर का अभाव होनेसे अक्षत प्रकृतशिरारहित अज्ञानादि दोषगन्धरहित अशन पानादि षडूर्मिरहित पुण्य पापरूप कर्मसंपर्कशून्य परब्रह्म नारायण को सर्वत्र प्राप्त कर लेता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

'ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।'

(तै० आनन्दव० २ अनुवाक १ श्रु० १)

ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म नारायण को प्राप्त करता है ॥१॥ 'अकायम्' पदसे इस श्रुति में प्राकृत हेय शरीर परमात्मा का निषेध किया गया है। दिव्य मङ्गलमय विग्रह का निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि लिखा है—

'यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि ।'

(ईशो० श्रु० १६)

जो तुम्हारा परम मङ्गलमय रूप हैं उस तुम्हारे स्वरूप को मैं देखता हूँ ॥१६॥

'या ते तनूः' (प्रश्नोप० प्रश्न २ श्रु० १२) जो तुम्हारा शरीर है ॥१२॥

'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम् ।'

(मुण्डको० मु० ३ खं० १ श्रु० ३)

जिस समय में साधक पुरुष हिरण्याकार परमात्मा को देखता है ॥३॥

'तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः ।'

(तैत्ति० व० १ अनुवा० ६ श्रु० १

उसमें यह मनोमय अविनाशी हिरण्मय पुरुष है ॥१॥

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ।'

(छा० उ० अ० १ प्र० १ खं० ६ श्रु० ६)

'तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ॥'७॥

जो यह सूर्य के भीतर हिरण्मय पुरुष दिखायी देता है उसकी दाढ़ी सुवर्ण की है तथा केश भी सुवर्ण के हैं और नख से लेकर चोटी तक सब ही हिरण्मय हैं ॥६॥ उस परब्रह्म नारायणके जैसे कोई सूर्य की किरण से खिला हुआ लाल कमल हो वैसे ही दोनों नेत्र हैं ॥७॥

'भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः।'

(छा० उ० अ० प्र० ३ खं० १४ श्रु० २)

यह प्रकाशरूप सत्यसंकल्प आकशात्मा सर्वकर्मा सर्वकाम सर्वगन्ध सर्वरसरूप है ॥ २ ॥

'तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा महारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकम् ।'

(बृह० अ० २ ब्रा० ३ श्रु० ६)

उस परब्रह्म नारायण का रूप ऐसा है जैसा हल्दी से रँगा हुआ वस्त्र हो, जैसा पाण्डु रंग का ऊनी वस्त्र हो, जैसा इन्द्रगोप हो, जैसी अग्नि की ज्वाला हो और जैसा पुण्डरीक कमल हो ॥ ६ ॥

'हस्ते बिभर्ष्यस्तवे'

(श्वेताश्व० अ० ३ श्रु० ६)

'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।' ८ ।।

'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।' १४ ।।

हाथ में फेंकने के लिये वाण को धारण किये हो ।।६।। आदित्य के समान वर्णवाले अन्धकार से अत्यन्तदूर ।। ८ ।। वह परम पुरुष नारायण हजारों सिरवाला हजारों नेत्रवाला हजारों पैरवाला है ।। १४ ।। 'अपापविद्धम्' इस पद में स्थित पाप से पुण्यका भी ग्रहण होता है, क्योंकि लिखा है—

'न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतं सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्ते ।।'

(छां० अ० ८ खं ४ श्रु० १)

आत्मा के न जरा न मृत्यु न शोक न पुण्य न पाप ही प्राप्त हो सकते हैं समस्त पाप इससे निवृत्त हो जाते हैं ।। १ ।।

'एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः ।।'

(छां० अ० ८ खं० १ श्रु० ५)

यह परमात्मा पुण्य तथा पाप से शून्य है और जराहीन, मृत्युहीन, शोकरहित, भोजनेच्छारहित, पिपासाशून्य, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है ।।५।। इस छान्दोग्य की श्रुतिसे प्राकृत हेय षड्गुणों का निषेध कर दो कल्याणगुणों का विधान किया गया है। जो ब्रह्मवेत्ता श्रीवाल्मीकि, श्रीवेदव्यास आदि के समान ब्रह्मस्वरूप रूप दिव्यगुणादि प्रकाशक प्रबन्धों का निर्माण और भगवत्स्वरूप गुण की स्मृति के अभ्याससे तथा भगवदन्य विषय के वैराग्यसे प्रतिष्ठित प्रज्ञावाला और काम, क्रोध, लोभ, मोह मद और मात्सर्य का अनादर करनेवाला तथा अन्यनिरपेक्ष सत्तावाला स्वात्मदर्शी योगी यथार्थ विचारकर निरन्तर काल या वर्ष से प्रष्टव्य अर्थ प्रणवका जप तथा प्रणवके अर्थ का अनुभव सब अन्तराय शमन होने के लिये हृदयसे धारण किया। क्योंकि पातञ्जलयोगदर्शन में लिखा है—

'तस्य वाचकः प्रणवः ।'

(योगद० अ० १ पा० १ सू० २७)

'तज्जपस्तदर्थभावनम् ।। २८।।

उस नारायण का वाचक प्रणव है ।। २७ ।। प्रणव का जप करना तथा प्रणवार्थ की भावना करना ।। २८ ।। प्रणवार्थ माण्डूक्योपनिषद् में कहा

जायेगा। अथवा ईशोपनिषद् की आठवीं श्रुति में जितने, प्रथमान्त 'सः' आदि पद हैं वे परमात्मा परक हैं। और 'शुक्रम्' इत्यादि जितने द्वितीयान्त पद हैं वे परिशुद्ध जीवात्मा परक है। तब इस श्रुति का यह अर्थ होना है कि वह परब्रह्म नारायण प्राकृतशरीररहित, क्षतरहित, शिरारहित, स्वप्रकाश, पुण्य-पापरहित, परिशुद्ध, जीवात्मा के भीतर और बाहर व्याप्त होकर स्थित रहता है। जो परमात्मा सर्वदर्शी, श्रीपञ्चरात्रादि आगम प्रणेता तथा सब मनके नियन्ता सबसे श्रेष्ठ सर्वव्यापी स्वेच्छासे श्रीराम कृष्णादि अवतार धारण करनेवाला यथार्थ विचार कर समस्त कार्य पदार्थों को निरन्तरवर्ष के लिये अर्थात् प्रलयपर्यन्त रहने के लिए बनाया। क्योंकि लिखा है—

'अजायमानो बहुधा विजायते।'

(यजुर्वे० अ० ३१ मं० १९)

वह नारायण नहीं जन्मता हुआ भी बहुत प्रकारसे प्रकट होता है॥ ११॥

'संभवाम्यात्ममायया।'

(गीता अ० ४ श्लो० ६)

मैं अपनी इच्छा से प्रकट होता हूँ॥ ६॥ ईशावास्योपनिषद् की आठवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० ६) में भी है। यतिसार्वभौम श्रीरामानुजाचार्य ने

'तत्तु समन्वयात्।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में ईशोपनिषद् की आठवीं श्रुतिके पूर्वार्द्ध को उद्धृत किया है॥ ८॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥६॥

अन्वयार्थ—(ये) जो भोगैश्वर्यप्रसक्त मनुष्य (अविद्याम) विद्यासे भिन्न केवल कर्ममात्र को (उपासते) अनुष्ठान करते हैं, वे (अन्धम्) अतिगाढ (तमः) अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं (ये) और जो लोग (उ) निश्चय करके (विद्यायाम्) स्वाधिकारोचित कर्म परित्याग करके विद्यामें (रताः) तत्पर रहते हैं (ते) वे विद्यारत (ततः) उस कर्ममात्रनिष्ठ से प्राप्य गम्भीर अन्धकार से (भूयः) अधिकतरके (इव) समान (तमः) अन्धकार को प्राप्त होते हैं॥ ६॥

विशेषार्थ— जो भोग तथा ऐश्वर्य में प्रसक्त हैं वे लोग केवल इष्टापूर्त्तादिक कर्म को करके अन्धतामिस्र नरक में या शूकर कूकर आदि योनिमें प्रवेश करते हैं। मुण्डकोपनिषद्में लिखा है—

'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥'

(मुण्डकोप० मुण्डक १ खण्ड २ श्रु० ७)

'इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्तो प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥'१०॥

निश्चय यह अठारह यज्ञरूप डोंगे दृढ नहीं है जिनमें अश्रेष्ठ कर्म कहा है। जो मूढ इसको कल्याणरूप है ऐसा मानकर प्रशंसा करते हैं वह फिर भी बुढापे और मरणको प्राप्त होते हैं ॥७॥ इष्ट और पूर्तको श्रेष्ठ मानते हुए परम मूढ दूसरे श्रेय को नहीं जानते हैं वे शुभकर्म से प्राप्त हुए स्वर्गके ऊपर भोग कर इस लोकको या इससे भी हीन लोक को प्रवेश करते हैं ॥१०॥ और जो लोग अपने वर्णाश्रमोचित कर्मका परित्याग करके विद्या में तत्पर रहते हैं वे लोग कर्ममात्रनिष्ठ से प्राप्य अतिगाढ़ अन्धकार से भी अधिकतर अन्धकार को अर्थात् मल-मूत्र की कृमियोनि को प्राप्त करते हैं। लिखा है—

'अथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह
यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा
शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ।'

(छा० अ० प्रापा० ५ खं० १० श्रु० ७)

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानम् ॥८॥

जो अशुभ आचरणवाले होते हैं वे तत्काल अशुभयोनि को प्राप्त होते हैं, कूकर की योनि, शूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि को प्राप्त होते हैं ॥७॥ इनमें से वे किसी मार्ग द्वारा नहीं जाते, वे ये क्षुद्र और बारबार आने जाने वाले प्राणी होते हैं उत्पन्न होओ और मरो यही उनका तृतीय स्थान होता है ॥८॥ ईशोपनिषद् की नवमी श्रुतिशुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १२ में और बृहदारण्यक (अ० ४ ब्राह्म० ४ श्रु० १०) में भी है ॥६॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

अन्वयार्थ—(विद्यया) कर्मरहित विद्यासे (अन्यत्) दूसरा (एव) निश्चय करके मोक्ष-साधन है। आहुः ऐसा उपनिषद् ग्रन्थ कहते हैं और

(अविद्यया) ब्रह्मविद्यारहित कर्म से (अन्यत्) दूसरा ही (आहुः) मोक्ष-साधन है ऐसा कहते हैं (ये) जिन पूर्वाचार्यों ने (नः) प्रणिपातादिक से सम्यक् उपसन्न हमारे अर्थ (तत्) उस मोक्ष-साधन को (विचचक्षिरे) विचार करके भली-भाँति उपदेश दिया था (धीराणाम्) परमात्मा के ध्यान में तत्पर उन धीर पुरुषों के वचन को (इति) इस प्रकार (शुश्रुम) हमने सुना है ।।१०।।

विशेषार्थ—कर्मरहित विद्या से दूसरा ही मोक्ष-साधन है ऐसा रहस्य ग्रन्थ कहते हैं और ब्रह्मविद्याविधुर कर्म से भी दूसरा ही मोक्ष-साधन है ऐसा वेदान्त ग्रन्थ कहते हैं जो पूर्वाचार्य हमारे लिये उस मोक्ष-साधन को विचारकर अच्छी प्रकार से उपदेश दिये हैं उन परमात्मा के ध्यान में तत्पर धीर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के वचन को इस प्रकार हमने सुना है अथवा केवल विद्या से और ही फल बतलाया गया तथा केवल कर्म से और ही फल बतलाया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'विद्यया देवलोकः'

(बृह० अ० १ ब्रा० ५ श्रु० १६)

'कर्मणा पितृलोकः ।।'१६।।

विद्या से देवलोक प्राप्त होता है ।।१६।। कर्मसे पितृलोक प्राप्त होता है ।।१६।। ऐसा हमने बुद्धिमान् पुरुषों से सुना है जिन्होंने हमारे प्रति उसकी व्याख्या की थी।। ईशोपनिषद् की दशवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १३) में भी है। परन्तु संहिता में 'अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः' ऐसा पाठभेद है ।।१०।।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।११।।

अन्वयार्थ—(यः) जो यथार्थ ब्रह्मविद्या के उपदेश से युक्त पुरुष (विद्याम्) ब्रह्मोपासनरूपज्ञान को (च) और (अविद्याम्) ब्रह्मोपासन के अङ्गभूत वर्णाश्रम विहित कर्म को (तत्) इन (उभयम्) दोनों को (सह) एक ही साथ (वेद) अङ्गाङ्गिभाव से अनुष्ठान करने योग्य यथार्थतः जान लेता है वह प्रपन्न पुरुष (अविद्यया) ब्रह्मविद्या के अङ्गभूत वर्णाश्रमविहित कर्म से (मृत्युम्) ज्ञानोत्पत्तिविरोधी प्राचीन कर्म को (तीर्त्वा) निर्विशेष दूर पार करके (विद्यया) परब्रह्मोपासनरूप ज्ञान से (अमृतम्) परब्रह्म नारायण को (अश्नुते) प्राप्त कर लेता है ।।११।।

विशेषार्थ—यथार्थ ब्रह्मविद्या के उपदेश से युक्त भक्त पुरुष ब्रह्मोपासनरूप ज्ञान को और ब्रह्मविद्या के अङ्गभूत वर्णाश्रमविहित कर्म को एक ही साथ अङ्गाङ्गि-भाव से एक ही पुरुष करके अनुष्ठान करने योग्य जानता है इससे वह भक्त ब्रह्मो-पासन के अङ्गभूत वर्णाश्रम विहितकर्म से विद्योत्पत्ति के प्रतिबन्धक पुण्यपापरूप प्राचीन कर्म को समूल उल्लंघन करके परब्रह्मोपासनारूप ज्ञान से मोक्ष को पाता है। हारीतस्मृति में भी लिखा है—

'उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्॥

(हा० अ० ७ श्लो० १०)

जैसे दोनों पक्षों से आकाश में पक्षियों की गति होती है वैसे ही ज्ञान और कर्म इन दोनों से शाश्वत ब्रह्म प्राप्त होता है ॥१॥ और विष्णुपुराण में लिखा है—

'इयाज सोऽपि सुबहून् यज्ञान् ज्ञानव्यपाश्रयः।
ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय ततुं मृत्युमविद्यया॥'

(विष्णुपु० अंश० ६ अ० ६ श्लो० १२)

शास्त्रश्रवणजन्य ब्रह्मज्ञान वाले उस जनक राजा ने भी निदिध्यासनरूपा ब्रह्मविद्या ज्ञान को आश्रयण करके विद्याङ्गभूत कर्म से भक्त्युत्पत्तिविरोधी प्राचीन कर्म को पार करने के लिए ज्योतिष्टोमादिक बहुत से यज्ञों को किया ॥ १२ ॥ ईशोपनिषद् की ग्यारहवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १४) में भी है। इस श्रुति को श्रीपूज्य-पाद भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा॥'

(शारीरकमी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में उद्धृत किया है ॥११॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः॥१२॥

अन्वयार्थ—(ये) जो ब्रह्मविद्या के अधिकारी (असंभूतिम्) समाधि के अङ्गभूत मान, दम्भ, हिंसा आदिक निषिद्धों की निवृत्ति को (उपासते) अनुष्ठान करते हैं वे (अन्धम्) अतिगाढ (तमः) अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं और (ये) जो लोग (उ) निश्चय करके (संभूत्याम्) समाधिरूप संभूति में ही (रताः) तत्पर रहते हैं (ते) वे समाधिरत (ततः) योगविरुद्धनिवृत्तिरूप असंभूति की उपासकों के प्राप्य अतिगाढ अन्धकार से (भूयः) अधिकतर के (इव) समान (तमः)

अन्धकार को प्राप्त करते हैं ॥१२॥

विशेषार्थ—जो ब्रह्मविद्या के अधिकारी समाधि के अङ्गभूत मान, दंभ, हिंसा, स्तेय आदिक योगविरुद्धों की निवृत्तिरूप असंभूति की उपासना या अनुष्ठान करते हैं वे अतिगाढ अन्धकार को प्रवेश करते हैं अर्थात् कूकर, शूकर आदि योनियों में जन्म लेते हैं और जो लोग समाधिरूप संभूति में तत्पर रहते हैं वे समाधिरत योग-विरुद्ध निवृत्तिरूप असंभूति के उपासकों को प्राप्य अतिगाढ अन्धकार शूकरादिक योनि से भी अधिकतर के समान अन्धकार को अर्थात् कृमि, कीट आदिक योनि को प्राप्त होते हैं अथवा जो लोग 'असंभूति' विनश्वर शरीर की केवल उपासना करते हैं अर्थात् केवल देह के लालन-पोषण में लगे रहते हैं वे लोग घोर अन्धकार-स्वरूप कूकर आदिक योनि में मरकर जन्म लेते हैं और जो लोग 'संभूति' आत्मा की केवल उपासना करते हैं अर्थात् वाचिक आत्मज्ञान के द्वारा वर्णाश्रमोचित कर्म को त्यागकर स्वेच्छानुसार शास्त्रविरुद्ध आचरण करते हैं वे लोक मरकर अत्यन्त-गाढ अन्धकारतम कीटादि क्षुद्र योनि में जन्म लेते हैं। इस श्रुति का विशेष अर्थ जिसको जानना हो वह मेरी बनाई हुई 'श्रीवचनभूषण' की 'चिन्तामणि' टीका का अवलोकन करे। ग्रन्थ के विस्तार के भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ। यद्यपि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'एतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मि ।'

(छा० अ० ३ ख० १४ श्रु० ४)

इस शरीर से मरकर जाने पर मैं इसी परब्रह्म को प्राप्त होऊँगा ॥४॥

'ब्रह्मलोकमभिसंभवामि ।'

(छा० अ० ८ ख० १३ श्रु० १)

मैं ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ ॥१॥ इस प्रमाण से ब्रह्म-प्राप्तिरूपा अनुभूति संभूति शब्द से कही गयी है। परन्तु इस प्रकरण में समाधिरूपा संभूति शब्द से प्रतिपादन किया गया है। ईशोपनिषद् की बारहवीं श्रुति का अर्थ मूर्ति पूजा के खण्डनपरक कई सज्जनों ने किया है। परन्तु वह अर्थ श्रुति के विरुद्ध होने से अनादरणीय है मूर्ति पूजा के विषय में भक्तों के आनन्द के लिये कुछ प्रमाण यहाँ पर मैं लिखता हूँ कृपया प्रपन्न जन अवलोकन करें।

'सहस्रस्य प्रतिमा असि ।'

(शुक्लय० अ० १५ मं० ६५)

हे नारायण आप हजारों की मूर्ति हैं ॥६५॥

'प्रतिमा असि'

(कृष्णयजु० तैत्तिरीयारण्यक प्रपाठक ४ अनुवाक ५) आप मूर्ति हैं ।। ५ ।।

'संवत्सरस्य प्रतिमायां त्वा रात्र्युपास्महे ।'

(अथर्ववे० काण्ड ३ सू० १० मं० ३)

हे नारायण आप संवत्सर की मूर्ति हो जिस आपकी हम उपासना करते हैं ।।३।।

'आत्मनो ह्येतं प्रति मामसृजत ।'

(शतपथ० ११।१।६।१३)

नारायण ने अपनी मूर्ति को उत्पन्न किया ।।१३।।

'अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञः ।'

(शत० ११।१।८।३)

नारायण ने अपनी यज्ञनाम की मूर्ति उत्पन्न की इससे कहते हैं कि नारायण यज्ञ-स्वरूप है ।।३।।

**'कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ।।'**

(ऋग्वे० अ० ८ अ० ७ व० १८ मं० ३)

सब की यथार्थज्ञान बुद्धि कौन है, मूर्ति कौन है, सबका कारण कौन है, घृत के समान सार जानने योग्य कौन है, सब दुःखों की निवृत्ति कारक और आनन्दयुक्त प्रीति का पात्र परिधि सीमा कौन है, इस जगत् का आवरण कौन है, स्वतंत्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है ? यहाँ तक इस मंत्र में प्रश्न है और अन्त में सबका उत्तर यह है कि जिस नारायण की सब ब्रह्मादिक देवता पूजा किये हैं ।।३।।

**'अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ।।'**

(ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८)

हे प्रियमेधावाले तुम नारायण का पूजन करो, विशेषरूप से पूजन करो, तुम अर्चना करो हे पुत्रो तुम सब पूजन करो जैसे धर्षणशील को पूजते हैं वैसे तुम अर्चावतार की पूजा करो ।। ८ ।।

**'अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदारभस्व दुर्हणोऽनेन गच्छ परस्तरम् ।।'**

(ऋ० अ० ८ अ० ८ सू० १३ मं० ३)

विप्रकृष्ट देश में वर्त्तमान पुरुष निर्माणरहित जो दारुमय पुरुषोत्तम शरीर समुद्र के तट पर वर्त्तमान है उस दारु ब्रह्म की उपासना करो जो किसी से भी हनन नहीं

होता है, उस दारुमय जगन्नाथ की उपासना करने से त्रिपाद्विभूति को प्राप्त कर लो ॥ ३ ॥

'स्नात्वा शुचौ गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं ।
कृत्वा अक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत् ॥'

(बौधायनकल्प० परिचर्याप्रकर० सू० २)

स्नानकर पवित्र देश में गोवर से लिपी भूमि में देवता की मूर्ति बनकर अक्षत पुष्प से पूजे ॥ २ ॥

'देवी द्यावापृथिवी मखस्य त्वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने ।
पृथिव्या मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥'

(यजु० अ० ३७ मं० ३)

हे मिट्टी जल रूप देवियो अब देवयजन स्थान में तुम दोनों को लेकर महावीर की मूर्ति को बनाऊँगा इसलिये यज्ञ के हेतु ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

'एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनुः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥'

(अथर्व० २ । ४ ॥)

हे श्रीमन्नारायण पाषाण की मूर्ति में विराजमान हो जाइये, पाषाण की मूर्ति आपका शरीर हो । सब देवता इस आपके शरीर की आयु अनन्त वर्षों की करें ॥४॥ इन प्रमाणों से स्पष्ट मूर्तिपूजा सिद्ध होती है । ईशावास्योपनिषद् की बारहवीं श्रुति शुक्ल-यजुर्वेद (अ० ४० मं० ६) में भी है ॥ १२ ॥

अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

अन्वयार्थ—(संभवात्) केवल समाधिरूप ब्रह्मानुभूति से (अन्यत्) दूसरा ही (एव) निश्चयकर के मोक्ष-साधन है (आहुः) ऐसा उपनिषद् ग्रन्थ कहते हैं और (असंभवात्) केवल योग के विरोधी की निवृत्तिरूप असंभूति से (अन्यत्) दूसरा ही (आहुः) मोक्ष-साधन है ऐसा कहते हैं (ये) जो पूर्वाचार्य (नः) प्रणिपातादिक से अच्छी प्रकार समीप में प्राप्त हमारे लिए (तत्) उस मोक्षसाधन को (विचचक्षिरे) विचार करके भली-भाँति उपदेश दिये थे (धीराणाम्) श्रीमन्नारायण के ध्यान में तत्पर उन धीर पुरुषों के वचन को (इति) इस प्रकार (शुश्रुम) हम सुने हैं ॥

विशेषार्थ—केवल समाधिरूप ब्रह्मानुभूति से दूसरा ही मोक्ष-साधन है ऐसा रहस्य ग्रन्थ कहते हैं और समाधि के अङ्गभूत केवल निषिद्धनिवृत्ति से ही दूसरा

मोक्ष-साधन है ऐसा उपनिषद्ग्रन्थ कहते हैं। जो पूर्वाचार्य प्रणिपातादिक से सम्यक् उपसन्न हमारे लिये उस मोक्ष-साधन को विचार कर अच्छी प्रकार से उपदेश दिये थे श्रीलक्ष्मीनाथ के ध्यान में तत्पर उन धीर पुरुषों के वचनामृत को इस प्रकार हम सुन चुके हैं। ईशोपनिषद् की तेरहवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १०) में भी है ॥१३॥

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते ॥१४॥

अन्वयार्थ— (यः) जो यथार्थ ब्रह्मविद्या के उपदेशयुक्त प्रपन्न (संभूतिम्) समाधिरूप ब्रह्मानुभूति को (च) और (विनाशम्) समाधि के अङ्गभूत योग के विरोधी निषिद्ध निवृत्ति को (च) भी (तत्) इन (उभयम्) दोनों को (सह) एक ही साथ (वेद) अङ्गाङ्गिभाव से अनुष्ठान करने योग्य यथार्थरूप से जान लेता है, वह भगवद्भक्त (विनाशेन) विरोधिनिवृत्तिरूप योगाङ्ग का सेवन करने से (मृत्युम्) समाधि विरोधी पाप को (तीर्त्वा) पार करके (संभूत्या) समाधि से (अमृतम्) परब्रह्म नारायण को (अश्नुते) प्राप्त कर लेता है ॥१४॥

विशेषार्थ— जो यथार्थ ब्रह्मविद्या के उपदेशयुक्त भक्त पुरुष समाधिरूप ब्रह्मानुभूति को और समाधि के अङ्गभूत विरोधी निवृत्तिरूप यम, नियमादिक योग के अङ्ग को इन दोनों एक ही साथ अङ्गाङ्गिभाव से अनुष्ठान करने योग्य जानता है वह भगवद्भक्त विरोधिवृत्तिरूप योगाङ्ग यम, नियमादिक का सेवन करने से समाधि विरोधी पाप को निर्विशेष दूर उल्लंघन करके समाधि से नारायण को प्राप्त कर लेता है। पातञ्जलयोगदर्शन में लिखा है—

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'

(यो० अ० १ पा० १ सू० २)

'वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥५॥ प्रमाणविपर्ययविकल्प-निद्रास्मृतयः ॥६॥ प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥ विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥८॥ शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥९॥ अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१०॥ अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

चित्तवृत्तिनिरोध को योग कहते हैं ॥२॥ वे क्लिष्ट और अक्लिष्ट चित्तकी वृत्तियाँ

पांच प्रकार की होती हैं ॥५॥ प्रमाण १, विपर्यय २, विकल्प ३, निद्रा ४, और स्मृति ५ ये पाँच हैं ॥६॥ प्रत्यक्ष १, अनुमान २, आगम ३ ये प्रमाण हैं ॥७॥ मिथ्याज्ञान अतद्रूपप्रतिष्ठा को विपर्यय कहते हैं ॥८॥ शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्य को विकल्प कहते हैं ॥६॥ अभावप्रत्यय को अवलम्बन करनेवाली वृत्ति को निद्रा कहते हैं ॥११॥ अनुभूतविषय के असंप्रमोष को स्मृति कहते हैं ॥११॥

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।'

(यो० अ० १ पा० १ सू० १२)

'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१३॥ दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥१५॥ तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥१६॥

वहाँपर स्थिति में यत्न करने को अभ्यास कहते हैं ॥१३॥ अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्ति का निरोध होता है ॥१२॥ देखे या सुने हुए विषय की तृष्णा को त्याग देना वशीकार संज्ञा वैराग्य है ॥१५॥ वशीकार वैराग्य से श्रेष्ठ पुरुष की ख्याति से गुणवैतृष्ण्य वैराग्य है ॥१६॥ और लिखा है—

'योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।:'

(यो० अ० १ पा० २ सू० २८)

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥२६॥ अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ॥३०॥ शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥' ३२॥

योगाङ्ग के अनुष्ठान से अशुद्धिक्षय होने पर आविवेक ख्याति से ज्ञान का प्रकाश होता है ॥२८॥ यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७ और समाधि ८ ये आठ योग के अंग हैं ॥२६॥ अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४ और अपरिग्रह ५ ये यम हैं ॥३०॥ शौच १, सन्तोष १, तप ३, स्वाध्याय ४ और ईश्वरप्रणिधान ५ ये नियम हैं ॥३२॥

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥३५॥ सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥३६॥ अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७॥ ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥ अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥३६॥ शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥ सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥४२॥ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥४३॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥४४॥ समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥४५॥ स्थिरसुखमासनम् ॥४६॥ ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥'४८॥

अहिंसा सिद्ध होने पर उस पुरुष की सन्निधि में वैरत्याग हो जाता ॥३५॥ सत्य सिद्ध होने पर जो कहता है वह यथार्थ होता है ॥३६॥ अस्तेय सिद्ध होने पर सब रत्न प्राप्त होते हैं ॥३७॥ ब्रह्मचर्य सिद्ध होने पर वीर्य लाभ होता है ॥३८॥ अपरिग्रह सिद्ध होने पर जन्मान्तर का ज्ञान होता है ॥३९॥ शौच से अपने अङ्ग में घृणा और दूसरों से असंसर्ग होता है ॥४०॥ संतोष से श्रेष्ठ सुख का लाभ होता है ॥४२॥ तपस्या से अशुद्धिक्षय के द्वारा शरीर और इन्द्रिय सिद्ध हो जाते हैं ॥४३॥ स्वाध्याय से इष्टदेवता का संयोग होता है ॥४४॥ ईश्वर के प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है ॥४५॥ स्थिर तथा सुख पूर्वक को आसन कहते हैं ॥४६॥ आसन सिद्ध होने से शीत, उष्ण आदिक द्वन्द्व का नाश हो जाता है ॥४८॥

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥ ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥५२॥ धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥ स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥ ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥'५५॥

आसन सिद्ध होने पर श्वास-प्रश्वास की गतिका विच्छेद करना ही प्राणायाम है ॥४९॥ प्राणायाम से आत्मप्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है ॥५२॥ और धारणा में मन की योग्यता होती है ॥५३॥ अपने विषयों को चित्त से संयोग न करते हुए स्वस्वरूप में इन्द्रियों का स्थिर होना ही प्रत्याहार है ॥५४॥ प्रत्याहार सिद्ध होने से समस्त इन्द्रियाँ अत्यन्त वश में हो जाती हैं ॥५५॥

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।'

(यो० अ० १ पा० ३ सू० १)

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥२॥ तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥'॥

चित्त को शरीर के किसी देश में बाँधना ही धारणा है ॥१॥ उस धारणा में प्रतीत वस्तु की एकतानता को ध्यान कहते हैं ॥२॥ ध्यान में प्राप्त वस्तु का ही केवल प्रकाश होना अपने देहादिक को भूल जाना ही समाधि है ॥३॥ समाधि के विषय में जिसको अधिक जानना हो वह मेरा बनाया हुआ 'वैदिकयोगसंग्रह' ग्रन्थ को देख ले। ईशोपनिषद् की चौदहवीं श्रुति शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० ११) में भी है ॥१४॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥

अन्वयार्थ— (पूषन्) हे सब आश्रितों का भरण-पोषण करने वाले नारायण (हिरण्मयेन) ज्योतिर्मय (पात्रेण) पात्र से (सत्यस्य) सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वर का (मुखम्) श्रीमुखारविन्द (अपिहितम्) ढका हुआ है (सत्यधर्माय) सत्य परब्रह्मके उपासक मेरे लिये (दृष्टये) अपना दर्शन कराने के निमित्त (त्वम्) तुम (तत्) उस श्रीमुख को (अपावृणु) आवरण रहित कर दो ॥५॥

अथवा (पूषन्) हे सूर्यान्तर्यामिन् परमेश्वर (हिरण्मयेन) हिरण्य सदृश भोग्यवर्ग (पात्रेण) परमात्माविषयक वृत्ति प्रतिरोधक ढक्कन से (सत्यस्य) स्वरूप विकार रहित जीवात्मा का (मुखम्) मुख के समान अनेक इन्द्रियअवष्टम्भक मन (अपिहितम्) आच्छादित है (सत्यधर्माय) सत्यजीव के धर्मभूत (दृष्टये) आपके दर्शन के लिये (त्वम्) हृषीकेश आप तत् जीव के उस मुखस्थानीय मन को (अपवृणु) खींचकर हटा लीजिये ॥१५॥

विशेषार्थ— हे सब आश्रितों के भरण-पोषण करने वाले परब्रह्म नारायण यहाँ 'पूषन्' पद नारायणवाचक है । ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्र से सत्य-स्वरूप परब्रह्म नारायण का श्रीमुखारविन्द ढका हुआ हुआ है । सत्य का अर्थ—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।'

(तैत्ति० उप० वल्ली २ अनुवा० १ श्रु० १)

सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है ॥१॥ इस श्रुति से परब्रह्म नारायण होता है । क्योंकि महाभारत में लिखा है—

'सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।'

(महाभा० अनुशासनप० विष्णुसह० श्लो० १०६)

सत्त्ववान् १, सात्त्विक २, सत्य ३, सत्यधर्मपरायण ४ ये नारायण के नाम हैं ॥१०६॥ सत्य परब्रह्म नारायण के उपासक मेरे लिए अपना दर्शन कराने के निमित्त तुम उस मुखारविन्द को आवरणरहित कर दो । अथवा हे सूर्यान्तर्यामिन् परब्रह्म नारायण । बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।'

(बृह० अ० ३ खं० ७ श्रु० ९)

जो सूर्य में रहने वाला सूर्य के भीतर है जिसे सूर्य नहीं जानता सूर्य जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर सूर्य का नियमन करता है, वह तेरा अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥६॥ इस अन्तर्यामी ब्राह्मण की श्रुति से और—

'शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् ॥'

(शारीरकमी० अ० १ पा० १ सू० ३१)

इस सूत्र से 'पूषन्' पद का अर्थ सूर्यान्तर्यामी नारायण होता है। हे सूर्यान्तर्यामिन् परमेश्वर हिरण्यसदृश भोग्यवर्ग परमात्माविषयकवृत्तिप्रतिरोधक पात्र से स्वरुपविकाररहित जीवात्मा के मुख के समान अनेक इन्द्रियअवष्टम्भक मन आच्छादित है सत्य जीव के धर्मभूत आपके दर्शन के लिए हृषीकेश आप जीव के उस मुखस्थानीय मन को खींच कर हटा लीजिए। श्रुति में **'सत्यं चानृतं च'** (तै० उ० वल्ली० २ अनु ६) और (छान्दो० अ० १ ब्रा० २ श्रु० ३) जीव और अचेतन ॥३॥ इस श्रुति से 'सत्य' शब्द का अर्थ जीवात्मा होता है। संकलनार्थ यह है की हे नारायण सोने के समान मन लुभावने विषयरुपी माया के परदे से जीव का मन ढका हुआ है, हे सबके पोषक उस ढकन को मुझ सत्यपरायण उपासक के लिये तुम उठा दो जिससे मैं दर्शन कर सकूँ। ईशोपनिषद् की पन्द्रहवीं श्रुति बृहदारण्यकोपनिषद् (अ० ५ ब्रा० १५ श्रु० १) में है और शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १७) में भी है परन्तु यजुर्वेद संहिता में 'योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम् ऐसा मंत्र के उत्तरार्द्ध में पाठभेद है ॥१५॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजा-
पत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते
पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥१६॥

अन्वयार्थ—(पूषन्) हे भक्तों के पोषण करने वाले (एकर्ष) हे अद्वितीय अतीन्द्रिय पदार्थ को देखनेवाले अथवा हे मुख्य ज्ञानस्वरूप (यम) हे सबके नियन्ता (सूर्य) हे अपने उपासकों की बुद्धि को सुन्दर प्रेरणा करने वाले (प्राजापत्य) हे प्रजा की रक्षा करने वाले (रश्मीन्) आपके दिव्यरूप दर्शन की अनुपयोगी अपनी उग्र रश्मियों को (व्यूह) हटा लीजिये (तेजः) जो आपके दर्शन का उपयोगी तेज है उसको (समूह) इकट्ठा करिये (ते) तुम्हारा (यत्) जो श्रुतिप्रसिद्ध (कल्याणतमम्) परममङ्गलमय (रूपम्) दिव्यस्वरूप है (ते) तुम्हारे (तत्) उस अतिशय

कल्याणमय दिव्य स्वरूप को (पश्यामि) मैं आपकी कृपा से देख लूँ (यः) जो (असौ) वह (असौ) प्राण में (पुरुषः) परमात्मा है (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥१६॥

विशेषार्थ—हे सब भक्तों के पोषण करने वाले पूषन्, हे अद्वितीय अतीन्द्रिय पदार्थ को देखनेवाले एकर्षे हे सबका नियमन करनेवाले यम हे स्वोपासकों की बुद्धि को सुन्दर प्रेरणा करने वाले हे प्रजा की रक्षा करने वाले नारायण आपके दिव्य स्वरूप दर्शन के अनुपयुक्त अपनी उग्र किरणों को हटा लीजिये और दर्शन के उपयोगी जो आपका तेज है उसको इकट्ठा कर लीजिये। ऋग्वेद में लिखा है—

'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥'

(ऋग्वे० अ० २ अ० ३ व० २२)

इन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, दिव्य, गरुड़, गरुत्मान्, दीप्तिमान्, यम, वायु, एक, सन्मात्र इत्यादि अनेक प्रकार से विप्रगण नारायण को कहते हैं ॥२२॥

'भूतभृत्।'

(गीता अ० ६ श्लो० ५)

मैं सब भूतों का धारण पोषण करने वाला हूँ ॥५॥

'ज्योतिषां रविरंशुमान्।'

(गी० अ० १० श्लो० २१)

ज्योतियों में किरण वाला सूर्य मैं हूँ ॥२१॥

'यमः संयमतामहम्।'

(गी० अ० १० श्लो० २६)

दण्ड देनेवालों में यम मैं हूँ ॥२६॥

'वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।'

(गी० अ० ११ श्लो० ३६)

'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥'४०॥

आप वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति और प्रपितामह हैं ॥३६॥
आप सबको व्याप्त कर रहे हैं अतः आप ही सर्व शब्द के वाच्य है ॥४०॥

'ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।'

(महाभा० अनुशासनप० विष्णुस० श्ल० २१)

नियन्ता नियमो यमः ॥१०५॥ रविर्विरोचनः सूर्यः ॥'१०७॥

ज्येष्ठ १, श्रेष्ठ २, प्रजापति ३ ॥२१॥ नियन्ता १, नियम २, यम ३ ॥१०५॥ रवि १, विरोचन २, सूर्य ३ ये नारायण के नाम हैं ॥१०७॥ एकर्षि यहाँ पर एक का अर्थ अद्वितीय है क्योंकि लिखा है—

'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते ॥'

(मनोरमा)

अन्यार्थ में, प्रधान में, प्रथम में, केवल में, साधारण में, समान में, अल्प में और संख्या में एक शब्द का प्रयोग होता है । और ऋषि शब्द का अर्थ वायुपुराण में लिखा है—

'ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्सन्नियतं यस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ॥'

(वायुपु० अ० ५६ श्लो० ७६)

'गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नाम निर्वृत्तिरादितः ।
यस्मादेष स्वयंभूतस्तस्माच्च ऋषिता स्मृता ॥८१॥

ऋष् धातु गमन, श्रवण, सत्य और तप इन अर्थों में प्रयुक्त होता है । ये सब बातें जिनके अन्दर एक साथ निश्चितरूप से हों उसी का नाम वेद ने ऋषि रखा है ॥७६॥ गत्यर्थक ऋष् धातु से ही ऋषिशब्द की निष्पत्ति हुई है और आदि काल में यह ऋषि स्वयं उत्पन्न होता है इसीलिये इसकी ऋषि संज्ञा है ॥८१॥ इससे "एकर्षि" शब्द का अर्थ होता है—अद्वितीय अतीन्द्रियार्थद्रष्टा । यह लिखा भी है—

'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा ।'

(बृह० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० २३)

नारायण से अन्य द्रष्टा नहीं है ॥२३॥ यमशब्द का अर्थ है सर्वान्तर्यामी, क्योंकि यह लिखा है—

'यः पृथिवीमन्तरो यमयति ।'

(बृह० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० ३)

'योऽपोऽन्तरो यमयति ॥४॥ योऽग्निमन्तरो यमयति ॥५॥ योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयति ॥६॥ यो वायुमन्तरो यमयति ॥७॥ यो दिवमन्तरो यमयति ॥८॥ य आदित्यमन्तरो यमयति ॥९॥ यो दिशोऽन्तरो यमयति ॥१०॥ यश्चन्द्रतारकमन्तरो यमयति ॥११॥

य आकाशमन्तरो यमयति ॥१२॥ यस्तमोन्तरो यमयति ॥१३॥ यस्तेजोन्तरो यमयति ॥१४॥ यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयति ॥१५॥ यः प्राणमन्तरो यमयति ॥१६॥ यो वाचमन्तरो यमयति ॥१७॥ यश्चक्षुरन्तरो यमयति ॥१८॥ यः श्रोत्रमन्तरो यमयति ॥१६॥ यो मनोऽन्तरो यमयति ॥२०॥ यस्त्वचमन्तरो यमयति ॥२१॥ यो विज्ञानमन्तरो यमयति ॥२२॥ यो रेतोऽन्तरो यमयति ॥२३॥

जो नारायण भीतर रहकर पृथ्वी को नियमन करता है।।३।। जो भीतर रहकर जल को नियमन करता है ।।४।। जो भीतर रहकर अग्नि को नियमन करता है ।।५।। जो भीतर रहकर अन्तरिक्ष को नियमन करता है।।६।।जो भीतर रहकर वायु को नियमन करता है ।।७।। जो भीतर रहकर दिवलोक को नियमन करता है ।।८।। जो भीतर रहकर सूर्य को नियमन करता है ।।६।। जो भीतर रहकर दिशा को नियमन करता है ।।१०।। जो भीतर रहकर चन्द्रमा और ताराओं को नियमन करता है ।।११।। जो भीतर रहकर आकाश को नियमन करता है ।।१२।। जो भीतर रहकर अन्धकार को नियमन करता है ।।१३।। जो भीतर रहकर तेज को नियमन करता है ।।१४।। जो भीतर रहकर समस्त भूतों को नियमन करता है ।।१५।। जो भीतर रहकर प्राणों को नियमन करता है ।।१६।। जो भीतर रहकर वाणी को नियमन करता है ।।१७।। जो भीतर रहकर नेत्र को नियमन करता है ।।१८।। जो भीतर रहकर श्रोत्र को नियेमन करता है ।।१६।। जो भीतर रहकर मन को नियमन करता है ।।२०।। जो भीतर रहकर त्वचा को नियमन करता है ।।२१।। जो भीतर रहकर विज्ञान-आत्मा को नियमन करता है ।।२२।। जो भीतर रहकर वीर्य को नियमन करता है ।।२३।। और प्रजापति को ही प्राजापत्य कहते हैं । यजुर्वेद में लिखा है—

'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः ।'

(य० अ० ३१ मं० १६)

प्रजा की रक्षा करने वाला नारायण गर्भ के भीतर चलता है ।।१६।।

'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।।'

(गी० अ० ३ श्लो० १०)

प्रजारक्षक नारायण ने पहले यज्ञ के सहित प्रजा को रचकर कहा ।।१०।। इससे प्रजापतिशब्द नारायण वाचक ही है । 'पूषन्', 'एकर्ष', 'यम' 'सूर्य और 'प्राजा-पत्य' इन पाँच संबोधन के पदों से पर १, व्यूह २, विभव ३, अन्तर्यामी ४,

अर्चावतार ५ ये पांच प्रकार के परस्वरुप का संकेत यहाँ पर श्रुति ने किया है । हे परब्रह्म नारायण

'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।'

(श्वे० अ० ३ श्रु० ८) (गी० अ० ८ श्लो० ६)

अन्धकार से परे सूर्य के समान वर्णवाला ॥८॥ ॥६॥ इस श्रुति और स्मृति में प्रसिद्ध सौन्दर्यादिक गुणों से युक्त अतिशय कल्याणमय शुभाश्रय आपके दिव्य स्वरूप को मैं देख लूँ । जो विप्रकृष्टदेशवर्ती वह प्राण में परम पुरुष है । क्योंकि यह लिखा है—

'इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपं
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ।'

(मनोरमा)

सन्निकृष्ट, में 'इदम्' शब्द का और समीपतर में 'एतत्' शब्द का तथा विप्रकृष्ट में 'अदस्' शब्द का और परोक्ष में 'तत्' शब्द का प्रयोग होता है ऐसा जान ले । तो पहला 'असौ' पद 'अदस्' शब्द का प्रथमा के एक वचन का रूप है । इससे इसका —'विप्रकृष्टदेशवर्ती वह' यह अर्थ होता है । तथा दूसरा 'असौ' पद 'असु' शब्द का सप्तमी एकवचन का रूप है । इससे इसका 'प्राण में' यह अर्थ होता है । क्योंकि यह लिखा है—

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।'

(गी० अ० २ श्लो० ११)

पण्डित लोग गतप्राणवाले शरीरों को और अविनाशी जीवों को नहीं शोक करते हैं ॥११॥ इस श्लोक की व्यख्या में श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजापरावतार श्रीवरवर मुनीन्द्र ने 'असवः प्राणाः' ऐसी स्पष्ट व्याख्या की है । इससे तथा

पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः ।'

(अमरको० कां० २ वर्ग० ८ श्लो ११६)

असु १ प्राण २ ये दो नाम प्राणों के हैं ॥११६॥ इस अमरकोश के प्रमाण से 'प्राण में' यह अर्थ होता है । तब जो वह प्राण में परमात्मा है वह मैं हूँ । अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि 'पुरुष' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण है इसमें क्या प्रमाण है ? इसका उत्तर यह लिखा है—

'सहस्रशीर्षा पुरुषः ।

(ऋग्वे० अष्टक० ८ मण्डल० १० अध्या० ४ अनुवा० ७ सूक्त० ६ मं० १)

हजारों शिरवाला पुरुष परब्रह्म नारायण है ॥१॥

'सहस्रशीर्षा पुरुषः ।'

(यजुर्वे. अध्या. ३१ मं. १)

अनन्तमस्तकवाला परमात्मा है ॥१॥

'सहस्रशीर्षा पुरुषः ।'

(सामवे. पूर्वार्चिक. प्रपाठक. ६ अर्धप्रपाठक. ३ सूक्त. १३ मं. ३)

हजारों शिरवाला परम पुरुष है ॥३॥

'सहस्रबाहुः पुरुषः ।'

(अथर्ववे. काण्ड १९ अनुवाक १ सूक्त ६ मं. १)

हजारों भुजावाला नारायण परम पुरुष है ॥१॥

'पुरुषान्न परं किञ्चित् ।'

(कठोप. अध्या. १ वल्ली ३ श्रु. ११)

परब्रह्म नारायण से श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥११॥

'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।'

(कठो. अध्या. २ व. ४ श्रु. १२)

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।'

अंगुष्ठपरिमाण अन्तर्यामी परब्रह्म नारायण आत्मा के मध्य में स्थित है ॥१२॥ अंगुष्ठपरिमाण अन्तर्यामी नारायण धुएँ से रहित प्रकाश के समान देह में स्थित है ॥१३॥

'इमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ।'

(प्रश्नो. प्रश्न. ६ श्रु. ५)

परब्रह्म नारायण की ओर जानेवाली यह सोलहकला नारायण को प्राप्त होकर विलीन हो जाती हैं ॥५॥

'येनाक्षरं पुरुषं वेद ।'

(मुण्डकोप. मुण्डक. १ खण्ड २ श्रु. १३)

जिससे अविनाशी परब्रह्म नारायण को जानता है ॥१३॥

'उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ।'

(मुण्डको. मुण्डक. ३ खं. २ श्रु. १)

जो निष्काम बुद्धिमान् परब्रह्म नारायण की उपासना करते हैं वे निश्चय जन्म को लाँघ जाते हैं ॥१॥

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते ।'

(छान्दोग्य. अध्याय १ प्रपा. १ खं. ६ श्रु. ६)

जो यह सूर्य-मण्डल में हिरण्मय परब्रह्म नारायण देखा जाता है ॥६॥

'य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते ।'

(छा. अ. १ प्रपा. १ खं. ७ श्रु० ५)

जो यह नेत्र के भीतर परब्रह्म नारायण देखा जाता है ।।५।।

'य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते ।'

(छा. अ. ४ खं. १२ श्रु० १)

जो यह चन्द्रमा में परब्रह्म नारायण देखा जाता है ।।१।।

'योसावसौ पुरुषः ।'

(बृह. अ. ५ ब्रा. १५ श्रु. १)

जो सूर्यमण्डल में वह परब्रह्म नारायण है ।।१।।

'वेदाहमेतं पुरुषम् ।'

(श्वेता. अ. ३ श्रु. ८)

'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।।'९।।

उस परब्रह्म नारायण को मैं जानता हूँ ।।८।। उस परब्रह्म नारायण से यह समस्त जगत् पूर्ण है ।।९।।

पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत ।'

(नारायणो. श्रु. १)

निश्चय कर के परब्रह्म नारायण ने इच्छा की ।।१।।

'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषम् ।'

(तैत्तिरीयारण्यक अनुवाक १२)

ऋत सत्य परब्रह्म नारायण को ।।१२।।

'इमे वै लोकाः पूरयमेव पुरुषो योऽयं पवते योऽस्यां पुरिशेते तस्मात्पुरुषः।'

(शतपथ १३। ६। २। १)

इन लोकों में पूर्ण होने से और शयन करने से यह नारायण पुरुष है ।।१।।

'अनेन विधिना कृत्वा स्नपनं पुरुषस्य तु ।
दत्वा पायसमन्नं च शेषं परिसमापयेत् ।।'

(बोधायनसूत्र विष्ण्वाराधनप्रकरण)

इस विधि से परब्रह्म नारायण का स्नपन करके और पायसान्न को निवेदन करके शेष क्रिया को समाप्त करे ।

'स्वहृदयपद्मस्यावाङ्मुखस्य मध्ये दीपवत्पुरुषं ध्यायेत् ।'

(विष्णुस्मृ. अध्याय ९८)

अवाङ्मुख अपने हृदयकमल के मध्य में दीप के समान परब्रह्म नारायण का ध्यान करे ।।९८।।

'एष वै पुरुषो विष्णुर्व्यक्त्याव्यक्तः सनातनः ।'

(शङ्खस्मृ० अध्या० ७)

यह परब्रह्म नारायण निश्चय कर व्यक्ति से अव्यक्त सनातन है ॥७॥

'पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।'

(गी० अ० १० श्लो० १२)

सब ऋषिगण आपको—सनातन दिव्य सब देवों का आदि देव अजन्मा सर्वव्यापी परब्रह्म नारायण कहते हैं ॥१२॥

'सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।'

(गी० अ० ११ श्लो० १८)

'त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः ॥'३८॥

आप सनातन परब्रह्म नारायण हैं ऐसा मेरा मत है ॥१८॥ आप आदिदेव सनातन परब्रह्म नारायण हैं ॥३८॥

अव्ययः पुरुषः साक्षी ।'

(म० भा० अनुशा० विष्णुस० श्लो० २)

अव्यय १, पुरुष २, साक्षी ३ नारायण के नाम हैं ॥२॥

'महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम् ।'

(महाभा० शान्तिप० भीष्मस्तवरा० श्लो० ४३)

बड़े अन्धकार से परे अतितेजस्वी परब्रह्म नारायण हैं ॥४३॥

'युगान्तशेषं पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ।'

(महाभा० शान्तिप० गजेन्द्र मोक्ष श्लो० ७५)

युगान्त में रहने वाले सनातन सर्वव्यापी उस वासुदेव परब्रह्म नारायण की शरण में प्राप्त करता हूँ ॥७५॥

'प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ।'

(वाल्मीकिरामा०)

प्राणायाम से जनार्दन परब्रह्म नारायण का चिन्तवन करती हुई ॥

'पुरुषस्यांशसंभूतं त्वां वयं निरणैष्महि ।'

(हरिवंश०)

हम परब्रह्म नारायण के अंश से उत्पन्न आप का निर्णय करते हैं ॥

'तत्र गत्वा जगन्नाथं वासुदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥'

(श्रीमद्भागवत०)

वहाँ पर जाकर वृषाकपि अखिल ब्रह्माण्डनायक सर्वव्यापक परब्रह्म नारायण को समाहित होकर पुरुषसूक्त से उपस्थान किये ।

'अथवा पुरुषसूक्तेन पुरुषं नित्यमर्चयेत् ।

(अग्निपुराण)

अथवा पुरुषसूक्त से नित्यप्रति परब्रह्म नारायण की पूजा करे ।

सर्वलोकपतिः साक्षात्पुरुषः प्रोच्यते हरिः ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽन्यः पुरुषशब्दभाक् ॥'

(नरसिंहपुरा०)

अखिलब्रह्माण्डनायक परब्रह्म नारायण साक्षात् पुरुष शब्द से कहे जाते हैं । उस कमलनयन परब्रह्म के बिना दूसरा कौन पुरुष शब्द से कहा जा सकता है ।

पुंसंज्ञे तु शरीरेऽस्मिन् शयनात्पुरुषो हरिः ।
शकारस्य षकारोयं व्यत्ययेन प्रयुज्यते ॥'

(पाद्मपुरा०)

,यद्वा पुरे शरीरेऽस्मिन्नास्ते स पुरुषो हरिः ।
यदि वा पुरुवासीति पुरुषः प्रोच्यते हरिः ।
यदि या पूर्वमेवासमिहेति पुरुषं विदुः ।
यदि वा बहुदानाद्वै विष्णु पुरुष उच्यते ॥
पूर्णत्वात्पुरुषो विष्णुः पुराणत्वाच्च शार्ङ्गिणः ।
पुराणभजनाच्चाति विष्णुः पुरुष ईर्यते ॥
यद्वा पुरुषशब्दोयं रूढ्या वक्ति जनार्दनम् ।

पुम् नाम इस शरीर में सोने से नारायण भगवान् पुरुष हैं । शकार का पुरुषशब्द में व्यत्यय से षकार प्रयोग किया जाता है । अथवा इस शरीर में नारायण भगवान् रहते हैं इससे पुरुष कहे जाते हैं । या शरीर में वास करते हैं इससे परब्रह्म नारायण पुरुष कहे जाते हैं । अथवा इस संसार में पहले से नारायण भगवान् थे इससे महर्षि लोग उनको पुरुष जानते हैं । या बहुत दान देने से ही विष्णु भगवान् पुरुषशब्द से कहे जाते हैं । नारायण भगवान् के पूर्ण होने से विष्णु पुरुष कहे जाते हैं । अथवा सबसे पुराने होने से परब्रह्म नारायण पुरुष कहे जाते हैं । या पुराण के सेवन करने से परब्रह्म नारायण पुरुष कहे जाते हैं । अथवा यह पुरुषशब्द रूढि से ही परब्रह्म नारायण को कहता है ।

'पुराणपुरुषो यज्ञः पुरुषः पुरुषोतमः ।'

(अभिधानको०)

पुराणपुरुष १, यज्ञ ३, पुरुष ६ और पुरुषोत्तम ४ ये परब्रह्म नारायण के नाम हैं। ये श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और कोश प्रमाण हैं कि 'पुरुष' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण है। ईशोपनिषद् की सोलहवीं श्रुति बृहदारण्योपनिषद् (अ० ५-ब्रा० १५ श्रु० २) में भी और **'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि'** शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं १७) के उत्तरार्द्ध में भी है परन्तु संहिता में 'योऽसावादित्ये पुरुषः' ऐसा पाठ है ॥१६॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओंक्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥१७॥

अन्वयार्थ—(वायुः) विद्या और कर्म के अनुसार भगवान् को संकल्प से इस देह से दूसरे देह में तथा इस लोक से परलोक में गमन करनेवाला जीव (अनिलम्) निलयरहित तथा कहीं पर भी व्यवस्थित नहीं रहनेवाला भोक्ता चेतन (अमृतम्) स्वरूप से तथा धर्म से अविनाशी हैं (अथ) प्रकृत भोक्ता तत्त्व के कहने के बाद (इदम्) यह प्राकृत स्थूल (शरीरम्) कर्मवश्य (भस्मान्तम्) शरीर भोग्यपदार्थ अन्त में भस्मरूप है (ओम्) हे सच्चिदानन्दघन परब्रह्म-नारायण (क्रतो) हे ज्योतिष्ठोमादिक्रतुस्वरूप भगवन् (स्मर) मुझ को स्मरण करें (कृतम्) मेरे द्वारा किये हुए यत्किंचित् कर्म को स्मरण करें (क्रतो) हे ज्योतिष्ठोमादिक्रतुस्वरूप भगवन् (स्मर) मुझ अकिंचन भक्त को स्मरण करें ॥१७॥

विशेषार्थ—विद्या और कर्म के अनुसार श्रीमन्नारायण के सत्य संकल्प से मनुष्य के शरीर से दूसरे शरीर में और भूलोक से स्वर्गलोक में गमन करने से भोक्ता जीवात्मा को यहाँ पर 'वायु' कहते हैं क्योंकि अदादिपठित 'वा गतिगन्धनयोः' इस धातु से 'वायु' शब्द निष्पन्न होता है। और निलयरहित होने से तथा कहीं पर व्यवस्थित नहीं रहने से भोक्ता जीव को ही यहाँ पर 'अनिल' कहते हैं। तथा स्वरूप से और धर्म से विनाश रहित होने से जीव को 'अमृत' कहते हैं। क्योंकि लिखा है—

'न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् ।'

(बृहदा० अ० ४ ब्रा० ३ श्रु० ३०)

विज्ञाता आत्मा की विज्ञान शक्तिका सर्वथा लोप नहीं होता, क्योंकि वह अविनाशी है ॥३०॥

'अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ।'

(बृह० अ० ४ ब्रा० ५ श्रु० १४)

अरी मैत्रेयि यह आत्मा निश्चय ही अविनाशी और अनुच्छेदरूप धर्मवाला नित्य-ज्ञानवान् है ।।१४।।

'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।'

(श्वे० अ० १ श्रु० १०)

प्रकृति तो विनाशशील है इसको भोगने वाला जीवात्मा अमृतस्वरूप अविनाशी है। इन विनाशशील जड़ तत्त्वों को और चेतन आत्मा को एक परब्रह्म नारायण देव अपने शासन में रखता है ।।१०।। श्रीमद्यामुनमुनि ने कहा है—

'तदेवं चित्स्वभावस्य पुंसः स्वाभाविकी चितिः ।
नानापदार्थसंसर्गात् तत्तच्चित्त्वमश्नुते ।।'

(सिद्धित्रय० आत्मसि० पृष्ठ० ४८)

इस प्रकार के चेतन स्वभाववाली आत्माकी चेतनता स्वाभाविकी है। अनेक पदार्थों के संसर्ग से उन उन पदार्थो की चित्तता को भोगता है। यहाँ पर 'वायुः', अनिलम्', अमृतम्' इन तीन पदों से भोक्ता जीवात्मा का स्वरूप अणु परमात्माधीन नित्य ज्ञानवान् और अविनाशी प्रतिपादित किया गया है। इसके बाद तीन पदों से भोग्य शरीर का वर्णन किया है कि यह प्राकृत स्थूल कर्मवश्य भोग्य शरीर अग्नि में जलकर भस्मरूप अन्त में हो जाता है। यहाँ पर भस्मशब्द दाहसंस्कार-वाचक होने पर भी खननादि संस्कार वाचक है। क्योंकि अथर्ववेद में लिखा है—

'ये निखाया ये परोप्ता ये दग्धाः ।'

अथर्ववे० का० १८। २ मं० ३४)

'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धाः ।।' ३५ ।।

जो पृथ्वी में खनकर गाड़े गये हैं, जो जल में छोड़ दिये गये हैं और जो अग्नि में जला दिये गये हैं ।।३४।। जो अग्नि में भस्म हुए हैं और जो अग्नि में नहीं भस्म हुए हैं ।।३५।। अर्थात् यह प्राकृत स्थूल शरीर कृमि, विट् या भस्म अन्त में होता है। इससे अपने शरीर में वैराग्य करने योग्य है। और शीघ्र मोक्ष का उपाय करने योग्य है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार से भोक्ता तथा भोग्य का विचार कर अब प्रेरिता परब्रह्म नारायण को श्रुति कहती है—

'ओमित्यात्मानं युञ्जीत ।'

(नारायणो० श्रु० ७६)

प्रणव से आत्मसमर्पण करे ॥७६॥ अथवा भक्त नारायण से प्रार्थना करता है कि हे सच्चिदानन्दघन परमेश्वर। ॐ परमेश्वर का नाम है। पातञ्जलयोगदर्शन में लिखा है—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'

(योग० अ० १ पा० १ सू० २४)

'तस्य वाचकः प्रणवः ॥'२७॥

क्लेश और कर्म के विपाक के आशय से संसर्गरहित परम पुरुष ईश्वर है ॥२४॥ उसका वाचक ॐकार है ॥२०॥

'अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥'

(यो० अ० १ पा० २ सू० ३)

'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥ दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतैवास्मिता ॥६॥ सुखानुशयी रागः ॥७॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥८॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेश ॥९॥

अविद्या १, अस्मिता २, राग ३, द्वेष ४ और अभिनिवेश ५ ये क्लेश हैं ॥३॥ अनित्य में नित्य, अशुचि में शुचि, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मख्यातिको अविद्या कहते हैं ॥५॥ दृक् और दर्शनशक्ति की एकता के समान अस्मिता होती है ॥६॥ सुख के अनुशयी को राग कहते हैं ॥७॥ दुःख के अनुशयी को द्वेष कहते हैं ॥८॥ अपने राग के अनुसार विषयों में विद्वानों को आरूढ़ होना अभिनिवेश कहा जाता है ॥९॥ और श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्।'

(गी० अ० ८ श्लो० १३)

ॐ इस एक अक्षररूप मेरे नामको उच्चारण करता हुआ ॥१३॥

'वेद्यं पवित्रमोङ्कारः।'

(गी० अ० ९ श्लो० १७)

जानने योग्य पवित्र ॐकार है ॥१७॥ इससे हे ॐपदवाच्य परब्रह्म नारायण और हे ज्योतिष्टोमादिक्रतुस्वरूप नारायण। क्योंकि लिखा है—

'अहं क्रतुः।'

(गी० अ० ९ श्लो० १६)

ज्योतिष्टोमादि क्रतु मैं हूँ ॥१६॥

'यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रम्।

(महाभा० अनुशा० विष्णु० श्लो० ६१)

यज्ञ १, इज्य २, महेज्य ३, क्रतु ४ और सत्र ५ ये नारायण के नाम हैं।।६१।। हे श्रीमन्नारायण आप अपने निज जन को और मेरे यत्किंचित् कर्म को स्मरण कीजिये। बार-बार मैं प्रार्थना करता हूँ कि हे ज्योतिष्टोमादिक्रतु-स्वरूप परब्रह्म नारायण आप अपने भक्तजन मुझको और मेरे कर्मों को निर्हेतुक दया कर के स्मरण कीजिये। क्योंकि आपने कहा है—

'अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥'
(वराहपुरा०)

मैं अपने भक्त को स्मरण करता हूँ और उसे परम गति में पहुँचा देता हूँ। अर्थात् अपनी नित्य सेवा में स्वीकार कर लेता हूँ। प्रस्तुत श्रुति में अतिशय आदरद्योतन करने के लिए "क्रतो स्मर कृतं स्मर" ये दो बार कहे गये हैं। ईशोपनिषद् की सत्रहवीं श्रुति बृहदारण्यक उपनिषद् (अ० ५ ब्रा० ५ श्रुति ३) में और शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १५) में भी है। परन्तु संहिता के उत्तरार्द्ध में 'ओं क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर' ऐसा पाठभेद है ।।१७।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयि-
ष्ठांते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥

ईशोपनिषद् समाप्त।

अन्वयार्थ—(अग्ने) हे अग्निस्वरूप परब्रह्म नारायण (अस्मान्) अनन्य-प्रयोजन और अनन्यगति हम सबों को (राये) परमधनरूप नारायण की सेवा में पहुँचने के लिये (सुपथा) सुन्दर शुभ अर्चिरादिमार्ग से (नय) पहुँचाओ (देव) हे मेरी बुद्धि में प्रकाशमान नारायणदेव (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) कर्मों को या ज्ञानों को (विद्वान्) जानने वाले तुम (जुहुराणम्) कुटिल बन्धात्मक (एनः) अकृत्यकरण-कृत्याकरणादि रूप पाप को (अस्मत्) हमसे (युयोधि) अलग करो (ते) आप्तकाम निरुपाधिक स्वामी तुम्हारे निमित्त (भूयिष्ठाम्) बहुत सी (नम उक्ति)म् नमस्कार के वचन को (विधेम) हम विधान करते हैं ।।१८।।

विशेषार्थ—हे प्रकाशस्वरूप आगे ले चलनेवाले परब्रह्म नारायण। क्योंकि लिखा है—**'तदेवाग्निः।'** (यजुर्वेद० अ० ३२ मं० १) वही परब्रह्म नारायण अग्नि है ।।१।। **'अहमग्निः'** (गीता० अ० ६ श्लो० १६) मैं अग्नि हूँ ।।१६।। **'अग्रं नयति'** (निरुक्त दैवतका० ३ अ० ७ खं० १४) आगे ले चलता है ।।१४।।

इससे अग्नि परब्रह्म नारायण को कहते हैं। हे अग्निस्वरूप नारायण अनन्यप्रयोजन और अनन्यगति हम सबों को परम-धनरूप परब्रह्म नारायण के नित्यकैंकर्य करने के लिये सुन्दर शुभ श्रेष्ठ अर्चिरादि मार्ग से ले चहे। हे मेरी बुद्धि में प्रकाशमान देव। क्योंकि श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥'

(श्वे० अ० ६ श्लो० १८)

जो नारायण निश्चय करके सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा के लिए समस्त वेदों को प्रदान करता है और उस अपनी बुद्धि में प्रकाश करनेवाले प्रसिद्ध परब्रह्म नारायण को मैं मोक्ष की इच्छा वाला प्रपन्न जन शरण ग्रहण करता हूँ। ॥१८॥ हे परब्रह्म नारायण समस्त पुरुषार्थ के उपायों को जानने वाले आप हैं। अथवा संपूर्ण को जानने वाले हैं। क्योंकि लिखा है—

'माया वयुनं ज्ञानम्।'

(वे० नि० ध० व० २२)

माया १, वयुन २ और ज्ञान ३ ॥२२॥ ये पर्यायवाची शब्द हैं। इससे 'वयुन' का अर्थ ज्ञान होता है। तुम कुटिल बन्धात्मक अकृत्य करण और कृत्य अकरण आदिक तेरी प्राप्ति में प्रतिबन्धक पाप को हमसे दूर कर दो। आप्तसमस्तकाम निरुपाधिक सर्वेश्वर तुम्हारे निमित्त बार-बार बहुत से नमस्कार वचन हम कहते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि अर्चिरादिमार्ग में क्या प्रमाण है। इसका उत्तर यह लिखा है—

'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः।'

(शारीरकमी० अ० ४ पा० ३ सू० १)

अर्चिरादिमार्ग से ही ब्रह्मलोक में जीव की गति होती है, क्योंकि सर्वत्र अर्चिरादिमार्ग की ही प्रसिद्धि है ॥१॥

'अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासांस्तान् मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः।'

(छान्दोग्य० अ० ४ खं० १५ श्रु० ५)

'स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपाद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ।।' ६ ।।

इस उपासक के लिये शवकर्म करें अथवा न करें वह अर्चि अभिमानी देवता को ही प्राप्त होता है। फिर अर्चि अभिमानी देवता से दिवसाभिमानी देवता को और दिवसाभिमानी से शुक्लपक्षाभिमानी देवता को तथा शुक्लपक्षाभिमानी देवता से उत्तरायण के छः मासों को प्राप्त होता है। मासों से संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त होता है। वहाँ से अमानव पुरुष इसे ब्रह्म को प्राप्त करा देता है। यह देवमार्ग ब्रह्ममार्ग है। इससे जाने वाले पुरुष इस मानव-मंडल में नहीं लौटते हैं नहीं लौटते हैं ।।५।६।।

ते य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ।'

(बृह० अ० ६ ब्रा० २ श्रु० १५)

वे जो इस प्रकार इस को जानते हैं तथा जो वन में श्रद्धायुक्त होकर सत्य की उपासना करते हैं वे ज्योति के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं, ज्योति के अभिमानी देवताओं से दिन के अभिमानी देवता को, दिन के अभिमानी देवता से शुक्ल पक्षाभिमानी देवता को और शुक्लपक्षाभिमानी देवता से जिन छः महीनों में सूर्य उत्तर की ओर रहकर चलता है उन उत्तरायण के छः यहीनों के अभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। षण्मासाभिमानी देवताओं से देवलोक को, देवलोक से आदित्य को और आदित्य से विद्युत्संबन्धी देवताओं को प्राप्त होते हैं। उन वैद्युत देवों के पास एक मानस पुरुष आकर इन्हें ब्रह्मलोकों में ले जाता है। वे उन ब्रह्मलोकों में अनन्त संवत्सरपर्यन्त रहकर भगवान् को प्राप्त कर लेते है। उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ।।१५।।

'स एतं देवयानं पन्थानयासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम् ।'

(कौषीतकिब्राह्मणोप० अध्याय १ श्रु० सु)

वह परब्रह्म का उपासक इस देवयान मार्ग पर पहुँच कर पहले अग्निलोक में आता है, फिर वायुलोक में आता है, वहाँ से सूर्यलोक में आता है, तदनन्तर वरुणलोक में आता है, तत्पश्चात् वह इन्द्रलोक में आता है, इन्द्रलोक से प्रजापति लोक में

आता है और प्रजापति के लोक से परब्रह्मलोक में आता है ॥३॥

'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥'

(गी० अ० ८ श्लो० २४)

अग्निरूप ज्योति, दिन शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छः महीने उनमें गये हुए ब्रह्मवेत्ता जन परब्रह्म नारायण को प्राप्त होते हैं ॥२४॥

'अर्चिरहः सितपक्षानुदगयनाब्दौ च मारुतार्केन्दून् ।
अपि वैद्युतवरुणेन्द्रप्रजापतीनातिवाहिकानाहुः ॥'

अर्चिः१, दिन २, शुक्लपक्ष ३, उत्तरायण ४, संवत्सर ५, वायु ६, सूर्य ७, चन्द्रमा ८, वैद्युतपुरुष ९, वरुण १०, इन्द्र ११, प्रजापति १२, आतिवाहिक १३, यह अभियुक्त संगृहीत अर्चिरादिमार्ग है। ये पूर्वोक्त श्रुति, स्मृति, सूत्र, देशिकोक्ति अर्चिरादिमार्ग में प्रमाण हैं। ईशोपनिशद् की अठारहवीं श्रुति बृहदारण्यकोपनिषद् (अ० ५ ब्रा० ५ श्रु० ४) में और शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १६) में भी है॥ शुक्लयजुर्वेद (अ० ४० मं० १८) में 'ओं खं ब्रह्म' ऐसा पाठ है ॥१८॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रं
श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम् ।
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधं
भक्त्या भजामि गुरुवर्यमनन्तसूरिम् ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्यश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवदनन्तपादीयश्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यत्रिदण्डस्वामिविरचिता 'गूढार्थदीपिका' समाख्या 'शुक्लयजुर्वेदीय-काण्वशाखान्तर्गता—ईशोपनिषद्' भाषाव्याख्या समाप्ता ।

ॐश्रियै नमः ।

सामवेदीया

केनोपनिषद्

॥ अथ प्रथमखण्डः ॥

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

❀ गूढार्थदीपिकाव्याख्या ❀

मङ्गलाचरणम्—

बोधायनं वृत्तिकारं भाष्यकारं यतीश्वरम् ।
श्रीव्यासं सूत्रकारं च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(केन) किस करके (प्रेषितम्) प्रेरणा किया हुआ (इषितम्) इष्ट साधु या असाधु अपने विषय के प्रति (मनः) अन्तःकरण मन (पतति) गिरता है और (केन) किस कर्ता के द्वारा (युक्तः) प्रेरणा किया हुआ (प्रथमः) पाँचों में मुख्य श्रेष्ठ (प्राणः) प्राण (प्रैति) अपने व्यापार को करता है तथा (केन) किसके द्वारा (इषिताम्) क्रियाशील की हुई (इमाम्) इस लौकिकी या वैदिकी (वाचम्) वाणी को (वदन्ति) लोग बोलते हैं और (उ) निश्चय करके-हे आचार्य (कः) कौन (देवः) देव (चक्षुः) नेत्रेन्द्रिय को और (श्रोत्रम्) कर्णेन्द्रिय को (युनक्ति) अपने-अपने विषयों के अनुभव में लगाता है ॥१॥

विशेषार्थ—**सामवेद की तलवकारशाखा के नवम अध्याय को 'केनोपनिषद्' कहते हैं ।** मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।'
(मुण्डको० मु० १ खं० २ श्रु० १२)

उस परब्रह्म नारायण को जानने के लिए वह भक्त हाथ में समिधा आदि लिए हुए वेदवेत्ता ब्रह्मविचार में मग्न गुरु की ही शरण जाय ॥१२॥ और छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'आचार्यवान् पुरुषो वेद ।'

(छा० उ० अ० ६ खं० १४ श्रु० २)

आचार्यवाला पुरुष परब्रह्म नारायण को जानता है ।।२।।

'आचार्याद्ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति ।'

(छा० उ० अ० ४ खं० ९ श्रु० ३)

आचार्य से जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुता को प्राप्त कराती है ।।३।।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।'

(गीता० अ० ४ श्लो० ३४)

उस ब्रह्मज्ञान को साष्टाङ्ग प्रणाम के द्वारा तथा जिज्ञासुभाव से प्रश्न कर के और सेवा के द्वारा तुम जानो ।।३४।। इन श्रुति स्मृति के नियमानुसार जिज्ञासु प्रपन्न शिष्य ने 'केनोपनिषद्' की पहली श्रुति में प्रायः चार प्रश्न किये हैं—हे आचार्य यह मन किसके चलाने पर अपने अनुकूल पदार्थों में दौड़ता है ? क्योंकि किसी परम पुरुष प्रेरक के विना इस जड़ मन की प्रवृत्ति अपने से तो हो ही नही सकती । यदि कहो कि अपने आप स्वतंत्र होकर ही यह अपने विषय की ओर जाता है । तब यह अनर्थ का हेतु जानकर भी बुरा संकल्प करता है । ऐसा क्लेशदायक संकल्प तो नहीं करना चाहिए । परन्तु यह मन करता है । इससे इसका प्रेरक कोई अवश्य होना चाहिये सो वह कौन है ? यह कृपा करके बताइये । और हे देशिकेन्द्र जिसके बिना किसी इन्द्रिय की चेष्टा नहीं हो सकती ऐसा सब शरीरों में मुख्य रूप से वर्तभान जो प्राण है वह किसकी प्रेरणा से अपने व्यापार को करता है । इसको समझाइये । किसकी प्रेरणा से वाक् इन्द्रिय को लोक संस्कृत भाषा आदि अनेक प्रकार के शब्दों में उच्चावण करते हैं । हे गुरुदेव दया करके यह बताइये कि नेत्र और कर्णेन्द्रिय को कौन देवता प्रेरणा करता है ? जिससे कि यह नाना प्रकार के सफेद, पीला आदि रंगों को देखता है । अनेकों शब्दों को सुनता हैं । अर्थात् इस स्थूल सूक्ष्म संघात का प्रेरक कौन है ? और कैसा है सो बताइये ।।१।।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो य-
द्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।२।।

अन्वयार्थ—(यत्) जो (मनसः) मनका (मनः) मननशक्तिप्रद है और (प्राणस्य) प्राण के (प्राणः) प्राणनशक्तिप्रद है तथा (वाचः) वाक्

इन्द्रिय के (वाचम्) शब्दोच्चारणशक्तिप्रद है (श्रोत्रस्य) कर्णेन्द्रिय के (श्रोत्रम्) शब्दभासकत्वशक्तिप्रद है (उ) और निश्चय करके (चक्षुषः) नेत्र इन्द्रिय के (चक्षुः) दर्शनशक्तिप्रद है (सः) वह नारायण (ह) ही इन सबका प्रेरक है (धीराः) श्रोत्रादिप्रेरक परब्रह्म नारायण को जानने वाले विवेकी पुरुष (अस्मात्) इस भौतिक (लोकात्) शरीर से (प्रेत्य) निकल कर (अतिमुच्य) अर्चिरादिमार्ग से जाकर लिङ्ग शरीर को त्याग कर (अमृताः) जन्म-मृत्यु से रहित मुक्त (भवन्ति) हो जाते हैं ॥२॥

विशेषार्थ—निर्हेतुक दया कर के आचार्य उत्तर देते हैं कि हे प्रियतम जो महापुरुष नारायण मन का मननशक्तिप्रद है, उसी से प्रेरित मन अपने विषयों में गिरता है। क्योंकि लिखा है—

'यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद
यस्य मनः शरीरं यो मनोऽन्तरो यमयति ।'

(बृह० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० २०)

जो मन में रहनेवाला मन के भीतर है जिसे मन नहीं जानता है मन जिसका शरीर है और जो नारायण भीतर रहकर मन को नियमन करता है ॥२०॥ और जो परमेश्वर प्राण के प्राणनशक्तिप्रद है। उसी नारायण से प्रेरित प्राण अपने व्यापार को करता है। क्योंकि लिखा है—

'यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद
यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरों यमयति ।'

(बृ० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० १६)

जो प्राण में रहने वाला प्राण के भीतर है जिसे प्राण नहीं जानता प्राण जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर प्राण को नियमन करता है ॥१६॥

'ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति ।'

(कठोप० अ० २ व० २ श्रु० ३)

जो प्राण को ऊपर की ओर ले जाता है ॥३॥

'को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।'

(तैत्ति० उ० व० २ अनुवाक ७ श्रु० १)

यदि यह आनन्द स्वरूप आकाश न होता तो कौन जीवित रहता और कौन श्वासोश्वास करता ॥१॥ और जो वाक् इन्द्रिय के शब्दोच्चारणशक्तिप्रद है। क्योंकि लिखा है—

'यो वाचि तिष्ठन् वाचोऽन्तरो यं वाङ्न वेद
यस्य वाक् शरीरं यो वाचमन्तरो यमयति ।'

(बृ० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० १७)

जो वाणी में रहने वाला वाणी के भीतर है जिसे वाणी नहीं जानती वाणी जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर वाणी को नियमन करता है ॥१७॥ तथा जो कर्ण इन्द्रिय के शब्दभासकत्वशक्तिप्रद है। क्योंकि लिखा है—

'यः श्रोत्रे तिष्ठन् श्रोत्रादन्तरो यं श्रोत्रं न वेद
यस्य श्रोत्रं शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमयति ।'

(बृ० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० १९)

जो श्रोत्र में रहने वाला श्रोत्र के भीतर है जिसे श्रोत्र नहीं जानता श्रोत्र जिसका शरीर है जो भीतर रहकर श्रोत्र को नियमन करता है ॥१९॥ और जो निश्चय कर के नेत्र इन्द्रिय के दर्शनशक्तिप्रद है वह नारायण ही इस स्थूल-सूक्ष्मसंघात का प्रेरक है। क्योंकि लिखा है—

'यश्चक्षुषि तिष्ठंश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद
यस्य चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयति ।'

(बृ० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० १८)

जो नेत्र में रहने वाला नेत्र के भीतर है जिसे नेत्र नहीं जानता नेत्र जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर नेत्र को नीयमन करता है ॥१८॥

'मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।'

(गी० अ० १० श्लो० ८)

सब मुझ से ही प्रवृत्त किये जाते हैं ॥८॥ इस स्थूल-सूक्ष्मसंघात प्रेरक परब्रह्म नारायण की उपासना करने वाले धीर पुरुष इस भौतिक नश्वर शरीर से निकल कर अर्चिरादिमार्ग से जाकर लिंग शरीर को त्यागकर जन्म-मरण रहित मुक्त हो जाते हैं। इस विषय में लिखा है—

'मुक्तोऽर्चिर्दिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमद्-
ग्लौविद्युद्वरुणेन्द्रधातृमहितः सीमान्तसिन्ध्वां प्लुतः ।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन् परब्रह्मणः
सायुज्यं समवाप्य नन्दति समं तेनैव धन्यः पुमान् ॥'

(सत्संगप० श्लो० २)

धन्य कृतकृत्य माया के बन्धन से विनिर्मुक्त पुरुष अर्चिष् १, दिन २, शुक्लपक्ष ३, उत्तरायण ४, संवत्सर ५, वायु ६, सूर्य ७, चन्द्रमा ८, विद्युत्पुरुष ९, वरुण १०, इन्द्र ११, और ब्रह्मा १२ इन सबों से पूजित लीलाविभूति की सीमा के अन्त में स्थित विरजा नदी में स्नान करके नित्य अजड श्रीवैकुण्ठ को प्राप्त कर उस श्रीवैकुण्ठ परम धाम में परब्रह्म नारायण के साथ सायुज्य मुक्ति को पाकर आनन्द करता है ॥२॥ श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजाचार्य ने

'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० २ सू० १)

के श्रीभाष्य में केनोपनिषद् के प्रथम खण्ड की दुसरी श्रुति के 'प्राणस्य प्राणः' इन पदों को उद्धृत किया है ॥२॥

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्या-दन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे ॥३॥

अन्वयार्थ—(तत्र) उस ब्रह्म के विषय में (चक्षुः) नेत्र आदिक सब ज्ञानेन्द्रियां (न) नहीं (गच्छति) पहुँच सकती हैं तथा (वाक्) वाणी आदिक समस्त कर्मेन्द्रियाँ (न) नहीं (गच्छति) पहुँच सकती हैं और (मनः) मन अन्तःकरण (नो) नहीं पहुँचता है (यथा) जिस प्रकार (एतत्) इस परब्रह्म नारायण को (अनुशिष्यात्) बतलाया जाय कि वह ऐसा है इस बातको (न) नहीं (विद्मः) हम स्वयं जानते हैं और (न) नहीं (विजानीमः) हम दूसरों से सुनकर ही विशेषरूप से जानते हैं (तत्) वह परब्रह्म नारायण (विदितात्) जाने हुए पदार्थसमुदाय से (अथो) और (अविदितात्) मन और इन्द्रियों द्वारा न जाने हुए से भी (अधि) ऊपर (अन्यत्) पृथक् दूसरा (एव) ही निश्चय करके है (इति) इस प्रकार (पूर्वेषाम्) पूर्वाचार्यों के श्रीमुख से (शुश्रुम) हम वचन को सुने हैं (ये) जो पूर्वाचार्यों ने (नः) हमको (तत्) उस परब्रह्म नारायण तत्त्व को (व्यचचक्षिरे) भली भाँति व्याख्या करके समझाया था ॥३॥

विशेषार्थ— उस सच्चिदानन्द परब्रह्म नारायण के विषय में प्राकृत नेत्रादिक ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं जा सकती हैं। क्योकि वह परब्रह्म नारायण दिव्य स्वरूप है। इससे श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः ॥'

(गी० अ० ११ श्लो० ८)

तू अपने इस प्राकृत नेत्र से मुझे देखने में समर्थ नहीं है इससे मैं तेरे लिये दिव्य नेत्र को देता हूँ ॥८॥ और उस नारायण के विषय में प्राकृत वाक् आदिक कर्मेन्द्रियां और मन अन्तःकरण भी नहीं जा सकते हैं। क्योकि लिखा है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।'

(तै० उ० व० २ अनुवा० ४ श्रु० १)

मनके साथ वाणी आदिक इन्द्रियाँ नहीं पाकर जिससे लौट आती हैं ॥१॥ जिस प्रकार इस ब्रह्म के स्वरूप को उपदेश दिया जाय कि वह ऐसा है इस बात को न तो हम स्वयं अपनी बुद्धि से जानते हैं और न दूसरों से सुनकर ही जानते हैं। क्योंकि वह जाने हुए प्राकृत पदार्थ-समुदाय से भिन्न ही है। और मन तथा इन्द्रियों द्वारा न जाने हुए से भी ऊपर है। यह अपने पूर्वाचार्यों के श्रीमुखार-विन्द से हम सुने हैं जिन्होंने हमें उस परब्रह्म तत्त्व को उपदेश दिया था। वेदान्त-दीप के निर्माता श्रीरामानुजमुनीन्द्र ने

'तत्तु समन्वयात् ।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० २ सू० ४)

के श्रीभाष्य में-'केनोपनिषद्' के प्रथम खण्ड की तिसरी श्रुति के,

'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ।'

इन पदों को उद्धृत किया है ॥३॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो परब्रह्म नारायण (वाचा) वेद की वाणी से (अनभ्युदितम्) साकल्यरूप से नहीं बतलाया गया है बल्कि (येन) जिस नारायण करके प्रेरित (वाक्) वाणी (अभ्युद्यते) पुरुषों से उच्चारण की जाती हैं (त्वम्) तुम (तत्) उसको ही (एव) निश्चय करके (ब्रह्म) परब्रह्म (विद्धि) जान लो (यत्) जो (इदम्) इस स्थावर जंगम जगत् को (उपासते) विषयासक्त लोग उपासना करते हैं (इदम्) यह ब्रह्म (न) नहीं है ॥४॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'जिसकी प्रेरणा से वाणी बोली जाती है वह कौन है' इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि जो परब्रह्म नारायण वेदवाणी से नहीं बतलाया गया है। बल्कि उस परब्रह्म नारायण से प्रेरित वाणी पुरुषों से उच्चारण की जाती है। तुम उस को ही परब्रह्म-नारायण जानो। जो इस जड़ जीवादिक को विषयासक्त लोग उपासना करते हैं अर्थात् सेवा करते हैं, यह परब्रह्म नारायण नहीं है। यह लिखा है—

'अकारो वै सर्वा वाक् सैषा स्पर्शान्तस्थोष्मभिर्व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवति ।'

(ऐ० आ० २।३।७।१३)

आकर ही संपूर्ण वाक् है और यह वाक् ही क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म इन अपने स्पर्श और य र ल व इन अन्तस्थ तथा श ष स ह इन ऊष्म आदि भेदों से अभिव्यक्त होकर अनेक रूपवाली हो जाती है ॥१३॥

'यो वाचमन्तरो यमयति ।'

(बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० १७)

जो भीतर से वाणी को नियमन करता है ॥१७॥ वेदान्तसारप्रणेता श्रीरामानुजाचार्य श्रीभाष्य के समन्वयाधिकरण में 'केनोपनिषद्' के प्रथम खण्डमें की चौथी श्रुति के चौथे पाद को उद्धृत करके स्पष्ट लिखे हैं—

'नात्र ब्रह्मण उपास्यत्वं प्रतिषिध्यते अपि तु ब्रह्मणो जगद्वैरूप्यं प्रतिपाद्यते ।'

(अध्या० १ पा० १ सू० ४ अधिक० ४)

'नेदं यदिदमुपासते ।'

यहाँ पर ब्रह्म के उपायत्व का प्रतिषेध नहीं है बल्कि ब्रह्म के जगद्वैरूप्य का प्रतिपादन किया गया है ॥४॥ इस से इस श्रुति द्वारा उपास्य परब्रह्म का प्रतिषेध नहीं है। अन्यथा—

'ओमित्येवात्मानं ध्यायथ ।'

(मुण्ड० उ० मु० २ खं २ श्रु० ६)

प्रणव से आत्मा को ध्यान करो ॥३॥

'आत्मानमेव लोकमुपासीत ।'

(बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ४ श्रु० १५)

प्रकाशमन आत्मा की उपासना करे ॥१५॥

'मनो ब्रह्मेत्युपासीत ,'

(छा० उ० अ० ३ खं १८ श्रु० १)

मनो ब्रह्म की उपासना करे ॥१॥ इस श्रुतियों से विहित परब्रह्म के ध्यान का विधान व्यर्थ हो जायेगा। यह यदि कहो कि श्रुति से विधान कर के ही यहाँ पर उपास्य का निषेध किया गया है तो यह कहना अत्यन्त अन्याय है। क्योंकि महाभारत में लिखा है—

'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।'

(महाभा० वनपर्व० अ० श्लो० ४९)

कीचड़ को धोने की अपेक्षा तो उसे दूर से न छूना ही अच्छा है ॥४८॥ इस से प्रस्तुत श्रुति में परब्रह्म नारायण नारायण के जगद्वैरूप्य का प्रतिपादन किया गया है यही परम वैदिक सिद्धान्त का अर्थ है ॥४॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस परब्रह्म नारायण को (मनसा) मन अन्तःकरण के द्वारा (न) नहीं (मनुते) साकल्यरूपसे समझ सकता है (येन) जिस नारायणसे प्रेरित (मनः) मन (मतम्) मनुष्य का जाना हुआ हो जाता है (आहुः) ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं (त्वम्) तुम (तत्) उसको (एव) निश्चय करके (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण (विद्धि) जानो (यत्) जो (इदम्) इस जड चेतन जगत् को (उपासते) विषयासक्त लोग उपासना करते हैं (इदम्) यह परब्रह्म (न) नहीं है ॥५॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'जिसकी शक्ति और प्रेरणा से मन अपने ज्ञेय पदार्थों को जानता है वह कौन है' इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि जिस परब्रह्म नारायण को मन आदिक अन्तःकरण के द्वारा नहीं साकल्यरूप से समझ सकता है। जिस नारायण से प्रेरित मन मनुष्य का जाना हुआ हो जाता है ऐसा भगवदुपासक लोग कहते हैं। तुम उसको ही निश्चय करके परब्रह्म नारायण जानो। जो इस स्थावर जंगम पदार्थों को विषयासक्त अज्ञानी उपासना करते हैं वह परब्रह्म नारायण नहीं है। यहाँ पर उपास्य परब्रह्म नारायण का प्रतिषेध नहीं किया किया गया है। बल्कि नारायण का जगत् से वैरूप्य प्रतिपादन किया गया है। मन के विषय में बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा
धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव ॥'

(बृ० उ० अ० ब्रा० ५ श्रु० ३

काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, बुद्धि ये सब मन ही हैं ॥३॥ इससे सिद्ध हो गया कि मन से ही यहाँ पर बुद्धि का भी ग्रहण होता है ॥५॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

अन्वयार्थ (यत्) जिस परब्रह्म नारायण को कोई भी (चक्षुषा) प्राकृत नेत्र के द्वारा (न) नहीं (पश्यति) देख सकता है बल्कि (येन) जिस नारायण से प्रेरित (चक्षूंषि) नेत्र अपने विषयों को (पश्यन्ति) देखते हैं (त्वम्) तुम (तत्) उसको (एव) निश्चय करके (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण (विद्धि) जान लो (यत्)

जो (इदम्) इस स्थावर जंगम जगत् को (उपासते) विषयासक्त लोग उपासना करते हैं (इदम्) यह परब्रह्म नारायण (न) नहीं है ॥६॥

विशेषार्थ इस श्रुति में 'जिसकी प्रेरणा और शक्ति से नेत्र शुक्ल, पीत आदिक रूपों को देखता है वह कौन है' इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि जिस परब्रह्म नारायण को कोई भी प्राकृत नेत्र से नहीं देख सकता है। जिस नारायण से प्रेरित नेत्र अपने विषयों के देखते हैं। तुम उसको निश्चय करके परब्रह्म नारायण जानो। जो इस जड चेतन जगत् को विषयी लोग पास में जाकर व्यवहार द्वारा सेवन करते हैं वह परब्रह्म नारायण नहीं है। इस श्रुति में उपास्य परब्रह्म का जरासा भी निषेध नहीं किया गया है बल्कि परब्रह्म नारायण का जगद्वैरूप्य बार-बार कहा गया है ॥६॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस परब्रह्म नारायण को कोई भी (श्रोत्रेण) प्राकृत कान से (न) नहीं (शृणोति) सुन सकता है बल्कि (येन) जिसनारायण से प्रेरित (इदम्) यह (श्रोत्रम्) कर्ण इन्द्रिय (श्रुतम्) सुनी हुई है (त्वम्) तुम (तत्) उसको (एव) निश्चय करके (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण (विद्धि) जानो (यत्) जो (इदम्) इस चराचर संसार को (उपासते) विषयासक्त लोग उपासना करते हैं (इदम्) यह परब्रह्म नारायण (न) नहीं है ॥७॥

विशेषार्थ – इस श्रुति में 'जिसकी शक्ति और प्रेरणा से कान शब्दों को सुनता है वह कौन हैं' इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि जिस परब्रह्म नारायण को कोई प्राकृत कान से नही सुन सकता है। बल्कि जिस नारायण से प्रेरित यह कान शब्दों को सुनता है। तुम उसको निश्चय कर के परब्रह्म नारायण जानो। जो इस स्थावर जंगम जगत् को विषयासक्त लोग उपासना करते हैं। यह परब्रह्म नारायण नहीं है। इन श्रुति में उपास्य परब्रह्म नारायण का प्रतिषेध नहीं किया गया है। बल्कि पुनः पुनः जगद्वैरूप्य को ही प्रतिपादन किया गया है ॥ ॥७॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

॥ इति प्रथमखण्डः ॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस परब्रह्म नारायण को कोई भी (प्राणेन) प्राण

के द्वारा (न) नहीं (प्राणिति) चेष्टायुक्त कर सकता है बल्कि (येन) जिस नारायण से प्रेरित (प्राणः) यह प्राण (प्रणीयते) अपने विषय की ओर चेष्टायुक्त होकर जाता है (त्वम्) तुम (तत्) उसको (एव) निश्चय करके (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण (विद्धि) जानो (यत्) जो (इदम्) इस स्थावर जंगम जगत् (उपासते) विषयासक्त लोग उपासना करते हैं (इदम्) यह परब्रह्म नारायण (न) नहीं है ॥८॥

विशेषार्थ - इस श्रुति में 'जिसकी प्रेरणा से प्राण विचरता है वह कौन है' इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि जिस परब्रह्म नारायण को कोई भी प्राण के द्वारा चेष्टायुक्त नहीं कर सकता है। जिस नारायण से प्रेरित प्राण अपने विषय के तरफ चेष्टायुक्त हो जाता है। तुम उसको निश्चय करके परब्रह्म नारायण जानो। जो इस स्थावर-जंगम जंगत् को विषयासक्त लोग उपासना करते हैं। यह परब्रह्म नारायण नहीं है। यहाँ पर परब्रह्म के उपास्यत्व का प्रतिषेध नहीं किया गया है। बल्कि परब्रह्म नारायण के जगद्वैरूप्य का बार-बार प्रतिपादन किया गया है ऐसा अर्थ मानने से ही ध्यान का विधान सार्थक होता है। यहाँ पर केनोपनिषद् का प्रथम खण्ड समाप्त हो गया ॥८॥

अथ द्वितीयखण्डः ॥

यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि
नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु
मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

अन्वयार्थ —(यदि) जो (त्वम्) तुम (इति) ऐसा (मन्यसे) मानते हो कि (सुवेद) परब्रह्म नारायण के स्वरूप को भली भाँति मैं जान गया हूँ (अपि) तो (नूनम्) निश्चय करके (ब्रह्मणः) परब्रह्म नारायण के (रूपम्) स्वरूप को और कल्याणैकतान दिव्य गुण को (दहरम्) थोड़ासा (एव) ही निश्चय करके (वेत्थ) तुम जानते हो (अथ) इसीलिये (अस्य) इस परब्रह्म नारायण का (यत्) जो स्वरूप (त्वम्) अंश तुम हो अथवा तुम्हारे में जो ब्रह्म का स्वरूप है और (अस्य) इस परब्रह्म नारायण का (यत्) जो स्वरूप (देवेषु) देवताओं में है यह [मीमांस्यम्] विचार करने योग्य है (एव) निश्चय करके (नु) अब (मन्ये) मैं मानता हूँ कि (ते) तुम्हारे द्वारा (विदितम्) परब्रह्म जाना हुआ है ॥१॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में आचार्य अपने शिष्य से कहते हैं कि हमारे द्वारा बतलाते हुए परब्रह्म तत्त्व को सुनकर हे शिष्य यदि तू ऐसा मानता है कि मैं परब्रह्म नारायण के स्वरूप को भली भाँति जान गया हूँ तो यह निश्चित है कि तूने अनन्त ब्रह्म के स्वरूप को और अनन्तगुणराशि को बहुत थोड़ा जाना है। जो परब्रह्म नारायण का स्वरूप तुम्हारे में और देवताओं में है वह भी विचार करने योग्य है। क्योंकि परब्रह्म के रूप, गुण और वैभव अनन्त हैं। अतएव तेरा समझा हुआ परब्रह्म नारायण तेरे लिए पुनः विचार करने योग्य है। निश्चय करके ऐसा मैं मानता हूँ। इस श्रुति में 'रूपम्' पद से परब्रह्म के स्वरूप का निर्देश किया गया है। इससे यहाँ पर प्रश्न होता है कि परब्रह्म नारायण का रूप कैसा है। इसका उत्तर ऋग्वेद में लिखा है—

'रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥'

(ऋग्वे० मं० ३ अ० ४ सूक्त० ५३ मं० ८)

परब्रह्म नारायण जिस जिस रूप की इच्छा करता है उस उस रूप का हो जाता है अनेक रूप ग्रहण की सामर्थ्य को करता हुआ अपने शरीर का नानाविध करता है। और अपने स्तुति लक्षण वाले वाक्यों से आह्वान किया हुआ भक्तसमर्पित पेय रस को निरन्तर पानकर्ता सत्यवान् जिस कारण से परमव्योम लोक से एक ही मुहूर्त में अनेक देशी यज्ञों में तीनों सवनों में आ जाता है ॥८॥ इस मंत्र का अर्थ निरुक्त में लिखा है—

'यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति रूपं रूपं मघवा बोभवीतीत्यपि निगमो भवति।'

(निरु० दैवतकां० अ० १० खं० १७)

परब्रह्म नारायण देव जिस जिस रूप की इच्छा करता है उस उस रूप का हो जाता है।

'रूपं रूपं मघवा बोभवीति'

इस मंत्र का यही नियम होता है ॥१७॥ इससे सिद्ध होता है कि परब्रह्म नारायण जिस जिस रूप की इच्छा करता है उस उस रूप को स्वेच्छा से बना लेता है ॥१॥

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

अन्वयार्थ—(अहम्) मैं (सुवेद) परब्रह्म नारायण को भली भाँति

जानता हूँ (इति) ऐसा (न)नहीं (मन्ये) मानता हूँ (च)और (नो) नहीं (इति) ऐसा मानता हूँ कि (न) नहीं वेद परब्रह्म नारायण को मैं जानता हूँ (नः) हम सबों के मध्य में (यः) जो कोई भी (तत्) उस परब्रह्म नारायण को (वेद) जानता है (नो) नहीं (तत्) उस परब्रह्म को (वेद) वह जानता है (च) और (न) नहीं (वेद) परब्रह्म को जानता हूँ (इति) ऐसा जो कहता है (वेद) वहीं परब्रह्म नारायण को जानता है ॥२॥

विशेषार्थ—मैं परब्रह्म नारायण को अच्छी तरह जानता हूँ ऐसा मैं नहीं मानता हूँ । और न तो यही मैं मानता हूँ कि उसे नहीं जानता हूँ। क्योंकि आचार्य की कृपा से मैं जानता भी हूँ। हम सबों के मध्य में जो कोई भी परब्रह्म नारायण को अच्छी तरह से मैं जानता हूँ ऐसा कहता है। वह परिच्छिन्न ब्रह्मज्ञान होने से परब्रह्म नारायण को नहीं जानता है और जो कोई परब्रह्म नारायण को अपरिच्छिन्न होने से मैं नहीं जानता हूँ ऐसा कहता है वही परब्रह्म नारायण को जानता है ॥२॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस पुरुष का (अमतम्) परब्रह्म नारायण को मैंने मनन कर लिया ऐसा विचार नहीं है (तस्य) उस महापुरुष का (मतम्) परब्रह्म नारायण का मनन—विचार हो गया है और (यस्य) जिस पुरुष का (मतम्) परब्रह्म नारायण को मैंने मनन कर लिया ऐसा विचार हो गया (सः) वह पुरुष (न) नहीं (वेद) परब्रह्म नारायण को जानता है (विजानताम्) हम परब्रह्म को सम्यक् साक्षात्कार कर लिये है ऐसा सम्यक् जानने के लिए अभिमान रखनेवालों के (अविज्ञातम्)वह परब्रह्म नारायण बिना जाना हुआ है (अविजानताम्) हम परब्रह्म को सम्यक् साक्षात्कार नहीं किये हैं ऐसा सम्यक् जानने के अभिमान से रहित महापुरुषों का (विज्ञातम्) वह परब्रह्म नारायण सम्यक् जाना हुआ अर्थात् साक्षात्कार किया हुआ है ॥३॥

विशेषार्थ केनोपनिषद् के द्वितीय खण्ड की दूसरी श्रुति में परब्रह्म नारायण को साकल्येन श्रवण के अगोचर प्रतिपादन कर के अब परब्रह्म को मनन और साक्षात्कार के अगोचर प्रतिपादन श्रुति करती है कि जिसने यह निश्चय कर लिया है कि मैं परब्रह्म नारायण को मनन या विचार नहीं किया हूँ। क्योंकि उस परब्रह्म का अनन्त ज्ञान है। ऐसा विचारवाला ही पुरुष उस परब्रह्म नारायण को मनन किया है। और जो यह समझता है कि मैंने परब्रह्म नारायण को यथार्थ

मनन कर लिया है। वह परब्रह्म नारायण के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता है। हम परब्रह्म नारायण को अच्छी प्रकार से साक्षात्कार किये हैं। ऐसा जानने के अभिमान रखनेवालों के लिये उसने परब्रह्म नारायण को नहीं जाना है या साक्षात्कार किया है ऐसा समझना चाहिये। और हमने अनन्त परब्रह्म नारायण को साक्षात्कार नहीं किया है। ऐसा अभिमानरहित महापुरुषों के ही वह परब्रह्म साक्षात्कार किया हुआ है। परब्रह्म के विषय में कुदृष्टि नहीं करनी चाहिये। क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है—

'या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रोक्तास्तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥'

(मनु० अ० १२ श्लो० ६४)

जो वेदबाह्य स्मृतियाँ हैं तथा और भी जो कोई कुविचार हैं वे सभी निष्फल कहे गये हैं और सब के सब अज्ञाननिष्ठ ही माने गये हैं ॥६५॥ वेदार्थसंग्रह-कर्ता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में 'केनोपनिषद्' के द्वितीयखण्ड की तीसरी श्रुति को उद्धृत किया है ॥३॥

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(प्रतिबोधविदितम्) अपने योग्य अपरोक्ष ज्ञान से जाना हुआ या विदित (मतम्) अपनी ब्रह्मविद्या से योग्यता अनुसार पुरुषों से सुना हुआ और मनन किया हुआ (ही) निश्चय करके (अमृतत्वम्) मुक्ति को (विन्दते) मनुष्य प्राप्त करता है (आत्मना) धृतिरूप आत्मा से (वीर्यम्) समाहित-मनस्त्वलक्षण बल को (विन्दते) प्राप्त करता है और (विद्यया) उपासनारूप भक्ति से (अमृतम्) परब्रह्म नारायण को विन्दते प्राप्त करता है अर्थात् परब्रह्म नारायण को साक्षात् कर लेता है ॥४॥

विशेषार्थ-- भक्त पुरुष अपने योग्य अपरोक्ष ज्ञान से विदित अथवा सदाचार्य के सदुपदेश करके विदित, अपनी ब्रह्मविद्या से अपनी योग्यता के अनुसार सद्गुरु से सुना हुआ और मनन किया हुआ परब्रह्म प्राप्तिरूप मुक्ति को पाता है। निश्चय करके धृतिरूप आत्मा से समाहितमनस्त्वलक्षण बल को उपासक प्राप्त करता है। क्योंकि मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।'

(मुं० उ० मुण्ड० ३ खं० २ श्रु० ४)

यह आत्मा बलहीन पुरुष को प्राप्त होने योग्य नहीं है॥४॥ उपासक पुरुष उपासना-रूप भक्ति से परब्रह्म नारायण को साक्षात्कार कर लेता है । क्योंकि लिखा है—

'भक्त्या च धृत्या च समाहितात्मा ज्ञानस्वरूपं परिपश्यतीह ।'

(स्मृ०)

भक्त धृति से समाहितात्मा होकर यहाँ पर उपासनात्मिका भक्ति से ज्ञानस्वरूप परब्रह्म नारायण को अच्छी प्रकार से देख लेता है ॥४॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ ५ ॥

॥ इति द्वितीयखण्डः ॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि (इह) इस ज्ञानयोग्य मनुष्य शरीर में (अवेदीत्) परब्रह्म नारायण को जान लिया (अथ) तब तो (सत्यम्) पूर्वोक्त अमृत परब्रह्म प्राप्तिरूप फल सत्य (अस्ति) है और (चेत्) यदि (इह) इस शरीर के रहते रहते (न) नहीं (अवेदीत्) उस परब्रह्म को जान लिया तो (महती) बड़ी भारी (विनष्टिः) विशेष हानि है (धीराः) ब्रह्मप्राप्ति-विनष्टिविवेकी बुद्धिमान पुरुष (भूतेषु भूतेषु) समस्त प्राणियों में स्थित परब्रह्म नारायण को (विचिन्त्य) अच्छी तरह से स्मरण कर (अस्मात्) इस (लोकात्) लोक से (प्रेत्य) प्रयाण कर के (अमृताः) अमर परब्रह्म नारायण को (भवन्ति) प्राप्त हो जाते हैं ॥५॥

विशेषार्थ— यदि मनुष्य ने अत्यन्त दुर्लभ इस मानव-शरीर में जन्म पाकर उस परब्रह्म नारायण को जान लिया तब तो भगवत्साक्षात्काररूप फल को पाकर उसका मानव-जन्म सुफल—सार्थक है । और यदि इस लोक में मनुष्य देह को पाकर भी उस परब्रह्म को नही जाना तब इस की बड़ी हानि है कि जिसके कारण यह बारम्बार जन्म-मरण आदि के दुःख को प्राप्त होता है । इस कारण से परब्रह्मप्राप्ति-विनष्टिविवेकी पुरुष सकल प्राणियों में स्थित परब्रह्म नारायण को साक्षात्कार करके इस लोक से सदा के लिये जन्म मृत्यु के चक्र से छूटकर अमृत परब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं । यहाँ पर 'केनोपनिषद्' का दूसरा खण्ड समाप्त हो गया ॥५॥

अथ तृतीयखण्डः

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह
ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त
त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽ-
स्माकमेवायं महिमेति ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(ब्रह्म) परब्रह्म नारायण ने (ह) निश्चित है कि (देवेभ्यः) देवताओं में प्रवेश कर देवताओं के लिए (विजिग्ये) असुरों को विजय किया (अथ) विजय होने के बाद (ह) निश्चय कर के (तस्य) उस देवाविष्ट (ब्रह्मणः) परब्रह्म नारायण की (विजये) विजय में (देवाः) इन्द्रादिक देवताओं ने (अमहीयन्त) पूजा या गौरव अथवा अपने में महत्त्व का अभिमान कर लिया (ते) वे इन्द्रादिक देवता (इति) ऐसा (ऐक्षन्त) समझने लगे कि (अयम्) यह (विजयः) विजय (अस्माकम्) हम सबों का (एव) निश्चय कर के है और (अयम्) यह (महिमा) प्रभाव (अस्माकम्) हम सबों का (एव) निश्चय कर के है ॥१॥

विशेषार्थ—अत्यद्भुत अनन्त कल्याण गुणराशि परब्रह्म नारायण को समझाने के लिए यक्षावतार की आख्यायिका को स्वतः श्रुति कहती है कि एक समय में देवताओं ने परब्रह्म नारायण के प्रभाव से सब असुरों को जीत लिया। इस प्रकार परब्रह्म के प्रभाव से विजय होने पर देवता नरायण को भूल गये और अभिमान से कहने लगे कि हमारा ही विजय हुआ है। हमारा ही यश है। हम ही महाभाग हैं। महायुद्ध विद्या में कुशल हैं। हमारे सामने असुर क्या हैं। हमारे सामने ब्रह्माण्ड में कोई नहीं है। इस श्रुति में 'ब्रह्म' पद आया है इससे यह प्रश्न होता है कि ब्रह्म किसको कहते हैं। इसका उत्तर यह लिखा है—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म ॥

(तैत्तिरीयोप० भृगुव० ३ अनुवा० १ श्रु० १)

जिससे ये समस्त भूत उत्पन्न होते हैं तथा जिस करके जीवित रहते हैं और जिससे प्रलय होते हैं तथा जिस के द्वारा मुक्त हो जाते हैं उसी को विशेषरूप से जानने की इच्छा करो वही ब्रह्म है ॥१॥

'जन्माद्यस्य यतः ।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० १ सू० २)

इस ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त क्षेत्रज्ञमिश्र जगत् के जिससे उत्पत्ति, पालन और संहार आदिक होते हैं वही ब्रह्म है ।।२।। और भी लिखा है—

'न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।'

(कठ० उ० अध्या० २ व० २ श्रु० ११)

संपूर्ण लोक से विलक्षण परमात्मा लोक के दुःख से लिप्त नहीं होता है ।।११।।

'जरां मृत्युमत्येति ।'

(बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ५ श्रु० १)

नारायण जरा और मृत्यु को पार किये हुए है ।।१।।

'विजरो विमृत्युः

(छा० उ० अ० ८ खं० ७ श्रु० १)

वह ब्रह्म जरा और मृत्यु से रहित है ।।१।।

'सत्यकामः सत्यसंकल्पः ।'

(छा० उ० अ० ८ खं० ७ श्रु० १)

वह सत्यकाम और सत्य संकल्प है ।।१।।

'एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञः ।'

(माण्डू० उ० श्रु० ६)

यह सर्वेश्वर है और यह सर्वज्ञ है ।।६।।

'साधु कर्म कारयति ।'

(कौषीत० उ० अध्या० ३ श्रु० ८)

शुभकर्म कराता है ।।८।।

'अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।'

(श्वे० उ० अ० ४ श्रु० ६)

दूसरा कर्मफलको नहीं भोगता हुआ सर्वदा प्रकाशस्वरूप देखता है ।।६।। इन श्रुति-निकरों से प्रतिपादित परब्रह्म नारायण हैं । इस श्रुति में स्पष्ट देवासुर-संग्राम का वर्णन तथा परब्रह्म के प्रभाव से देवताओं का विजय प्रतिपादन किया गया है ।।१।।

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव ।
तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ।।२।।

अन्वयार्थ— (तत्) उस परब्रह्म नारायण ने (ह) निश्चय करके (एषाम्) इन देवताओं के अभिमान को (विजज्ञौ) अच्छी तरह से जान लिया और कृपा-

पूर्वक उनका अभिमान नष्ट करने के लिये वह (तेभ्यः) उन देवताओं के निमित्त (ह) निश्चय करके (प्रादुर्बभूव) साकाररूप से प्रकट हो गया (तत्) उस परब्रह्म को यक्षरूप से प्रकट हुआ देखकर भी (इदम्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्षरूप (किम्) कौन है (इति) इस बात को देवता सब (न) नहीं (व्यजानन्त, जान सके ॥२॥

विशेषार्थ—देवताओं के मिथ्याभिमान को करुणावरुणालय भगवान् समझ गये। तब भक्तकल्याणकारी भगवान् देवताओं पर कृपा कर के उनका दर्प चूर्ण करने के लिये देवताओं के सामने दिव्य साकार यक्षरूप से प्रकट हो गये। देवता आश्चर्यचकित होकर उस अत्यन्त अद्भुत यक्ष-रूप को देखने और विचार करने लगे कि यह दिव्य यक्ष कौन है ? परन्तु वे देवता उस भगवान् को पहचान नहीं सके। इस श्रुति में यक्षावतार का वर्णन किया गया है। और अवतार के विषय में लिखा है—

'अजायमानो बहुधा विजायते ।'

(यजुर्वेद अ. ३१ श्रु. १६)

वह नारायण न जन्मता हुआ भी बहुत प्रकार से प्रकट होता है ॥१६॥

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।'

(ऋग्वे. मं. ६ अ. ४ सूक्त. ४७ मं. १८)

परमात्मा अपनी इच्छा से अनेक रूप धारण करता है ॥१८॥

'संभवाम्यात्ममायया ।'

(गीता. अ. ४ श्लो. ६)

मैं अपनी इच्छा से प्रकट होता हूँ ॥६॥

'संभवामि युगे युगे ।'

(गीता अ. ४ श्लो. ८)

मैं युग युग में प्रकट होता हूँ ॥८॥ ये श्रुति स्मृति वचन अवतार का प्रतिपादन करते हैं ॥२॥

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि । किमिदं यक्षमिति तथेति ॥३॥

अन्वयार्थ—(ते) वे इन्द्रादिक देवता (अग्निम्) अग्निदेव से (इति) इस प्रकार (अब्रुवन्) कहे कि (जातवेदः) हे स्वतःसिद्धज्ञानवान् अग्निदेव आप पास में जाकर (एतत्) इस बात को (विजानीहि) अच्छी तरह से जानिये

कि (इदम्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्ष (किम्) कौन है (इति) ऐसा सुनकर अग्निदेव ने कहा (तथा) बहुत अच्छा वैसा ही होगा ।।३।।

विशेषार्थ—उन इन्द्रादिक सब देवताओं ने मिलकर अग्नि से कहे कि हे स्वतःसिद्धज्ञानवान् अग्निदेव तुम इस दिव्य यक्ष के समीप जाकर निश्चय करो कि यह कौन है हमारे अनुकूल है या प्रतिकूल है। अग्नि देवता को अपनी बुद्धि तथा शक्ति का गर्व था अतः अग्निदेव ने कहा—अच्छी बात है अभी पता लगाता हूँ। देवता के विषय में लिखा है—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति ।'

(निरु० दैवतकां० अ० ७ खं० ५)

यह तीन देवता हैं अग्निदेवता पृथ्वीस्थान में, वायुदेवता और इन्द्रदेवता अन्तरिक्ष स्थान में और सूर्यदेवता द्युस्थान में हैं। इन देवताओं के महाभाग्य होने से एक एक देवता के बहुत से नाम होते हैं ।।५।। इस प्रस्तुत श्रुति में देवताओं का परस्पर संभाषण प्रतिपादन किया गया है ।।३।'

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति । अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति।।४।।

अन्वयार्थ—अग्निदेवता (तत्) उस दिव्य यक्ष के (अभ्यद्रवत्) समीप में दौड़कर गया (तम्) उस अग्निदेव से (अभ्यवदत्) वह दिव्य यक्ष कहता हुआ कि (कः) कौन (असि) तुम हो (इति) ऐसा सुनकर अग्निदेव ने (अब्रवीत्) कहा कि (अहम्) मैं (वै) निश्चय करके प्रसिद्ध (अग्नि:) अग्निदेव (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा और यह कहा कि (अहम्) मैं (वै) निश्चय करके (जातवेदाः) स्वतःसिद्धज्ञानवान् जातवेदा नामवाला (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा प्रसिद्ध है ।।४।।

विशेषार्थ—यह अग्निदेवता इन्द्रादि देवताओं की आज्ञा को मान कर दिव्य यक्ष के समीप में दौड़कर गया। तब उन्हें अपने समीप खड़ा देखकर दिव्य यक्ष ने पूछा—आप कौन हैं ? इस प्रश्न को सुनकर अग्नि देवता ने अभिमान के साथ उत्तर दिया कि मैं प्रसिद्ध अग्निदेव हूँ मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम जातवेदा है। इस श्रुति से यह सिद्ध हो गया कि गर्व से अग्निदेव यक्ष भगवान् के समीप गया। परन्तु वहाँ जाने पर पता लगाना तो दूर रहा अब मुख से वचन भी नहीं निकलता है। ऐसी दशा देखकर अकारणकरुणावरुणालय

अपने ही पहले पूछकर अग्नि से बोलवाया है । तो भी अज्ञ कर्मविवश अग्नि ने तमक कर ही उत्तर दिया है । यही तो जीवों का अज्ञान है ॥४॥

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमिति ।
अपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

अन्वयार्थ - (तस्मिन्) उस उक्त नामवाले (त्वयि) तुझ अग्नि में (किम्) क्या (वीर्यम्) सामर्थ्य है (इति) यह बता दो तब अग्नि ने कहा कि (अपि) यदि मैं चाहूँ तो (पृथिव्याम्)पृथ्वी पर (इदम्) यह (यत्) जो कुछ भी है (इदम्) इस (सर्वम्) सब को (दहेयम्) जला सकता हूँ (इति) ऐसा प्रसिद्ध है ॥५॥

विशेषार्थ— अग्नि की गर्वोक्ति सुनकर श्रीयक्ष ने अनजान की भाँति कहा कि सुप्रसिद्ध गुण और नामवाले आप में क्या शक्ति है आप क्या कर सकते हैं । ऐसा सुनकर अग्नि ने पुनः सगर्व ही उत्तर दिया—मैं क्या कर सकता हूँ इसे आप जानना चाहते हैं तो सुनो मैं चाहूँ तो इस सारे भूमण्डल में जो कुछ भी देखने में आ रहा है सबको जलाकर अभी राख का ढेर कर दूँ ॥५॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति ।
तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुम् ॥
स तत एव निववृते ।
नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥६॥

अन्वयार्थ - (एतत्) इस एक तृण को (दह) जला दो (इति) ऐसा कहकर (तस्मै) उस अग्निदेव के लिए सामने (तृणम्) एक तृण को (निदधौ) दिव्य यक्ष ने रख दिया अग्निदेव (तत्) उस तृण को (उपप्रेयाय) समीप में शीघ्रता से गया परन्तु (सर्वजवेन) सकल उत्साह से युक्त पूर्ण अपने बल कर के (तत्) उस तृण को (दग्धुम्) जलाने के लिये (न) नहीं (शशाक) समर्थ हुआ तब (सः) वह अग्निदेव (ततः) लज्जित होकर उस दिव्य यक्ष के समीप से (निववृते) लौट आया (एव) और निश्चय करके देवताओं से कहा कि (एतत्) इस दिव्य यक्ष को (विज्ञातुम्) जानने के लिये (न) नहीं (अशकम्) मैं समर्थ हो सका कि वस्तुतः (इति) ऐसा (एतत्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्ष (यत्) जो कौन है ॥६॥

विशेषार्थ – अग्निदेव की गर्वोक्ति सुनकर दिव्य यक्ष ने अग्नि के सामने एक सूखा हुआ तिनका रख दिया और कहा कि इस तिनके को जलाओ तब उस अग्नि ने बड़े वेग के साथ सब प्रकार के यत्न कर के उस तिनके को जलाना चाहा परन्तु उसको जला न सका। क्योंकि अग्नि में जो तेज था वह तो परब्रह्म का ही था। यह श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।'

(गी० अ० १५ श्लो० १२)

जो तेज अग्नि में है उस तेज को तुम मेरा ही जानो ॥१२॥ अग्निदेव ने इस बात को न समझ कर गर्व किया था। पर जब भगवान् ने अपने तेज को रोक लिया तब सूखा तिनका नहीं जला सका। अग्निदेव लज्जित हतप्रतिज्ञ हतप्रभ भयभीत होकर चुपचाप देवताओं के पास लौट आया और बोला कि मैं तो भली भाँति नहीं जान सकता कि यह दिव्य यक्ष कौन है ॥६॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि। किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥७॥

अन्वयार्थ – (अथ) अग्नि देवता की परीक्षा के अनन्तर (वायुम्) वायु-देवता से (इति) इस प्रकार (अब्रुवन्) इन्द्रादिक देवताओं ने कहा कि (वायो) हे वायुदेव आप पास में जाकर (एतत्) इस बात को (विजानीहि) अच्छी तरह से जानिये कि (एतत्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्ष (किम्) कौन है (इति) ऐसा सुनकर वायुदेव ने कहा (तथा) बहुत अच्छा वैसा ही होगा ॥७॥

विशेषार्थ– -अग्निदेवता के असफल होकर लौट आने पर देवताओं ने वायुदेवता से कहा कि—

'नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।'

(तैत्ति० उ० व० १ अनु० १ श्रु० १)

हे वायुदेव तेरे लिये नमस्कार है तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है तुझ को ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा ॥१॥ हे अप्रतिमशक्ति वायुदेव आप जाकर इस दिव्य यक्ष का पूरा पता लगायें कि यह कौन है और यहाँ इसका क्या प्रयोजन है। वायुदेव ने सगर्व कहा—अच्छी बात है अभी पता लगाता हूँ ॥७॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा। अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

अन्वयार्थ—वायुदेवता (तत्) उस दिव्य यक्ष के (अभ्यद्रवत्) समीप

में दौड़कर गया (तम्) उस वायुदेव से (अभ्यवदत्) उस दिव्य यक्ष ने कहा कि (कः) कौन (असि) तुम हो (इति) ऐसा सुनकर (अब्रवीत्) वायुदेव ने कहा कि (अहम्) मैं (वै) निश्चय करके प्रसिद्ध (वायुः) वायुदेव (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा और यह कहा कि (अहम्) मैं (वै) निश्चय कर के (मातरिश्वा) आकाश में विचरनेवाला मातरिश्वा नामवाला (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा प्रसिद्ध है ॥८॥

विशेषार्थ—वह वायुदेवता इन्द्रादि देवताओं के आदेश को पाकर दिव्ययक्ष के समीप में दौड़कर गया। तब उन्हें अपने समीप खड़ा देखकर दिव्ययक्ष ने पूछा—आप कौन हैं इस प्रश्न को सुनकर वायुदेवता ने अभिमान के साथ उत्तर दिया कि मैं प्रसिद्ध वायुदेव हूँ। मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम मातरिश्वा है। इस श्रुति से यह सिद्ध हो गया कि गर्व से वायुदेव दिव्य यक्ष भगवान् के समीप गया। परन्तु वहाँ जाने पर पता लगाना तो दूर रहा अब मुख से वचन भी नहीं निकलता है। ऐसी दशा देखकर अकारणकरुणावरुणालय भगवान् ने अपने ही पहले पूछकर वायु से बुलवाया है। तो भी अज्ञजीव कर्मपरतंत्र वायु ने तमक कर ही उत्तर दिया है। यही तो जीव का अज्ञान है ॥ ८ ॥

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीयम् । यदिदं पृथिव्यामिति ॥९॥

अन्वयार्थ—(तस्मिन्) उस उक्त नामवाले (त्वयि) तुझ वायु में (किम्) क्या (वीर्यम्) सामर्थ्य है (इति) यह बता दो तब वायु ने कहा कि (अपि) यदि मैं चाहूँ तो (पृथिव्याम्) पृथ्वी पर (इदम्) यह (यत्) जो कुछ भी है (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (आददीयं) ग्रहण कर सकता हूँ (इति) ऐसा प्रसिद्ध है ॥९॥

विशेषार्थ—वायु की गर्वोक्ति सुनकर दिव्य यक्ष ने अनजान की भाँति कहा कि सुप्रसिद्ध गुण और नामवाले आप में क्या शक्ति है, आप क्या कर सकते है ? ऐसा सुनकर वायु ने पुनः सगर्व हो उत्तर दिया—मैं क्या कर सकता हूँ इसे आप जानना चाहते हैं तो सुनो मैं चाहूँ तो इस सारे भूमण्डल में जो कुछ भी देखने में आ रहा है उन सब को अपनी कोख में डालकर आकाश में चाहे तहाँ ऐसे चल सकता हूँ जैसे कोई पुरुष जरा से तिनके को मुख में डालकर इधर-उधर घूमता फिरता है ॥ ९ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति ।
तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुम् ॥
स तत एव निववृते ।
नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(एतत्) इस एक तृण को (आदत्स्व) उठा दो—उड़ा लो (इति) ऐसा कहकर (तस्मै) उस वायुदेव के लिये सामने (तृणम्) एक तृण को (निदधौ) दिव्य यक्ष ने रख दिया । वायुदेव (तत्) उस तृण के (उपप्रेयाय) समीप में शीघ्रता से गया परन्तु (सर्वजवेन) सकल उत्साह से युक्त पूर्ण अपने बल करके (तत्) उस एक तृण को (आदातुम्) उड़ाने के लिये (न) नहीं (शशाक) समर्थ हुआ तब (सः) वह वायुदेव (तत): लज्जित होकर इस दिव्य यक्ष के समीप से (निववृते) लौट आया (एव) और निश्चय करके देवताओं से कहा कि (एतत्) इस दिव्य यक्ष को (विज्ञातुम्) जानने के लिये (न) नहीं (अशकम्) मैं समर्थ हो सका कि वस्तुतः (इति) ऐसा (एतत्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्ष (यत्) जो कौन है ॥१०॥

विशेषार्थ—वायुदेव की गर्वोक्ति सुनकर दिव्य यक्ष ने वायु के सामने एक सूखा हुआ तिनका रख दिया और कहा कि इस तिनके को उड़ा दो। तब वह वायु बड़े वेग के साथ सब प्रकार के यत्न करके उस तिनके को उड़ाना चाहा परन्तु उसको उड़ा न सका। तब वह वायु लज्जित हतप्रतिज्ञ हतप्रभ भयभीत होकर चुपचाप देवताओं के पास लौट आया और बोला कि मैं तो भलिभाँति नहीं जान सका कि यह दिव्य यक्ष कौन है । यक्ष भगवान् का दर्शन और संभाषण होने पर भी वायु प्रभृति देवता उस भगवान् को नहीं जान सके। क्योंकि देवताओं में उस समय भक्ति नहीं थी गर्व था। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'भक्त्या मामभिजानाति ।'

(गी० अ० १८ श्लो० ५५)

भक्ति से मुझको अच्छी तरह जान लेता है ॥५५॥ इस सूक्ति के अनुसार बिना भक्ति के वायुदेव दिव्य यक्ष भगवान् को नहीं जान सका ॥१०॥

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति ।
तथेति तदभ्यद्रवत् तस्मात्तिरोदधे ॥११॥

अन्वयार्थ—(अथ) वायुदेवता की परीक्षा के अनन्तर (इन्द्रम्)

इन्द्र देवता से (इति) इस प्रकार (अब्रुवन्) देवता सब बोले कि (मघवन्) हे इन्द्रदेव आप पास में जाकर (एतत्) इस बात को (विजानीहि) अच्छी तरह से जानिये कि (एतत्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्ष (किम्) कौन है (इति) ऐसा सुनकर इन्द्रदेव ने कहा (तथा) बहुत अच्छा ऐसा ही होगा (तत्) इन्द्रदेव उस दिव्य यक्ष की ओर (अभ्यद्रवत्) बड़े जोर से दौड़कर गया परन्तु वह दिव्य यक्ष (तस्मात्) उस इन्द्र के सामने से (तिरोदधे) अन्तर्धान हो गया ॥११॥

विशेषार्थ—अग्निदेव और वायुदेव के असफल होकर लौट आने पर सब देवताओं ने दिव्य यक्ष का पता लगाने के लिये इन्द्रदेव को ही चुना। जिस इन्द्र के विषय में सामवेद में लिखा है।

'इन्द्रो दधीचो अस्थिभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः जघान नवतीर्नव ।'

(समावे० प्रपा० २ अ० २ खं० ७ मं० ५)

दूसरों से प्रतिकूलशब्द रहित इन्द्रदेव अथर्वण दधीच की पार्श्वशिरः सम्बन्धी हड्डियों से आठ सौ दश वृत्र असुरों को मारा ॥५॥

'अपाम्फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥'

(छन्द आर्चिक अ० २ खं० १० मं० ८)

हे इन्द्रदेव जलों के फेन से नमुचि असुर का शिर शरीर से पृथक् किया जब सब स्पर्धा करती हुई असुरसेना को जीता ॥८॥ इन प्रभावों से युक्त इन्द्रदेव से कहा कि हे महान् बलशाली इन्द्रदेव अब आप ही जाकर पूरा पता लगाइये कि यह दिव्य यक्ष कौन है। देवताओं के ऐसा कहने पर इन्द्रदेव ने कहा कि बहुत अच्छा और उसी समय बड़े अभिमान के साथ दिव्य यक्ष के पास जाने लगा। परन्तु इन्द्र को समीप आते देखते ही यक्ष भगवान् उसके बढ़े हुए अभिमान को दूर करने के लिए अन्तर्धान हो गये ॥११॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम । बहुशोभमानामु मां हैमवतीं त होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥१२॥

॥ इति तृतीयखण्डः ॥

अन्वयार्थ—(सः) वह इन्द्रदेव (तस्मिन) दिव्य यक्ष जहाँ पर अन्तर्धान हो गये थे उसी (आकाशे) आकाशप्रदेश में (एव) निश्चय करके (बहुशोभमानाम्) अतिशय सुन्दरी (हैमवतीम्) सुवर्ण के भूषणों से शोभित अथवा हिम-शीतल

स्वभाव वाले क्षीरसमुद्र से उत्पन्न होनेवाली क्षीरोदपुत्री (स्त्रियम्) स्तन केशवाली देवी (माम्) लक्ष्मी जी के (उ) निश्चय करके (आजगाम) समीप में पहुँच गया और (ताम्) उस लक्ष्मी देवी से (इति) ऐसा (ह) सादर (उवाच) कहा कि हे देवि (एतत्) यह (यक्षम्) दिव्य यक्ष (किम्) कौन था ॥१२॥

विशेषार्थ—दिव्य यक्ष के अन्तर्धान हो जाने पर वह इन्द्रदेव वहीं खड़ा रहा वहाँ से लौटा नहीं। इतने में ही उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष था ठीक उसी जगह अन्तरिक्ष स्थान में परमशोभायुक्त हिम-शीतल क्षीरसागर की तनया अथवा सुवर्ण की माला पहनी हुई श्रीलक्ष्मी देवी निश्चय करके प्रकट हो गई। लक्ष्मी देवी को देखकर उनके समीप में चला गया। इन्द्रदेव पर कृपा करके करुणामयी पुरुषकारस्वरूपा लक्ष्मी देवी प्रकट हुई थी। इन्द्र ने भक्तिपूर्वक लक्ष्मी देवी से कहा कि भगवती आप सर्वज्ञ परब्रह्म नारायण की प्रिया हैं। इससे आपको अवश्य ही सब बातों का पता है। कृपापूर्वक मुझे बतलाइये कि यह दिव्य यक्ष जो दर्शन देकर तुरन्त ही छिप गया। वह कौन है ? किस हेतु से यहाँ प्रकट हुआ था ? इस श्रुति में 'उ मां' ये दो अक्षर दो पद हैं। तिस में

'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः ।'

(श्वे० उ० अ० ४ श्रु० २)

इस श्रुति में निर्धारणार्थक एव के अर्थ में 'उ' का प्रयोग हुआ है। इससे यहाँ पर 'उ' का निश्चय करके यह अर्थ होता है और 'मां' का

'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया ।'

(अमरको० कां० १ वर्ग० १ श्लो० २८)

'इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा ॥'२९॥

लक्ष्मी १, पद्मालया २, पद्मा ३, कमला ४, श्री ५, हरिपिया ६ ॥२८॥ इन्दिरा ७, लोकमाता ८, मा ९, क्षीरोदतनया १०, रमा ११ ॥२९॥ ये ग्यारह नाम लक्ष्मीदेवी के हैं। इस कोश के प्रमाण से लक्ष्मी अर्थ होता है। 'हैमवती' का अर्थ यहाँ पर

'आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।'

(श्रीसूक्त मं० १४)

इस ऋग्वेदीय श्रीसूक्त के प्रमाण से हेमनिर्मित भूषणवाली अर्थात् सुवर्णमाला-धारिणी होता है। अथवा हिम-शीतलस्वभाववाले क्षीरोद की पुत्री यह अर्थ होता है। "स्त्री" का अर्थ यहाँ पर

'स्त्रियाम्'

(अष्टाध्या० अ० ४ पा० १ सू० ३)

इस सूत्र के महाभाष्य में लिखा है—

'स्तनकेशवती स्त्री स्यात् ।'

(महाभाष्य०)

स्तन और केशवाली स्त्री होती है । इस महाभाष्य के प्रमाण से स्तन-केशवाली होता है । इस श्रुति में 'मा' शब्द से पुरुषकारस्वरूपा लक्ष्मी देवी का ही प्रतिपादन किया गया है । क्योंकि भगवच्छास्त्र में लिखा है—

'मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पततामधः ।
लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ॥
ममापि च मतं ह्येतन्नान्यथा लक्षणं भवेत् ।
अहं मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपतिः स्वयम् ।
लक्ष्मीः पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्तियोगिनी ।
एतस्याश्च विशेषोऽयं निगमान्तेषु शब्द्यते ॥
आकिञ्चन्यैकशरणाः केचिद्भाग्याधिकाः पुनः ।
मत्पादाम्भोरुहद्वन्द्वं प्रपद्य प्रीतमानसाः ।
लक्ष्मीं पुरुषकारेण वृतवन्तो वरानन ।
मत्क्षमां प्राप्य सेनेश प्राप्यप्रापकमेव माम् ॥
लब्ध्वा कृतार्थाः प्राप्यन्ते मामेवानन्यमानसाः ।'

(भगवच्छास्त्र०)

संसार में अधःपतित जीवों को हमारी प्राप्ति के लिये महर्षि लोग लक्ष्मी को पुरुषकार कहते हैं । हमारा भी यही मत है इसका और लक्षण नहीं है । स्वयं लक्ष्मीपति मैं अपनी प्राप्ति के लिये उपाय हूँ । मेरी प्रिया लक्ष्मी पुरुषकार के द्वारा प्राप्ति करानेवाली है । इस लक्ष्मी का यह वैभव वेदान्त में कहा जाता है । अकिंचनता ही शरण है जिनको ऐसे अधिक भाग्यवाले लोग लक्ष्मी को पुरुषकार से स्वीकार करके हे सेनेश हमारी क्षमा के विषय हो और हम को प्राप्यप्रापक समझकर कृतार्थ हो अनन्यमानस भक्त हमको प्राप्त होते हैं । इन प्रमाणों से इस श्रुति में पुरुषकारस्वरूपा लक्ष्मी देवी का प्रतिपादन किया है । यहाँ पर 'केनोपनिषद्' का तृतीय खण्ड समाप्त हो गया ॥ १२ ॥

अथ चतुर्थखण्डः

ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति।
ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥

अन्वयार्थ—वह भगवती लक्ष्मी देवी (ह) स्पष्ट (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण हैं (इति) ऐसा (उवाच) इन्द्र से बोली और (वै) निश्चय करके (ब्रह्मणः) परब्रह्म नारायण के (इति) ऐसा (विजये) विजय में तुष्ट सब देवता (एतत्) इस (महीयध्वम्) महिमा को प्राप्त हुआ हो (ततः) लक्ष्मी देवी के इस उपदेश से (एव) निश्चय करके (ह) स्पष्ट (इति) ऐसा (विदाञ्चकार) इन्द्र ने जान लिया कि (ब्रह्म) अन्तर्धान यक्ष परब्रह्म नारायण हैं ॥ १ ॥

विशेषार्थ—इन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर हेममालिनी लक्ष्मी देवी ने कहा कि हे इन्द्र यह दिव्य यक्ष साक्षात् परब्रह्म नारायण हैं। तुम सबों के अभिमान को दूर करने के लिए यक्षावतार धारण किये थे। इस ब्रह्म की विजय से ही तुम लोग ऐसी महिमा पाये हो। तुम सबों का यश, बल, ऐश्वर्य आदिक उस नारायण की ही कृपा से है। सब शक्ति परब्रह्म की है। तुम सबों को अहंकार करना व्यर्थ है। ऐसा भगवती लक्ष्मी देवी के उपदेश से इन्द्र ने जाना कि यक्ष के रूप में स्वयं परब्रह्म ही प्रकट हुए थे और हम सबों का सुख इनकी ही कृपा से है। लक्ष्मी देवी ने उपदेश से इन्द्र को ब्रह्मज्ञान कराया है। श्रीवचनभूषण में स्पष्ट लिखा है—

'उभयोर्वशीकरणमुपदेशेन।'

(श्रीवच० सू० १४)

ईश्वर और जीव इन दोनों को उपदेश से लक्ष्मी देवी वश करती हैं ॥१४॥ इस श्रुति के विवेचन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि लक्ष्मी देवी के पुरुषकार नहीं होने से अग्निदेव और वायुदेव यक्ष भगवान् का दर्शन और संभाषण पाकर भी नहीं जान सके। और इन्द्रदेव यक्ष भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर भी लक्ष्मी देवी के पुरुषकार से जान लिये कि यह परब्रह्म नारायण हैं ॥१॥

तस्माद्वा एते अतितरामिवान्या-
न्देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते।
ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येन-
त्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति ॥२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस कारण से (अग्निः) अग्निदेव तथा (वायुः) वायुदेव और (इन्द्रः) इन्द्रदेव (ते) वे सब (हि) निश्चय करके (एनत्) इस परब्रह्म नारायण को (नेदिष्ठम्) समीप में (पस्पृशुः) दर्शन द्वारा स्पर्श किये (ते) वे अग्नि, वायु, इन्द्र (हि) निश्चय करके (एनत्) इस यक्षरूपधारी परब्रह्म को (प्रथमः) सब देवताओं से पहले (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण हैं (इति) ऐसा (विदाञ्चकार) जानते हुए (तस्मात्) उस कारण से (वै) निश्चय करके (एते) ये तीन (देवाः) अग्नि, वायु और इन्द्र देवता (अन्यान्) दूसरे वरुण, चन्द्रमा आदि (देवान्) देवताओं की अपेक्षा (अतितराम्) अत्यन्त श्रेष्ठ के (इव) समान हैं ॥२॥

विशेषार्थ—समस्त वरुण, रुद्र आदिक देवताओं से अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीन देवता विशेष श्रेष्ठ हैं। क्योंकि ये तीनों ने यक्षावतार परब्रह्म नारायण के समीप में जाकर दर्शन किये और वार्तालाप किये तथा सबसे पहले यक्ष परब्रह्म नारायण हैं ऐसा परम तत्त्व को समझे हैं ॥२॥

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्
देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श ।
स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

अन्वयार्थ—(हि) जिस कारण से (सः) वह इन्द्र (एनत्) इस परब्रह्म नारायण को (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप में स्थित (पस्पर्श) श्रीदेवी से सुनकर मन के द्वारा सब से पहले स्पर्श किया (हि) और निश्चय करके (सः) वह इन्द्रदेव (एनत्) इस दिव्य यक्ष को (प्रथमः) सब देवताओं से पहले (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण हैं (इति) ऐसा (विदाञ्चकार) भलीभाँति जानता हुआ (तस्मात्) उस कारण से (इन्द्रः) इन्द्रदेव (वै) निश्चय करके (अन्यान्) दूसरे अग्नि वायु (देवान्) देवताओं की अपेक्षा (अतितराम्) अत्यन्त श्रेष्ठ के (इव) समान हैं ॥३॥

विशेषार्थ—अग्नि, वायु और इन्द्र इन तीनों देवताओं में इन्द्रदेवता अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि वह इन्द्र दिव्य यक्ष के अन्तर्धान होने पर भी अग्नि और वायु के समान चुपचाप लौट नहीं आया। बल्कि पुरुषकारस्वरूपा लक्ष्मी देवी से विनम्र श्रद्धापूर्वक यक्ष को जानने के लिए प्रश्न किया और लक्ष्मी देवी से यथार्थ तत्त्व परब्रह्म नारायण को सब देवताओं से पहले जाना और मन के द्वारा भी अग्नि,

वायु, आदि देवताओं से पहले परब्रह्म नारायण का स्पर्श किया। तदनन्तर इन्द्र के बतलाने पर अग्नि, वायु आदिक देवता परब्रह्म नारायण को जाने हैं ॥३॥

**तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ ।
इतीन्न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥४॥**

अन्वयार्थ—(तस्य) उस परब्रह्म नारायण का (एषः) यह उपासनासंबन्धी (आदेश) साङ्केतिक उपदेश है कि (यत्) जो (एतत्) यह कपिलरूप (विद्युतः) बिजली के (व्यद्युतत्) चमकने के (आ) समान है (इति) इस प्रकार दर्शन देकर अन्तर्धान होता है (इत्) तथा एक दूसरा आदेश यह है कि जो (न्यमीमिषत्)नेत्रों के पलक मारने के (आ) समान है (इति) इस प्रकार के (अधिदैवतम्) यह देवताओं के समीप परब्रह्म नारायण का दर्शन है अथवा यह आधिदैविक उपदेश है ॥४॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में परब्रह्म नारायण के अधिदैवत उपास्य स्वरूप को प्रतिपादन किया गया है कि भगवान् उपासक की उत्कण्ठा को और भी तीव्रतम तथा उत्कट बनाने के लिए बिजली के चमकने के समान तथा नेत्रों के झपकने की भाँति अपने स्वरूप की क्षणिक झाँकी दिखला कर छिप जाया करते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'यथा सकृद्विद्युत्तम् ।'

(बृ० उ० अ० २ ब्रा० ३ श्रु० ६)

सर्वत्र एक साथ फैलनेवाली बिजली की चमक के समान ॥६॥ परब्रह्म नारायण है। पूर्वोक्त यक्ष की आख्यायिका में इसी प्रकार इन्द्र के सामने से यक्ष भगवान् के अन्तर्धान होने का वर्णन किया गया है। यह परब्रह्म नारायण का अधिदैवत उपदेश है ॥४॥

**अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च ।
मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥५॥**

अन्वयार्थ—(अथ) अधिदेवत उपास्य स्वरूप के उपदेश देने के अनन्तर (अध्यात्मम्) देह में उस परब्रह्म का उपदेश कहा जाता है कि (यत्) जो (एतत्) यह (मनः) मन (अनेन) इस अनिरुद्ध नामवाले हरि से प्रेरित

(गच्छति) अपनी वस्तु को प्राप्त करता है के (इव) समान ज्ञात होता है (च) और यह मन अपने विषय को ठीक नहीं ग्रहण करता है (च) और (अभीक्ष्णम्) निरन्तर नित्य (संकल्पः) संकल्प करनेवाला (एतत्) यह मन इस अनिरुद्ध नामवाले प्रभु से प्रेरित (उपस्मरति) समीपवर्ती होकर अपने विषयों को स्मरण करता है ।।५।।

विशेषार्थ—इस श्रुति में उपास्य परब्रह्म नारायण के अध्यात्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है कि यह नित्य निरन्तर संकल्प करनेवाला मन अनिरुद्ध नामवाले प्रभु से प्रेरित अपनी वस्तु के पास जाता है और कभी अपनी वस्तुके पास नहीं भी जाता है और अनिरुद्ध प्रभु से प्रेरित यह मन सब वस्तु के समीपवर्ती होकर विषयवृन्द को स्मरण करता है । उस अनिरुद्ध नामवाले हरि का यह उपदेश है ।।५।।

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम् ।
स य एतदेवं वेदाभि हैनं
सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ।।६।।

अन्वयार्थ—(तत्) वह परब्रह्म नारायण (ह) प्रसिद्ध है कि (तत्) व्यापक होने से तत् और (वनम्) भजनीय होने से वन (नाम) नामवाला है (इति) इस कारण से उस परब्रह्म नारायण का (तत्) तत् और (वनम्) वन इस नाम से (उपासितव्यम्) उपासना करने योग्य है (सः) वह प्रसिद्ध (यः) जो अधिकारी उपासक (एतत्) इस परब्रह्म नारायण को (एवम्) इस प्रकार तत् और वन नाम से उपासना के द्वारा (वेद) जान लेता है (एनम्) तो इस उपासक को (ह) निश्चय करके (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (अभि) सब प्रकार से (संवाञ्छन्ति) हृदय से चाहते हैं अर्थात् वह प्राणिमात्र का प्रिय हो जाता है ।।६।।

विशेषार्थ—वह परब्रह्म नारायण वेद शास्त्र में प्रसिद्ध है । उस परब्रह्म का व्यापक होने से 'तत्' यह नाम है । क्योंकि लिखा है—

'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते ।'

(ऋग्वे० अष्टक ७ अध्याय ३ वर्ग ८ मण्डल ९ अनु० ४ सूक्त ८४ मंत्र १)
चक्र से अदग्धबाहुमूल अपरिपक्व जन उस परब्रह्म को नहीं प्राप्त करता है ।। १ ।।
यह श्रुति सामवेद (पूर्वार्चिक प्रपाठक ६ द्वितीयार्ध मं० १२) में और कृष्णयजुर्वेद (तैत्तिरीयारण्यक प्रपाठक १ अनुवाक ११ मं० २) में

भी है। इसमें 'तत्' ब्रह्मवाचक है।

'ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।'

(गीता अ० १७ श्लो० २३)

ओम् तत् सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म का नाम कहा है ॥२३॥

'किं यत्तत्पदमनुत्तमम्।'

(विष्णुसहस्रना० श्लो० ६१)

किम् १, यत् २, तत् ३, पद ४, अनुत्तम ५ ये परब्रह्म नारायण के नाम हैं ॥६१॥ पूर्वोक्त श्रुति, स्मृति तथा इतिहास से सिद्ध है कि परब्रह्म का 'तत्' नाम है और सब के भजनीय होने से 'वन' यह नाम परब्रह्म नारायण का है। ऐसा समझकर जो उपासक 'तत्' और 'वन' इस नाम से परब्रह्म नारायण की उपासना करता है। उसको निश्चय करके सब प्राणी सब प्रकार से यथोचित सत्कार करते हैं ॥६॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता।
त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥७॥

अन्वयार्थ—(भो) हे भगवन् आचार्यदेव (उपनिषदम्) प्रतिष्ठा और आयतन के सहित ब्रह्मसम्बन्धी रहस्यमयी विद्या को (ब्रूहि) उपदेश कीजिये (इति) इस प्रकार शिष्य के प्रार्थना करने पर तो आचार्यदेव कहते हैं कि (ते) तेरे लिए (उपनिषद्) रहस्यमयी ब्रह्मविद्या (उक्ता) हमने बतला दी है (वाव) निश्चय करके (ते) तेरे लिये (इति) इस प्रकार की (ब्राह्मीम्) ब्रह्मविषयक (उपनिषदम्) रहस्यमयी ब्रह्मविद्या को (अब्रूम) हम बतला चुके हैं ॥७॥

विशेषार्थ—आचार्य से ब्रह्मविद्या का श्रेष्ठ उपदेश सुनकर पुनः शिष्य ने आचार्य से प्रार्थना की है कि हे भगवन् प्रतिष्ठा और आयतन के सहित ब्रह्मविषयक रहस्यमयी ब्रह्मविद्या को उपदेश कीजिये। इस बात को सुनकर आचार्यदेव ने कहा कि हे वत्स तेरे लिये

'श्रोत्रस्य श्रोत्रम्।'

(के० उ० खं० १ श्रु० २)

से लेकर

'ब्रह्मेति होवाच।'

(के० उ० खं० ४ श्रु० १)

इस श्रुतिपर्यन्त अथवा उपर्युक्त श्रुति तक निश्चय करके रहस्यमयी ब्रह्मविद्या को हम उपदेश दे चुके हैं। उपनिषद् के विषय में लिखा है—

'धर्मे रहस्युपनिषद् ।'

(अमरको० काण्ड ३ वर्ग ३ श्लो० ६३)

धर्म और रहस् नाम एकान्त में उपनिषद् शब्द का प्रयोग होता है ॥६३॥ इस श्रुति में

'उपनिषदं भो ब्रूहि ।'

इस वाक्य से यद्यपि प्रतिष्ठा, आयतन आदि का स्पष्ट प्रश्न नहीं होता है तो भी आगे की श्रुति में उत्तर देखने से पूर्वोक्त अर्थ होता है ॥७॥

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा।
वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(तस्यै) उस रहस्यमयी ब्रह्मविद्या के लिये (तपः) कृच्छ्र, चान्द्रायणादिक तपस्या (दमः) अन्तःकरणनिग्रहरूप दम और (कर्म) वर्णाश्रमोचित निष्काम कर्म (इति) ये तीनों (प्रतिष्ठा) आश्रय या आधार हैं और (वेदाः) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद (सर्वाङ्गानि) उस ब्रह्मविद्या के समस्त अङ्ग हैं और (सत्यम्) सत्य बोलना (आयतनम्) उस ब्रह्मविद्या के उत्पत्ति-स्थान है ॥८॥

विशेषार्थ—उस रहस्यमयी ब्रह्मविद्या के कृच्छ्र, चान्द्रायणादिक तप एक आश्रय है। क्योंकि लिखा है—

'वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः ॥'

(जाबालदर्शनोप० खं० २ श्रु० ३)

वेदोक्त प्रकार से और कृच्छ्रचान्द्रायणादिक से जो शरीर को सुखाना है उसी को बुधजन तप कहते हैं॥३॥ और उस ब्रह्मविद्या का अन्तःकरण का निग्रह दम दूसरा आश्रय है। क्योंकि लिखा है—

'दमः अन्तःकरणनियमनम् ।'

(गीता-रामानुजभाष्य अ० १८ श्लो० ४२)

अन्तःकरण के नियमन का नाम दम है ॥४२॥ और ब्रह्मविद्या का वर्णाश्रमोचित निष्काम कर्म तृतीय आश्रय है। अर्थात् तप, दम, कर्म ये तीनों ही ब्रह्मविद्या के

आधार हैं और मंत्र ब्राह्मणात्मक चारों वेद ब्रह्मविद्या के समस्त अङ्ग हैं। क्योंकि लिखा है—

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।'

(कात्यायनसूत्र)

मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों का नाम वेद है

'मंत्रब्राह्मणमित्याहुः ।'

(बौधायनसूत्र)

मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों को वेद कहते हैं।

'तच्चोदकेषु मंत्राख्या ।'

(मीमांसा० अ० २ पा० १ सू० ३२)

'शेषे ब्राह्मणशब्दः ।'

(मी० अ० २ पा० १ सू० ३३)

प्रेरणालक्षण श्रुति का ही नाम मंत्र है ॥३२॥ मंत्र से जो शेष वेद हैं वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है ॥३३॥

'चत्वारो वेदाः ।'

(महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्निक १)

चार वेद हैं ॥१॥ और मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है—

'ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः ।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज ॥'

(मुक्ति० उ० अध्याय १ श्रु० १२)

'सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे ॥१३॥

हे महावीर ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ है और यजुर्वेद की एक सौ नव शाखाएँ हैं ॥१२॥हे परन्तप सामवेद की हजार शाखाएँ हैं और अथर्ववेद की पचास शाखाएँ ॥१३॥ ये ब्रह्मविद्या के सब अंग हैं और ब्रह्मविद्या का सत्य उत्पत्ति स्थान है। क्योंकि इस विषय में लिखा है—

'चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर ।
तस्यैवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ।'

(जाबालदर्श० उ० खं० १ श्रु० ६)

हे प्रिय नेत्र आदिक इन्द्रियों से जो जैसा देखा गया और सुना गया और

सूंघा गया उसको ठीक जैसे के तैसे जो कहना है उसी को सत्य कहते हैं ।।६।।
और भी लिखा है—

अश्वमेधसहस्रस्य सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राच्च सत्यमेकं विशिष्यते ।।'

(विष्णुस्मृति० ८)

सहस्र अश्वमेधयज्ञ और सत्य तराजू में रखे जाने पर सहस्र अश्वमेधयज्ञ की अपेक्षा अकेला सत्य ही विशेष ठहरता है ।।८।। ब्रह्मविद्या का सत्य आयतन है ।।८।।

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते ।
स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ।।६।।

इति चतुर्थखण्डः

।। इति केनोपनिषद् समाप्ता ।।

अन्वयार्थ—(यः) जो कोई अधिकारी (वै) निश्चय करके (एताम्) इस उपनिषद् को (एवम्) पूर्वोक्त प्रकार से भली भाँति (वेद) जान लेता है वह अधिकारी (पाप्मानम्) समस्त पाप समूह को (अपहत्य) नष्ट करके (अनन्ते) त्रिविधपरिच्छेदरहित अविनाशी असीम (ज्येये) सबसे श्रेष्ठ (स्वर्गे) सुखरूप (लोके) प्रकाशरूप परब्रह्म नारायण में (प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठित हो जाता है (प्रतितिष्ठति) सदा के लिये अचल स्थित हो जाता है ।।६।।

विशेषार्थ—जो पुरुष निश्चितरूप से इस केनोपनिषद् में वर्णन की हुई ब्रह्म-विद्या को इस प्रकार यथार्थ रूप से जान लेता है। वह सब पापों को नाश करके त्रिविधपरिच्छेदरहित सत्य सर्वश्रेष्ठ सुखस्वरूप परब्रह्म में स्थिति पाता है। सदा के लिये प्रतिष्ठित हो जाता है। इस श्रुति में 'प्रतितिष्ठति' पद का दो बार उच्चारण ग्रन्थसमाप्ति का सूचना करता हुआ उक्त उपदेश की निश्चितता का भी प्रतिपादन करता है। यहाँ चतुर्थखण्ड और यह उपनिषद् समाप्त हो गया। इस उपनिषद् के प्रथम खण्ड में आठ मंत्र और द्वितीय खण्ड में पाँच मंत्र तथा तृतीय खण्ड में बारह मंत्र और चतुर्थ खण्ड में नव मंत्र हैं। इस प्रकार सब परिगणन करने से 'केनोप-निषद्' में चौतीस मंत्र हैं ।।६।।

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रं
श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम् ।
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधं
भक्त्या भजामि गुरुवर्यमनन्तसूरिम् ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्यश्रीमत्परमहंसपरि-
व्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवदनन्तपादीय-
श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यत्रिदण्डिस्वामिविरचिता
"गूढार्थदीपिका" समाख्या सामवेदीय
तलवकारशाखान्तर्गता "केनोपनिषद्"
भाषाव्याख्या समाप्ता ।

कृष्णयजुर्वेदीया

कठोपनिषद्

ॐ विष्वक्सेनाय नमः ।

अथ प्रथमाध्यायः

अथ प्रथमवल्ली

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥१॥

❀ गूढार्थदीपिका व्याख्या ❀

मङ्गलाचरणम्

वकुलाभरणं वन्दे जगदाभरणं मुनिम् ।
यः श्रुतेरुत्तरं भागं चक्रे द्राविडभाषया ॥१॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध है (वै) निश्चय करके कि (उशन्) यज्ञ के फल की इच्छावाला (वाजश्रवसः) वाज अन्न को कहते हैं उसके दानादि के कारण से जिसका श्रव यानी कीर्ति हो उसे वाजश्रवा कहते हैं अथवा रूढ़ि से भी यह उसका नाम हो सकता है । वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक महर्षि ने (सर्ववेदसम्) विश्वजित् यज्ञ में अपने सब धन को (ददौ) ब्राह्मणों के लिये दे दिया (तस्य) उस उद्दालक महर्षि का (नचिकेता) नचिकेता (नाम) नामवाला (ह) प्रसिद्ध (पुत्रः) एक पुत्र (आस) था ॥१॥

विशेषार्थ—कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा की यह "कठोपनिषद्" है । यहाँ पर पराविद्या की स्तुति के आख्यायिकारूप से श्रुति कहती है कि "वाज' माने अन्न उसके दान से "श्रव" माने प्राप्त यशवाला गौतमवंशीय महर्षि अरूण के पुत्र उद्दालक ऋषि ने फल की कामना से विश्वजित् यज्ञ को किया । इस यज्ञ में सर्वस्व दान करना पड़ता है । ऐसा समझकर विश्वजित् यज्ञ के फल की इच्छा से उद्दालक महर्षि ने —

'... धेनुरिति गवाम्' (मीमांसा अध्याय १० पाद ३ सूत्र ५६)
इस पूर्व मीमांसा के अनुसार अपने घर की समस्त गौ रूप सर्वस्वधन ऋत्विज और सदस्यों के लिये दक्षिणा में दे दिया। उद्दालक महर्षि का नचिकेता नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र था ॥१॥

तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु ।
श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत ॥२॥

अन्वयार्थ— (दक्षिणासु) जिस समय ऋत्विजों के लिये दक्षिणा के रूप में देने के लिये गौवें (नीयमानासु) लायी जा रही थीं उस समय में (कुमारम्) पाँच वर्ष का छोटा बालक (सन्तम्) होनेपर भी (तम्) उस नचिकेता में (ह) निश्चय करके (श्रद्धा) पिता की हितकामना से प्रयुक्त आस्तिक्य बुद्धि (आविवेश) अच्छी प्रकार से प्रवेश करती हुई और (सः) वह नचिकेता (अमन्यत) विचार करने लगा ॥२॥

विशेषार्थ—होता १, अध्वर्यु २, ब्रह्मा ३ और उद्गाता ४ ये चार प्रधान विश्वजित् यज्ञ में ऋत्विज होते है। इनके लिये सबसे अधिक गौवें दी जाती हैं। प्रशास्ता १, प्रतिप्रस्थाता २, ब्राह्मणाच्छंसी ३ और प्रस्तोता ४ इन चार गौण ऋत्विजों के लिये मुख्य ऋत्विजों की अपेक्षा आधी गायें दी जाती हैं। और अच्छावाक १, नेष्टा २, आग्नीध्र ३ और प्रतिहर्ता ४ इन चार गौण ऋत्विजों के लिये मुख्य ऋत्विजों की अपेक्षा तिहाई गायें दी जाती हैं। और ग्रावस्तुत् १, नेता २, होता ३ और सुब्रह्मण्य ४ इन चार ऋत्विजों के लिये मुख्य ऋत्विजों की अपेक्षा चौथाई गायें दी जाती हैं। इस नियमानुसार जब दक्षिणा के रूप में देने के लिये गायें लायी जा रहीं थीं उस समय पाँच वर्ष के छोटे बालक नचिकेता ने उनको देख लिया। उनकी दयनीय दशा देखते ही उसके निर्मल अन्तःकरण में पिता के हित की कामना से आस्तिकता भरी श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह नचिकेता विचारने लगा। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि श्रद्धा किसको कहते हैं। उत्तर यह लिखा है—

श्रद्धा हि स्वाभिमतं साधयति एतत्इति विश्वासपूर्विका साधने त्वरा ॥'
(गीता रामानुजभाष्य अ० १७ श्लो २)

यह अपने अभिमत कार्य को सिद्ध कर सकेगा इस विश्वास के साधन में जो शीघ्रता होती है उसका नाम श्रद्धा है ॥२॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥३॥

अन्वयार्थ—(पीतोदकाः) जो अन्तिम बार जल पी चुकी हैं (जग्धतृणाः) जो अन्तिम बार घास खा चुकी हैं (दुग्धदोहाः) जिनका दूध अन्तिम बार दुहा जा चुका है (निरिन्द्रियाः) जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी हैं या गर्भ धारण नहीं कर सकती हैं (ताः) ऐसी निरर्थक मरणासन्न गौओं को (ददत्) देनेवाला (सः) वह यजमान तो (ते) वे शास्त्रप्रसिद्ध (अनन्दाः) सब प्रकार के सुखों से शून्य नरकादिक (नाम) नामवाले (लोकाः) लोक हैं (तान्) उन नरकादिक लोकों को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥३॥

विशेषार्थ—नचिकेता मन में विचार करने लगा कि दक्षिणा में गौएँ देना तो बड़ा उत्तम है परन्तु मेरे पिता ऐसी गौएँ लाये हैं कि इन्हें जो कुछ जल पीना था सो पी चुकीं अब जल पीने को झुकने की भी इनमें शक्ति नहीं है। जो कुछ घास खानी थी सो खा चुकीं अब घास चबाने को मुख में दाँत भी नहीं है। जो कुछ दूध देना था सो दे चुकीं और अब तो इन सबों की इन्द्रियों में गर्भ धारण करने की शक्ति भी नहीं है। तो जो कोई यजमान ऐसी निरर्थक मरणासन्न गौओं को दान देता है वह शास्त्रों में लिखे हुए सुख-रहित नरकादिक लोको में जाता है। मनुस्मृति में इक्कीस नरकों का वर्णन है—

'तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च॥'

(मनुस्मृ० अध्या० ४ श्लो० ८८)

'संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम्।
संहातं च सकाकोलंकुड्मलं पूतिमृत्तिकम्॥८९॥
लोहशङ्कुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम्।
असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च॥९०॥'

तामिस्र १, अन्धतामिस्र २, महारौरव ३, रौरव ४, कालसूत्र ५ और महानरक ६, ॥८८॥ संजीवन ७, महावीचि ८, तपन ९, संप्रतापन १०, संहात ११ सकाकोल १२, कुड्मल १३, और पूतिमृत्तिक १४, ॥८९॥ लोहशंकु १५, ऋजीष १६, पन्थान १७, शाल्मली १८, नदी १९, असिपत्रवन २० और लोहदारक २१ ॥९०॥ ये इक्कीस नरक हैं। ये सब सुखशून्य हैं। बुढ़ी गौ दान देनेवाले इनका मैं पुत्र हूँ। सच्चा पुत्र वही है जो पिता की नरक आदि दुःखों से रक्षा करे। इससे मैं पिता को इस निषिद्धदान से निवृत करूँ। ऐसा विचारकर वह नचिकेता पिता से कहने लगा। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि गो किसको कहते हैं। इसका उत्तर वैशेषिक दर्शन में लिखा है—

विषाणी ककुद्मान्प्रान्ते बालधिस्सास्नावानिति। (गोत्वे दृष्टं लिङ्गम्)

(वैशेषिक अध्या० २ आह्निक १ सूत्र ८)

सींग, डील, प्रान्त में बालधि और गर्दन में ललरी जिसको हो उसको गौ कहते हैं ॥८॥ इस श्रुति से ज्ञात होता है कि बूढ़ी गौ कभी नहीं दान देना चाहिये ॥३॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥४॥

अन्वयार्थ—(सः) वह नचिकेता (ह) निश्चय करके (पितरम्) अपने पिता से (उवाच) बोला कि (तत) हे प्यारे पिता जी (माम्) मुझको (कस्मै) किस ऋत्विज के लिये (दास्यसि) तुम दोगे (इति) इस प्रकार के (द्वितीयम्) उत्तर न मिलने पर दुबारा नचिकेता ने वही बात कही (ह) हठ करके (तृतीयम्) उत्तर नहीं मिलने पर तीसरी बार भी उस कुमार ने वही बात कही तब पिता ने (तम्) उस नचिकेता से (उवाच) क्रोधपूर्वक कहा कि (इति) ऐसा हठ करनेवाले (त्वा) तुझको (मृत्यवे) यमराज के लिये (ददामि) देता हूँ ॥४॥

विशेषार्थ—पिता के यज्ञ का सुन्दर फल प्राप्त होने की इच्छा से आस्तिकाग्रेसर नचिकेता ने पिता के समीप जाकर कहा—हे पिताजी जैसे गौ आप के धन हैं तैसे मैं पुत्र भी आप का धन हूँ। तो मुझको किस ऋत्विज के लिये दक्षिणा में देंगे। पिता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब नचिकेता ने फिर दूसरी बार कहा कि हे पिता जी मुझे किस ऋत्विज के लिये देंगे। पिता ने इस बार भी उपेक्षा की। पर धर्मभीरु और पुत्र का कर्तव्य जानने वाले नचिकेता से नहीं रहा गया। फिर तीसरी बार नचिकेता ने कहा कि हे प्यारे पिता जी मुझको किस ऋत्विज के अर्थ दक्षिणा में देंगे। तब बालक का ऐसा स्वभाव ठीक नहीं ऐसा विचारकर उद्दालक को क्रोध आ गया। और उन्होंने आवेश में आकर कहा—अरे तुझको यमराज के लिये देता हूँ। श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणाच्च'

(शारीरक मी० अ० १ पा० २ सू० १२)

के श्रीभाष्य में 'कठोपनिषद्' के पहले अध्याय की प्रथमवल्ली की चतुर्थ श्रुति के 'कस्मै मां दास्यसि' इन पदों को उद्धृत किया है ॥४॥

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किं स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥५॥

अन्वयार्थ—(बहूनाम्) यमराज के गृह पर जानेवाले बहुत से प्राणियों में (प्रथमः) पहले (एमि) मैं चलता हूँ या (बहूनाम्) यमसदन जानेवाले बहुत से प्राणियों में (मध्यमः) मध्य में (एमि) मैं चलता हूँ परन्तु यमराज (अद्य) आज (मया) मेरे बालक के द्वारा (यत्) जो (करिष्यति) करेगा वह (यमस्य) यमराज के (कर्तव्यम्) करने योग्य (किम्) कौन (स्वित्) प्रयोजन है। जिससे ऋत्विज के समान यमराज के लिये मेरा अर्पण सफल होगा ।।५।।

विशेषार्थ—आवेश में आकर पिता ने यमराज के लिये दे दिया तो भी आस्तिकाग्रेसर शोकरहित नचिकेता ने पिता से कहा कि—यम के सदन पर जानेवालों में सबसे पहले मैं जाता हूँ। अथवा यमपुरी में जानेवालों के मध्य में मैं जाता हूँ। कभी भी मन्द मैं पीछे नहीं प्राप्त करूँगा। परन्तु हे पिता जी ऋत्विज के लिये जैसे दक्षिणा समर्पण किया जाता है वैसे ही आप यमराज के लिये मुझको समर्पण किये हैं। तो आज यमराज बालक मुझको पाकर मेरे द्वारा करने योग्य कौन सा प्रयोजन सिद्ध करेगा। इस बात को विचार करता हूँ। यमलोक और यमराज के विषय में लिखा है—

'वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ।।'

(ऋग्वे० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १)

सब जनों के संगमन स्थान सूर्य के पुत्र यमराज को हविष्य से परिचर्या करो ।।१।।

'ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।।'

(यजु० अ० १६ मं० ४५)

जो हमारे समान मनवाले पितर यमलोक में वर्तमान हैं उन पितरों के लोक में स्वधा नाम से अन्न प्राप्त हो यज्ञ देवताओं के तृप्त करने में समर्थ हो ।।४५।।

'प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येनाते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यसि वरुणं च देवम् ।।'

(अथर्व० कां० १८।१।५४)

जिस मार्ग से तेरे पूर्व पितर मरकर गये उन यमनिर्मित शरीरयानरूप मार्गों से जाओ वहां स्वधा नाम के अन्न से प्रसन्न होते दोनों प्रकाशमान राजा देव यम को और वरुण को देखोगे ।।५४।।

'यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ।।'

(अथर्व० कां० १८।३।१)

जो प्राणियों में पहले मरा है और जिसने इस लोक को पहले प्राप्त किया है उनके सुख के लिए जनों के संगमन करनेवाले सूर्यपुत्र यमराज का हवि से सत्कार किया जाता है ।।१।।

'यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानुमन्यताम् ।।'

(अथर्व० कां० १८।३।६९)

तिलमिश्रित स्वधायुक्त जो धान तेरे लिये मैं छोड़ता हूँ वे अधिकता से युक्त प्रभावयुक्त तेरे निमित्त हों उन्हें तेरे निमित्त यमराज स्वीकार करें ।। ६९ ।।

'यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथि रक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परिधेहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ।।

(ऋग्वे० मं० १० अ० १ सू० १५ म० ११)

हे यमराज जो दो तेरे सारमेय तुम्हारे घर की रक्षा करनेवाले चार नेत्रवाले तुम्हारे मार्ग के रक्षक मनुष्यों से ख्याति पाये हुए हैं हे राजन् उन दोनों कुत्तों से इसकी रक्षा कीजिये और इस के निमित्त आरोग्यता को और कल्याण को धारणा करो ।।११।।

'यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ।।'

(अथर्व० कां० १८।२।१)

यमराज के निमित्त सोम पवित्र किया जाता है यमराज के अर्थ हवि किया जाता है और मन्त्र द्वारा अग्निदूत ही यज्ञ से यमराज के प्रति हवि ले जाता है ।

'एतत्ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत्त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ।।'

(अथर्व० कां० १८।४।३१)

धाना धेनुरभवत् वत्सो अस्यास्तिलोभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुपजीवति ।।३२।।

सबका प्रेरक देव यह वस्त्र भरण वा आच्छादन के निमित्त तेरे लिये देता है उस प्रीतिकारक वस्त्र को धारण किये हुए यमराज के राज्य में विचरण करो ।।३१।। धान प्रीतिकारक गौ के समान है तिल इस धानरूपा गौ के बछड़े समान हैं निश्चय करके उस क्षय रहित वत्सरूप तिलवाली धानरूपा गाय को लेकर यमराज के राज्य में यह अपनी आवश्यकता को पूरी करता है ।।३२।।

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतर ता सखायः।
अत्राजहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान् ॥
(यजु० अ० ३५ मं १०)

अरे मित्रों निगल जानेवाली वैतरणी नदी बह रही है उसे आपने कभी सुना है यदि जानते हो और सुना है तो तैयार हो जाओ और चेत जाओ और इसे पार कर जाओ। जब प्रबुद्ध जीव उसे पार कर जाते हैं तब ये कहते हैं कि जो पाप थे उन्हें हम यहाँ ही इस वैतरणी नदी में छोड़ते हैं और हम कल्याणकारक दिव्य अन्नादि भोगजाति को अथवा दैवी बल को अच्छी तरह प्राप्त करते हैं ॥१०॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट यमराज और यमलोक सिद्ध होता है ॥५॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥६॥

अन्वयार्थ—(पूर्वे) आपके पूर्वज पितामह आदि (यथा) जिस प्रकार का आचरण करते आये हैं (अनुपश्य) उस पर विचार कीजिये और (अपरे) वर्तमान मे भी अन्य साधु पुरुष जैसा आचरण कर रहे हैं (तथा) उसी प्रकार से (प्रतिपश्य) उनके आचरण पर दृष्टिपात कर लीजिये (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (सस्यम्) धान्य की (इव) तरह (पच्यते) अल्प ही काल में पकता है अर्थात् जरा से जीर्ण होकर मर जाता है और (सस्यम्) अनाज के (इव) समान (पुनः) फिर (आजायते) जहां तहां उत्पन्न हो जाता है ॥६॥

विशेषार्थ—क्रोध के आवेश में मृत्यु के लिये परम आस्तिक पुत्र को देकर पश्चात्ताप करते हुए पिता को देखकर नचिकेता ने कहा—हे पिताजी आप अपने पिता पितामह आदि की ओर देखें। उन्होंने कभी मिथ्या भाषण नहीं किया तथा अब भी जो श्रेष्ठ महात्मा हैं उनको देखें वह कभी मिथ्या नहीं बोलते और आपने भी आजतक कभी मिथ्या भाषण नहीं किया है। इस कारण स्नेह को दूर कर मृत्यु के पास जाने के लिए मुझे आज्ञा दीजिये यह शरीर तो क्षणभंगुर है। जैसे सूर्य से पका हुआ अनाज अल्पकाल में पृथ्वीपर गिर जाते हैं और समयपाकर फिर उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही मरणधर्मा मनुष्य अनित्य जीवलोक में जरा जीर्ण होकर मर जाते हैं और कर्म वश पुनः जन्मते हैं। इस से क्षणभंगुर मेरे शरीर में ममता को त्यागकर अपने सत्यधर्म पर आरूढ हो मुझे यमराजके पास जाने दीजिये। नचिकेता के ऐसा कहने पर उद्दालक ने अत्यन्त दुःखित होते हुए जाने की आज्ञा दी। तब नचिकेता अपने पिता की भक्ति के बलसे तथा अपने तपोबल के प्रभाव से इसी देह से यमपुरी में चला गया। नचिकेता को यमसदन पहुंचने पर पता लगा कि यमराज कहीं

बाहर गये हुए हैं। अतएव नचिकेता तीन दिनों तक अन्न-जल ग्रहण किये बिना ही यमराज की प्रतिक्षा करता खड़ा रहा। चौथे दिन यमराज आये तब द्वार पर स्थित वृद्ध महापुरुषों ने यमराज से कहा—॥६॥

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथि र्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(वैवस्वत) हे सूर्य पुत्र यमराज (वैश्नानरः) साक्षात् अग्नि देवता ही (ब्राह्मणः) ब्राह्मण रूप (अतिथिः) अतिथि होकर (गृहान्) घरों में (प्रविशति) पधारते हैं (तस्य) उस अतिथि की साधु पुरुष (एताम्) ऐसी अर्घ्य पाद्य आदि के द्वारा (शान्तिम्) शान्ति को (कुर्वन्ति) किया करते हैं। अतः आप नचिकेता के पाद प्रक्षालनादि के लिये (उदकम्) जल को (हर) ले जाइये ॥७॥

विशेषार्थ—ब्राह्मण अतिथि के रूप में साक्षात् वैश्वानर अग्नि ही दग्ध करता हुआ सा घरों में प्रवेश करता है। उस अग्नि के दाह को मानो शान्त करते हुए ही साधुजन यह पाद्यादि दान रूप शान्ति किया करते हैं। अतः हे यमराज नचिकेता को पाद्य देने के लिये जल ले जाइये। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ब्राह्मण और अतिथि किसको कहते हैं इसका उत्तर यह लिखा है—

'यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीनं षडूर्मिषड्भावेत्यादि सर्वदोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत्साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसंपन्नभावमात्सर्यतृष्णाशामोहादिरहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्ठचेता वर्तत एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः अन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव ॥'

(वज्रसूचिकोप०)

जो कोई अद्वितीय आत्मा को जाति प्राकृत गुण क्रिया से रहित तथा षडूर्मि और षड्भावादि सब दोषों से हीन सत्य, ज्ञान, आनन्द, अनन्तस्वरूप, स्वयंनिर्विकल्प, अशेषकल्पाधार समस्त भूतो के अन्तर्यामी रूप से बर्तमान तथा सबके बाहर भीतर आकाश के समान व्याप्त अखण्डानन्दस्वभाव अप्रमेय अनुभव से एक जानने योग्य प्रत्यक्ष भासमान करतलामलकवत् साक्षात् प्रत्यक्ष कर के जानता है कृतार्थ होने से काम रागादि दोष रहित जो

है। और शम, दम आदिक से संपन्न तथा भाव, मात्सर्य, तृष्णा, आशा आदिक से रहित और दम्भ, अहंकार आदिक से असंस्पृष्ट चित्तवाला इस प्रकार से उक्त लक्षण युक्त जो रहता है वह निश्चय कर के ब्राह्मण है। ऐसा श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणों का अभिप्राय है। अन्यथा ब्राह्मणत्व की सिद्धि नहीं हो सकती है। गोपथब्राह्मण में लिखा है—

'सान्तपना इदं हविरित्येष ह वै सान्तपनोऽग्निर्यद्ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशन गोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपनः।'

(गोपथब्राह्मण पूर्वभाग ब्राह्मण ३३)

जिसका गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, गोदान, चूडाकरण, उपवीत, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्या आदिक संस्कार हुए हैं वह ब्राह्मण जाति और गुण कर्म से यथार्थ है वह सान्तपन अग्नि है और निश्चय करके उसी को ब्राह्मण कहते हैं ॥३६॥ और पाणिनि के इस सूत्र पर महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—

'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः।'

(पाणि० व्याकर० अध्या० ५ पाद १ सू० ११५)

'सर्वे एते शब्दा गुणसमुदायेषु वर्तन्ते ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति
अतश्च गुणसमुदाये एवं ह्याह ॥
तपः श्रुतं च योनिश्च एतद्ब्राह्मणकारकम्।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥१॥
तथा गौरः शुच्याचारः पिङ्गलः कपिलकेश इति।'

(महाभाष्य)

सब यह शब्द गुण समुदायों में वर्तते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इससे गुण-समुदाय में इस प्रकार कहे हैं कि—तप करना, वेद पढ़ना, श्रेष्ठ ब्राह्मणी कन्या में जन्म होना, यह ब्राह्मण का लक्षण है। जो ब्राह्मण इन तपस्या से और वेदाध्ययन से हीन है केवल ब्राह्मण कुल में जन्ममात्र है वह जाति से ब्राह्मण है ॥ १ ॥ और गौरवर्ण पवित्राचरण पिंगलकेश कपिल होना ये भी ब्राह्मण के लक्षण हैं।

'शान्ताः सन्तः सुशीलाश्च सर्वभूतहितेरताः।
क्रोधं कर्तुं न जानन्ति एतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥

सन्ध्योपासनशीलश्च सौम्यचित्तो दृढव्रतः ।
समः परेषु च स्वेषु एतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥
एकाहारश्च सन्तुष्टः स्वल्पाशी स्वल्पमैथुनः ।
ऋतुकालाभिगामी च एतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥
परान्नं परवित्तं च पथि वा यदि वा गृहे ।
अदत्तं नैव गृह्णाति एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥
योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ।
विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥'

(आह्निक सूत्रा० स्मृति०)

शान्त रहना, साधुपना, सुशील होना, सब प्राणियों के हित में तत्पर रहना और क्रोध नहीं करना ये ब्राह्मण के लक्षण हैं ॥ सन्ध्यावन्दन करना, सौम्यचित्त रहना, दृढ़व्रत होना और अपने तथा पराये में सम व्यवहार करना, ये ब्राह्मण के लक्षण हैं । एक बेला भोजन करना, सर्वदा संतुष्ट रहना, स्वल्प भोजन करना, स्वल्प मैथुन करना और ऋतुकाल में अपनी स्त्री से विषय करना, ये ब्राह्मण के लक्षण हैं । दूसरे का अन्न और दूसरे का धन मार्ग में हो या घर में हो बिना दिया हुआ नहीं ग्रहण करना, ये ब्राह्मण के लक्षण हैं । योग, तप, दम, दान, सत्य, शौच, दया, वेदाध्ययन, विद्या, विज्ञान और आस्तिक्य, ये ब्राह्मण के लक्षण हैं । इन पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त को ब्राह्मण कहते हैं । अतिथि का लक्षण मनुस्मृति में लिखा है—

'एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मदतिथिरुच्यते ॥'

(मनुस्मृ० अ० ३ श्लो० १०२)

केवल एक रात्रि पराये घर में बसता हुआ ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, सदा न रहने से अतिथि होता है । नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥१०२॥ इस लक्षण से युक्त को अतिथि कहते हैं ॥७॥

**आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान् ।
एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥**

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस (अल्पमेधसः) मन्दबुद्धि (पुरुषस्य) पुरुष के (गृहे) घर में (ब्राह्मणः) ब्राह्मण अतिथि (अनशन) बिना भोजन

किये (वसति) निवास करता है उस अल्पप्रज्ञ पुरुष के (आशाप्रतीक्षे) काम और संकल्प, अथवा इच्छित पदार्थ की प्रार्थनारूप आशा, और जिसके मिलने का निश्चय हो चुका उसके पाने की इच्छारूप प्रतीक्षा, (संगतम्) सत्पुरुषों के संगत का फल (च) और (सूनृताम्) प्रिय मधुरवाणी बोलने का फल और (इष्टापूर्ते) यज्ञादि शुभ कर्मों के और कूप मन्दिरादि निर्माण के फल (च) और (सर्वान्) समस्त (पुत्रपशून्) पुत्र और पशुओं को (एतत्) यह अतिथि का अनशनरूप पाप (वृङ्क्ते) नष्ट कर देता है ॥८॥

विशेषार्थ—यमपुरी के वृद्ध महापुरुषों ने यमराज से कहा कि जिसके घर में ब्राह्मण बिना भोजन किये रहता है उस मन्दमति पुरुष की आशा, जिन का कोई ज्ञान नहीं है ऐसा अनुत्पन्न वस्तु विषय की इच्छा तथा उत्पन्न वस्तु की प्राप्ति की इच्छा प्रतीक्षा और सत्पुरुषों के संगम का फल और प्रिय सुन्दर मधुरवाणी बोलने का फल, तथा यज्ञ दानादि इष्टकर्म, एवं इनके फल नष्ट हो जाते हैं। इष्टापूर्त के विषय में यजुर्वेद में लिखा है—

'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयश्च ।'

(यजुर्वे० अ० १६ मं० ५४)

हे अग्निदेव तुम सावधान हो, जागृत हो, इस यजमान को सावधान करो, यज्ञ, दान, कूप, मन्दिरादि कर्म में इस यजमान से भी संगति प्राप्त करो ॥५४॥ अतिथि का असत्काररूप पाप उस के पूर्व पुण्य से प्राप्त समस्त पुत्र और पशु आदि धन को भी नष्ट कर देता है। मनुस्मृति में भी लिखा है—

'शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥'

(मनु० अ० ३ श्लोक० १००)

कटे हुए खेत में जो पड़ा हुआ बाकी रह जाता है उसको शिल कहते हैं उस शिल से जीविका करनेवाले और दक्षिणाग्नि १, गार्हपत्य २, आहवनीय ३, आवसथ्य ४ और सभ्य ५ इन पाँचों अग्नियों में हवन करते हुए पुरुषों के सब पुण्य को बिना पूजा अतिथि वसता हुआ ले लेता है ॥१००॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—इष्टापूर्त्त किसको कहते हैं। इसका उत्तर धर्मशास्त्र में लिखा है—

'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामुपलम्भनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥१॥

वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥'२॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्यभाषण, वेदपाठ, अतिथिसत्कार और वैश्वदेव कर्म इष्ट कहाता है ॥१॥ बावड़ी, कूप, तलाब, देवमन्दिर निर्माण, अन्नदान और बगीचा लगाना यह कर्म पूर्त कहलाता है ॥२२॥ इन पूर्वोक्त वस्तुओं को इष्टापूर्त कहते हैं ॥८॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तुब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ॥९॥

अन्वयार्थ—(ब्रह्मन्) हे ब्राह्मण देवता (अतिथिः) आप अतिथि (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य हैं इससे (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ब्रह्मन्) हे ब्राह्मण देवता (मे) मेरा (स्वस्ति) कल्याण (अस्तु) हो (यत्) जो (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रातें (मे) मेरे (गृहे) घर में (अनश्नन्) बिना भोजन किये (अवात्सीः) तुम रहे हो (तस्मात्) तिस कारण से मुझ से (प्रति) हर एक रात्रि के प्रति एक एक करके (त्रीन्) तीन (वरान्) वरों को (वृणीष्व) मांग लो ॥९॥

विशेषार्थ—वृद्ध महापुरुषों के कहने से यमराज नचिकेता के समीप जाकर कहने लगे कि हे ब्राह्मण देवता आप अग्निस्वरूप अतिथि होने से नमस्कार के योग्य हैं। तिस पर भी आप हमारे घर पर तीन रात्रि बिना भोजन किये रह गये हैं। यह मेरा बड़ा अपराध है। अतः इस अपराध को क्षमा कराने के लिये मैं आप के लिये नमस्कार करता हूँ। हे भगवन् इस मेरे दोष की निवृत्ति होकर मेरा कल्याण हो। आप हर एक रात्रि में भोजन नहीं करने के बदले में एक एक करके मुझसे अपनी इच्छानुसार तीन वर माँग लीजिये ॥९॥

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

अन्वयार्थ—(मृत्यो) हे यमदेव (गौतमः) मेरे पिता गौतमवंशीय उद्दालक (शान्तसंकल्पः) न जाने मेरा पुत्र यमराज के पास जाकर क्या करेगा ऐसा मेरे मरण की चिन्ता से रहित (सुमनाः) प्रसन्न चित्त (मा) मेरे (अभि) प्रति (वीतमन्युः) क्रोध रहित (यथा) जैसे (स्यात्) हो जायं और (त्वत्प्रसृष्टम्) आपके द्वारा घर की ओर वापस भेजा जाने पर जब मैं उनके पास जाऊँ तो (मा) मेरे (अभि) प्रति (प्रतीतः) यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है

ऐसा प्रसन्नतापूर्वक विश्वास करके (वदेत्) मेरे साथ भागण करें (त्रयाणाम्) अपने तीनों वरों में से (एतत्) यह अपने पिता की प्रसन्नता रूप (प्रथमम्) पहला (वरम्) वर को (वृणे) मैं मांगता हूँ ॥१०॥

विशेषार्थ—यमराज की प्रार्थना करने पर तपोमूर्ति अतिथि बालक नचिकेता ने कहा—

"पितृदेवो भव"

(तैत्तिरी० उ० वल्ली० १ अनुवा० ११)

पिता को देवता मानने वाला हो ओ ॥११॥ इसके अनुसार हे यमदेव तीन वरों में से मैं प्रथम वर यही माँगता हूँ कि मेरे गौतमवंशीय पिता उद्दालक जो क्रोध के आवेश में मुझे आप के पास भेज कर अब अशान्त और दुःखी हो रहे हैं, सो मेरे प्रति क्रोध रहित शान्तचित्त और सर्वथा संतुष्ट हो जायँ। और आप के द्वारा अनुमति पाकर जब मैं घर जाऊं तब वह विश्वास के साथ यह पहिचान कर कि यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है मुझसे भाषण करें। इस श्रुति में मुमुक्षु नचिकेता ने प्रथम वर से आत्मा के पुरुषार्थ योग्यता प्राप्त करानेवाली पिता की सुमनस्कता को ही माँगा है ॥१०॥

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः। सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(आरुणिः) अरुण के पुत्र (औद्दालकिः) तुम्हारा पिता उद्दालक (मत्प्रसृष्टः) मेरा प्रेरणा किया हुआ (मृत्युमुखात्) मृत्यु के मुख से (प्रमुक्तम्) छुटा हुआ (त्वाम्) तुम को (ददृशिवान्) देखते हुए (पुरस्तात्) पहले के (यथा) समान ही (प्रतीतः) यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है ऐसा विश्वास करके (वीतमन्युः) क्रोध से रहित (भविता) हो जायंगे और (रात्रीः) वे अपनी आयु की शेष रात्रियों में (सुखद) सुख के साथ (शयिता) शयन करेंगे ॥११॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि हे ब्राह्मण देवता तुम को मृत्यु के मुख से छूट कर घर लौटा हुआ देख कर मेरे अनुग्रह से तुम्हारे पिता महर्षि अरुण के पुत्र उद्दालक बड़े प्रसन्न होंगे और तुम को अपना पुत्र समझ कर पूर्ववत् तुम से प्रेम करेंगे और उनका क्रोध सर्वथा शान्त हो जायगा। तुम को पाकर अब तुम्हारे पिता जीवन भर रात्रि में सुखपूर्वक शयन करेंगे ॥११॥

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

अन्वयार्थ—(स्वर्गे) मोक्ष (लोके) स्थान में (किंचन) कुछ भी (भयम्) भय (न) नहीं (अस्ति) है (तत्र) वहाँ मोक्ष स्थान में (त्वम्) मृत्यु आप (न) नहीं हैं और वहाँ पर कोई भी (जरया) बुढ़ापे से (न) नहीं (बिभेति) डरता है (स्वर्गलोके) मोक्ष स्थान में रहने वाले पुरुष (अशनायापिपासे) भूख और प्यास (उभे) इन दोनों को (तीर्त्वा) पार करके (शोकातिगः) शोकरहित होकर (मोदते) आनन्द भोगते हैं । ॥१२॥

विशेषार्थ—मुमुक्षु नचिकेता दो मंत्रों से अब द्वितीय वर को माँगता है कि हे यमराज मोक्ष स्थान में रोग आदि का कोई भय नहीं है और मर्त्यलोक में आप जैसे मारते हैं वैसे मोक्ष स्थान में आप किसी को भी नहीं मार सकते हैं तथा मोक्ष स्थान में कोई बुढ़ापे से नहीं डरता है । त्रिपाद्विभूति में रहने वाला पुरुष भूख और प्यास को भी जीत कर शोक से रहित होकर सदा आनन्द भोगता है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि 'स्वर्ग' शब्द से आप मोक्ष अर्थ कैसे करते हैं। इसका उत्तर यह है कि यदि यहाँ पर स्वर्गलोक अर्थ किया जाय तो ठीक नहीं है क्योंकि भगवद्गीता में लिखा है कि—

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
(गी० अ० ९ श्लो० २१)

वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोग कर पुण्य के क्षीण होने पर पुनः मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं ॥२१॥ और पद्मपुराण में लिखा है कि—

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
शुभं तु भवनं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनामयम् ॥
(पद्मपु० सृष्टिखण्ड अध्या० ३६ श्लो० ९२)

'स्वर्गस्थमपि मां ब्रह्मन् क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ।
अबाधेतां भृशं चाहमभवं व्यथितेन्द्रियः ॥'९३॥

श्वेत राजा ने अगस्त्यजी से कहा कि—महावन में दस हजार वर्ष तप करके मैंने अनामय शुभभवन ब्रह्मलोक प्राप्त किया ॥९२॥ और हे ब्राह्मण श्रेष्ठ अगस्त्य मुने ! स्वर्ग में स्थित मुझको भूख और प्यास ने अत्यन्त पीड़ित किया तब स्वर्गलोक में मैं व्यथितेन्द्रिय हो गया ॥९३॥ इन प्रमाणों से स्पष्ट ज्ञात होता है

कि स्वर्गलोक में मृत्यु का भय है और भूख तथा प्यास से भी पीड़ा होती है। इससे 'स्वर्ग' शब्द का अर्थ परम पुरुषार्थ लक्षण मोक्ष मैंने किया है ॥१२॥

**स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥**

अन्वयार्थ—(मृत्यो) हे यमराज (सः) वह पुराणादि प्रसिद्ध (त्वम्) तुम (स्वर्ग्यम्) मोक्ष की प्राप्ति के साधनरूप (अग्निम्) अग्नि को (अध्येषि जानते हो (तम्) उस अग्नि विद्या को (श्रद्दधानाय) मोक्ष की श्रद्धा करनेवाले (मह्यम्) मेरे लिये (प्रब्रूहि) भलीभाँति समझा कर कहिये जिस मोक्ष के साधन रूप अग्नि के द्वारा (स्वर्गलोकाः) परं पद प्राप्त करनेवाले (अमृतत्वम्) ब्रह्म प्राप्तिपूर्वक स्वरूपाविर्भावरूप अमृत को (भजन्ते) सेवन करते हैं या प्राप्त होते हैं (एतत्) यह अग्निविद्या (द्वितीयेन) दूसरे (वरेण) वर से (वृणे) मैं माँगता हूँ ॥१३॥

विशेषार्थ—हे यमदेव आप ! उस मोक्ष के साधनभूत अग्निविद्या को यथार्थ रूप से जानते हैं। इसलिये मोक्ष के श्रद्धालु मेरे लिये आप कृपया उस अग्निविद्या को अच्छी प्रकार से उपदेश कीजिये जिस अग्निविद्या से परं पद प्राप्त करने वाले लोग ब्रह्मप्राप्ति पूर्वक स्वरूपाविर्भावरूप अमृत को प्राप्त होते हैं। यह छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है--

'परं ज्योतिपरुसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ।'

(छा० उ० अ० ८ खं० ३ श्र० ४)

परम ज्योति को पाकर अपने स्वरूप से युक्त हो जाता है ॥४॥ मोक्षोपायभूता यह अग्निविद्या मैं आप से दूसरा वर माँगता हूँ। यतिसार्वभौम श्रीरामानुजाचार्य ने

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च'

(शरीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में कठोपनिषद् के प्रथमाध्याय की प्रथमवल्ली की तेरहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१३॥

**प्र ते ब्रवीमि तदु मेनिबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायम् ॥१४॥**

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (स्वर्ग्यम्) मोक्ष के साधन-स्वरूप (अग्निम्) अग्निविद्या को (प्रजानन्) अच्छी तरह जाननेवाला मैं (ते) तुम्हारे लिये (प्र) अच्छी प्रकार से (ब्रवीमि) कहता हूँ (तत्) उस अग्निविज्ञान को (उ) निश्चय करके (मे) मेरे उपदेश से (निबोध) तुम जान लो इस अग्निविद्या को जानता हुआ तुम (अनन्तलोकाप्तिम्) विष्णु भगवान् के लोक की प्राप्ति को (अथो) और विष्णुलोकप्राप्ति के अनन्तर (प्रतिष्ठाम्) अपुनरावृत्ति स्वरूपा स्थिति को प्राप्त कर लो (त्वम्) तुम (एतम्) ब्रह्मोपासना के अङ्गतया इस ज्ञान के मोक्ष हेतुत्व लक्षण इस अग्नि विद्या के स्वरूप को (गुहायम्) उपासक पुरुषों के हृदय गुफा में (निहितम्) स्थित (विद्धि) जान लो ॥१४॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि हे नचिकेता मैं मोक्षोपायभूता अग्निविद्या को भलीभाँति जानता हूँ। मैं तुम से कहता हूँ, अब तुम एकाग्रचित करके सावधानी के साथ सुनो। यह अग्निविद्या विनाशरहित विष्णलोक की प्राप्ति करनेवाली है। यहाँ पर 'अनन्त' का विष्णु अर्थ है क्योंकि 'कठोपनिषद्' में ही आगे लिखा है—

'तद्विष्णोः परमं पदम्'

(कठो० अ० १ वल्ली० ३ श्रु० ६

उस विष्णु के परमपद को प्राप्त कर लेता है ॥६॥ और

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'

(तैत्ति० उ० वल्ली० २ अनुवा० १)

ब्रह्म, विष्णु, सत्य, ज्ञान, और अनन्त हैं ॥१॥

'अनन्तो हुतभुग्भोक्ता'

(महाभा० अनुशासनप० विष्णुसह०श्लो० १०८) अनन्त १, हुतभुक् २, भोक्ता ३, ये विष्णु भगवान् के नाम हैं ॥१०८॥ और यह अग्नि विद्या विष्णु लोक की प्राप्ति के अनन्तर अपुनरावृत्ति को प्राप्त करानेवाली है। ब्रह्मोपासना के अङ्गतया इस ज्ञान के मोक्षहेतुत्त्व लक्षण इस अग्निविद्या के स्वरूप को उपासना करनेवाले भक्तों के हृदयगुफा में स्थित तुम अवश्य जान लो ॥१४॥

लोकादिमग्निंतमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनराह तुष्टः ॥१५॥

अन्वयार्थ—(लोकादिम्) मोक्ष के साधनभूत (तम्) उस वेदप्रसिद्ध (अग्निम्) अग्नि विद्या को (तस्मै) उस नचिकेता के लिये (उवाच) यमराज ने कहा। अग्निचयन में कुण्ड निर्माण आदि के लिये (याः) जो जो (वा) और (यावतीः) जितनी (वा) और (यथा) जैसे (इष्टकाः)

ईंटें होनी चाहिये वे सब बातें भी यमराज ने बतायी (च) और (सः) वह नचिकेता (अपि) भी (यथोक्तम्) जिस प्रकार कहा था उस प्रकार (तत्) उस सुने हुए समस्त उपदेशों को (प्रत्यवदत्) यमराज से कह कर सुना दिया (अथ) इसके बाद (अस्य) इस नचिकेता के ऊपर (तुष्टः) प्रसन्न हुए (मृत्युः) यमराज ने (पुनः) फिर से (एव) निश्चय करके (आह) कहा ॥१५॥

विशेषार्थ—यमराज ने नचिकेता से मोक्षोपायभूता अग्नि विद्या का वर्णन किया और उस अग्निचयन के लिये जैसी जितनी ईंटों की आवश्यकता है तथा जिस प्रकार अग्निचयन करना चाहिये सो सब उपदेश दे दिया । यमदेव के उपदेश समाप्त होने पर नचिकेता ने उस उपदेश को जैसा सुना था वैसा ही सुना दिया । इससे प्रसन्न होकर यमराज ने पहले देने के कहे हुए तीन वरों से अतिरिक्त और भी एक चौथा वर देने की इच्छा से कहा ॥१५॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्यददामि भूयः ।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कांचेमामनेकरूपां गृहाण ॥१६॥

अन्वयार्थ—(प्रीयमाणः) प्रसन्न हुआ (महात्मा) महामाना यमराज (तम्) उस नचिकेता से (अब्रवीत्) बोला कि (अद्य) अब मैं (तव) तुमको (भूयः) फिर से (वरम्) चौथेवर को (ददामि) देता हूँ कि (अयम्) यह (अग्निः) अग्निविद्या (तव) तुम्हारे (नाम्ना) नाम से (एव) निश्चय कर के (इह) इस लोक में (भविता) प्रसिद्ध होगी (च) और (इमाम्) इस (अनेकरूपाम्) विचित्र (सङ्काम्) शब्द करने वाली रत्नों की माला को (गृहाण) तुम ग्रहण करो ॥१६॥

विशेषार्थ—मुमुक्षु बालक की धारणाशक्ति देखकर संतुष्ट महामना यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता अब मैं प्रसन्नता के कारण तुझे फिर भी यह चौथा वर और देता हूँ । मेरे द्वारा कही हुई मोक्षोपायभूता अग्नि विद्या तुझ नचिकेता के ही नाम से इस लोक में प्रसिद्ध होगी और तू यह शब्द करने वाली रत्नमयी अनेकरूपा-विचित्र माला भी ग्रहण करो ॥१६॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञंदेवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

अन्वयार्थ— (त्रिणाचिकेतः) तीन बार नाचिकेत नामक अग्निविद्या की उपासना करनेवाला (त्रिकर्मकृत्) यजन, अध्ययन और दान, इन तीन कर्मों को करने वाला (त्रिभिः) तीन बार अनुष्ठान किया हुआ अग्नि से (सन्धिम्) परमात्मा की उपासना के द्वारा संबन्ध को (एत्य) प्राप्त होकर (जन्ममृत्यू) जन्म और मरण को (तरति) तर जाता है (ब्रह्मजज्ञम्) परब्रह्म नारायण से उत्पन्न हुआ और ज्ञानबाला या ज्ञाता जीवात्मा (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (देवम्) ज्ञानादि के द्वारा व्यवहार करनेवाले को (विदित्वा) जानकर अर्थात् उपासक जीवात्मा को ब्रह्मात्मकतारूप से जानकर (निचाय्य) ब्रह्मात्मक अपनी आत्मा को साक्षात्कार करके (इमाम्) इस (शान्तिम्) संसाररूप अनथ की शान्ति को (अत्यन्तम्) अतिशय (एति) प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—जिसने तीन बार नाचिकेत अग्निविद्या का अनुष्ठान किया है। अथवा।

'अयं वाव यः पवते'

इत्यादि तीन अनुवाक अध्ययन करनेवाला जो है वह, तथा यज्ञ अध्ययन और दान, इन तीन कर्मों को करनेवाला। क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि—

'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति'

(छा० उ० अ० २ खं० २३ श्रु० १)

यज्ञ, १ अध्ययन, २ दान, ३ ये तीन धर्म के स्कन्ध हैं ॥ १ ॥ या पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयज्ञ, इन तीन कर्मों को करनेवाला। माता पिता और आचार्य इन तीनों से संबन्ध को पाकर। क्योंकि बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'मातृमान्पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात् ॥'

(बृ० उ० अ० ४ ब्रा० १ श्रु० २)

माता पिता और आचार्य से शिक्षित पुरुष कहे ॥ २ ॥ अथवा तीन बार अनुष्ठान किया हुआ अग्नि से परमात्मा की उपासना के द्वारा संबन्ध को प्राप्त करके जीव जन्म और मरण को पारकर जाता है। स्तुति करने योग्य ज्ञानादि गुणवाला उपासक जीवात्मा को ब्रह्मात्मकता रूप से जानकर और ब्रह्मात्मक अपनी आत्मा को साक्षात्कार करके इस संसाररूप अनर्थ की शान्ति को अत्यन्त प्राप्त कर लेता है। यतिराज श्रीरामानुजाचार्य स्वामी ने

'त्रयाणामेवचैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥'

(शारीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की प्रथमवल्ली की सत्रहवीं श्रुति के पूर्वार्द्ध को उद्धृत किया है। और

'विशेषणाच्च ॥'

(शारीरकमी० अ० १ पा० २ सू० १२)

के श्रीभाष्य में प्रस्तुत श्रुति के उत्तरार्धको उद्धृत किया है। और स्पष्ट वहाँ पर श्रुत्यर्थ भी किया है ॥१७॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्यशोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

अन्वयार्थ —(त्रिणाचिकेतः) तीन बार नाचिकेत अग्नि विद्या का अनुष्ठान करने वाला (एतत्) इस (त्रयम्) परब्रह्म स्वरूप तथा ब्रह्मात्मक जीव स्वरूप और अग्नि स्वरूप, तीन स्वरूप को (विदित्वा) शास्त्र से या आचार्य के उपदेश से जानकर (यः) जो मुमुक्षु (एवम्) इस प्रकार (विद्वान्) जानने वाला (नाचिकेतम्) नाचिकेत अग्नि को (चिनुते) चयन करता है (सः) वह (मृत्यु पाशान्) राग द्वेष लक्षण रूप मृत्यु के पाशों को (पुरतः) शरीर पात से पहले हीं (प्रणोद्य) दूर करके (शोकातिगः) शोक से पार होकर (स्वर्गलोके) मोक्ष स्थान में (मोदते) आनन्द भोगता है ॥१८॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—तीन बार नाचिकेत अग्नि विद्या की उपासना करने वाला। अथवा—

'अयं वाव यः पवते ॥'

इत्यादि तीन अनुवाक का अध्ययन करने वाला।

ब्रह्मयज्ञं देवमीड्यम् ॥'

(क० उ० अ० १ श्रु० १७)

इस श्रुति से निर्दिष्ट परब्रह्मस्वरूप को और ब्रह्मात्मक स्वात्मस्वरूप को तथा।

'त्रिभिरेत्य सन्धिम् ॥'

(क० उ० अ० १ व० १ श्रु० १७)

इस श्रुति से निर्दिष्ट अग्निस्वरूप को शास्त्र से या सद्गुरु के उपदेश से जान कर जो कोई विद्वान् नाचिकेत अग्नि को चयन करता है वह रागद्वेषरूप मृत्यु के पाशों को शरीरपात से पहलेही दूर करके शोक से पार होकर आनन्द भोगता है। अध्यात्मशास्त्र में 'स्वर्ग' शब्द प्रायः परमपुरुषार्थ लक्षण मोक्षवाचक ही है। क्योंकि लिखा है कि—

'अपहत्य पाप्मानं अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति ॥'

(के० उ० खं० ४ श्रु० ६)

समस्त पापों को नष्ट करके अनन्त सबसे श्रेष्ठ मोक्ष स्थान प्रतिष्ठित हो जाता है ॥ ६ ॥

'अपि यन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता ॥'

(बृ० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० ८)

विमुक्त ब्रह्मवेत्ता लोग इससे ऊपर मोक्ष स्थान को प्राप्त कर लेते हैं ॥८॥ इन प्रमाणों से यहाँ पर 'स्वर्ग' का अर्थ मोक्ष स्थान होता है ॥१८॥

यो वाप्येतांब्रह्मजज्ञात्मभूतांचितिंविदित्वा चिनुतेनाचिकेतम् स एवभूत्वाब्रह्मजज्ञात्मभूतः करोति तद्येन पुनर्न जायते ॥१९॥

अन्वयार्थ— (यः) जो कोई (अपि) भी (वा) इस प्रकार से (एताम्) इस यमराज से कही हुई (चितिम्) अग्निचयन क्रिया को (ब्रह्मजज्ञात्मभूताम्) ब्रह्मात्मक स्वरूप को (विदित्वा) जानकर (नाचिकेतम्) नाचिकेत अग्नि को (चिनुते) चयन करता है (सः) वह पुरुष (एव) निश्चय करके (ब्रह्मजज्ञात्मभूतः) ब्रह्मात्मक स्वात्मस्वरूप को (भूत्वा) अनुभव करके (येन) जिस भगवान् की उपासना करने से (पुनः) फिर से (न) नही (जायते) उत्पन्न होता है (तत्) उस भगवदुपासना को (करोति) ब्रह्मात्मक स्वात्मानुसन्धानशाली पुरुष करता है ॥१९॥

विशेषार्थ—जो कोई भी यमराज से कही हुई इस अग्निचयन क्रिया को, और ब्रह्मात्मक स्वात्मस्वरूप को जानकर नाचिकेत अग्नि को चयन करता है, वह ब्रह्मात्मक स्वात्मानुसन्धानशाली उपासक पुरुष निश्चय करके जिस भगवदुपासना करने से फिर संसार में जन्म नहीं लेता है, उस भगवान् की उपासना को करता है। यह श्रुति बहुत ग्रन्थों में नहीं है, तो भी प्रक्षेप की शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि आस्तिकाग्रेसर विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के आचार्य व्यासादिक ने इस श्रुति की व्याख्या की है ॥१९॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण। एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासःतृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥२०॥

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (एषः) यह (ते) तुम्हारे लिये बतलायी हुई (स्वर्ग्यः) मोक्ष के साधक स्वरूपा (अग्नेः) अग्निविद्या है

(यम्) जिस अग्निविद्या को (द्वितीयेन) दूसरे (वरेण) वर से (अवृणीथाः) तुमने माँगा था अब से (जनासः) सब लोग (एतम्) इस (अग्निम्) अग्निविद्या को (तव) तुम्हारे (एव) ही नाम से (प्रवक्ष्यन्ति) कहेंगे (नचिकेतः) हेनचिकेता (तृतीयम्) तीसरे (वरम्) वर को (वृणीष्व) मांगो ॥२०॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता तुमने दूसरे वर से जिस अग्निविद्या को माँगा था उसी मोक्षोपायभूता अग्नि विद्या का वर्णन मैंने तुझसे किया है। सब लोग इस अग्निविद्या को तेरे ही नाम से कहेंगे। यह तुझसे प्रसन्न हुए मैंने बिना माँगे चौथा वर भी दे दिया है। हे नचिकेता अब तुम तीसरा वर माँगो ॥२०॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेश वरस्तृतीयः ॥२१॥

अन्वयार्थ—(मनुष्ये) मोक्षाधिकृत मनुष्य के (प्रेते) सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर तत्स्वरूपविषयक वादि विप्रतिपत्ति निमित अस्त्यात्मिका और नास्त्यात्मिका (या) जो (इयम्) यह (विचिकित्सा) सन्देह है कि (एके) एक (अयम्) यह (अस्ति) है (इति) ऐसा कहते हैं (च) और (एके) एक (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा कहते हैं अर्थात् मोक्ष के विषय में बहुत प्रकार का लोग संशय करते हैं (त्वया) तुम्हारे द्वारा (अनुशिष्टः) शिक्षा पाया हुआ (अहम्) मैं (एतत्) इस मोक्ष के यथार्थ स्वरूप को (विद्याम्) भली भाँति समझ लूँ (एषः) यही (वराणाम्) तीनों वरों में से (तृतीयः) तीसरा (वरः] वर है ॥२१॥

विशेषार्थ—नचिकेता कहता है कि—हे यमदेव मोक्षाधिकृत मनुष्य के सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर मोक्षस्वरूपविषयक जो यह सन्देह है कि—कोई कहते हैं कि—चित्तिमात्र आत्मा के स्वरूपोच्छित्ति लक्षण मोक्ष है, और कोई कहते हैं चित्तिमात्र के ही अविद्या के नाश लक्षण मोक्ष है, और कोई कहते हैं कि—पाषाणकल्प आत्मा के ज्ञानादिक समस्त वैशेषिक गुणों के उच्छेद लक्षण कैवल्यरूप मोक्ष है, कोई कहते हैं कि—शुद्ध अपहतपाप्मा परमात्मा उपाधि संसर्ग से जीव हो जाता है उस उपाधि के नाश के द्वारा ब्रह्मभाव लक्षण मोक्ष है, और कोई सज्जन कहते हैं—निखिल जगदेक कारण अशेषहेय प्रत्यनीक अनन्त ज्ञानानन्दैक-स्वरूप स्वाभाविक अनवधिक अतिशय असंख्येय कल्याणगुणाकर सकलेतर विलक्षण सर्वात्मभूत परब्रह्म नारायण के शरीरतया प्रकारभूत अनुकूल अपरिच्छिन्न ज्ञानस्वरूप के तथा परमात्मा के अनुभवैकरस जीवात्मा के अनादि कर्मरूप अविद्या के उच्छेदपूर्वक स्वाभाविक परमात्मा का अनुभव ही मोक्ष है। इस मोक्ष के विषय में अत्यन्त सन्देह है।

इसलिये आप ऐसा उपदेश दीजिये कि मैं अच्छी प्रकार से मोक्ष के स्वरूप को और मोक्ष के साधन को आप के प्रसाद से जान जाऊँ। बस तीनों वरों में से यही मेरा अभीष्ट तीसरा वर है। यतीन्द्र भगवद्रामानुजाचार्य

'विशेषणाच्च ॥'

(शारीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० १२)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय के प्रथम वल्ली की इक्कीसवीं श्रुति को उद्धत किये हैं। और—

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च'

(शारीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्री भाष्य में भी प्रस्तुत श्रुति को उद्धृत किये हैं। इस श्रुति में परमपुरुषार्थरूप ब्रह्मप्राप्ति लक्षण मोक्ष के याथात्म्य विज्ञान के लिए मोक्षोपायभूत परमात्मोपासन परावरात्मतत्व जानने की इच्छा से मुमुक्षु नचिकेता ने प्रश्न किया है। अर्थात् तीसरे वर से मोक्षस्वरूप के प्रश्न द्वारा उपेयस्वरूप तथा उपेतृस्वरूप और उपायभूत कर्मानुगृहीत उपासनास्वरूप को पूछा है ॥२१॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः। अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२२॥

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (अत्र) इस मुक्तात्मस्वरूप के विषय में (पुरा) पहले आदि युग में (देवैः) बहुदर्शी देवताओं ने (अपि) भी (विचिकित्सितम्) सन्देह किया था (हि) निश्चय करके (एषः) यह मोक्षस्वरूप (अणुः) बड़ा सूक्ष्म (धर्मः) धर्म है (सुज्ञेयम्) सहज में जानने योग्य (न) नहीं है। इसलिये (अन्यम्) दूसरे (वरम्) वर को (वृणीष्व) तुम माँग लो (मा) मुझको (मा) मत (उपरोत्सीः) रोको (एनम्) इस वर को (मा) मेरे प्रति (अतिसृज) लौटा दो या छोड़ दो ॥२२॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता इस मुक्तात्मस्वरूप के विषय में पहले एक समय बहुदर्शी देवता भी संदेह में पड़ गये थे। और प्राणी तो इसको सुनकर भी नहीं समझ सकेंगे। यह मुक्तात्मतत्त्व बड़ा ही सूक्ष्म धर्म है। इसलिए हे अतिथि देव किसी स्पष्ट फल वाले दूसरे वर को तुम माँग लो। जैसे धनी कर्जदार को रोकता है वैसे मुझ को मत रोको। इस वर को मेरे लिये ही छोड़ दो। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—धर्म किसको कहते हैं। इसका उत्तर यह लिखा है कि—

'चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः'

(मीमांसा० अ० १ पा० १ सू० २)

'प्रेरणा' लक्षण अर्थ धर्म है ॥२॥

'यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिस्सः धर्मः'

(वैशेषिक० अ० १ आह्निक० १ सू० २)

जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि हो वह धर्म है ॥२॥ उस धर्म का स्वरूप दश प्रकार का है। यह नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

(नारदपरिव्रा० उ० उपदेश० ३ श्रु० २४)

धीरता १, क्षमा २, मनरोकना ३, अन्याय से दूसरे का धन न लेना ४, पवित्र ५, इन्द्रियों को रोकना ६, बुद्धि ७, आत्मज्ञान ८, सच्चा बोलना ९ और क्रोध नहीं करना १०, ये दश धर्म के लक्षण हैं ॥२४॥ यह श्रुति के मनुस्मृ० अ० ६ श्लो० ॥९२॥ में भी है। देवता के विषय में जिसको जानना हो वह "श्रीवचनभूषण" की मेरी बनाई हुई "चिन्तामणि" टीका को देख ले ॥२२॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्नसुज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्योवरस्तुल्यएतस्य कश्चित् ॥२३

(मृत्यो) हे यमराज (अत्र) इस मुक्तात्म स्वरूप के विषय में (देवैः) इन्द्रादिक देवताओं ने (अपि) भी (विचिकित्सितम्) संदेह पहले किया था (च) और (त्वम्) तुम (यत्) जिस मुक्तात्मतत्त्व (सुज्ञेयम्) सहज में जानने योग्य (न) नहीं है (आत्थ) ऐसा कहते हो (किल) यह ठीक है और (अस्य) इस मुक्तात्मतत्त्व का (वक्ता) उपदेश देनेवाला (त्वादृक) तुम्हारे समान (अन्यः) दूसरा (न) नहीं (लभ्यः) मिल सकता है, इसलिये मेरी समझ में तो (अन्यः) दूसरा (कश्चित्) कोई भी (वरः) वर (एतस्य) इस मुक्तात्मतत्त्व जिज्ञासा के (तुल्यः) समान (न) नहीं है ॥२३॥

विशेषार्थ—नचिकेता ने कहा कि—हे यमदेव पहले इस मुक्तात्म स्वरूप के विषय में देवताओं ने भी संदेह किया था। और आप भी मुझ से कहते हैं कि—यह मुक्तात्मतत्त्व सहज में नहीं जाना जा सकता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म है और ऐसे महत्वपूर्ण विषय को समझाने वाला आप

के समान कोई भी वक्ता खोजने पर मुझे नहीं मिलेगा। आप कहते हैं कि—इसे छोड़ कर दूसरा वर माँग लो। परन्तु मैं तो समझता हूँ कि इसके समान दूसरा वर नहीं है। इससे कृपा पूर्वक इसी वर को दीजिये ॥२३॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान्। भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२४॥

अन्वयार्थ—(शतायुषः) सौ वर्ष की आयुवाले (पुत्रपौत्रान्) बेटे और पोतों को तथा (बहून्) बहुत से (पशून्) गौ आदि पशुओं को तथा (हस्तिहिरण्यम्) हाथी और सुवर्ण को और (अश्वान्) घोड़ो को (वृणीष्व) माँग लो और (भूमेः) पृथ्वी के (महत्) बड़ेभारी या विस्तीर्ण (आयतनम्) मण्डल साम्राज्य को (वृणीष्व) मांग लो (च) और (स्वयम्) तुम स्वयं भी (यावत्) जितने (शरदः) वर्षों तक (इच्छसि) जीना चाहते हो (जीव) उतने वर्षों तक जीते रहो ॥२४॥

विशेषार्थ—विषय की कठिनता से मुमुक्षु नचिकेता नहीं घबराया तब उसके सामने विभिन्न प्रकार की प्रलोभन के वस्तुओं को यमराज ने कहा कि हे नचिकेता तुम सौ सौ वर्ष जीनेवाले बेटे और पोते आदिक बड़े परिवार को माँग लो। गौ आदि बहुत से उपयोगी पशुओं को और हाथी तथा सोना और घोड़ों को माँग लो और पृथ्वी के बड़े विस्तारवाले मण्डल चक्रवर्त्ती राज्य को माँग लो। अथवा विचित्र शाला प्रसाद आदि से युक्त घर को माँग लो। इन सबों को भोगने के लिये जितने वर्षों तक जीने की इच्छा हो उतने वर्षों तक जीते रहो। यतिचक्र-चूडामणि श्री रामानुजाचार्य स्वामी ने

‚निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॥'

(शारीरकमी० अ० ३ पा० २ सू० २)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की प्रथम वल्ली की चौबीसवीं श्रुति के प्रथमपाद को उद्धृत किया है ॥२४॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरंवृणीष्ववित्तं चिरजीविकां च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२५॥

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (यदि) जो (त्वम्) तुम (वित्तम्) धन संपत्ति को (च) और (चिरजीवकाम्) चिरकाल तक जीने को

अथवा अनन्त काल तक जीने के साधनों को (एतत्तुल्यम्) इस मुक्तात्मतत्त्व ज्ञान के समान (वरम्) वर को (मन्यसे) मानते हो तो (वृणीष्व) माँग लो और (महाभूमौ) इस श्रेष्ठ पृथ्वीलोक में (एधि) तुम बड़े भारी सम्राट् बन जाओ (त्वा) तुमको (कामानाम्) इच्छित विषयों के (कामभाजम्) इच्छानुसार भोगनेवाला-अत्युत्तम भोगों का पात्र (करोमि) मैं करता हूँ ॥२५॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता मुक्तात्मतत्त्व ज्ञान के समान यदि तुम किसी दूसरे वर को समझते हो तो उस वर को माँग लो। सुवर्ण रत्न आदिक बहुत सा धन को माँग लो। बहुत समय तक जीने के लिये बड़ी आयु को माँग लो। तुम इस विशाल भूमि का सम्राट् बन जाओ। मैं तुमको समस्त भोग भोगनेवाला अत्युत्तम पात्र बना देता हूँ ॥२५॥

ये ये कामा दुर्लभ मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (ये) जो (ये) जो (कामाः) विषय भोग (मर्त्यलोके) मनुष्य लोक में (दुर्लभ) हैं (सर्वान्) उन समस्त (कामान्) भोगों को (छन्दतः) अपनी इच्छानुसार (प्रार्थयस्व) माँग लो और (सरथाः) रथों के सहित (सतूर्याः) नाना प्रकार के बाजों के सहित (इमाः) इन (रामाः) स्त्रियों को अर्थात् स्वर्ग की अप्सरओं को भी स्वेच्छानुसार माँग लो (मनुष्यैः) मनुष्यों करके (हि) निश्चय (ईदृशाः) ऐसी स्त्रियाँ (न) नहीं (लम्भनीयाः] पाने योग्य हैं (मत्प्रत्ताभिः) मेरे द्वारा दी हुई (आभिः) इन स्त्रियों से (परिचारयस्व) तुम पाद संवाहनादिक अपनी सेवा कराओ (मरणम्) सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर मुक्तात्मस्वरूप-विषयक प्रश्न को (मा) मत (अनुप्राक्षीः) मुझसे पूछो ॥२६॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता जो जो भोग मृत्युलोक में दुर्लभ हैं उन सबको तुम अपने इच्छानुसार माँग लो। जो मनुष्यों को प्राप्त नहीं हो सकतीं ऐसा रथों में बैठी हुई नाना प्रकार के बजाओं के सहित सुन्दर अप्सराओं को माँग लो और मेरी दी हुई अप्सराओं से सब प्रकार की सेवा कराओ परन्तु सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर मुक्तात्मस्वरूप विषय प्रश्न मुझसे मत पूछो। श्रीपूज्यपाद भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च।'

(शरीरक मी० अ० ३ पा० २ सू० २)

के श्रीभाष्य में 'कठोपनिषद्' के प्रथमाध्याय की प्रथमवल्ली की छब्बीसवीं श्रुति के 'सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व' इन पदों को उद्धृत किया है ॥२६॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२७॥

अन्वयार्थ—(अन्तक) हे यमराज जिन भोगों का आपने वर्णन किया है वे (श्वोभावाः) कल को न रहनेवाले क्षणभङ्गुर भोग और उन से प्राप्त होनेवाले सुख (मर्त्यस्य) मनुष्य के (सर्वेन्द्रियाणाम्) समस्त इन्द्रियों के (तेजः) तेज को (जरयन्ति) क्षीण करते हैं और (यत्) जो (सर्वम्) समस्त (जीवितम्) जीवन है (एतत्) यह (अपि) भी (अल्पम्) थोड़ा ही (एव) निश्चय करके है इसलिये (तव) आपके (वाहाः) रथ आदिक ये वाहन और (नृत्यगीते) अप्सराओं के नाच तथा गान (तव) आप के ही (एव) निश्चय करके पास में रहें ॥२॥

विशेषार्थ—मुमुक्षु नचिकेता ने कहा कि—हे सबका अन्त करनेवाले यमराज तुम्हारे दिये हुए भोग के पदार्थ न जाने कल को रहेंगे या नहीं इसका कोई ठिकाना नहीं है। क्योंकि ये क्षणभङ्गुर हैं और यह अप्सरादिक भोग मनुष्यों की समस्त इन्द्रियों के तेज को तथा धर्म को नाश करने वाले हैं। इनके संयोग से प्राप्त होनेवाला सुख वास्तविक में सुख नहीं है। क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥'
(गी० अ० ५ श्लो० २२)

विषय और इन्द्रियों के संसर्ग से उत्पन्न होनेवाले जो भोग हैं वे दुःख की योनियाँ हैं और आदि अन्तवाले हैं, इससे हे अर्जुन यथार्थ स्वरूप को जाननेवाला पुरुष उनमें नहीं रमता है ॥२२॥ और नारदपरिव्राजकोपनिषद् में लिखा है—

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥'
(नारदप० उपदेश० ३ श्रु० ३७)

विषयभोगों की कामना भोगों के उपभोग से कदापि शान्त नहीं होती। भोग से तो वह उल्टे बढ़ती ही है—ठीक उसी तरह जैसे हवि डालने से आग और भी प्रज्वलित हो उठती है ॥३७॥

'अस्थिस्थूणं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥४६॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥४७॥
मांसासृक्पूयविण्मूत्र स्नायुमज्जास्थिसंहतौ ।
देहे चेत्प्रीतिमान्मूढोभविता नरकेऽपि सः ॥४८॥
सा कालपुत्रपदवी सा महावीचिवागुरा ।
सासिपत्रवनश्रेणी या देहेऽहमिति स्थितिः ॥४६॥
सा त्याज्या सर्वयत्नेन सर्वनाशेऽप्युपस्थिते ।
स्प्रष्टव्या सा न भव्येन स श्वमांसेव पुल्कसी ॥५०॥

इस शरीर में हड्डियों के खंभे लगे हैं। स्नायु जाल की डोरी से यह बंधा है। मांस और रक्त इसपर थोप दिया गया है। यह चमड़ा से मढ़ा हुआ है। यह मल और मूत्र से सदा ही पूर्ण रहता है। इससे दुर्गन्ध निकलती रहती है ॥४६॥ बुढ़ापे और शोक से व्याप्त होने के कारण यह सदा आतुर-असमर्थ रहता है। यह रोगों का घर है। वीर्य और रज से उत्पन्न होने से यह रजस्वल है और साथ ही अनित्य भी है। इसमें पाँच भूत सदा ही डेरा डाले रहते हैं। अतः इसे त्याग दें ॥४७॥ यदि मूर्ख मनुष्य माँस, रक्त, पीव, मल, मूत्र, नाडी, मज्जा और हड्डियों के समुदाय भूत शरीर में प्रेम करता है तो वह नरक में भी अवश्य प्रेम करेगा ॥४८॥ इस शरीर में जो अहं भाव है वही कालसूत्र नामक नरक का मार्ग है, वही महावीचि नामक नरक में ले जाने के लिये त्रिछा हुआ जाल है तथा वही असिपत्रवन नामक नरक की श्रेणी है। जो शरीर में अहंभाव है ॥४६॥ शरीर में होनेवाली अहंता कुत्ते का मांस लेकर चलनेवाली चाण्डालिनी के समान है। इससे उसको सब प्रकार के यत्नों द्वारा त्याग दें। सर्वनाश उपस्थित हो तो भी कल्याणकारी पुरुष को उसका स्पर्श तक नहीं करना चाहिये ॥५०॥

न संभाषेत्स्त्रियं काश्चित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥

(नारदप० उ० उपदेश ४ श्रु० ३)

एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः ।
चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति ॥४॥

किसी भी स्त्री से बातचीत न करे। पहले की देखी हुई स्त्री का स्मरण न करे। स्त्री की चर्चा से भी दूर रहे और यत्नशील स्त्रियों का चित्र भी न देखे ॥ ३ ॥ संभाषण १, स्मरण २, चर्चा ३, और चित्रावलोकन ४, स्त्रीसंबन्धी इन चार बातों का जो मोहवश आचरण करता है, उसके चित्त से अवश्य ही विचार उत्पन्न होता है। उस विकार से उसका नाश निश्चय ही हो जाता है ॥ ४ ॥

'त्वङ्मांशरुधिरस्नायुमज्जामेदोस्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां क्रिमीणां कियदन्तरम् ॥२६॥
क्वशरीरमशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः ।
क्वचाङ्गशोभासौभाग्यकमनीयादयो गुणाः ॥२७॥
मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थि संहतौ ।
देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो भविता नरकेऽपि सः ॥२८॥
स्त्रीणामवाच्यदेशस्य क्लिन्ननाडीव्रणस्य च ।
अभेदेपि मनो भेदाज्जनः प्रायेण वञ्च्यते ॥२९॥
चर्मखण्डं द्विधा भिन्नमपानोद्गारधूपितम् ।
ये रमन्ति नमस्तेभ्यः साहसं किमतः परम् ॥'३०॥

चमड़ी, माँस, रक्त, नाड़ी, मज्जा, मेद और हड्डियों के समुदायरूप इस शरीर में रमने वाले पुरुषों, तथा मल, मूत्र और पीब, में रमने वाले कीड़ों में कितना अन्तर है ॥ २६ ॥ संपूर्ण कफ आदि घृणित वस्तुओं की महाराशि रूप यह शरीर कहाँ, और अङ्ग शोभा सौन्दर्य एवं कमनीयता आदि गुण कहाँ, ॥ २७ ॥ मूर्ख मनुष्य मांस, रक्त, पीब, विष्ठा, मूत्र, नाडी, मज्जा और हड्डियों के समुदायरूप इस शरीर में यदि प्रीति करता है तो नरक में भी उसको अवश्य प्रीति होगी ॥ २८ ॥ स्त्रियों के उच्चारण न करने योग्य गुप्त अङ्ग और सड़ी हुए नाडी के घाव में कोई भेद न होने पर भी मनुष्य अपने मन की मान्यता के भेद से प्रायः ठगा जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियों का वह गुप्त अङ्ग क्या है—दो भागों में विदीर्ण हुआ चर्मखण्डमात्र। वह भी अपान वायु के निकलने से दुर्गन्धपूर्ण रहता है। जो लोग उस में रमण करते हैं उन्हें नमस्कार है, भला इससे बढ़ कर दुस्साहस और क्या हो सकता है ॥ ३० ॥

'माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति ।
तस्माद् दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ॥

(नारदप० उ० उपदेश ६ श्रु० ३१)

सम्भाषणं सह स्त्रीभिरालापः प्रेक्षणं तथा ।
नृत्तं गानं सहासं च परिवादांश्च वर्जयेत् ॥३१॥

मनुष्य मदिरा को तो पीने पर मतवाला होता है परन्तु तरुणी स्त्री को देख कर ही उन्मत्त हो जाता है। इसलिये दर्शन मात्र से विष का-सा प्रभाव डालने वाली स्त्री को दूर से ही त्याग दे ॥३१॥ स्त्रियों के साथ बातचीत करना, उनके पास संदेश भेजना, नाचना, गाना, हासपरिहास करना तथा परायी निन्दा करना इन सब का त्याग कर दे ॥३२॥ और आप बड़ी आयु जो देते हैं सो आयु ब्रह्मा को भी थोड़ी है। क्योंकि एक दिन उन्हें भी मरना पड़ता है। यह लिखा है—

'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥'

(गी० अ० ८ श्लो० १६)

हे अर्जुन ब्रह्मा के लोक से लेकर सभी लोक पुनरावृत्तिशील-नाशवान् हैं ॥१६॥ इससे मैं यह सब नहीं चाहता। ये आपके रथ, हाथी, घोड़े, ये अप्सरायें और नाच, गान, आप अपने ही पास रखें ॥२७॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स-एव ॥२८॥

अन्वयार्थ—(मनुष्यः) मनुष्य (वित्तेन) धन से (न) नहीं (तर्पणीयः) तृप्त होनेवाला है (चेत्) जब कि (त्वा) तुमको (अद्राक्ष्म) हम देख चुके हैं तब तो (वित्तम्) धन को (लप्स्यामहे) हम पाही लेंगे और (त्वम्) तुम (यावत्) जबतक (ईशिष्यसि) राजशासन करते रहोगे तबतक तो (जीविष्यामः) हम जीते ही रहेंगे इससे (मे) मेरे (वरणीयः) माँगने योग्य (वरः) वर (तु) तो (सः) वह मुक्तात्मस्वरूप विषयक (एव) निश्चय करके है ॥२८॥

विशेषार्थ—मुमुक्षु नचिकेता ने कहा कि—हे यमदेव चाहे कितना ही धन मिल जाय परन्तु धन से मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता है और मुझे जीवन निर्वाह के लिये जितने धन की आवश्यकता होगी उतना तो आपके दर्शन से ही प्राप्त हो जायगा तथा जबतक यमराजपदपर आप का शासन रहेगा तबतक मैं जीता रहूँगा। क्योंकि आपके पास आकर भी क्या किसी को धन और आयु की कमी रह सकती है? कदापि नहीं। अब मेरे माँगने योग्य वर तो मुक्तात्मस्वरूप विषयक ही है। मैं उसे लौटा नहीं सकता ॥२८॥

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्व तदास्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदाननतिदीर्घजीविते को रमेत॥२६॥

अन्वयार्थ—(अजीर्यताम्) जरा मरण शून्य (अमृतानाम्) मुक्त जीवों के (उपेत्य) स्वरूप को जानकर (प्रजानन्) तत्त्व को भलीभाँति समझनेवाला विवेकी पुरुष (जीर्यन्) जरा मरण से जीर्ण होनेवाला (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (तदास्थः) जरा मरण आदिक से युक्त अप्सरा प्रभृति विषय के विषयक आस्था-तत्परतावाला (क्व) कैसे करेगा (वर्णरतिप्रमोदान्) मोक्षस्थान में आदित्यवर्ण आदि मङ्गलमय विग्रह विशेष को और ब्रह्म भोगादि जनित आनन्द विशेष को (अभिध्यायन्) अच्छी प्रकार से चिन्तवन—या निरूपण करता हुआ (अनतिदीर्घजीविते) अत्यल्प ऐहिक जीवन में (कः) कौन सज्जन (रमेत) प्रेम करेगा ॥२६॥

विशेषार्थ—नचिकेता ने कहा कि—हे यमराज जिनकी आयु की हानि नहीं होती ऐसे जरा मरण रहित मुक्तात्माओं के स्वरूप को जानकर तत्त्व को भलीभाँति समझनेवाला विवेकी पुरुष जरा मरणवाले अविवेकियों के माँगने योग्य स्त्री, पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़ा, राज्य, धन आदिक नाश होने वाले पदार्थों को कैसे माँगेगा ? क्योंकि लिखा है—

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

(गी० अ० २ श्लो० ८)

पृथ्वी की सब ओर से समृद्ध निष्कण्टक राज्य पाकर अथवा देवताओं का आधिपत्य मिलने पर भी मैं उस उपाय को नहीं देख रहा हूँ जो इन्द्रियों को सुखाने वाला मेरे शोक को दूर कर सके ॥८॥ और सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर—

'आदित्यवर्णम्'

(यजुर्वे० अ० ३१ मं० १८)

इस श्रुति के अनुसार आदित्यवर्ण और

'यत्तेरूपं कल्याणतमम्'

(ई० उ० श्रु० १६)

जो आपका दिव्यमङ्गलमय विग्रह है ॥१६॥ इस श्रुति के अनुसार दिव्य मङ्गलमय विग्रह विशेष को और परब्रह्म के भोगादिजनित आनन्द विशेष को अच्छी प्रकार से अनुभव करता हुआ अत्यल्प ऐहिक जीवन में कौन मुमुक्षु प्रेम करेगा। इसलिये मुझको अनित्य विषयों के लोभ में न डालकर मैंने जो वर माँगा है, उस मुक्तात्मस्वरूप को ही कृपा करके सुनाइये ॥२६॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्तिमृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि न स्तत् । योयं वरो गूढमनु प्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥३०॥

॥ इति प्रथमाध्याये प्रथमवल्ली ॥

अन्वयार्थ—(मृत्यो) हे यमराज (यत्) जो (इदम्) यह (यस्मिन्) जिस सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर (महति) बड़ा भारी (सम्पराये) परलोक सम्बन्धी मुक्तात्मस्वरूप के विषय में (विचिकित्सन्ति) सन्देह करते हैं (तत्) उसको (नः) हमारे लिये (ब्रूहि) आप कहिये (यः) जो (अयम्) यह (गूढम्) अत्यन्त गम्भीरता से बिचार करने योग्य (वरः) वर (अनुप्रविष्टः) चित्त में प्रविष्ट हुआ है (नचिकेता) नचिकेता (तस्मात्) उस मुक्तात्मस्वरूप से (अन्यम्) दूसरे वर को (न) नहीं (वृणीते) माँगता है ॥३०॥

विशेषार्थ—नचिकेता ने कहा कि—हे यमराज सर्वबन्धविनिर्मुक्त होने पर बड़े भारी परलोक सम्बन्धी मुक्तात्मस्वरूप के विषय में देवता लोग भी सन्देह करते हैं । इसलिये इस संदेह को दूर करने वाला मुक्तात्मस्वरूप विषयक विज्ञान को मुझ से कहिये । यह मुक्तात्मस्वरूप विषयक वर अत्यन्त गूढ है । इसको जानने के लिये मेरा चित्त उत्कण्ठित हो रहा है । इस कारण से यह सत्य है कि—यह नचिकेता इस मुक्तात्मस्वरूप विज्ञान के अतिरिक्त दूसरा कोई वर नहीं चाहता है । यहाँ पर "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की प्रथमवल्ली समाप्त हो गई ॥३०॥

॥ अथ द्वितीयवल्ली ॥

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवतिहीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयोवृणीते ॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रेयः) कल्याण का साधन—अतिप्रशस्तमोक्षमार्ग (अन्यत्) अलग है (उत) और (प्रेयः) प्रिय लगनेवाला भोग मार्ग भी (अन्यत्) अलग (एव) निश्चय करके है (ते) वे श्रेय और प्रेय (नानार्थे) परस्पर विलक्षण-भिन्न-भिन्न फल देनेवाले (उभे) दोनों—मोक्षमार्ग और भोगमार्ग (पुरुषम्) पुरुष को (सिनीतः) बाँधते हैं—अर्थात् अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं (तयोः) उन दोनों में (श्रेयः) कल्याण का साधन—अतिप्रशस्त मोक्षमार्ग को (आददानस्य) ग्रहण करनेवाले का (साधु) कल्याण (भवति) होता है और (उ) निश्चय करके (यः) जो

पुरुष (प्रेयः) प्रिय लगनेवाला भोगमार्ग को (वृणीते) स्वीकार करता है वह (अर्थात्) पुरुषार्थ से (हीयते) भ्रष्ट हो जाता है ॥११॥

विशेषार्थ—इस प्रकार परीक्षा करने पर नचिकेता को उत्तमाधिकारी समझ कर यमराज ने कहा कि—अतिप्रशस्त मोक्षमार्ग अन्य वस्तु है और प्रिय लगनेवाला भोगमार्ग भी एक अलग ही वस्तु है। ये दोनों जुदे जुदे पदार्थ हैं और इनके प्रयोजन भी भिन्न भिन्न हैं। ये दोनों वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले अधिकारी पुरुष को बाँधते हैं। इन दोनों में से जो श्रेयरूप मोक्षमार्ग का ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है। अर्थात् वह संसार बन्धन से छूट जाता है और जो मूढ़ पुरुष प्रेमरूप भोगमार्ग को ग्रहण करता है वह परमपुरुषार्थरूप मोक्ष से भ्रष्ट हो जाता है ॥१॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दोयोगक्षेमाद्- वृणीते ॥२॥

अन्वयार्थ—(श्रेयः) कल्याणकारक अतिप्रशस्त मोक्षमार्ग (च) और (प्रेयः) प्रिय लगनेवाला भोगमार्ग (च) भी ये दोनों ही (मनुष्यम्) मनुष्य को (एतः) प्राप्त करते हैं (धीरः) विवेकी पुरुष (तौ) श्रेय और प्रेय उन दोनों पदार्थों को (संपरीत्य) भलीभाँति विचार करके (विविनक्ति) नीर क्षीर को हंस के समान अलग अलग करता है और (धीरः) वह प्राज्ञ मनुष्य (प्रेयसः) प्रिय लगनेवाले भोगमार्ग से (अभि) श्रेष्ठ (श्रेयः) परमकल्याणकारक —अतिप्रशस्त मोक्षमार्ग को (हि) निश्चय करके (वृणीते) ग्रहण करता है, परन्तु (मन्दः) मन्द बुद्धिवाला मूढ़ मनुष्य (योगक्षेमात्) शरीर के उपचयरूप योग और शरीर के परिपालन रूप क्षेम के कारण से (प्रेयः) प्रिय लगनेवाले भोगमार्ग को (वृणीते) ग्रहण करता है ॥२॥

विशेषार्थ—श्रेय और प्रेय ये दोनों ही मनुष्यों के सामने आते हैं। तब वे इन दोनो के गुण दोषों पर विचार करके दोनों को अलग अलग समझने की चेष्टा करते हैं। इनमें जो श्रेष्ठ बुद्धि संपन्न होता है वह तो दोनों के तत्त्व को पूर्णतया समझ कर नीर क्षीर विवेकी हंस की तरह प्रेय की उपेक्षा करके श्रेय को ही ग्रहण करता है और अल्प बुद्धिवाला अधीर पुरुष विवेकशक्ति के न होने से योगक्षेम अर्थात् शरीर की वृद्धि और शरीर की रक्षा के लिये स्त्री, पुत्र, पशु, धन आदि के प्रेय पदार्थों को ही ग्रहण करता है ॥२॥

स त्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (सः) वह (त्वम्) तुम (प्रियान्) प्रिय लगनेवाले पुत्र धन आदि को (च) और (प्रियरूपान्) अत्यन्त सुन्दर रूपयुक्त अप्सरा आदिक को तथा (कामान्) इस लोक और देवलोक के समस्त भोगों को (अभिध्यायन्) दुःखोदर्क दुःखमिश्र आदिक दोष से युक्त भलीभाँति समझ कर (अत्यस्राक्षीः) तुम छोड़ दिया (एताम्) एस विमूढजन सेवत (वित्तमयीम्) रत्नमयी-सम्पत्ति रूप (सृङ्काम्) शृङ्खला या माला को (न) नहीं (अवाप्तः) तुम प्राप्त हुए हो (यस्याम्) जिस वित्तमयी माला में (बहवः) बहुत से (मनुष्याः) मनुष्य (मज्जन्ति) आसक्त हो जाते हैं ॥३॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता मैंने तुझको बार बार लोभ दिखाया तौभी प्रिय पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़ा, गौ, रथ, धन, संपत्ति, भूमिराज्य आदि और प्यारे लगनेवाले अप्सरा नृत्य वाद्य आदि भोगों की अनित्यता को तथा दुःखोदर्क दुःखमिश्र आदिक दोषयुक्तता को विचार कर तुमने उस समस्त भोगों को त्याग दिया है। बहुत से अपने को बड़े चतुर विवेकी और तार्किक माननेवाले लोग भी जिस चमक दमकवाली संपत्ति के मोह जाल में फँस जाते हैं। तुम उसमें नहीं फँसे इस कारण से तुम अवश्य ही मुक्तात्मस्वरूप को श्रवण करने का सर्वोत्तम अधिकारी हो ॥३॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता। विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(या) जो कामकर्मात्मिका (अविद्या) अविद्या नाम से (ज्ञाता) जानी गई है (च) और जो वैराग्यतत्त्व ज्ञानमयी (विद्या) विद्या नाम से (इति) इस प्रकार जानी गई है (एते) ये दोनों (दूरम्) अत्यन्त (विपरीते) परस्पर विरूद्ध स्वभाववाली (विषूची) और भिन्न भिन्न फल देनेवाली हैं (नचिकेतसम्) तुझ नचिकेता को (विद्याभीप्सितम्) विद्या का ही अभिलाषी (मन्ये) मैं मानता हूँ क्योंकि (त्वा) तुमको (बहवः) बहुत से (कामाः) भोग के विषय (न) नहीं (अलोलुपन्त) लुभा सके। अर्थात् विषयवश तुम नहीं हो सका ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—वैराग्यतत्त्व ज्ञानमयी विद्या और कामकर्मात्मिका अविद्या यह दोनों तेज और अन्धकार के समान परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पदार्थ हैं तथा इन दोनों के फल भी भिन्न प्रकार के हैं। अविद्या का फल प्रेय विषयभोग और विद्या का फल श्रेय-मोक्ष है। ऐसा आचार्य लोग कहते हैं। हे नचिकेता तुमको मैं विद्या का अभिलाषी मानता हूँ क्योंकि बहुत से बड़े बड़े भोग भी तुम्हारे मन में किंचिन्मात्र भी लोभ नहीं उत्पन्न कर सके। इस कारण से तुम विद्या का उत्तमाधिकारी मुमुक्षु हो ॥ ४ ॥

अविद्यायामन्तरेवर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैवनीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(अविद्यायाम्) काम्यकर्मात्मिका अविद्या के (अन्तरे) मध्य में (वर्तमानाः) वर्तमान (स्वयम्) अपने आप (धीराः) प्रज्ञाशाली-बुद्धिमान् और (पण्डितम्) शास्त्रकुशल-पण्डित (मन्यमानाः) माननेवाले (मूढाः) भोग की इच्छा करनेवाले वे अविवेकी मूर्ख (अन्धेन) अन्धे मनुष्य करके (एव) निश्चय (नीयमानाः) लेजाए जाते हुए (अन्धाः) अन्धे मनुष्य के (यथा) समान (दन्द्रम्यमाणाः) जरा रोगादि दुःखपीड़ित नाना योनियों में चारो ओर भटकते हुए (परियन्ति) अच्छी प्रकार से भ्रमण करते रहते हैं ॥५॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—काम्यकर्मात्मिका अविद्या के भीतर पड़े हुए मूढ़ भोग की इच्छा करनेवाले अविवेकी मनुष्य अपने आप बुद्धिमान् और शास्त्रकुशल पण्डित माननेवाले अज्ञानी जरा मरण रोग आदि दुःखों के कारण अति कुटिल अनेक योनियों में दुर्दशाओं को भोगते हुए चारो ओर घूमते रहते हैं। जैसे अन्धे मनुष्य को मार्ग दिखानेवाला भी अन्धा ही है। ऐसे अपने इच्छित स्थान को जाते हुए अन्धे गढ़े और काँटों के दुर्गम मार्ग में पड़ जाते हैं। वैसे ही वह पण्डितमानी भी बड़े कष्टों में पड़ जाते हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि पण्डित किसको कहते हैं। इसका उत्तर श्रीमद्भागवद्गीता में लिखा है—

'यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥'

(गी० अ० ४ श्लो० १६)

जिसके समस्त कर्म कामना और संकल्प से रहित हैं उस ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध हुए कर्मोंवाले पुरुष को बुधजन पण्डित कहते हैं ॥१६॥ इससे विपरीत वस्तुतः पण्डित नहीं हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

न साम्परायःप्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् । अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।६।

(वित्तमोहेन) धन-संपत्ति के मोह से (मूढम्) मोहित अविवेकी (प्रमाद्यन्तम्) निरन्तर प्रमाद करने वाले अनवहितमनस्क (बालम्) बालक—अज्ञानी को (साम्परायः) परलोक (न) नहीं (प्रतिभाति) सूझता है—या अच्छा लगता है । वह समझता है कि (अयम्) यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला ही (लोकः) लोक सत्य है (परः) इससे दूसरा स्वर्ग नरक आदिक लोक (न) नहीं (अस्ति) है । (इति) इस प्रकार (मानी) माननेवाला अभिमानी मनुष्य (पुनः पुनः) बार बार (मे) यमराज के (वशम्) वश मे (आपद्यते) प्राप्त होता है ।। ६ ।।

विशेषार्थ—धन संपत्ति—तथा विषयों की आशा से वशीकृत मनोरथ अनवहितमनस्क निरन्तर प्रमाद करनेवाले अविवेकी पुरुष को परलोक नहीं सूझता है । वह अज्ञानी प्रत्यक्ष दीखनेवाला लोक को ही मानता है । इस लोक से दूसरा स्वर्ग नरक आदिक लोक नहीं है ऐसा वह मूर्ख मानता है । इस कारण से वह अविवेकी मेरे यमराज के चंगुल में बार बार पड़ता है और उसके जन्ममरण का चक्र नहीं छूटता है । यमराज के विषय में लिखा है—

'वैवस्वतं संगमनं जनानाम् ।'

(ऋग्वे० मं० १० अ० १ सू० १४ म० १)

सूर्य के पुत्र यमराज सब जनों के संगमन स्थान हैं ।।१।। और भी लिखा है—

'सर्वे चैते वशं यान्ति यमस्य भगवन् किल ।'

(विष्णुपु० अंश० ३ अध्या० ७ श्लो० ५)

हे भगवन् ये सब जन यमराज के वश में जाते हैं ।। ५ ।। श्रीपूज्यपाद भगवद्रामानुजचार्य स्वामी ने

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ।

(शारीरकमी० अ० ३ पा० १ सू० १३)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की छठवीं श्रुति के उत्तरार्ध को उद्धृत किया है ।। ६ ।।

श्रवणायापि बहुभिर्योनलभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।७।।

अन्वयार्थ—(यः) जो मुक्तात्मतत्त्व (बहुभिः) बहुत पुरुषों करके (श्रवणाय) सुनने के लिये (अपि) भी (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त हो सकता है (शृण्वन्तः) आत्मतत्त्व को सुनते हुए (अपि) भी (बहवः) बहुत से लोग (यम्) जिस आत्मा को (न) नहीं (विद्युः) जान सकते हैं (अस्य) इस गूढ आत्मतत्त्व का (कुशलः) बड़ा चतुर (वक्ता) कहनेवाला (आश्चर्यः) अचरजरूप बड़ा दुर्लभ है और इस आत्मतत्त्व का चतुर (लब्धा) पानेवाला-प्राप्ता भी आश्चर्यमय बड़ा दुर्लभ है और (कुशलानुशिष्टः) जिसे तत्त्व की उपलब्धि हो गयी है ऐसे चतुर आचार्य के द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ (ज्ञाता) आत्मतत्त्व को जाननेवाला (आश्चर्यः) आश्चर्यरूप परम दुर्लभ है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—विषयासक्त प्रत्यक्षवादी मूर्खों की पूर्वोक्त प्रकार से निन्दा करके अब यमराज कहते हैं कि—हे नचिकेता इस आत्मतत्त्व को सुनने की इच्छावाले बहुत नहीं होते हैं और थोड़े से सुनने के अभिलाषियों में भी संस्कारहीन मन्दभाग्यवाले सुनकर भी आत्मा को जान नहीं सकते हैं तथा आत्मतत्त्व का उपदेश देनेवाले सद्गुरु का मिलना भी बड़ा दुर्लभ है और सुनने की इच्छा भी हो तथा उपदेश भी मिल जाय तो भी आत्मतत्त्व के यथार्थरूप से ज्ञाता बहुत ही थोड़े मिलते हैं। क्योंकि—जिनको निपुण आचार्य ने आत्मतत्त्व की शिक्षा दी हो ऐसे कोई विरले ही होते हैं ॥७॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः। अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८

अन्वयार्थ—(बहुधा) वादियों द्वारा अस्ति नास्ति कर्ता अकर्ता एवं शुद्ध अशुद्ध आदिक बहुत प्रकार से (चिन्त्यमानः) चिन्तन किया जाता हुआ (एषः) यह आत्मा (अवरेण) हीन-प्राकृत साधारण पाण्डित्यमात्र प्रयोजन वेदान्त श्रवण करनेवाला (नरेण) देहात्माभिमानी मनुष्य करके (प्रोक्तः) उपदेश किया हुआ (सुविज्ञेयः) अच्छी तरह से जानने योग्य (न) नहीं है (अनन्यप्रोक्ते) भगवदनन्यभक्त एकान्ती ब्रह्मसाक्षात्कार करनेवाले आचार्य के द्वारा आत्मतत्त्वोपदेश किये जाने पर (अत्र) इस संसार में (गतिः) गमन अर्थात् जन्म मरण (न) नहीं (अस्ति) होता है अथवा अन्य के उपदेश बिना दिये इस आत्मतत्त्व के विषय में प्रवेश नहीं होता है (हि) क्योंकि (अणुप्रमाणात्) अणुपरिमाणवाले तत्त्वों से (अणीयान्) भी अत्यन्त सूक्ष्म आत्मा है इससे (अतर्क्यम्) तर्क से निश्चय में नहीं आनेवाला है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता कोई कहते हैं कि—आत्मा है कोई कहते हैं नहीं है। कोई कहते हैं कर्ता है कोई कहते हैं कर्ता नहीं है। कोई कहते हैं शुद्ध है और कोई कहते हैं अशुद्ध है। इस प्रकार वादी लोग आत्मा के विषय में अनेकों प्रकार का वितण्डी वाद करते हैं। इससे हीन प्राकृत साधारण पाण्डित्यमात्र प्रयोजन से वेदान्त श्रवण करनेवाला देहात्माभिमानी पुरुष के उपदेश से किसी को भी आत्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। भगवदनन्यभक्त एकान्ती श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के उपदेश के विना अन्य किसी प्रकार से भी इस आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं हो सकता है और दूसरे महापुरुष के उपदेश के विना अपने आप ही आत्मा को कोई नहीं जान सकता है। जब सदुपदेश के द्वारा आत्मा को जो जान लेता है उसका जन्म मरण रूप इस संसार में गमन नहीं होता है। यह आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु से भी अधिक सूक्ष्म है इसलिये तर्क से अतीत है ॥८॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ। यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(प्रेष्ठ) हे प्रियतम (याम्) जिस मति को (त्वम्) तुम ने (आपः) साधन करने की इच्छा से प्राप्त किया है (एषा) यह आत्मविषयिणी (मतिः) मति (तर्केण) तर्क से (न) नहीं (आपनेया) प्राप्त करने योग्य है। यह तो (अन्येन) दूसरे आचार्य करके (प्रोक्ता) उपदेश दी हुई (एव) निश्चय करके (सुज्ञानाय) मोक्ष साधन सुन्दर ज्ञान की प्राप्ति के लिये होती है (नचिकेतः) हे नचिकेता (बत) हर्ष की बात है कि (सत्यधृतिः) अचल-सच्चीधारणावाला (असि) तुम हो। इससे मैं चाहता हूँ कि—(नः) हमको (त्वादृक्) तुम्हारे समान (प्रष्टा) प्रश्नवाला शिष्य (भूयात्) मिला करे ॥६॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे परमप्यारे जो मति साधन करने की इच्छा से तुम को प्राप्त हुई है। यह आत्मविषयिणी मति केवल तर्क से प्राप्त नहीं हो सकती है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ भगवदनन्योपासक आचार्य के उपदेश से ही मोक्षसाधन ज्ञान की प्राप्ति के लिये आत्मविषयिणी मति होती है। बड़े आनन्द की बात है कि जो तूने अचल सच्ची आत्मज्ञान की धृति का निश्चय किया है। हे नचिकेता मैं परब्रह्म नारायण से प्रार्थना करता हूँ कि मुझको तुम्हारे समान ही आत्मतत्त्व का प्रश्न करनेवाले जिज्ञासु मिला करें। अब यहाँ पर तीन प्रश्न होते हैं कि—तर्क किसको कहते हैं तथा मति किसको कहते हैं और धृति किसको कहते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर यह लिखा है—

'अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहः ।' (तर्क)

(न्याय० अध्या० १ सू० ४०)

अविज्ञाततत्त्व के अर्थ में कारण की उपपत्ति से तत्त्वज्ञान के लिये जो ऊहा होती है उसी को तर्क कहते हैं ॥ ४० ॥ और ॥

'वैदिकेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ।'

(जाबाल उ० खं० २ श्रु० १०)

समस्त वैदिक कर्मों में जो श्रद्धा है उसी को मति कहते हैं ॥१०॥तथा॥

'वेदादेव विनिर्मोक्षः संसारस्य न चान्यथा ।
इति विज्ञाननिष्पत्तिर्धृतिः प्रोक्ता हि वैदिकैः ॥'

(जा० उ० खं० १ श्रु० १८)

ज्ञान से हि संसार छूटता है दूसरे से नहीं इस प्रकार के विज्ञान की निष्पत्ति को वैदिक लोग धृति कहते हैं ॥ १८ ॥ ये शास्त्रीय तीनों प्रश्नों के उत्तर हैं ॥ ९ ॥

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यतेहि ध्रुवंतत् । ततोमया नाचिकेत श्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(शेवधिः) कर्मफल लक्षण कुबेर आदिक के भी खजाना (अनित्यम्) अनित्य है (इति) ऐसा (अहम्) मैं (जानामि) जानता हूँ (हि) निश्चय करके (अध्रुवैः) अनित्यफल साधनभूत विनाशशील कर्मों से (तत्) वह (ध्रुवम्) नित्य आत्मतत्त्व (हि) निश्चय करके (न) नहीं (प्राप्यते) मिल सकता है (मया) इस प्रकार जाननेवाले मैंने ब्रह्मप्राप्ति साधनज्ञान के उद्देश्य से (अनित्यैः) अनित्य इष्टकादिक (द्रव्यैः) पदार्थों के द्वारा (नाचिकेतः) नाचिकेत नामक (अग्निः) अग्नि (चितः) चयन किया है (ततः) उस कारण से (नित्यम्) नित्यफल साधनभूत ज्ञान को (प्राप्तवान्) प्राप्त कर चुका (अस्मि) हूँ ॥१०॥

विशेषार्थ—प्रसन्न होकर यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता मैं यह जानता हूँ कि—कर्मों का फलरूप कुबेर आदिक का भी खजाना नाश होनेवाला है और यह भी मैं जानता हूँ कि अनित्य पुत्र पशुराज्य आदिक से तथा विनाशशील कर्मों से नित्य आत्मतत्त्व नहीं मिल सकता है । ऐसा जाननेवाले मैंने ब्रह्मप्राप्ति के साधन-ज्ञान के उद्देश्य से अनित्य इष्टादिक द्रव्यों से आसक्ति रहित नाचिकेत नामक अग्नि का चयन किया है । उस कारण से नित्यफल साधनभूत ज्ञान को मैं प्राप्त

कर लिया हूँ। 'प्रातः स्मरणीय भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'

(शारीरकमी० अ० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की दशवीं श्रुति के **"न ह्यध्रुवैः प्राप्यते"** इन पदों को उद्धृत किया है ॥१०॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥११॥

अन्वयार्थ—(नचिकेतः) हे नचिकेता (कामस्य) मोक्षरूप परमात्मस्वरूप में समस्त सुत वित नारी आदिक कामनाओं की (आप्तिम्) प्राप्ति को और (जगतः) संसार के (प्रतिष्ठाम्) आधार को तथा (क्रतोः) ज्योतिष्टोमादिक श्रौतयाग के (आनन्त्यम्) अनन्त फलरूपता को और (अभयस्य) निर्भयता के (पारम्) चरम अवधि को तथा (स्तोममहत्) अपहतपाप्मत्व सत्यसंकल्पत्व आदि महागुणगानरूप स्तुति करने योग्य एवं महत्त्वपूर्ण को और (उरुगायम्) वेदों मे नाना प्रकार वर्णित कीर्ति को तथा (प्रतिष्ठाम्) मोक्षगत स्थैर्य को (दृष्ट्वा) देखकर (धृत्या) धीरता द्वारा (धीरः) प्रज्ञाशाली तुम (अत्यस्राक्षीः) लौकिक प्राकृत विषयों को त्यागकर दिये हो ॥११॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता जिस मोक्षरूप परमात्मस्वरूप में समस्त कामना की प्राप्ति हो जाती है और जो समस्त जगत् का आधार है। तथा जो ज्योतिष्टोमादि श्रौत याग का अनन्त फलस्वरूप है और जो निर्भयता की चरम सीमा है जो सबके द्वारा स्तुति के योग्य है और जो सबसे महान् है। तथा जिसकी सब वेद कीर्ति वर्णन करते हैं। जो आपही अपनी प्रतिष्ठा है। उस परब्रह्म नारायण को देखकर बड़े धैर्य के साथ प्रज्ञाशाली तुमने इस प्राकृत अनित्य निधि को त्याग कर दिया है। इसलिये तुम बड़े ही सर्वोत्तम गुणों से युक्त मुमुक्षु पुरुष हो ॥११॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१२॥

अन्वयार्थ—(धीरः) प्रज्ञाशाली पुरुष (दुर्दर्शम्) कठिनता से देखने में आनेवाले (गूढम्) योगमाया के पर्दे में छिपनेवाले (अनुप्रविष्टम्) सब भूतों में प्रवेश करनेवाले (गुहाहितम्) सबके हृदयरूप गुफे में रहनेवाले (गह्वरेष्ठम्) सबके अन्तर्यामी होकर रहनेवाले (पुराणम्) पुरातन (तम्) उस (देवम्) परमात्मदेव को (अध्यात्मयोगाधिगमेन) विषयों से हटकर चित्त को आत्मा में समाधान करने को अध्यात्मयोग कहते हैं उस अध्यात्मयोग से प्राप्त जीवात्मज्ञान से (मत्वा) जानकर (हर्षशोकौ) विषयलाभप्रयुक्त हर्ष को और विषय के अलाभप्रयुक्त शोक को (जहाति) त्याग देता है ॥१२॥

विशेषार्थ—हे नचिकेता परब्रह्म नारायण अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण अति कठिनता से देखने में आता है। क्योंकि लिखा है—

'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः।'

(कठो० अ० १ व० २ श्रु० ७)

जो बहुतों करके सुनने के लिये भी नहीं प्राप्त हो सकता है ॥ ७ ॥ तो देखने के विषय में कहना ही क्या है। इससे भगवद्गीता में लिखा है—

'आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्।'

(गी० अ० २ श्लो० २९)

कोई आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है ॥ २९ ॥ और परमात्मा योगमाया के पर्दे में गूढ छिपा हुआ रहता। क्योंकि लिखा है—

'एको देवः सर्वभूतेषुगूढः।'

(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० ११)

एक परमात्मा देव सबभूतों में गूढ रहता है ॥ ११ ॥

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।'

(गी० अ० ७ श्लो० २५)

योगमाया से ढका हुआ मैं सबके लिये प्रकट नहीं हूँ ॥ २५ ॥ तथा वह परमात्मा सब भूतों में प्रवेश करके रहता है। क्योंकि लिखा है—

'सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः।'

(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० ११)

परमात्मा सर्वव्यापी है तथा सब भूतों का अन्तर्यामी है तथा सबके कर्मों का अध्यक्ष है और परमात्मा सब भूतो का निवास स्थान है ॥११॥

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।'

(गी० अ० ९ श्लो० ४)

मुझ अव्यक्तमूर्ति से यह समूचा जगत् व्याप्त है ॥ ४ ॥ वह परमेश्वर सबके हृदयरूप गुफा में रहनेवाला है। क्योंकि लिखा है—

'आत्मा गुहायां निहितोऽस्यजन्तोः ।'

(श्वे० उ० अ० ३ श्रु २०)

परमात्मा इस जीव के हृदयरूप गुफा में रहता है ॥२०)

'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ।'

(तै० आ० ३।११)

प्राणियों का शासक सबकी आत्मा अन्तर में प्रविष्ट है ॥११॥

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः ।' (गी० अ० १५ श्लो० १५)

मैं सबके हृदय में प्रविष्ट हूँ ॥१५॥

'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।'

(गी० अ० ३ ब्रा० ८ श्रु० १४)

हे अर्जुन ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय देश में स्थित है ॥६१॥ और परमात्मा सबका अन्तर्यामी है, क्योंकि लिखा है—

'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।'

(बृह० अ० ३ ब्रा० ८ श्रु० १४)

यह अमृत परमात्मा तेरा अन्तर्यामी है ॥१४॥ तथा परमात्मा पुरातन है, क्योंकि लिखा है—**'कविं पुराणम् ।'** (गी० अ० ८ श्लो० ९)

सर्वज्ञ कवि तथा पुरातन-पुराण है ॥९॥ जो प्रज्ञाशाली मनुष्य ऐसे परमात्मदेव को। **'यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञः'** (कठो० अ० १ व० ३ श्रु० १३)

प्राज्ञ वाणी को मन में निग्रह करे ॥१३॥ और

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥'

(कठो० अ० २ व० ३ श्रु० १०)

जिस समय पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्थित हो जाती हैं ॥ १० ॥ इन श्रुतियों से वक्ष्यमाण जो अध्यात्म योग उस योग से प्राप्त जीवात्मज्ञान से भलीभाँति समझकर विषय लाभ प्रयुक्त हर्ष को और विषय अलाभप्रयुक्त शोक को छोड़ देता है। यहाँ पर "देवं मत्वा" इत्यादि पदों से उपास्य प्राप्य परमात्मा देव का प्रतिपादन किया गया है। तथा—

'अध्यात्मयोगाधिगमेन ।'

इस पद से प्राप्त प्रत्यगात्मा जीव को प्रतिपादन किया गया है। और

'धीरो हर्षशोकौ जहाति ।'

इन पदों से परब्रह्म की उपासना का प्रतिपादन किया गया है। श्रुति सदर्थकार श्रीरामानुजाचार्य स्वामी ने

'गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥'

(शारीरकमी० अ० १ पा० २ सू० ११)

के श्रीभाष्य में और

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'

शरीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६॥ के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीय वल्ली की बारहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१२॥

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा
विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥१३॥

अन्वयार्थ—(मर्त्य) जिज्ञासु मनुष्य (एतत्) इस आत्मतत्त्व को (श्रुत्वा) आचार्य से सुनकर (संपरिगृह्य) भलीभाँति मनन आदि करके (धर्म्यम्) धर्मयुक्त—कर्मसाध्य शरीरादिक को (प्रवृह्य) पृथक् करके अर्थात् त्याग करके (एतम्) इस स्वात्मभूत (अणुम्) सूक्ष्म परब्रह्म परमात्मा को (आप्य) देशविशेष में पाकर (सः) वह ज्ञानी पुरुष (हि) निश्चय करके (मोदनीयम्) प्रीतिविषयक और अपहतपाप्मत्वादि गुणाष्टक विशिष्ट स्वस्वरूप को (लब्ध्वा) पाकर (मोदते) आनन्दवाला होता है (नचिकेतसम्) तुम नचिकेता के लिये (सद्म) ब्रह्मरूपधाम (विवृतम्) खुलाद्वारवाला (मन्ये) मैं मानता हूँ ॥१३॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता मरणधर्मी मुमुक्षु पुरुष इस मेरे द्वारा कहे हुए आत्मतत्त्व को सद्गुरु से सुनकर अच्छी प्रकार से मनन और निदिध्यासन करके कर्म साध्य शरीरादिक को परित्याग करके

'अणीयान् ह्यतर्क्यम् ।' (कठो० अ० १ व० २ श्रु० ८)

अति सूक्ष्म तर्कागोचर परमात्मा है ॥८॥

'अणोरणीयान् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० २०)

सूक्ष्म से परमसूक्ष्म परमात्मा है ॥२०॥ इन श्रुतियों से निर्दिष्ट स्वात्मभूत अतिसूक्ष्म परमात्मा को देशविशेषमें पाकर । क्योंकि यह लिखा है—

'एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं
ज्योतिरुपसंपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते ।'

(छा० उ० अ० ८ खं० ३ श्रु० ४)

यह संप्रसाद जीव इस शरीर से निकलकर परम ज्योति परमात्मा को पाकर अपने स्वरूप से युक्त हो जाता है ॥ ४ ॥ ज्ञानी पुरुष प्रीतिविषयक अपहतपाप्मत्व-दि गुणाष्टकविशिष्ट स्वस्वरूप को पाकर आनन्दवाला हो जाता है, क्योंकि यह लिखा है—

'स तत्र पर्येति जक्षन्क्रीडन्रममाणः ।'

(छा० उ० अ० ८ खं० १२ श्रु० ३)

वह मुक्तात्मा परमधाम में हँसता हुआ क्रीड़ा करता हुआ और आनन्द भोगता हुआ सब ओर विचरता है ॥ ३ ॥ तुम जो उत्तमाधिकारी नचिकेता नामवाला हो । तुम्हारे लिये परमधाम का द्वार खुला हुआ है । ऐसा मैं मानता हूँ । क्योंकि मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

'तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।'

(मुं० उ० मुण्डक ३ खण्ड० २ श्रु० ४)

उस ब्रह्मवेत्ता की यह आत्मा ब्रह्मधाम में प्रविष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥ इससे तुमको वहाँ जाने से कोई रोक नहीं सकता ॥१३॥

अन्यत्रधर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥१४॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो तत्त्व (धर्मात्) धर्म-यानी उपाय जिससे (अन्यत्र) पृथक् है अर्थात् प्रसिद्धोपाय विलक्षण है और (अधर्मात्) अधर्म-यानी धर्मेतर उपेय उससे (अस्मात्) भिन्न है अर्थात् प्रसिद्धसाध्य विलक्षण फल है तथा (अस्मात्) इस बुद्धिस्थ (कृताकृतात्) किये हुए और नहीं किये हुए से (अन्यत्र) अलग प्रसिद्धोपेतृ विलक्षण है (च) और (भूतात्) भूतकाल से (च) तथा (भव्यात्) भविष्यकाल से और वर्तमान काल से (अन्यत्र) पृथक् है (तत्) उस तत्त्व को (पश्यसि) तुम आचार्य की कृपा से देखते हो (तत्) उसको (वद) तुम कहो ॥१४॥

विशेषार्थ—यमराज के वाक्य को सुनकर प्राप्ता का स्वरूप संशोधन करने के लिये नचिकेता ने कहा कि—हे भगवन् यमदेव जो प्रसिद्धोपाय विलक्षण है और जो प्रसिद्ध साध्य विलक्षण फल है जो प्रसिद्धोपेतृ-विलक्षण है और जो कालत्रय परिच्छिन्न विलक्षण है उस तत्त्व को सदगुरु की दया से आप जानते हैं । इससे मुझको उसी तत्त्व को कृपा करके आप बताइये । अथवा इस श्रुति में धर्म—यानी पुण्य और अधर्म—यानी पाप इन दोनों से विलक्षण जो उपासना है इसको ही पहले नचिकेता ने पूछा है । इसके बाद कृत—तथा अकृत से विलक्षण और त्रिकाल से अपरिच्छिन्न उपेय को पूछा है । उपेता चेतन के नित्य होने से उपेयान्तर्गत ही तंत्र से प्रश्न किया है । यतिशेखर भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'

(शरीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की चौदहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते
पदं संग्रहेण ब्रवीम्यो मित्येतदिति ॥१५॥

अन्वयार्थ—(सर्वे) समस्त (वेदाः) वेद (यत्) जिस (पदम्) प्राप्यस्वरूप पद को (आमनन्ति) साक्षात् या परम्परा से बारंबार प्रतिपादन करते हैं (च) और (सर्वाणि) समस्त (तपांसि) तपस्या में (यत्) जिस प्राप्यस्वरूप को (वदन्ति) कहते हैं और (यत्) जिस प्राप्यस्वरूप को (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) गुरुकुलवास स्त्रीसङ्गराहित्यादि ब्रह्मचर्य को (चरन्ति) पालन करते हैं (तत्) उस (पदम्) प्राप्यस्वरूप पद को (ते) तेरे लिये (संग्रहेण) संक्षेप से (ब्रवीमि) कहता हूँ कि (ओम्) यह ब्रह्म का निर्देश (इति) इस प्रकार (एतत्) यह प्राप्य स्वरूप (इति) यहाँ पर समाप्त होता है ॥१५॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ऐतरेयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण, गोपथब्राह्मण अर्थात् मंत्रब्राह्मणात्मक सब वेद जिस प्राप्यस्वरूप को साक्षात् या परंपरा से बारंबार वणन करते हैं। सीतोपनिषद् में लिखा है—

तत्र त्रयीमयं शास्त्रमाद्यं सर्वार्थदर्शनम् । ऋग्यजुः सामरूपत्वात् त्रयीति परिकीर्तिता । कार्यसिद्धेन चतुर्धा परिकीर्तिता । ऋचो यजूंषिसामानि अथर्वाङ्गिरसस्तथा । चातुर्होत्रप्रधानत्वाल्लिङ्गादित्रितयं त्रयी । अथर्वाङ्गिरसं रूपं सामऋग्यजुरात्मकम् । तथा दिशन्त्याभिचार सामान्येन पृथक् पृथक् । एकविंतिशाखायामृग्वेदः परिकीर्ति-तः । शतं च नव शाखासु यजुषामेव जन्मनाम् । साम्नः सहस्रशाखाः स्युः पञ्च शाखा अथर्वणः । वैखानसमतस्तस्मिन्नादौ प्रत्यक्षदर्शनम् । स्मर्यते मुनिभिर्नित्यं वैखानसमतः परम् । कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं ज्योतिषंछन्द एतानि षडङ्गानि । उपाङ्गमयनं चैव

मीमांसान्याय धर्मज्ञसेवितार्थं च वेदवेदोऽधिकं तथा । निबन्धाः सर्वशाखा च समयाचारसङ्गतिः । धर्मशास्त्रं महर्षीणामन्तः करण-संभृतम् । इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च प्रकीर्तितम् । वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने । आयुर्वेदश्च पञ्चैते उपवेदाः प्रकीर्तिताः । दण्डो नीतिश्च वार्ता च विद्या वायुजयः परः । एकविंश-तिभेदोऽयं स्वप्रकाशः प्रकीर्तितः ।

॥ सीतोपनि० ॥

सब अर्थ को दीखानेवाले उस आदि शास्त्र को ऋक् यजुः एवं सामात्मक होने से त्रयी कहा जाता है । कार्यसिद्धि के लिये चार नामों से उसका वर्णन होता है । अर्थात् देवस्वरूप वर्णन के मंत्र तथा यज्ञ विधि निर्देशक मंत्र और यज्ञ में गान के मंत्र ये ही तीन प्रकार के मंत्र होने से वेदों को त्रयी कहते हैं । किन्तु यज्ञ में ब्रह्मा, होता अध्वर्यु, एवं उद्गाता के कार्य की दृष्टि से वेदों को चार नामों से संबोधित किया जाता है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वाङ्गिरसवेद । यज्ञकर्म में चातुर्होत्र प्रधान है और उसमें देवस्वरूपादि तीन का ही उपयोग होने से वेदों को त्रयी कहते हैं । अथर्वाङ्गिरस वेद साम ऋक् एवं यजुः स्वरूप ही है । आभिचारिक कर्मों की समानता से इन चारों का अलग अलग निर्देश होता है । ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ कही गयी हैं । यजुर्वेदियों की एक सौ नौ शाखाएँ हैं । सामवेद की एक हजार शाखाएँ हैं और अथर्ववेद की पाँच शाखाएँ हैं । इन वेदों में प्रथम सर्वश्रेष्ठ वैखानसमत है । जो प्रत्यक्ष दर्शन है । इसलिये मुनियों द्वारा नित्य परम वैखानस श्रीराम रूप का स्मरण किया जाता है । कल्प १ व्याकरण २ शिक्षा ३ निरुक्त ४ ज्योतिष् ५ तथा छन्द ६ ये छः वेदाङ्ग हैं । अयन मीमांसा और न्यायशास्त्र का विस्तार ये वेदों के उपाङ्ग हैं । धर्मज्ञ पुरुषों के सेवन के लिये चारों वेद तथा वेदों से अधिक अङ्ग उपाङ्गादि हैं । सभी वैदिक शाखाओं में उनके समयाचार—साम्प्रदायिक आचरण का शास्त्र के साथ संगीत के लिये निबन्ध हैं । धर्मशास्त्रों को महर्षियों ने अपने अन्तःकरण के दिव्यज्ञान से पूर्ण किया है । मुनियों ने इतिहास—पुराण १, वास्तुवेद २, धनुर्वेद ३, गान्धर्ववेद ४ तथा आयुर्वेद ५ ये पाँच उपवेद बताये हैं । इन सबके साथ दण्डनीति और व्यापार विद्या तथा परतत्त्व में प्राण जय करके स्थित रहना है इस प्रकार इक्कीस भेदयुक्त यह स्वतः प्रकाश स्वयं प्रकटित शास्त्र है । ये सब ग्रन्थ जिस प्राप्य स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं और समस्त चान्द्रायणादि तपस्यायें जिस प्राप्य स्वरूप को कहती हैं । तप के विषय में लिखा है—

वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः ॥'

(जाबालद० उ० खं० २ श्रु० ३)

वेदोक्त प्रकार के और कृच्छ्रचान्द्रायणादिक से जो शरीर को सुखाना है उसी को बुधजन तप कहते हैं ॥१३॥ और जिस प्राप्य स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। ब्रह्मचर्य के विषय में लिखा है—

'कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम् ।
ऋतौ भार्यां तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥

(जाबालद० उ० खं० १ श्रु० १३)

मन वाणी और शरीर के द्वारा स्त्रियों के सहवास का परित्याग और ऋतुकाल में धर्मबुद्धि से केवल अपनी ही पत्नी से सम्बन्ध रखना यही ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥ १३ ॥ उस प्राप्यस्वरूप को तेरे लिये संक्षेप से मैं कहता हूँ कि - ओम् यह है। अर्थात्—

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।'

(गी० अ० १७ श्लो ० २३)

ओम् तत् सत् ये तीन प्रकार का ब्रह्म का निर्देश बतलाया गया है ॥ २३ ॥ इस प्रमाण से ब्रह्मवाचक प्रणव है और वह प्रणव " अ उ म् " इन तीन अक्षरों से "आद्गुणः" (व्या० अ० ६ पा० १ सू० ८७) इस सूत्र से गुण होकर बना है इस विषय में लिखा है—

'अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चततः परम् ।
वेदत्रयात्मकं प्रोक्तं प्रणवं ब्रह्मणः पदम् ॥'

(पाद्म उत्तरखं० ६ अ० १२६ श्लो० २२)

पहले अ, उसके बाद उ, और उसके बाद म् ये प्रणव में जो तीन अक्षर हैं, वे ऋग्यजुः साम स्वरूप हैं तथा प्रणव ब्रह्म का पद है ॥२२॥ मैं पद्मपुराण स्पष्ट लिखा है—

'अकारेणोच्यते विष्णुः कल्याणगुणसागरः ।'

(पाद्म उत्तर खं० ६ अ० २२६ श्लो० ३०)

'श्रीशः सर्वात्मनां शेषी जगद्बीजं परः पुमान् ।
जगत्कर्ता जगद्भर्ता ईश्वरो लोकबान्धवः ॥३१॥

अकार से कल्याण गुण सागर विष्णु कहे जाते हैं ॥३०॥ जो लक्ष्मीपति सब जीवों के शेषी जगत् के कारण परपुरुष जगत् के कर्ता भर्ता तथा संहर्ता लोकबन्धु परमेश्वर है ॥३१॥

'नारायणः सर्वकारणं सर्वरक्षकः समस्तकल्याणगुणात्मकः सर्वशेषी श्रियः पतिः एवं अकारार्थः ।' (निगमनपडि०)

इस प्रकार से सबका कारण तथा सबका रक्षक और सब कल्याणगुणों से युक्त सबका शेषी श्रीलक्ष्मीकान्त परब्रह्म नारायण अकार का अर्थ है—

'अकारार्थो विष्णु र्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् ।'

(अष्टश्लो० श्लो० १)

समस्त संसार के उत्पत्ति पालन संहारकर्ताविष्णु अकार का अर्थ है—

'अकारः सकलशब्दमूलत्वान्नारायणपदसंग्रहत्वाच्च ।

(मुमुक्षुपडि०)

सकलजगत्कारणं सर्वरक्षकं नारायणमाह ।'

अकार सब शब्दों के कारण और नारायणपद के संग्रह से सकल जगत् कारण सर्वरक्षक नारायण भगवान् को कहता है। इन प्रमाणों से प्रणव के प्रथम अवयव "अ" का परमात्मा अर्थ होता है।

'मकारेणोच्यते जीवः पञ्चविंशोदितः पुमान् ।'

(पाद्म० खं० ६ अ० २२६ श्लो० १५)

मकार से पचीसवाँ तत्त्वजीव कहा जाता है ॥१५॥

'आत्मनो ज्ञानानन्दत्वं ज्ञानगुणकत्वं नित्यत्वम् एकरूपत्वंस्वस्मै स्वयं प्रकाशत्वं प्रकृतेः परत्वमिति एवं मकारार्थः ।' (निगमनप०)

इस प्रकार से ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञानगुणयुक्त नित्य अणु एकरूप स्वस्मै स्वयं प्रकाशवाला प्रकृति से परे जीवात्मा मकार का अर्थ है—

'मकारार्थो जीवः ।' (अष्टश्लो० श्लो १)

मकार का अर्थ जीव है ॥ १ ॥

'मकारः पञ्चविंशाक्षरः ज्ञानवाचकश्च तस्मादात्मानमाह ।'

(मुमुक्षुप०)

मकार पच्चीसवाँ अक्षर है और ज्ञान का वाचक है इससे जीवात्मा को कहता है ॥ इन प्रमाणों से प्रणव के चरम अवयय "म्" का जीवात्मा अर्थ होता है यहाँ पर प्राप्यस्वरुप के साथ उपाय और उपेता भी प्रतिपादन किया गया है। यह प्रस्तुत श्रुति थोड़ा पाठभेद से भगवद्गीता में भी है—

'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।'

(गी० अ० ८ श्लो० ११)

वेदवेत्ता जिसे अक्षर कहते हैं वीतराग यति जिसमें प्रवेश करते हैं जिसकी इच्छा करते हुए मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उस प्राप्यस्वरूप पद को मैं संक्षेप से तेरे लिये कहूँगा ॥११॥ प्रपन्नपारिजात श्रीरामानुजमुनीन्द्र ने

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की पन्द्रहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय करके (एतत्) यह ओम् (एव) ही (अक्षरम्) अक्षर तो (ब्रह्म) ब्रह्मप्राप्ति के साधन होने से ब्रह्म है (हि) निश्चय करके (एतत्) यह प्राणव (एव) ही (अक्षरम्) अक्षर (परम्) अक्षर वेदों में श्रेष्ठ है (हि) निश्चय करके (एतत्) इस ओम् (अक्षरम्) अक्षर को (ज्ञात्वा) उपासना करके (यः) जो पुरुष (यत्) जिस वस्तु की (इच्छति) इच्छा करता है (एव) निश्चय करके (तस्य) उस उपासक के (तत्) वही मिल जाता है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—अब यमराज प्रणव का वैभव दो मंत्रों से प्रतिपादन करते हैं कि—निश्चय करके यह ओम्-अक्षर ब्रह्म प्राप्ति के साधन होने से और ध्यान के अवलम्बन होने से ब्रह्म है । क्योंकि लिखा है—

'ओमित्येवं ध्यायथ ।' (मुण्डको० मुण्ड० २ खं० २ श्रु० ६)

ओम् इस अक्षर से ध्यान करो ॥६॥

'ओमित्येतदक्षरमुद्‌गीथमुपासीत ।' (छा० उ० अ० १ खं० १ श्रु० १॥)

ओम् इस अक्षर से उद्‌गीथ की उपासना करे ॥१॥

'तद्वोभयंवै प्रणवेन देहे । (श्वे० उ० अ १ श्रु० १३)

निश्चय करके देह में प्रणव द्वारा ब्रह्म और जीव इन दोनों को जानता है ॥१३॥

'ओमित्यात्मानं युञ्जीत ।' (नारा० उ० श्रु० ७६)

प्रणव से आत्मसमर्पण करे ॥७६॥

'ओं हीत्येतदुपनिषदं विन्यसेत् ।' (आ रु० उ० श्रु० ५)

ओम् इस आत्मा के समीप पहुँचाने वाले अक्षर को विन्यास करे ॥५॥

'ओमित्येतदक्षरमादौ प्रयुक्तम् ।' (अथर्वशि० उ० श्रु० १)

ओम् यह अक्षर सृष्टि के आदि में प्रयुक्त हुआ ॥१॥

'प्राणा नयतीत्येतस्मात्प्रणवः ।' (अथर्व० उ० श्रु० १)

सब प्राणों को परमात्मा में लाता है इससे प्रणव कहा जाता है ॥ १ ॥

'ओमित्यनेनैतदुपासीताजस्रम् ।' (मैत्रा० उ० प्रपाठक ५ श्रु ४)

ओम् इस अक्षर से सर्वदा ब्रह्म की उपासना करे ॥४॥

'ओंकारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तुसः ॥

(ध्यान० उ० श्रु० १४)

जो उपासक ओंकार को नहीं जानता है वह ब्रह्म का शेष नहीं होता है ॥१४॥

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ।' (ब्रह्म० वि० उ० २)

ओम् यह अक्षर ब्रह्म प्राप्ति के साधन होने से ब्रह्म है ॥२॥

'सर्वविघ्नहरो मंत्रः प्रणवः सर्वदोषहा ॥

(योगत उ श्रु ६४)

सब विघ्न को और सब दोष को नाश करनेवाला प्रणव मंत्र है ॥६४॥

'ओंकारमेवायं विद्धि मोक्षप्रदायकम् ॥

(नारदप० उ० उपदेश ८ श्रु० ३)

इस ओंकार को मोक्ष देनेवाला जानो ॥३॥

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा ।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

(योगचू० उ० श्रु ८८)

जो पवित्र या अपवित्र सब समय में प्रणव को जपता है वह जैसे जल से कमल पत्र नहीं लिप्त होता है वैसे ही पाप से लिप्त नहीं होता है ॥८७॥

'त्रयो वेदाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥

(योगशिखो० अ० ६ श्रु० ५७)

तीन वेद जहाँ पर स्थित है वह श्रेष्ठ प्रकाश ओम् यह अक्षर है ॥५७॥

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ।' (सूर्योपनि)

ओम् यह एक अक्षर ब्रह्म प्राप्ति के साधन होने से ब्रह्म है ।

'ओमित्यात्मानमव्यग्रो ब्रह्मण्यग्नौ जुहोति यत् ।
ज्ञानयज्ञः स विज्ञेयः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः ॥'

(शाट्यायनीयोप० श्रु० १६)

जो सावधान होकर प्रणव मन्त्र द्वारा अपनी आत्मा को ब्रह्माग्नि में हवन करता है तो सब यज्ञों से उत्तमोत्तम वह ज्ञानयज्ञ है ऐसा जानना चाहिये ॥१६॥

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ।' (गी० अ० ८ श्लो १३)

ओम् इस एक अक्षर मेरे वाचक नाम ब्रह्म को ॥१३॥ इन प्रमाणों से ओम् यह अक्षर ब्रह्मप्राप्ति के साधन होने से ब्रह्म है और यह ओम् अक्षर सब वेदों में श्रेष्ठ है क्योंकि लिखा है—

'ओं खं ब्रह्म ।' (यजुर्वे० अ० ४ मं० १८)

ओम् आकाश के समान सबसे श्रेष्ठ परमात्मा का नाम है ॥ १८ ॥

'वेद्यं पवित्रमोङ्कारः ।' (गी० अ० ६ श्लो० १७)

वेद वेदान्त में जानने योग्य अशुद्ध को शुद्ध करनेवाला ओंकार पद वाच्य मैं हूँ ॥१७॥ इन प्रमाणों से ओम् यह अक्षर सबसे श्रेष्ठ है। ओम् इस अक्षर से उपासना करने वाला उपासक पुरुष जो फल चाहता है वह उसे मिल जाता है ॥१६॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

अन्वयार्थ—(एतत्) यह ओंकाररूप (आलम्बनम्) आलम्बनम्—यानी आश्रय (श्रेष्ठम्) ब्रह्मोपासना के लिये सबसे श्रेष्ठ है (एतत्) यह प्रणवरूप (आलम्बनम्) आलम्बन (परम्) सर्वोत्कृष्ट है (एतत्) इस ओम् (आलम्बनम्) आलम्बन को (ज्ञात्वा) आचार्य से भलीभाँति जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के लोक में अर्थात् त्रिपाद्विभूति में (महीयते) उपासक पूजित होता है ॥१७॥

विशेषार्थ—यह ओंकार परब्रह्मपरमात्मा की उपासना के लिये सब गायत्री आदि आलम्बनों से श्रेष्ठ आलम्बन है और यही चरम आलम्बन है। इससे परे और कोई आलम्बन नहीं है। इस प्रकार इस आलम्बन को आचार्य से भलीभाँति जानकर जो साधक ओंकार नाम से परब्रह्म नारायण की उपासना करता है वह देहावसान होनेपर परमपदस्थान में महिमान्वित होकर पूजित होता है। क्योंकि कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में लिखा है—

तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालाहस्ताः शतमाञ्जनहस्ताः शतंचूर्णहस्ताः शतं वासो हस्ताः शतं कणाहस्ता स्तं ब्रह्मालङ्कारेणालं कुर्वन्ति ॥

(कौषीत० उ० अध्या० १ श्रु० ४)

परब्रह्मोपासक मुक्त जीव के पास ब्रह्मलोक में स्वागत करने के लिये पाँच सौ अप्सराएँ जाती हैं। उनमें से सौ अप्सराएँ तो हाथों मे हल्दी केसर और श्रीचूर्ण

लिये रहती हैं। सौ के हाथों मे भाँति भाँति के दिव्य वस्त्र एवं अलंकार होते हैं। सौ अप्सराएँ हाथों में फल लिये रहती हैं। सौ के हाथों में नाना प्रकार के दिव्य अङ्गराग होते हैं तथा सौ अप्सराएँ अपने हाथों में भाँति भाँति भी मालाएँ लिये होती हैं। वे उस उपासक महात्मा को ब्रह्मोचित अलंकारों से अलंकृत करती हैं ॥ ४ ॥ इस प्रमाण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्रह्मोपासक भक्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥ १७ ॥

न जायतेम्रियते वा विपश्चिन्नायं
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

अन्वयार्थ—(अयम्) यह जीवात्मा (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होता है (वा) और (न) नहीं (म्रियते) जीव मरता है (विपश्चित्) यह मेधावी इस समय में भी जन्म मरण शून्य है (कुतश्चित्) किसी से भी (कश्चित्) कोई भी जीव (न) नहीं (बभूते) हुआ है (अयम्) यह जीवात्मा (अजः) अजन्मा है (नित्यः) नित्य है (शाश्वतः) पुरातन है (शरीरे) शरीर के (हन्यमाने) मारे जाने पर भी (न) नहीं (हन्यते) यह जीवात्मा मारी जाती है ॥१८॥

विशेषार्थ—अब पहले दो मंत्रों से प्रत्यगात्मा के स्वरूप को यमराज कहते हैं कि—यह जीवात्मा अजन्मा है इस कारण से इस जीवात्मा का जन्म नहीं होता है और यह जीवात्मा नित्य है इस कारण से इस जीवात्मा का मरण नहीं होता है। यह मेधावी जीवात्मा इस समय में भी जन्म-मरण रहित है और यह जीवात्मा शाश्वत—सदा एकरस रहने वाली क्षीणता रहित सनातन है, इस कारण से यह उत्पादक शून्य है और यह जीवात्मा पुरातन है इस कारण से कोई भी जीव पहले नहीं हुआ था। शस्त्र आदि से शरीर का बध होने पर भी जीवात्मा का बध नहीं होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस श्रुति के भाव को इस प्रकार समझाया गया है—

'न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'

(गी० अ० २ श्लोक० २०)

यह जीवात्मा न कभी जन्मती है और न मरती ही है। तथा न यह

होकर फिर न होनेवाली ही है। यह जीवात्मा अजन्मा नित्य सनातन और पुराण है। अतः शरीर के मारे जाने पर भी यह मारी नहीं जाती है ॥२०॥

श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'

(शारीरकमी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में तथा

'न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वादुपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ।'

(शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ३५)

के श्रीभाष्य में और

'उत्पत्त्यसम्भवात् ।' (शा० मी० अ० २ पा० २ सू० ३६)

के श्रीभाष्य में तथा

नात्माश्रुते र्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १८)

के श्रीभाष्य में और

'कर्ता शास्त्रार्थवत्वात् ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० ३३)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की अठारहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१८॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१६॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि कोई (हन्ता) मारनेवाला व्यक्ति (हन्तुम्) अपने को मारने में समर्थ (मन्यते) देहात्मदृष्टि से मानता है और (चेत्) यदि कोई (हतः) बध किया हुआ व्यक्ति (हतम्) देहात्मदृष्टि से आत्मा को मारा गया (मन्यते) मानता है तो (तौ) वे (उभौ) दोनों ही (न) आत्मस्वरूप को नहीं (विजानीतः) भलीभाँति जानते हैं क्योंकि (अयम्) यह (न) नहीं (हन्ति) जीवात्मा को मारता है और (न) नहीं (हन्यते) आत्मस्वरूप मारा ही जाता है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—जो पुरुष देह को ही आत्मा समझता है वही मैं आत्मा का हनन करूँगा ऐसा मानता है और किसी को दूसरे पुरुष से मरण होते हुए देखकर आत्मा मारी गयी ऐसा कोई मान लेता है। परन्तु वास्तव में ये दोनों अज्ञानी हैं। आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते हैं। क्योंकि आत्मा विकार रहित है। इस कारण से आत्मा किसी का विनाश नहीं करती है और न तो किसी से विनष्ट होती है। भगवद्गीता में इस श्रुति के भाव को इस प्रकार समझाया गया है—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

(गी० अ० २ श्लो० १६)

इस आत्मा को जो मारनेवाला जानता है तथा जो इसको मरा हुआ मानता है वे दोनों ही आत्मा को नहीं जानते हैं क्योंकि यह न तो मारता है और न मारी जाती है ॥ १६ ॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है—

'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि ।' (श्रु०)

समस्त प्राणियों की हिंसा नहीं करनी चाहिये ।

ब्राह्मणो न हन्तव्यः ।' (क० स्मृ० अ० ८ श्लो० २)

ब्राह्मण मारने योग्य नहीं है ॥ २ ॥ इत्यादि श्रुति स्मृति की संगति कैसे होगी इसका उत्तर यह है—श्रुति स्मृति प्रभृति भी अविहित शरीर-वियोग करने का ही प्रतिषेध करनेवाली हैं । यतिपुङ्गव भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'कर्ताशास्त्रार्थवत्वात् ।' (शारीरकमी० अ० २ पा० ३ सू० ३३)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयबल्ली की उन्नीसवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ १६ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य
जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोकोधातुः
प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥

अन्वयार्थ—(अणोः) सूक्ष्मचेतन से (अणीयान्) अति सूक्ष्म और (महतः) महान् आकाशादि से भी (महीयान्) अति महान् (आत्मा) परमात्मा (अस्य) इस जन्तोः) जीवात्मा के (गुहायम्) हृदयरूप गुफा में (निहितः) स्थित है (तम्) तादृश उस परमात्मा को (अक्रतुः) काम्यकर्मादिरहित जीव (धातुः) सबके धारक परमात्मा की (प्रसादात्) प्रसन्नता से (आत्मनः) अपनी आत्मा के (महिमानम्) महत्त्वसंपादक स्वसार्वज्ञादि-गुणाविर्भाव हेतुभूत परमात्मा को (पश्यति) जब देखाता है तब (वीतशोकः) शोक रहित हो जाता है ॥२६॥

विशेषार्थ—अब यमराज परमात्मा के स्वरूप को कहते हैं कि परमात्मा सूक्ष्मचेतन जीव से भी अति सूक्ष्म है और महान् आकाश से भी अति महान् है । क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामा-

काद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा एष म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ।'

(छा० उ० अ० ३ खं० १४ श्रु० ३)

मेरे हृदय कमल के भीतर यह परमात्मा धान से यव से सरसों से साँवा से तथा साँवा के चावल से भी सूक्ष्म है और मेरे हृदय कमल के भीतर रहनेवाला यह परमात्मा पृथ्वी से अन्तरिक्ष से द्युलोक से और इन सब लोकों से भी अधिक बड़ा है ॥३॥ परमात्मा इस जीवात्मा के हृदयरूप गुफा में स्थिर रहता है । क्योंकि यह लिखा है-

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।' (गी० अ० १८ श्लो० ६१)

हे अर्जुन ईश्वर सभी प्राणियों के हृदयदेश में स्थित रहता है ॥६१॥ इस में "जन्तु" शब्द का अर्थ—

'प्राणीतु चेतनो जन्मी जन्तु जन्यु शरीरिणः ।'

(अमरको० कां० १ वर्ग० ४ श्लो० ३०)

प्राणी १, चेतन २, जन्मिन् ३, जन्तु ४, जन्यु ५, और शरीरिन् ६ ये छः नाम प्राणी के हैं ॥३०॥ इस कोश के प्रमाण से जीवात्मा होता है । काम्यकर्मादि रहित जीवात्मा सर्वाधार परब्रह्म नारायण की प्रसन्नता से अपनी आत्मा के महत्त्व संपादक स्वसार्वज्ञादि गुणाविर्भाव हेतुभूत उस परमात्मा को जब देखता है तब शोक रहित हो जाता है । यहाँ पर "धातु" शब्द का अर्थ सर्वधारक परमात्मा माना गया है क्योंकि विष्णुसहस्रनाम में लिखा है—

'अनादिनिधनोधाता विधाता धातुरुत्तमः ।' (विष्णुस० श्लो० १८)

अनादिनिधन १, धाता २, विधाता ३, धातु ४, उत्तम ५ ये विष्णु परमात्मा के नाम हैं ॥ १८ ॥ यतिसार्वभौम भगवद्रामानुजाचार्य---

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।' शा० मी० अ० १ पा० ४ सू ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की बीसवीं श्रुति के "अणोरणीयान्" इन पदों को उद्धृत किया है । यह श्रुति थोड़े पाठभेद से (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० २०) में भी है ॥ २० ॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

अन्वयार्थ—(आसीनः) वह परमात्मा बैठा हुआ ही (दूरम्) दूर को (व्रजति) चला जाता है और (शयानः) सोता हुआ भी (सर्वतः) सब ओर चलता है (मदामदम्) हर्षामर्षरूप विरुद्धधर्माध्यस्त (तम्) उस सर्वशास्त्रप्रसिद्ध (देवम्) परमात्मदेव को (मदन्यः) परमात्मा की

प्रसन्नता से अनुगृहीत मुझसे अन्य (कः) कौन (ज्ञातुम्) जानने के लिये (अर्हति) समर्थ हो सकता है ॥ २१ ॥

विशेषार्थ—यहाँ यह कहते हैं कि--परब्रह्म नारायण अपने परमधाम श्रीवैकुण्ठ में विराजमान रहता हुआ साधुओं के परित्राण के लिये श्रीरामकृष्णादि विभवावतार धारण करके अयोध्या मथुरादि दूर से दूर स्थान में चला जाता है और क्षीरसागर में सर्वदा शयन करता हुआ भी भक्ताधीनतावश श्रीरामकृष्णादि विभवावतार धारण करके चरित्रवन दण्डकवन नैमिषवन वृन्दावन वदरिवन आदिक सब ओर चलता रहता है। हर्षामर्ष रूप विरुद्ध धर्माध्यस्त उस परब्रह्म नारायण देव को भगवन्निर्हेतुक कृपापात्र मूत मुझसे अन्य कौन जानने के लिये समर्थ हो सकता है। इस श्रुति में परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्य शक्ति है और विरुद्धधर्माश्रय है, यह प्रतिपादन किया गया है ॥२१॥

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥२२॥

अन्वयार्थ —(अशरीरम्) कर्मकृत प्राकृतशरीर रहित परमात्मा (अनवस्थेषु) स्थिर न रहनेवाले विनाशशील (शरीरेषु) शरीरों में (अवस्थितम्) नित्य अविचल भाव से स्थित (महान्तम्) प्रसिद्धवैभवशाली उस बड़े (विभुम्) सर्वव्यापक (आत्मानम्) परमात्मा को (मत्वा) जानकर (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥२२॥

विशेषार्थ—वह परब्रह्म परमात्मा कर्मकृत प्राकृत शरीर रहित है। क्योंकि श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—

'या ते रुद्र शिवा तनूः ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ५)

हे सुख को प्राप्त करने वाले परब्रह्म नारायणदेव जो आप का कल्याणकार मङ्गलमय विग्रह है ॥५॥

हस्ते बिभर्षि ॥ ६॥ हाथ में बाण को तुम धारण करते हो ॥६॥

आदित्यवर्णम् ॥ ८ ॥ सूर्य के समान वर्णवाला परमात्मा है। ॥८॥

सर्वाननशिरोग्रीवः ॥ ११ ॥

सब ओर मुख सिर और गर्दन वाला परमात्मा है ॥ ११ ॥ इन प्रमाणों से दिव्यमङ्गलमयविग्रहयुक्त और कर्मकृतप्राकृत शरीर रहित परमात्मा स्थिर न रहनेवाले विनाशशील शरीरों में नित्य अविचलभाव से स्थिर रहता है। उस महान सर्वव्यापी परमात्मा को जानकर ज्ञानीपुरुष कभी किसी भी कारण

के किंचिन्मात्र भी शोक नहीं करता है। भगवदाराधन ग्रन्थनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'तत्तु समन्वयात् ।' (शा० मी० अ० पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और

'अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ८)

के श्रीभाष्य में तथा

'न तु दृष्टान्तभावात् ।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ९)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की बाईसवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥२२॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अयम्) यह (आत्मा) परब्रह्म परमात्मा (प्रवचनेन) प्रवचन साधन मनन से (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त हो सकता है और (मेधया) ध्यान से भी (न) नहीं प्राप्त हो सकता है और (बहुना) बहुत (श्रुतेन) सुनने से भी (न) नहीं प्राप्त हो सकता है (एषः) यह परमात्मा (यम्) जिस साधक पुरुष को (वृणुते) स्वीकार कर लेता है (तेन) उस प्रियतम करके (एव) निश्चय करके (लभ्यः) प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि (एषः) यह (आत्मा) परमात्मा (तस्य) उस उपासक के लिये (स्वाम्) अपने (तनूम्) यथार्थ स्वरूप को (विवृणुते) प्रकाशित कर देता है ॥२३॥

विशेषार्थ—भगवत्प्राप्ति के अनन्योपाय को कहते हैं कि—परब्रह्म नारायण श्रवण तथा मनन और निदिध्यासन से नहीं प्राप्त हो सकता है। किन्तु यह परमात्मा उसी साधक को प्राप्त होता है जिसको वह स्वयं स्वीकार कर लेता है और वह स्वीकार उसी को करता है जिसको उनके लिये उत्कट इच्छा—या प्रीति है। जो अपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल भगवान् की कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है। ऐसी कृपा निर्भर साधक पर परमात्मा कृपा करता है और उसके सामने अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करता है। यह श्रुति परगत स्वीकार को प्रतिपादन करती हुई "मार्जारकिशोर न्याय" को दिग्दर्शन कराती है। भगवत्प्राप्ति के लिये भगवान् ही उपाय हैं क्योंकि यह पाञ्चरात्र में लिखा है—

'अहं मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपतिः स्वयम् ।'

(भगवच्छास्त्र०)

मेरी प्राप्ति के लिये उपाय साक्षात् लक्ष्मीदेवी के पति नारायण मैं ही हूँ। भगवद्गीता में लिखा है—

'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्तिते ।'

(गी० अ० १० श्लो० १०)

मैं उस बुद्धियोग को देता हूँ कि जिससे वे भक्त मुझ को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ परगत स्वीकार को वेद पुरुष बारंबार अपेक्षा करते हैं। यह श्रुति (मुण्डको० मुण्डक ३ खं० २ श्रु० ३) में भी है। गद्यत्रयनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'प्रकरणाच्च ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १०)

के श्रीभाष्य में तथा

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में और

'सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ।'

(शारीरकमी० अ० ३ पा० ४ सू० ४६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की तेईसवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥२३॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ॥
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(दुश्चरितात्) जो पुरुष परस्त्री परद्रव्य अपहरण आदिक पाप कर्म से (अविरतः) निवृत्त नहीं हुआ है वह (न) नहीं परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और (अशान्तः) कामक्रोध का वेग जिसका शान्त नहीं हुआ है वह अशान्त (न) नहीं परमात्मा को प्राप्त कर सकता है तथा (असमाहितः) नाना प्रकार के व्यापार से विक्षिप्त होने से चित्त को एकाग्र न करनेवाला पुरुष (न) नहीं परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और (वा) अथवा (अशान्तमानसः) मन को निग्रह न करनेवाला पुरुष (अपि) भी (न) नहीं परमात्मा को प्राप्त कर सकता है (एनम्) इस परमात्मा को (प्रज्ञानेन) प्रज्ञान से (आप्नुयात्) प्राप्त कर लेवे ॥२४॥

विशेषार्थ—जो पुरुष परदार परद्रव्यापहार आदिक बुरे कर्मों में आसक्त हो रहे हैं और जो काम क्रोध के वेग से सदा अशान्त रहते हैं तथा जो नाना प्रकार के व्यापार से विक्षिप्त चित्त युक्त रहते हैं और जो सदा विषयों में मग्न रहते हैं, वे परमात्मा को नहीं पा सकते हैं। परन्तु जो पाप कर्म से बचे हुए हैं। जिनकी इन्द्रियाँ चंचल नहीं हैं। जिनका चित्त सावधान है और मन शान्त है वे ही सद्गुरु को पाकर प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। यतीन्द्र भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ।' (शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० ४९)

'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।'
(शा० मी० अ० ४ पा० १ सू० १३)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की चौबिसवीं श्रुति को उद्धृत किया है २४ ॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्थावेद यत्र सः ॥२५॥

॥ इति प्रथमाध्याये द्वितीयवल्ली ॥

अन्वयार्थ—(यस्य) संहारकाल में जिस परब्रह्म नारायण के (ब्रह्म) धर्माधर्म को निरूपण करनेवाला ब्राह्मण (च) और (क्षत्रम्) धर्म को पालन करनेवाला क्षत्रिय (उभे) ये दोनों अर्थात् समस्त चराचरात्मक संसार (ओदनः) खाद्य अन्न भात (भवतः) बन जाते हैं (च) और (मृत्युः) सबका संहार करनेवाला मृत्युदेव (यस्य) जिस परमात्मा के (उपसेचनम्) उपसेचन—भोज्य वस्तु के साथ लगाकर खाने का व्यञ्जन तरकारी आदिक बन जाता है (सः) वह निखिल चराचर संहर्ता परमात्मा (यत्र) जहाँ पर जिस प्रकार में स्थित है (इत्था) उस प्रकार विशिष्ट परमात्मा को ठीक ठीक इस प्रकार का है ऐसा (कः) कौन (वेद) जानता है ॥२५॥

विशेषार्थ— संहारकाल में जिस परमात्मा के धर्माधर्म को निरूपण करनेवाला ब्राह्मण और पालन करनेवाला क्षत्रिय ये दोनों अर्थात् समस्त जडचेतनात्मक जगत् खाद्य भात बन जाते हैं और सबका संहार करनेवाला मृत्युदेव भी जिस परमात्मा के भोज्य वस्तु के साथ लगाकर खाने का पदार्थ शाकादिक बन जाता है। वह निखिल चराचर संहर्ता परब्रह्म नारायण जहाँ पर जिस प्रकार में स्थित है, उस प्रकार विशिष्ट श्रीमन्नारायण ठीक ठीक इस प्रकार का है ऐसा कौन जान सकता है। अतः पूर्वोक्त तेईसवीं श्रुति के अनुसार जिसको निर्हेतुक दया करके नारायण अपनी कृपा का पात्र बनाकर अपना तत्त्व समझाना चाहता है वही प्रपन्नजन उसको

जान सकता है। अन्य उपायों से कोई भी परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को नहीं जान सकता है। श्रीपूज्यपाद भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अत्ता चराचरग्रहणात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० ६)

के श्रीभाष्य में और

'प्रकरणाच्च ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १०)

के श्रीभाष्य में तथा

'त्रयाणामेव-चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'(शा०मी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली की पचीसवीं श्रुति को उद्धृत किया है। यहाँ पर "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की द्वितीयवल्ली समाप्त हो गई है ॥२५॥

॥ अथ तृतीयवल्ली ॥

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्ध्ये ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥१॥

अन्वयार्थ—(सुकृतस्य) अपने किये हुए शुभ कर्मों के फलस्वरूप (लोके) मनुष्य के शरीर मे (परमे) परमोत्तम (परार्ध्ये) परब्रह्म के सर्वोत्कृष्ट निवासस्थान हार्दाकाश में (गुहाम्) हृदयरूप गुफा में (प्रविष्टौ) प्रवेश किये हुए जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों (ऋतम्) सत्यपदवाची अवश्यंभावी कर्मफल को (पिबन्तौ) अनुभव करते हुए—या भोगते हुए (छायातपौ) जीवात्मा अज्ञ छाया के समान और सर्वज्ञ परमात्मा आतप के समान स्थित हैं ऐसा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष (च) और ये) जो (त्रिणाचिकेताः) तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन करनेवाले तथा (पञ्चाग्नयः) दक्षिणाग्नि १, गार्हपत्य १, आहवनीय ३, आवसथ्य ४ और सभ्य ५ इन पाँचो अग्नियों में हवन करनेवाले गृहस्थ हैं। वे सभी (वदन्ति) कहते हैं ॥१॥

विशेषार्थ—जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों सुकृत साध्य मनुष्य के शरीर में परमोत्तम परब्रह्म के सर्वोत्कृष्ट निवास स्थान हार्दाकाशमें हृदयरूप गुफा में प्रवेश किये हुए हैं और वे दोनों ही सत्यपदवाची अवश्यंभावी कर्मफल को भोगते हैं। इस प्रकार साथ रहने पर भी जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों छाया और धूप के समान परस्पर भिन्न हैं। जीवात्मा छाया के समान अल्पज्ञ है और

परमात्मा धूप की समान पूर्ण प्रकाश सर्वज्ञ है। ऐसा ब्रह्मवेत्ता महानुभाव लोग तथा तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन करनेवाले या **"अयं वाव यः पवते"** इत्यादि तीन अनुवाक का अध्ययन करनेवाले और दक्षिणाग्नि १, गार्हपत्य २, आहवनीय ३, आवसथ्य ४, तथा सभ्य ५ इन पाँचो अग्नियों में हवन करनेवाले सज्जन गृहस्थ भी कहते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।'

(मुण्डको० मुं० ३ खं० १ श्रु० १)

जीवात्मा और परमात्मा उन दोनों में एक जीवात्मा स्वादु-मीठा परिपक्व कर्मफल को भक्षण करता है और दूसरा परमात्मा भक्षण न करता हुआ सर्वदा प्रकाशता है ॥१॥ इस श्रुति से पूर्वोक्त श्रुति का विरोधाभास होता है। इसका उत्तर यह है—

'ऋतं पिबन्तौ।' (कठो० अ० १ व० ३ श्रु ०१)

इस श्रुति में "पिबन्तौ" इस द्विवचन का प्रयोग (छत्रिणो यान्ति) छातावाले जा रहे हैं। इस छत्रिन्याय से हुआ है अर्थात् जहाँ बहुत से आदमी छातावाले जा रहे हों और एक के पास छाता नहीं है तौ भी छातावालों से सम्बन्ध होने के कारण छातावाले जा रहे हैं ऐसा लोक में प्रयोग होता है। इस "छत्रिन्याय" से यहाँ भोक्ता जीवात्मा के सम्बन्ध से परमात्मा को भी भोक्ता कहा गया है। वस्तुतः "ऋतं पिबन्तौ" इसका भी अर्थ यही है कि —हृदयरूपगुफा में रहनेवाले उन दोनों में से एक जीवात्मा कर्मफल का पान भोग करता है। दूसरा परमात्मा नहीं। प्रातःस्मरणीय भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'गुहां प्रविष्टा वात्मानौ हि तद्दर्शनात्।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० ११)

के श्रीभाष्य में तथा

'विशेषणाच्च।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १२)

के श्रीभाष्य में और

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च।'

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीय वल्ली की पहली श्रुति को उद्धृत किया है। यहाँ पर उपास्य परमात्मा के एक साथ उपासक

जीवात्मा की स्थिति होने से सुगम उपासना का प्रतिपादन किया गया है १॥

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ॥२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो परमात्मा (ईजानानाम्) यज्ञ करनेवालों के (सेतुः) आधारभूत—कर्म के फल को देनेवाला है और (यत्) जो (अक्षरम्) अविनाशी —या निर्विकार (परम्) पर (ब्रह्म) है (तितीर्षताम्) संसार समुद्र से पार होने की इच्छावालों के (अभयम्) निर्भय (पारम्) दृढ तीर है (नाचिकेतम्) उस नचिकेता कर्म के प्राप्य परब्रह्म नारायण को (शकेमहि) उपासना करने के लिये हम समर्थ हैं ॥२॥

विशेषार्थ—जो यज्ञादि कर्म करनेवालों के आधारभूत—कर्म के फल को देनेवाला सेतु है और अविनाशी निर्विकार परब्रह्म है तथा जो संसार समुद्र से पार होने की इच्छावालों का निर्भय दृढतीर है उस नाचिकेताग्नि कर्म के प्राप्य परब्रह्म नारायण को उपासना करने के लिये हम समर्थ हैं। यतिमूर्धन्य श्रीरामानुजाचार्य ने

'विशेषणाच्च ।'	(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १२)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की दूसरी श्रुति को उद्धृत किया है ॥२॥

आत्मानंरथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

अन्वयार्थ—(आत्मानम्) हे नचिकेता शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा को (रथिनम्) रथ का स्वामी—रथ में बैठकर चलनेवाला (विद्धि) तुम जानो (शरीरम्) शरीर को (एव) निश्चय करके (तु) तो (रथम्) रथ तुम जानो तथा (बुद्धिम्) बुद्धि को (तु) तो (सारथिम्) रथ को चलानेवाला कोचवान —सारथि तुम जानो (च) और (मनः) मन को (एव) निश्चय करके (प्रग्रहम्) लगाम (विद्धि) तुम जानो ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे नचिकेता शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा को रथ का स्वामी जानो और शरीर में जीवात्मा रहती है इससे शरीर को रथ जानो तथा जैसे रथ को घोड़े खींचते हैं वैसे ही शरीररूप रथ को भी इन्द्रियाँ खींचती हैं। निश्चयवाली बुद्धि को सारथि तुम जानो। क्योंकि—शरीर को जहाँ तहाँ ले जाने की युक्ति करनेवाली बुद्धि ही है और संकल्प विकल्प रूप मन को लगाम तुम जानो। क्योंकि जैसे लगाम के पकड़ने

'विशेषणाच्च ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १२)

के श्रीभाष्य और

'आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्त गृहीते र्दशयति च ।

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में तथा

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।'(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में और

'कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ।

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १०)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की तृतीय श्रुति को उद्धृत किया है। यहाँपर ब्रह्म प्राप्ति के उपायत्व को ख्यापन करने के लिये शरीर आदिक में रथादिक की कल्पना की गई है और

'आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ।'(शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० १४)

के श्रीभाष्य में प्रस्तुत श्रुति को उन्होंने उद्धृत किया है ।।३।।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।४।।

अन्वयार्थ—(मनीषिणः) ज्ञानीपुरुष (इन्द्रियाणि) इस रूपक में इन्द्रियों को (हयान्) घोड़े (आहुः) कहते हैं और (तेषु) उन इन्द्रियों में ग्रहण किये हुये (विषयान्) शब्दादिक विषयों को (गोचरान्) घोड़ों के विचरने का मार्ग कहते हैं तथा (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीर दश इन्द्रियाँ और मन बुद्धि इन सब के साथ रहनेवाले जीवात्मा को (भोक्ता) भोक्ता (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं ।।४।।

—विशेषार्थ—शरीर को रथ की कल्पना करने में चतुर पुरुष श्रोत्र १, चक्षु २, घ्राण ३, रसना ४, त्वचा ५, वाक् ६, पाणि ७, पाद ८ पायु ९, उपस्थ १० इन इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं क्योंकि जैसे घोड़े रथ को खींचकर ले जाते हैं। तैसे ही इन्द्रियाँ शरीर को खींचकर ले जाती हैं। इस इन्द्रियरूप घोड़ों के चलने का मार्ग शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श ये विषय हैं क्योंकि इन्द्रियाँ सर्वदा विषयों में ही फिरती रहती हैं और शरीर दश इन्द्रियों और मनबुद्धि से युक्त जीवात्मा को भोक्ता कहते हैं। केवल जीवात्मा कर्ता तथा भोक्ता नहीं है। इस श्रुति में "आत्मा" का अर्थ शरीर होता है और (कठो० अध्या० १ व ३ श्रु० ३)

में बुद्धि को सारथि बतलाया गया है इससे यहाँ पर मन से बुद्धि का भी ग्रहण होता है। यतीन्द्र भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'आनुमानिकमप्येकेषामितिचेन्न
शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ।'
(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की चौथी श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है ॥४॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥

—अन्वयार्थ—(तु) परन्तु (यः) जो पुरुष (सदा) निरन्तर (अयुक्तेन) अवशीकृत—चञ्चल (मनसा) मन से युक्त (अविज्ञानवान्) विवेकहीन बुद्धिवाला (भवति) होता है (तस्य) उस पुरुष की (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (सारथेः) सावधान सारथि के (दुष्टाश्वाः) दुष्ट घोड़ों के (इव) समान (अवश्यानि) वश में न रहनेवाली हो जाती हैं ॥५॥

विशेषार्थ—लोक में जैसा चतुर सारथि न हो और सुन्दर लगाम न हो तो रथ के दुष्ट घोड़े हरी हरी घास की जंगल की ओर मन माना दौड़ते हैं। तब असावधान सारथि के वश में दुष्ट घोड़े नहीं होते हैं। वैसे ही शरीररूप रथ में बैठा हुआ जो पुरुष विवेकहीन बुद्धिरूप सारथि से युक्त है और अवशीकृत—चंचल मन रूप लगाम से युक्त है तो अनादि काल के बिगड़े हुए इन्द्रियरूपी घोड़े संसार के विषय की ओर दौड़ पड़ते हैं। तब तो विवेकहीन बुद्धिरूप सारथि के वश में दुष्ट इन्द्रिय रूप घोड़े नहीं हो सकते हैं। अर्थात् विषयरूप मार्ग से इन्द्रियों को लौटाना कठिन हो जाता है॥५॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सह ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥६॥

अन्वयार्थ—(तु) परन्तु (यः) जो पुरुष निरन्तर (युक्तेन) वश में किया हुआ—सावधान (मनसा) मन के (सह) साथ (विज्ञानवान्) विवेक-युक्त बुद्धिवाला (भवति) होता है (तस्य) उस पुरुष की (इन्द्रियाणि) इन्द्रिया (सारथेः) सावधान सारथि के (सदश्वाः) अच्छे घोड़ों के (इव) समान (वश्यानि) वश में रहनेवाली हो जाती हैं ॥६॥

विशेषार्थ—लोक में जैसा समीचीन सारथि समीचीन लगाम से युक्त पुरुष सुन्दर चाल चलनेवाले घोड़ों से रथ को सुन्दर इष्ट स्थल पर ले जाता है। वैसे ही जो जीवात्मा सर्वदा वश में किया हुआ—सावधान मनरूप

लगाम से युक्त है और विवेकयुक्त बुद्धिरूप सुन्दर सारथि से युक्त है तो उसकी इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथ को अपने इष्ट लक्ष्य मार्ग पर ले चलते हैं। अर्थात् सावधान सारथि के अच्छे घोड़े जैसे वश में रहते हैं वैसे ही विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथि के जितेन्द्रिय रूप अच्छे घोड़े वश में रहते हैं। इससे पवित्र भगवद्भाव को वे सेवन करते हैं॥ ६॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।
न स तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो कोई (तु) भी (सदा) सर्वदा (अविज्ञानवान्) विवेकहीन बुद्धिवाला (अमनस्कः) अनिगृहीत मनवाला अतएव (अशुचिः) अपवित्र (भवति) विपरीत चिन्ताप्रवण होने से होता है (सः) वह अपवित्र पुरुष (तत्) उस (पदम्) जिगमिषित परमपद को (न) नहीं (आप्नोति) प्राप्त कर सकता है (च) और (संसारम्) गहन संसार कान्तार को (अधिगच्छति) बारंबार प्राप्त करता है॥७॥

विशेषार्थ—जो शरीररूप रथ का स्वामी जीवात्मा विवेकहीन बुद्धि रूप सारथि वाला होता है और जो अनिगृहीत मनरूप लगाम वाला होता है तथा विपरीत चिन्ताप्रवण होने से जो सर्वदा अपवित्र रहता है। वह मानव शरीर से प्राप्त होने योग्य अविनाशी परमपद को नहीं पा सकता है। बल्कि अपने दुष्कर्मों के परिणाम स्वरूप गहन इस संसार कानन में भटकता रहता है। अर्थात् शूकर कूकर आदिक विभिन्न योनियों में जन्मता मरता रहता है॥७॥

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥८॥

अन्वयार्थ—(तु) परंतु (यः) जो कोई पुरुष (सदा) सर्वदा (विज्ञानवान्) विवेकशील बुद्धि से युक्त (समनस्कः) सावधान मनवाला (शुचिः) पवित्र (भवति) रहता है (सः) वह पवित्र पुरुष (तु) तो (तत्पदम्) उस अविनाशी परमपद को (आप्नोति) प्राप्त कर लेता है (यस्मात्) जिस परमपद से (भूयः) फिर (न) नहीं (जायते) जन्मता है॥७॥

विशेषार्थ—जो शरीररूप रथ का स्वामी जीवात्मा विवेकशील बुद्धिरूप सारथि वाला होता है तथा जो सावधान मनरूप लगाम वाला होता है और सर्वदा पवित्र रहता है। वह पुरुष परमात्मा के उस परमपद को प्राप्त कर लेता है कि—जिस परमपद से लौट कर फिर संसार में जन्म नहीं लेता है॥८॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(तु) परंतु (यः) जो कोई (नरः) मनुष्य (विज्ञानसारथिः) समीचीन—विवेकशील बुद्धिरूप सारथि से सम्पन्न और (मनः) समीचीन मनरूप (प्रग्रहवान्) लगाम को वश में रखनेवाला है (सः) वह उत्तमोपासक (अध्वनः) संसार मार्ग के (पारम्) पार पहुँचकर (विष्णोः) परब्रह्म नारायण भगवान् के (तत्) उस सुप्रसिद्ध (परमम्) सबसे श्रेष्ठ (पदम्) परमपद को (आप्नोति) प्राप्त कर लेता है ॥९॥

विशेषार्थ—जो सुन्दर मनुष्य के शरीररूप रथ के अधिष्ठाता पुरुष समीचीन -विवेकशील बुद्धिरूप सारथि से सम्पन्न है और समीचीनरूप लगाम को अपने वश में जो रखनेवाला है । वह भगवदुपासक परब्रह्म नारायण भगवान् के सर्वोत्कृष्ट सुप्रसिद्ध अक्षय्य उस परमपद को प्राप्त कर लेता है और सदा के लिये कृतकृत्य हो जाता है । श्री जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अत्ता चराचरग्रहणात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० ९)

के श्रीभाष्य में और—

'विशेषणाच्च ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १२)

के श्रीभाष्य में तथा—

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपक विन्यस्तगृहीते दर्शयति च ।'
(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।'(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ५)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की नवमी श्रुति को उद्धृत किया है । इस श्रुति में प्राप्य-परमात्मा और प्राप्तिकर्ता जीवात्मा ये दोनों प्रतिपादित किये गये हैं ॥ ९ ॥

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय करके (अर्थाः) शब्दादि विषय (इन्द्रियेभ्यः) श्रोत्रादिक इन्द्रियों से (पराः) बलवान् हैं (च) और (मनः) मन (अर्थेभ्यः) शब्दादि विषयों से (परम्) पर-प्रबल है (तु) और (बुद्धिः) बुद्धि (मनसः) मन से (परा) पर बलवती है और (महान्) पूर्वोक्त सबका स्वामी महान्

बड़ा (आत्मा) जीवात्मा (बुद्धेः) बुद्धि से (परः) श्रेष्ठ और बलवान् है ॥१०॥

विशेषार्थ रथादिनिरूपित शरीरादि में जो जिससे वश करने में प्रधान या प्रबल हैं उनको यहाँ पर दो श्रुतियों से कहते हैं । इस श्रुति में "पर" शब्द का प्रयोग बलवान के अर्थ में हुआ है, क्योंकि कार्य कारण भाव से या सूक्ष्मता की दृष्टि से इन्द्रियों की अपेक्षा शब्दादि विषयों को श्रेष्ठ बतलाना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है । इसी प्रकार "महान्" विशेषण के सहित "आत्मा" शब्द भी जीवात्मा का वाचक है 'महत्त्व' का नहीं । जीवात्मा इन्द्रियादिक का स्वामी है इससे उसके लिये "महान्" विशेषण देना उचित ही है । यदि कापिलतन्त्र-सांख्यशास्त्र के अनुसार महत्तत्त्व के अर्थ में इसका प्रयोग होता तो "आत्मा" शब्द के प्रयोग की कोई आवश्यकता ही नहीं थी । दूसरी बात यह भी है कि बुद्धितत्त्व ही महत्तत्त्व है । तत्त्वविचार काल में इसमें भेद नहीं माना जाता । इसलिये इस श्रुति का अर्थ यह है कि अश्वरूप से निरूपित श्रोत्रादि इन्द्रियों से गोचरत्वेन निरूपित शब्दादि विषय वश करने में प्रवल हैं क्योंकि वश्य इन्द्रियों के भी एकान्त में विषय संनिधि में इन्द्रियों का निग्रह करना अत्यन्त कठिन हो जाता है और शब्दादि विषयों से भी प्रग्रह निरूपित मन बलवान है, क्योंकि मन के विषयप्रवण होने पर विषयों के असंनिधान भी कुछ नहीं कर सकता है और लगाम रूप मन से भी सारथि निरूपित बुद्धि बलवती है और सारथिरूप बुद्धि से भी रथी निरूपित जीवात्मा अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान है । क्योंकि वे सब इन्द्रियादिक -आत्मा की इच्छा के अनुकूल हैं । वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य भगव--द्रामानुजाचार्य स्वामी ने—

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ।'

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।'

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ५)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" की प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की दशवीं श्रुति को उद्धृत किया है और **'महद्वच्च ।'** की व्याख्या में भी उद्धृत किया है

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू०७)

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सापरा गतिः ॥११॥

अन्वयार्थ—(महतः) महान् जीवात्मा से (अव्यक्तम्) अव्यक्त आदि अन्त वाला—शरीर (परम्) बलवान्—या श्रेष्ठ है और (अव्यक्तात्)

शरीर से (पुरुषः) उत्तमपुरुष नारायण (परः) श्रेष्ठ है (पुरुषात्) परब्रह्म नारायण भगवान् से (परम्) श्रेष्ठ या बलवान् (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं है (सा) वही (काष्ठा) सब की चरम अवधि है और (सा) वही (परा) सब से पर (गतिः) गति है ॥११॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में "अव्यक्त" का अर्थ शरीर है। सांख्यशास्त्र में प्रसिद्ध "अव्यक्ततत्त्व नहीं। क्योंकि इस प्रकरण में—

'शरीरं रथमेव तु।' (कठोप० अ० १ व० ३ श्रु० ३)

इस श्रुति से शरीर को रथ निरूपित किया गया है और आगे चलकर

'बुद्धेरात्मा।' (कठो० अ० १ व० ३ श्रु० १०)

में सारथिरूप बुद्धि से शरीराधिष्ठाता जीवात्मा को श्रेष्ठ और बलवान बतलाया गया है। इसके बाद—

'महतः परमव्यक्तम्।' (कठो० अ० १ व० ३ श्रु० ११)

में "अव्यक्त" शब्द आया है। इससे अव्यक्त आदि अन्तवाला "शरीर" का वाचक है। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

'अव्यक्तादीनिभूतानि'' अव्यक्त निधनान्येव।'(गी० अ० २ श्लो० २८)

इन मनुष्यादि शरीरों का आदि अव्यक्त अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं है और मरण के बाद भी अव्यक्त ही है ॥२८॥इससे यहाँ "अव्यक्त" शब्द का अर्थ शरीर ही है। कापिलतंत्र सिद्ध "प्रधान" नहीं, क्योंकि उनके मत में "प्रधान" स्वतंत्र है और वह आत्मा से पर नहीं है। इसलिये इस श्रुति का अर्थ यह है कि—रथीरूप से निरूपित शारीराधिष्ठाता महान् जीवात्मा से रथरूप अव्यक्त आदि अन्तवाला शरीर श्रेष्ठ है। क्योंकि शरीर के रहने पर ही जीवात्मा समस्त पुरुषार्थ के साधन में प्रवृत्त होता है और रथ रूप से निरूपित अव्यक्त आदि अन्तवाला शरीर से भी उत्तम पुरुष भगवान् सर्वान्तर्यामी परमप्राप्य श्रेष्ठ है और परब्रह्म नारायण भगवान् से श्रेष्ठ और बलवान कुछ भी नहीं है। वहीं परमात्मा सबकी चरम अवधि और सबसे पर गति है। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'नान्योऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतः।'

(बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ७ श्रु० २३)

यह परमात्मा तुम्हारा अन्तर्यामी अमृत है। इससे अन्य देखनेवाला या सुननेवाला या मनन करनेवाला या विशेष जाननेवाला नहीं है ॥२३॥ भगवद्गीता में लिखा है—

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।'

(गी० अ० १५ श्लो० १५)

मैं सब के हृदय में प्रविष्ट हूँ मुझ से ही स्मृति ज्ञान और ज्ञान की निवृत्ति होती है ॥१५॥

'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।'
विविधा च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥

(गी० अ० १८ श्लो० १४)

अधिष्ठान—यानी शरीर १ और कर्ता—यानी जीवात्मा २ तथा पृथक् पृथक् प्रकार का करण-यानी इन्द्रियाँ ३ और विभिन्न प्रकार की अलग अलग चेष्टायें ४ तथा पाँचवाँ दैव—यानी परमात्मा ५ ये पाँच कारण हैं ॥१४॥

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥'

(गी० अ० १८ श्लो० ६१)

हे अर्जुन ! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदयदेश में स्थित है और यंत्रारूढ सभी प्राणियों को अपनी माया से घुमा रहा है ॥६१॥उस परमात्मा को वश करने वाली शरणागति ही है—

'तमेव शरणं गच्छ।' (गी० अ० १८ श्लो० ६२)

उस परमेश्वर की ही शरण में जा ॥६२॥

'मामेकं शरणं व्रज ॥६६॥'

एक मेरी ही शरण में आजा ॥६६॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि "पुरुष" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण है इसमें क्या प्रमाण है। इसका उत्तर यह लिखा है—

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।'

(ऋग्वे० अष्ट० ८ मण्ड० १० अध्या० ४ अनुवा० ७ सूक्त ९० मं० १)

हजारों सिरवाला परमात्मा है ॥१॥

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।' (य० अ० ३१ मं० १)

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।'

(सा० वे० पूर्वार्चि० प्रपाठक० ६ सूक्त० १३ मं० ३)

'सहस्रबाहुः पुरुषः।'

(अथर्व० कां० १९ अनुवा० १ सूक्त ६ मं० १)

हजारों भुजावाला नारायण है ॥१॥

'योऽसावसौ पुरुषः ।' (ई० उ० श्रु० १६)

जो वह प्राण में परमात्मा है ॥१६॥

'पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ।' (प्रश्नो० प्र० ६ श्रु० ५)

परमात्मा को प्राप्त करके लीन हो जाती हैं ॥५॥

'येनाक्षरं पुरुषं वेद ।' मुण्डको० मु० १ खं० २ श्रु० १३॥

जिससे अविनाशी नारायण को जानता है ॥ १३ ॥

'य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते ।' (छा० उ० अ० ४ खं० १२ श्रु० १)

जो यह चन्द्रमा में परब्रह्म नारायण देखा जाता है ॥ १ ॥

'योसावसौ पुरुषः ।' (बृ० उ० अ० ५ ब्रा० १५ श्रु० १)

जो सूर्यमण्डल में वह परमात्मा है ॥ १ ॥

'तेनेदंपूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु ६)

उस परब्रह्म नारायण से यह समस्त जगत् पूर्ण है ॥ ६ ॥

'पुरुषोहवै ।' (नारा० उ० श्रु० १)

निश्चय करके परमात्मा ॥ १ ॥

'पुरुषंध्यायेत् ।' (विष्णुस्मृ० अ० ६८)

परमात्मा को ध्यान करे ॥ ६८ ॥

'एष वै पुरुषो विष्णुः ।' (शंखस्मृ० अ० ७)

यह निश्चय करके परब्रह्मनारायण है ॥ ७ ॥

'सनातनस्त्वंपुरुषो मतो मे ।' (गीता० ११ श्लो० ३८)

आप सनातन परब्रह्म नारायण हैं ॥ ३८ ॥

'अव्ययः पुरुषः साक्षी ।' (विष्णुस० श्लो० २)

अव्यय १, पुरुष २, साक्षी ३ ये नारायण के नाम हैं ॥ २ ॥ इन प्रमाणों से "पुरुष" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है । उभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने—

**आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीर-
रूपकविन्यस्त गृहीतेर्दर्शयति च ॥**

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'वदतीति चेन्न प्राज्ञोहि प्रकरणात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ५)

के श्री भाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की ग्यारहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ ११ ॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१२॥

अन्वयार्थ—(एषः) यह (आत्मा) सर्वान्तर्यामी परमात्मा (सर्वेषु) समस्त (भूतेषु) प्राणियों में (गूढः) अपनी योगमाया से छिपा रहता है इस कारण से अजित बाह्यान्तः करणों के (न) नहीं (प्रकाशते) प्रकाशित होता है (तु) किन्तु (सूक्ष्मदर्शिभिः) सूक्ष्मतत्त्व दर्शन शील पुरुषों के द्वारा (अग्र्यया) एकाग्रतायुक्त बाह्यान्तर व्यापार रहित (सूक्ष्मया) अति सूक्ष्म अर्थ को विवेचन करनेवाली (बुद्ध्या) बुद्धि से (दृश्यते) देखा जाता है ॥१२॥

विशेषार्थ—यह परब्रह्म परमात्मा समस्त ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त प्राणियों में अपनी योगमाया से छिपा हुआ विराजमान रहता है । इस कारण से सबके प्रत्यक्ष नहीं होता है । क्योंकि यह लिखा है—

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।'
(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० ११)

एक नारायणदेव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है ॥११॥

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।' (गी० अ० ७ श्लो० २५)

योगमाया से ढका हुआ मैं सबके लिये प्रकाशित नहीं हूँ ॥२५॥ सूक्ष्मतत्त्व-दर्शन-शील विवेकी पुरुष एकाग्रतायुक्त बाह्याभ्यन्तर व्यापार रहित अति सूक्ष्म अर्थ को विवेचन करनेवाली बुद्धि से परमात्मा को देख लेते हैं । श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपक विन्यस्त गृहीतेर्दर्शयति च'
(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।'(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ५)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की बारहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१२॥

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

अन्वयार्थ—(प्राज्ञः) विवेकी साधक पुरुष (वाक्) पहले वाक् आदिक समस्त कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियों को (मनसी) मन में (यच्छेत्) निरुद्ध करे और (तत्) उस मन को (आत्मनि) आत्मा—शरीर में वर्तमान (ज्ञाने) बुद्धि में (यच्छेत्) विलीन करे (ज्ञानम्) ज्ञानस्वरूप बुद्धि को (महति)

शरीर के स्वामी कर्ता महान् (आत्मनि) जीवात्मा में (नियच्छेत्) विलीन करे और (तत्) उस जीवात्मा को (शान्ते) शान्त स्वरूप (आत्मनि) सर्वान्तर्यामी परब्रह्म नारायण में (यच्छेत्) निग्रह करे ॥१३॥

विशेषार्थ—बुद्धिमान् विवेकी पुरुष वाक् १, पाणि २, पाद ३, पायु ४, उपस्थ ५, श्रोत्र ६, चक्षु ७, घ्राण ८, रसना ९, त्वचा १० इन समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन में निरूद्ध करे और मन को शरीर में रहनेवाली ज्ञानस्वरूप बुद्धि में निरुद्ध करे। तदनन्तर ज्ञानस्वरूपा बुद्धि को शरीरके अधिष्ठाता कर्ता महान् जीवात्मा में विलीन करे। इसके बाद शान्तस्वरूप सर्वान्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा में शरीराधिष्ठाता जीवात्मा को विलीन करे। सत्सम्प्रदायाचार्य भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

आनुमानिकमप्येकेषामितिचेन्न शरीररूपकविन्यस्त गृहीतेर्दर्शयति च।

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० १)

के श्री भाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीय वल्ली की तेरहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ १३ ॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो-वदन्ति ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तिष्ठत) हे मोक्ष की इच्छावाले मनुष्यों उठो अर्थात् आत्मज्ञान के अभिमुख होवो (जाग्रत) जागो अर्थात् अज्ञान निद्रा का नाश करो (वरान्) श्रेष्ठ आचार्यों को (प्राप्य) पाकर (निबोधत) परब्रह्म परमात्मा को जान लो (कवयः) त्रिकालज्ञ मेधावी पुरुष (तत्) उस आत्मज्ञान (पथः) मार्ग को (क्षुरस्य) छूरे की (निशिता) अत्यन्त तीक्ष्ण (दुरत्यया) नहीं पार करने योग्य—दुस्तर (धारा) धार के सदृश (दुर्गम्) दुर्गम-अत्यन्त कठिन (वदन्ति) कहते हैं ॥ १४ ॥

विशेषार्थ—वशीकरण प्रकार को कह कर अब अधिकारी पुरुषों को माता पिता से सहस्र गुण अधिक कृपा करके श्रुति उपदेश दे रही है कि—हे मोक्ष की इच्छावाले प्राणियों तुम अज्ञान की नींद से जागो, यानी विषयों की आसक्ति को त्यागो और परमात्मा का दर्शन करने के लिये उठकर बैठो। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ आचार्य के पास में सविधि जाकर उनसे उपदेश ग्रहण करके सर्वान्तर्यामी परमात्मा को जान लो उपेक्षा मत करो। तुम्हारे जानने योग्य भगवद्विषय बड़ी सूक्ष्म बुद्धि से प्राप्त हो सकता है। त्रिकालज्ञ ज्ञानी पुरुष उस परमात्मतत्त्वज्ञान के मार्ग को छूरे की

अत्यन्त तीक्ष्ण दुस्तर पैनायी हुई धारा के सदृश दुर्गम, अत्यन्त कठिन है—ऐसा कहते हैं। जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च।'

(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की चौदहवीं श्रुति के चतुर्थपाद को उद्धृत किया है ॥१४॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा-
रसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥१५॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो परब्रह्म (अशब्दम्) प्राकृतशब्द रहित (अस्पर्शम्) प्राकृतस्पर्श रहित (अरूपम्) प्राकृतरूप रहित (अव्ययम्) विकार रहित या अपचय रहित (तथा) वैसे ही (अरसम्) प्राकृत रस रहित (च) और (अगन्धवत्) प्राकृत गन्धरहित है और जो (नित्यम्) नित्य (अनादि) अनादि (अनन्तम्) अनन्त असीम (महतः) महान् जीवात्मा से (परम्) श्रेष्ठ (ध्रुवम्) स्थित (तत्) उस परमात्मा को (निचाय्य) उपासना से देखकर साधक पुरुष (मृत्युमुखात्) मृत्यु के मुख से अर्थात् भीषण संसार से (प्रमुच्यते) सदा के लिये छूट जाता है ॥१५॥

विशेषार्थ—जो परब्रह्मपरमात्मा प्राकृत शब्द, प्राकृत स्पर्श, प्राकृत रूप, प्राकृत रस और प्राकृत गन्ध इन पाँच प्राकृत विषयों से रहित है। यहाँ पर प्राकृत हेय शब्दादि गुणों का निषेध किया गया है क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

मनोमयः प्राणशरीरोभारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः

(छा० उ० अ० ३ खं० १४ श्रु० २)

वह परमात्मा मनोमय प्राणशरीर भास्वररूप सत्यसंकल्प आकाश के समान सूक्ष्म स्वच्छ स्वरूप सर्वकर्मा सर्व काम सर्वगन्ध सर्वरस इस संपूर्ण कल्याण गुणगण को सब प्रकार से ग्रहण किया है और समस्त संसार को तृण के समान जानकर मौनी होकर विराजमान है ॥२॥ और जो परमात्मा अपक्षयशून्य—यानी विकार रहित अविनाशी नित्य अनादि अनन्त असीम स्थिर और जीवात्मा से भी श्रेष्ठ परतत्त्व है। उस परमात्मा को उपासना के द्वारा जानकर साधक पुरुष

सदा के लिये जन्म मरण से छूट जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य निर्माता भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १)

के श्रीभाष्य में तथा

'वदतीतिचेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ५)

के श्रीभाष्य में और

'त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्' के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली की पन्द्रहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१५॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥

अन्वयार्थ—(मेधावी) बुद्धिमान् पुरुष (मृत्युप्रोक्तम्) यमराज के कहे हुए और (नाचिकेतम्) नचिकेता के पाये हुए (सनातनम्) इस अपौरुषेय नित्य सनातन (उपाख्यानम्) उपाख्यान को (उक्त्वा) मुमुक्षुओं से कह कर (च) और आचार्य से (श्रुत्वा) सुनकर (ब्रह्मलोके) परब्रह्म के लोक में (महीयते) पूजित होता है ॥१६॥

विशेषार्थ—इस अध्याय का उपसंहार करते हुए इस आख्यान के श्रवण और कथन के माहात्म्य को प्रतिपादन करते हैं कि—बुद्धिमान् पुरुष यमराज के कहे हुए और नचिकेता द्वारा प्राप्त किये हुए इन तीन वल्लियों वाले अपौरुषेय चिरन्तन नित्य उपाख्यान को मुमुक्षुओं से कहकर तथा आचार्यों से सुनकर परब्रह्म के लोक में पूजित होता है। जिससे पुनः संसार में नहीं आता है। ब्रह्मानन्द अक्षय्य सुख को अनुभव सदा करता रहता है ॥१६॥

यइमं परमं गुह्यं
श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय
कल्पते तदानन्त्याय कल्पते ॥१७॥

। इति प्रथमाध्याये तृतीयवल्ली ।

अन्वयार्थ—(यः) जो पुरुष (प्रयतः) सर्वथा शुद्ध होकर (इमम्) इस (परमम्) अत्यन्त (गुह्यम्) गोपनीय—रहस्यमय ज्ञान को (ब्रह्मसंसदि)

ब्राह्मणों के समाज में (वा) या (श्राद्धकाले) श्राद्ध के समय में (श्रावयेत्) भोजन करनेवालों को सुनाता है तो (तत्) वह श्राद्ध (आनन्त्याय) अनन्त फल देने को (कल्पते) समर्थ होता है (तत्) वह श्राद्ध (आनन्त्याय) अनन्त फल देने को (कल्पते) समर्थ होता है ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—जो कोई पुरुष पवित्र हो इन्द्रिय और मन को वश में किये हुए ब्रह्मज्ञानियों के समाज में या श्राद्ध के समय भोजन करनेवाले ब्राह्मणों के समीप में इस परम गोपनीय यमराज से कहे हुए उपाख्यान को सुनता है तो उसका किया हुआ वह श्राद्ध अनन्त—अविनाशी फल को देने में समर्थ होता है। यहाँ पर "तदानन्त्याय कल्पते" यह दूसरी बार पूर्वोक्त बात की दृढ़ता के लिये और अध्याय की समाप्ति के लिये कहा गया है। इस श्रुति के अन्त में किसी किसी ग्रन्थ में "इति" पद भी है। यहाँ पर कुछ सज्जन कहते हैं कि जीवित श्राद्ध ही वेद में लिखा है, मरे पितरों का नहीं। इसलिये विज्ञवैदिक पुरुषों के लिये मृतक पितरों के श्राद्ध प्रतिपादन करनेवाले कुछ प्रमाणों को यहाँ मैं लिखता हूँ॥

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तुतेऽवन्त्वस्मान् ॥

(यजुर्वे० अ० १९ मं० ५८)

सोम के योग्य अग्नि द्वारा स्वादित हमारे पितर देवताओं के गमन योग्य मार्गों से आवें। इस यज्ञ में स्वधा के अन्न से प्रसन्न होते मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें ॥५८॥

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधयामादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथा वशन्तन्वङ्कल्पयाति ॥

(य० अ० १९ मं० ६०)

जो पितर विधिपूर्वक अग्निदाह से और्ध्वदेहिक कर्म को प्राप्त हुये हैं जो पितर श्मशान कर्म प्राप्त न हुए और द्युलोक के मध्य में स्वधा के अन्न से प्रसन्न रहते हैं, राजा यम उन पितरों के निमित्त इच्छानुसार इस मनुष्य संबन्ध वाले प्राणयुक्त शरीर को देता है ॥६ ॥

'यानग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ।'

(शतप० ब्रा० २।५।५।७)

जिनके देह को अग्नि जलाती है वे पितर अग्निष्वात्त हैं ॥ ७ ॥

आच्या जानुदक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥

(य० अ० १९ मं० ६२)

हे पितरों तुम सब वाम जाँघ को सब प्रकार झुकाकर दक्षिण को मुखकर बैठकर इस यज्ञ को अभिनन्दन करो किसी अपराध होने से हम पर मत क्रोध करो कारण कि चलचित्त होने से तुम्हारा अपराध हम भूल से कर जाते हैं ॥६२॥

आसिनासो अरुणीनामुपस्थे रयिन्धत्त दाशुषे मर्त्याय ।

पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जन्दधात ॥६३॥

हे पितरो अरुणवर्ण उनके आसनों अथवा सूर्य की किरणों के ऊपर या गोद में बैठे हुए तुम हवि के दाता यजमान में धन को धारण करो उसके पुत्रों के लिये धन दो वे तुम इस यज्ञ में रस को स्थापन करो ॥६३॥

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।

सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

(अथर्व वे० का० १८।२ मं० ३४)

जो गाड़े गये, जो जल में छोड़ दिये गये, जो जला दिये गये और जो स्वर्ग में चले गये हे अग्नि उन सबको हवि भोजन करने के लिये पितृकर्म में बुलाओ ३४॥

'अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ।' (मनुस्मृ० अ० ३ श्लो० २१४)

दक्षिण हाथ से पृथ्वी पर पानी डाले ॥२१४॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ।

पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥

(मनु० अ० ३ श्लो० २७६)

दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत रख के आलस्य रहित होकर दर्भ हाथ में ले अपसव्य होकर यथाशास्त्र मरण से लेकर सब कर्म पितृ संबन्धी समाप्तिपर्यन्त करे ॥२७६॥

अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदं स्तानब्रवीन्मासि मासिवोऽशनं स्वधा वो मनोजवश्चन्द्रमा वो ज्योतिः ।' (शतप० २।४।२।२)

पितर अपसव्य हो बाँयी जाँघ झुका कर बैठे प्रजापति ने कहा महीने महीने यज्ञ तुम्हारा अन्न मन के समान वेग और चन्द्रमा ज्योति होगी ॥२॥

'अपराह्णः पितॄणां तस्मादपराह्णे ददाति ।'

(शत० २।४।२८)

तीसरा पहर पितरों के भोजन का है इसलिये पितरों के लिये तीसरे पहर में देता है ॥२८॥

'तिर इव हि पितरो मनुष्येभ्यः ।'

(शत० २।३।४।२।१)

पितर निश्चय करके मनुष्यों से अलग हैं ॥१॥

'तृतीया ह प्रद्यौ रिति यस्यां पितर आसते ।'

(अथर्ववे १८।२।४८)

सबसे ऊपर अन्तरिक्ष का तीसरा भाग सूर्यादि के प्रखर प्रकाशवाला होने से प्रद्यौ कहलाता है । यहाँ पितरों का लोक है जिस में पितर रहते हैं ॥४८॥

'ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः ।
स एकः पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दः ।'

(तै० उ० आनन्दव० २ अनुवा० ८)

जो देव गन्धर्वों के सैकड़ों आनन्द हैं वह चिरलोकवासी पितरों का एक आनन्द है ॥८॥

'पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।'

(गी० अ० १ श्लो० ४२)

उनके कुल में पिण्डा और जलदान की क्रिया लुप्त हो जाने के कारण उनके पितरों का पतन हो जाता है ॥४२॥

'ततो मन्दाकिनीतीरं प्रत्युत्तीरे स राघवः ।
पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह ।'

(वाल्मीकिरा० अयोध्याकां० सर्ग० १०३ श्लो० २८)

'ऐङ्गुदं बदरै मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे ।
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥२९॥
इदं भक्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम् ।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥३०॥

फिर मन्दाकिनी के किनारे आकर तेजस्वी भाइयों सहित राजा दशरथजी की पिण्डक्रिया करते हुए ॥२८॥ इङ्गुदी और मिश्रित पिण्याक के पिण्ड कुशाओं पर रखकर श्रीरामजी दुःख से रोते यह बचन बोले ॥२९॥ हे महाराज जो वस्तु हम भोजन करते हैं उसका ही आप प्रसन्न हो भोग लगाइयें क्योंकि जो अन्न पुरुष खाते हैं वही अन्न उनके देवता खाते हैं ॥३०॥

'श्राद्धे शरदः ।' (पाणि० व्या० अ० ४ पा० ३ सू० ३२)

यह सूत्र है कि शरद् ऋतु में श्राद्ध करे। इन श्रुति स्मृति इतिहास आदि प्रमाणों से मरे पितरों का स्पष्ट श्राद्ध सिद्ध होता है। जिसको अधिक जानने की इच्छा हो वह मेरा बनाया हुआ "वैदिकश्राद्धदर्पण" ग्रन्थ का अवलोकन करे। यहाँ पर "कठोपनिषद्" के प्रथमाध्याय की तृतीयवल्ली समाप्त हो गई ॥१७॥

॥ इति कठोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

❀ अथ द्वितीयाध्यायः ❀

॥ अथ प्रथमवल्ली ॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभू
स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदा-
वृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥१॥

अन्वयार्थ—(स्वयंभूः) स्वयं प्रकट होनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर (खानि) समस्त इन्द्रियों को (पराञ्चि) पर प्रकाशक-बहिर्मुख करके (व्यतृणत्) हनन कर दिया है (तस्मात्) उस कारण से (पराङ्) अनात्म भूत विषयों को (पश्यति) जीवात्मा देखती है (अन्तरात्मन्) अन्तरात्मा को (न) नहीं देखती है (कश्चित्) कोई भाग्यशाली (धीरः) बुद्धिमानपुरुष (अमृतत्वम्) अमरपद को (इच्छन्) पाने की इच्छा करके (आवृत्तचक्षुः) नेत्र आदि समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर से लौटाकर (प्रत्यगात्मानम्) जीवात्मा के अन्दर व्यापक परमात्मा को (ऐक्षत्) देखता है।

विशेषार्थ—इन श्रोत्र आदिक समस्त इन्द्रियों को विषयों की ओर झुकने वाली बहिर्मुखवृति बनाकर मानो परमात्मा ने इनकी हिंसा की है। क्योंकि बहिर्मुख इन्द्रियों के आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता है। इस कारण से बाहर के विषयों को ही जीवात्मा देखती है। अन्तर्यामी परमात्मा को नहीं देखती है। अमृतत्व की इच्छा करनेवाला कोई शान्त स्वभाव सन्त ही भगवत्कृपा से इस प्रकार बहिर्विषयों से चक्षु आदिक इन्द्रियों को मोड़कर अन्तर्यामी परमात्मा को देखता है। आत्मा शब्द के विषय में लिखा है—

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते ॥

(लिङ्गपु १ । ७० । ९६)

जो यह सबको व्याप्त करता है तथा ग्रहण करता है और इस लोक में विषयों को भोगता है तथा इसका सर्वदा सद्भाव है इसलिये यह आत्मा कहलाता है ॥६६॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—"स्वयंभू" शब्द का अर्थ परमात्मा कैसे होता है। इसका उत्तर यह है—

'परिभूः स्वयंभूः।' (ई० उ० मं० ८)

सर्वोत्कृष्ट और स्वयं ही होनेवाला परमात्मा है ॥८॥

स्वयंभूः शंभुरादित्यः (महाभारत अनुशासनप० विष्णुस० श्लो० १८)

स्वयंभू १, शंभु २, आदित्य ३ ये परमात्मा के नाम हैं ॥१८॥

'नारायणाद् ब्रह्मा जायते।' (नारायणो० श्रु० १)

नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ इन प्रमाणों से "स्वयंभू" शब्द का अर्थ परब्रह्मपरमात्मा नारायण होता है। यहाँ पर अन्तर्मुख इन्द्रियों को करने के लिये कहा गया है ॥१॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते
मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥२॥

अन्वयार्थ—(बालाः) अल्प बुद्धिवाला मूर्खपुरुष (पराचः) बाहरी (कमान्) अभिलषित विषयों को (अनुयन्ति) अनुसरण करते हैं (ते) वे बाह्य विषयासक्तमूर्ख (विततस्य) सर्वत्र अप्रतिहत आज्ञावाले (मृत्योः) मृत्यु के (पाशम्) बन्धन को (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अथ) किन्तु (धीराः) बुद्धिमान् विवेकी पुरुष प्रत्यगात्मा में ही (ध्रुवम्) स्थिर-नित्य (अमृतत्वम्) अमृत परब्रह्म को (विदित्वा) जानकर (इह) इस संसार मण्डल में (अध्रुवेषु) अनित्य पदार्थों में से किसी को भी (न) नहीं (प्रार्थयन्ते) याचना करते हैं ॥२॥

विशेषार्थ—मन्दमति पुरुष आत्मदर्शन से पराङ्मुख होकर बाह्य अभिलषित विषयों की ओर को ही दौड़ते हैं। इस कारण से वे विषयासक्त अज्ञानी पुरुष सर्वत्र-अप्रतिहत आज्ञावाले यमराज के बन्धन को प्राप्त होते हैं अथवा विस्तीर्ण संसार के बन्धन जन्ममरण को प्राप्त करते हैं और विवेकी पुरुष प्रत्यगात्मा में ही स्थिर नित्य अमृत परब्रह्म को आचार्य के द्वारा जानकर इस संसार मण्डल में अनित्य पदार्थों में से किसी भी पदार्थ की प्रार्थना नहीं करते हैं ॥२॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैवविजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वैतत् ॥३॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस (एतेन) इस आत्मतत्त्व के साधन से (एव) निश्चय करके (रूपम्) समस्तरूप को तथा (रसम्) समस्तरस को और (गन्धम्) समस्त गन्ध को और (शब्दान्) समस्त शब्दों को (स्पर्शान्) तथा समस्त स्पर्शों को (च) और (मैथुनान्) स्त्री प्रसङ्गजन्य सुखों को (विजानाति) निःशेष भलीभाँति पुरुष जानता है तो (अत्र) यहाँ पर (किम्) क्या (परिशिष्यते) बाकी रह जाता है (तत्) वह प्राप्य रूप से निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परम उत्कृष्ट पद (वै) निश्चय करके (एतत्) इस मन्त्र द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है ।

विशेषार्थ—जिस इस आत्मतत्त्व के साधन से निश्चय करके समस्त रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श को और स्त्री प्रसङ्ग के सुख को निःशेष भलीभाँति जान लेता है । तब यहाँ पर क्या जानने के लिये बाकी रह जाता है । बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ।'

(बृ० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० १६)

उस आदित्यादि ज्योतियों के ज्योतिः स्वरूप अमृत को देवगण "आत्मा" रूप से उपासना करते हैं ॥१६॥ वह प्राप्यरूप से ।

'तद्विष्णोः परम् ।' (कठोप० अ० १ व० ३ श्रु० ९)

इस श्रुति में निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परमपद को ही निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमावल्ली की तृतीय श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप प्रतिपादन किया गया है ॥ ३ ॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

अन्वयार्थ—(स्वप्नान्तम्) स्वप्नमें प्रतीत होनेवाले (च) और (जागरिता) जाग्रत् में दिखायी देनेवाले (उभौ) इन दोनों पदार्थों को (येन) जिस परमात्मा से (अनुपश्यति) पुरुष देखता है उस (आत्मानम्) परमात्मा को (महान्तम्) सबसे श्रेष्ठ (विभुम्) सर्वव्यापक (मत्वा) जानकर (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥४॥

विशेषार्थ—स्वप्न में जानने योग्य वस्तु और जाग्रत् अवस्था में जानने योग्य वस्तु इन दोनों वस्तुओं को जिस परमात्मा के द्वारा लोक देखता है । उस परमात्मा

को सबसे महान् और सर्व व्यापक जानकर धीर पुरुष शोक नहीं करता है ॥ ४ ॥

य इदं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वैतत् ॥५॥

अन्वयार्थ—(यः) जो मुमुक्षु पुरुष (इदम्) इस (मध्वदम्) कर्मफल को भोगनेवाले (जीवम्) जीवात्मा को तथा (अन्तिकात्) जीवात्मा के समीप में (भूतभव्यस्य) भूत वर्तमान और भविष्य का (ईशानः) शासन करनेवाले (आत्मानम्) परमात्मा को (वेद) जानता है (ततः) उसके अनन्तर (न) नहीं (विजुगुप्सते) कोई भी कभी किसी की निन्दा करता है (तत्) वह प्राप्यरूप से निर्दिष्ट विष्णुभगवान् के परम उत्कृष्ट पद (वै) निश्चय करके (एतत्) इस मन्त्र द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है ॥५॥

विशेषार्थ—जो साधक पुरुष "ऋतं पिबन्तौ" (कठो० अ० १ व० ३ श्रु० १) इस श्रुति में निर्दिष्ट मधुर कर्म के फल को भोगनेवाला जीवात्मा को और

'गुहां प्रविष्टौ ।' (क० उ० अ० १ व० ३ श्रु० १)

इस श्रुति में निर्दिष्ट अत्यन्त समीप जीवात्मा के हृदय से भूत भविष्य और वर्तमान का शासन करने वाले परब्रह्म नारायण को जानता है । उसके बाद वह पुरुष कभी किसी की भी निन्दा नहीं करता है । वह प्राप्य रूप से

'तद्विष्णोः परमं पदम् ।' (क० उ० अ० १ व० ३ श्रु० ६)

इस श्रुति में निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परम पद को ही इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमावल्ली की पाँचवीं श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप कथन किया गया है । यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि "ईशान" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण कैसे होता है—इसका उत्तर यह है—

'उतामृतत्वस्येशानः ।' (ऋग्वे० अष्ट० ८ मण्ड० १० अध्या ४ अनुवा० ७ सूक्त० ९० मं० २)

अविनाशी मोक्ष सुख के अधिष्ठाता स्वामी परब्रह्म नारायण है ।

'उतामृतत्वस्येशानः ।'(सामवे०पूर्वार्चि० प्रपाठ० ६ अर्धप्रपा०सूक्त १३ मं० ५)

'उतामृतत्वस्येशानः ।' (यजुर्वे० अ० ३१ मं० २)

'ईशानोभूतभव्यस्य ।' (कठोप० अ० २ व० १ श्रु० १२।१३)

भूत भविष्य और वर्तमान का नियामक नारायण है ॥१३॥

सर्वस्य प्रभुमीशानम् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १७)

सब संसार के स्वामी नारायण हैं ॥१७॥

'तमीशानं वरदम् ।' (श्वे० ० अ० ४ श्रु० ११)

वर देनेवाले उस नारायण भगवान् को ॥११॥

'ईशानः प्राणदः प्राणः ।' (महाभार० अनुशा० विष्णुसं० श्लो० ८)

ईशान १, प्राणद २, प्राण ३ ये परब्रह्म नारायण के नाम हैं ॥ ८ ॥ इन प्रमाणों से "ईशान" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है ॥ ५ ॥

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वैतत् ॥६॥

अन्वयार्थ—(यः) जो परमात्मा (अद्भ्यः) जल आदिक उपादान व्यष्टि सृष्टि से (पूर्वम्) पहले (अजायत) प्रकट हुआ था (पूर्वम्) पहले (तपसः) सत्यसंकल्परूप तप से (जातम्) उत्पन्न हुआ (गुहाम्) सब प्राणियों के हृदय गुफा में (प्रविश्य) प्रवेश करके (तिष्ठन्तम्) स्थित रहता हुआ (यः) जो परमात्मा (भूतेभिः) भूत-देह इन्द्रिय अन्तःकरण आदि से युक्त चतुर्मुखमय सकल जगत् स्रष्टा हो जाय (व्यपश्यत) इस प्रकार कृपा कटाक्ष से देखता हुआ (तत्) वह प्राप्यरूप से निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परम उत्कृष्ट पद (वै) निश्चय करके (एतत्) इस मंत्र द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है ॥६॥

विशेषार्थ—जो जल आदिक उपादान व्यष्टि से पहले प्रकट हुआ था। क्योंकि लिखा है—

'पूर्वो यो देवेभ्यो जातः ।' (यजुर्वे० अ० ३१ मं० २०)

जो सब देवताओं से पहले प्रकट हुआ ॥२०॥

'यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ॥'
(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ४)

जो सबको सुख देनेवाला सब देवताओं की उत्पत्ति का हेतु और वृद्धि का हेतु है तथा जो सबका अधिपति तथा महान् ज्ञानी सर्वज्ञ है जिसने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया था ॥ ४ ॥

'हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम् ।' (श्वे० अ० ४ श्रु० १२)

जिसने उत्पन्न हुए ब्रह्मा को देखा था ॥१२॥

'नारायणाद्ब्रह्मा जायते । नारायणाद्रुद्रो जायते ।
(नारा उप श्रु १)

नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होता है। नारायण से रुद्र उत्पन्न होता है और मनुस्मृति में लिखा है—

'सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥'
(मनु० अ० १ श्लो० ८)

'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥९॥'

अनेक प्रकार की प्रजा को बनाने को इच्छावाला वह परब्रह्म नारायण सत्यसं-कल्प करके अपना अव्याकृत शरीर से पहले जल को बनाया और उस जल में सामर्थ्य शक्तिरूप बीज को आरोपण किया ॥८॥ वह बीज नारायण की इच्छा से सूर्य के समान प्रभाव वाला सोना के समान प्रकृति अण्ड हो गया उस प्राकृत अण्ड में अपने से सब लोक का पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥९॥ जो इन श्रुति स्मृति के प्रमाण से पहले सत्यसंकल्परूप तप से उत्पन्न हुआ और प्राणियों के हृदयरूपी गुफा में प्रवेश करके विराजमान हुआ उसको जो परब्रह्म नारायण शरीर इन्द्रिय अन्तःकरण आदि से युक्त चतुर्मुखमय समस्त संसार के कर्ता हो जाय इस प्रकार निर्हेतुक कृपा कटाक्ष से देखता हुआ और—

'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये ।'
(श्रीमद्भा० पु० स्कं० १ अ० १ श्लो० १)

जो नारायण आदि कवि ब्रह्मा के लिये हृदय से वेद को विस्तार किया॥१॥ वह प्राप्यरूप से ।

'तद्विष्णोः परमं पदम् ।' (क० उ० अ० १ व० ३ श्रु० ९)

इस श्रुति में निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परम पद को ही इस "कठोपनिषद्" के द्वितीय अध्याय की प्रथमवल्ली की छठवीं श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप कहा गया है ॥६॥

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वैतत् ॥७॥

अन्वयार्थ—(या) जो (देवतामयी) इन्द्रियों के अधीन भोगवाला (अदितिः) कर्मफलों को भोगनेवाला जीवात्मा (प्राणेन) प्राण के साथ (संभवति) रहता है और (या) जो (गुहाम्) हृदयपुण्डरीकरूपी गुफा में (प्रविश्य) प्रवेश करके (तिष्ठन्ती) विराजमान रहता हुआ (भूतेभिः) पृथ्वी आदिक पञ्चभूतों के साथ (व्यजायत) देवादिक रूप से अनेक प्रकार का उत्पन्न होता है (वै) निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य जीवात्मस्वरूप (तत्) वह ब्रह्मात्मक है ॥७॥

विशेषार्थ—जो इन्द्रियों के अधीन भोगनेवाला और अपने कर्म के फल को भोगनेवाला जीवात्मा प्राण के साथ रहता है तथा जो हृदय कमल के उदर रूपी गुफा में प्रवेश करके वर्तमान् रहता है पृथ्व्यादिक पञ्च महाभूतों के साथ देवादिक रूप से अनेक प्रकार का उत्पन्न होता है। निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमवल्ली की सातवीं श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य जीवात्मा का स्वरूप ब्रह्मात्मक है। क्योंकि—

'ब्रह्मजज्ञं देवम् ।' (क० उ० अ० १ व० १ श्रु० १७)

के "देवम्" पद का परमात्मात्मक और—

'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि ।' (गी० अ० १३ श्लो० २)

के "माम्" पद का मदात्मक अर्थ श्रीभाष्यकार महाचार्य किये हैं और छान्दो-ग्योपनिषद् में लिखा हैं—

'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् ।' (छा० उ० अ० ६ खं० ८ श्रु० ७)

यह सब चार अचर जगत् ब्रह्मात्मक है ॥ ७ ॥ श्रीचतुःसप्ततिपीठाधीश प्रतिष्ठापनाचार्य भगवद्रामानुजाचार्य ने

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ।'(शा०मी०अ० १ पा० २ सू० ११)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की पहली वल्ली की सातवीं श्रुति को उद्धृत किया है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा
गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भि-
र्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(गर्भिणीभिः) गर्भिणी स्त्रियों करके (सुभृतः) उपयुक्त अन्नपा-नादि के द्वारा भलीभाँति परिपुष्ट हुआ (गर्भ) गर्भ के (इव) समान (उत्) निश्चय करके (जागृवद्भिः) जागरणशील (हविष्मद्भिः) आज्यादि हविःप्रदान में प्रवृत्त (मनुष्येभिः) मनुष्य ऋत्विजों करके (दिवे दिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (जातवेदाः) स्वतः सिद्धज्ञानवान् (अग्निः) अग्रनेता अग्निदेव (अरण्योः) अधरारणी और उत्तरारणी इन दो अरणियों में (निहितः) स्थित है (वै) निश्च करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य अग्निस्वरूप (तत्) वह पूर्वोक्त ब्रह्मात्मक है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार गर्भिणी स्त्री के द्वारा अन्न पानादि से परिपुष्ट होकर बालक गर्भ में छिपा रहता है और प्रसवकालीन क्लेशरूप मन्थन के

द्वारा समय पर प्रकट होता है। उसी प्रकार अधरारणि और उत्तरारणि के अन्दर अग्निदेव छिपा हुआ रहता है। उपासक पुरुष प्रमाद रहित होकर एकाग्रता श्रद्धा तथा प्रीति के साथ स्तुति करते हुए अरणिमन्थन के द्वारा अग्नि को प्रकट करते हैं। तदनन्तर आज्यादि विविध हवन सामग्रियों के द्वारा अग्नि को सन्तुष्ट करते हैं। निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के द्वितीय अध्याय की प्रथमवल्ली की आठवीं श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य अग्नि का स्वरूप ब्रह्मात्मक है। अरणि के विषय में लिखा है—

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः।
'तस्य या प्राङ्मुखी शाखा उदीची चोर्ध्वगापि वा॥
अरणी तन्मयी ज्ञेया तन्मध्ये चोत्तरारणिः॥'

(धर्मशास्त्रः)

प्रशस्तभूमि में उत्पन्न जो शमीगर्भ पीपल का वृक्ष है। उस वृक्ष की जो पूरब मुख की या उत्तर मुख की या ऊपर मुख की शाखा है उसी शुष्क शाखा की अरणी होती है ऐसा जानना चाहिये और उसी शुष्क पीपल वृक्ष की शाखा के मध्यकाष्ठ में उत्तरारणि होती है, ऐसा जानना चाहिये।

'यदत्र सारवत्काष्ठमोविलीति प्रशस्यते।'

उस शुष्क पीपल के वृक्ष की शाखा का जो सारवाला काठ है उसी की ओविली प्रशस्त कही गई है।

'संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते।
अभावे त्वशमीगर्भादाहरेदविलम्बितः।
चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा विस्तारेण षडङ्गुला।
चतुरङ्गुलमुत्सेधा अरणि याज्ञिकैः स्मृता।'

शमी के जो संसक्त मूल है उसी को शमीगर्भ कहते हैं। शमीगर्भ काष्ठ के अभाव में अन्य काष्ठ को अरणि बनाने के लिये ग्रहण करे। चौबीस अंगुल लंबी और छौ अंगुल चौड़ी तथा चार अंगुल ऊंची अरणि होती है ऐसा याज्ञिक लोग कहते हैं।

'मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा ह्यग्राच्च द्वादशांगुलम्।
'अन्तरं देवयोनिः स्यात्तत्र मथ्यो हुताशनः॥'

मूल के आठ अंगुल बराकर और अग्रभाग से बारह अंगुल बराकर मध्य में चार अंगुल देवयोनि स्थान है वहाँ ही अग्नि मन्थन करना चाहिये।

मूर्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी।
अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुलं वक्ष उच्यते।

अङ्गुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यङ्गुष्ठमुदरं तथा ॥
एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ बस्ते द्वौच गुह्यके ।
ऊरू जङ्घे च पादौ च एष्वेकैकं यथाक्रमम् ॥
अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिता ।
यद्गुह्यमिति हि प्रोक्तं देवयोनिः स उच्यते ॥
तस्यां जो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ।
प्रथमे मन्थने ह्येष नियमो नोत्तरेषु च ॥'

मस्तक १ नेत्र २ कान ३ मुख ४ और पांचवीं कन्धा ५ ये सब अरणि में एक एक अंगुष्ठ मात्र अवयव हैं और दो अंगुल वक्षःस्थल कहा गया है तथा हृदय एक अंगुष्ठ और उदर तीन अंगुष्ठ कटि एक अंगुष्ठ तथा गुदामार्ग दो अंगुष्ठ और योनि दो अंगुष्ठमात्र जानना चाहिये और दोनों ऊरु दोनों जंघे दोनों पैरों को यथाक्रम से एक एक अंगुष्ठमात्र जानना चाहिये । इस प्रकार अरणि के अवयव याज्ञिक लोग कहे हैं । जो निश्चय करके गुह्य-योनी कही गई है वही देवयोनि है ऐसा कहा जाता है । उस देवयोनि में जो अग्नि उत्पन्न होती है वही कल्याण करनेवाली कही गयी है । प्रथम अग्नि मन्थन में यह नियम है इसके बाद यह नियम नहीं कहा गया है ।

अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद् द्वादशांगुलम् ।
ओबिली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयंत्रकम् ॥'

प्रमन्थ आठ अंगुल का तथा चात्र बारह अंगुल का और ओबिली भी बारह अंगुल की होनी चाहिये यह मन्थन यन्त्र है ऐसा याज्ञिक लोग कहते हैं ।

'गोवालैः शणसंमिश्रैः त्रिवृद्वृत्तमनंशकम्
व्यासप्रमाणं नेत्रं स्यात्तेन मथ्यो हुताशनः ।
चात्रबुध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणैः ॥'

(आह्निकसू०)

सन से मिला हुआ गोबाल की रस्सी चिक्कन बनाकर उसको तिगुन के भांजकर व्यामप्रमाण बनावे उसी को नेत्र कहते हैं उसी नेत्र से चात्रबुध्न छिद्र में प्रमन्थ के अग्रभाग को गाढ़ स्थापन करके बुद्धिमान् पुरुष अग्निमन्थन करे । इस प्रकार का शास्त्र में वर्णन किया गया है ॥८॥

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वेअर्पिता स्तदुनात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥९॥

अन्वयार्थ—(यतः) जिस परब्रह्म नारायण से (सूर्यः) सूर्यदेव (उदेति) उदय होता है (च) और (यत्र) जिस परमात्मा में (अस्तम्) लय को (च) भी (गच्छति) प्राप्त होता है (सर्वे) सभी ब्रह्मादिक (देवाः) देवता (तम्) उसी परमात्मा में (अर्पिताः) समर्पित-प्रतिष्ठत हैं (तत्) उस सर्वात्मक परब्रह्म को (उ) निश्चय करके (कश्चन) कोई भी पुरुष (न) नहीं (अत्येति) लाँघ सकता है (तत्) वह प्राप्यरूप से निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परम उत्कृष्ट-पद (वै) निश्चय करके (एतत्) इस श्रुतिद्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है ॥६॥

विशेषार्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा से सूर्य का उदय होता है और जिस परमात्मा में ही सूर्य अस्त को प्राप्त होता है और सभी ब्रह्मादिक देवता उसी परमात्मा से प्रतिष्ठित हैं उस सर्वात्मक परमात्मा को कोई कभी नहीं लाँघ सकता है। वह प्राप्यरूप से—

'तद्विष्णोः परमं पदम्।' (कठो० अ० १ व ४ श्रु ६)

इस श्रुति में निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परमपद को ही इस "कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की प्रथमबल्ली की नवमी श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप कहा गया है ॥६॥

यदेवेह तदमुत्रयदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो परमात्मतत्त्व (इह) इस लोक में है (तत्) वही परमात्मतत्त्व (एव) निश्चय करके (अमुत्र) वहाँ परलोक में भी है और (यत्) जो परमात्मतत्त्व (अमुत्र) वहाँ परलोक में है (तत्) वही परमात्मतत्त्व (अनु) निश्चय करके (इह) इस लोक में है (यः) जो पुरुष (इह) इस परमात्मा में (नाना) अनेक के (इव) समान अर्थात् भेद (पश्यति) देखता है (सः) वह मनुष्य (मृत्योः) जन्म मरण रूप संसार से (मृत्युम्) मृत्यु—जन्म मरण रूप संसार को (आप्नोति) बारंबार प्राप्त होता है ॥१०॥

विशेषार्थ—जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वकल्याणगुणाकर परब्रह्म पुरुषोत्तम यहाँ पृथ्वी लोक में है वही परलोक—श्रीविष्णुलोक में भी है तथा जो परलोक में है वही इस लोक में है। जो पुरुष इस परमात्मा में भेदभाव देखता है वह बारंबार जन्ममरण रूप संसार चक्र में पड़ा रहता है। श्रीरंगेश-पोषक भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० १५)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमवल्ली की दशवीं श्रुति के उत्तरार्द्ध को उद्धृत किया है ॥१०॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥११॥

अन्वयार्थ—(मनसा) विशुद्ध मनसे (एव) निश्चय करके (इदम्) यह परमात्मस्वरूप (आप्तव्यम्) प्राप्त करने योग्य है (इह) इस परमात्मा में (नाना) अनेक (किंचन) कुछ भी (न) नहीं (अस्ति) है (यः) जो पुरुष (इह) इस परमात्मा में (नाना) अनेक के (इव) समान भेद को (पश्यति) देखता है (सः) वह अज्ञानी पुरुष (मृत्योः) जन्म मरणरूप संसार से (मृत्युम्) जन्ममरणरूप संसार को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥११॥

विशेषार्थ—आचार्य और शास्त्र के उपदेश के द्वारा विशुद्ध हुए मन से ही यह परमात्मस्वरूप प्राप्त करने योग्य है। इस परमात्मा में अनेक कुछ भी नहीं है। लीला करने के लिये सत्यसंकल्प से नाना नाम रूप गुण धाम में प्रकाशित देखकर मायावश जो पुरुष परब्रह्म नारायण में अनेक के समान भेद को देखता है। वह अज्ञानी पुरुष बारंबार जन्म मरण के चक्कर में पड़ता रहता है। श्रीवेङ्कटेशगुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में तथा—

'तत्तु समन्वयात्।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और—

'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० १५)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमवल्ली की ग्यारहवीं श्रुति के द्वितीय पाद को उद्धृत किया है ॥११॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वैतत् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(अंगुष्ठमात्रः) अंगूठे के समान परिमाणवाला (पुरुषः) उत्तम पुरुष परमात्मा (आत्मनि) उपासक के शरीर के (मध्ये) मध्यभाग हृदयाकाश में (तिष्ठति) स्थिर रहता है वह (भूतभव्यस्य) भूत वर्तमान और भविष्य अर्थात् त्रिकालवर्ती समस्त चेतन तथा अचेतन के (ईशानः) शासन करनेवाला स्वामी है (ततः) त्रिकालवर्ती समस्त चेतनाचेतन के नियामक ईश्वर होने से तथा अतिशय वात्सल्य गुण होने से देहगत दोषों को भोग्यरूप से देखता है इससे

(न) नहीं (विजुगुप्सते) किसी की निन्दा करता है (तत्) वह प्राप्यरूप से निर्दिष्ट विष्णुभगवान् के परम—उत्कृष्ट पद (वै) निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है ॥१२॥

विशेषार्थ - अंगूठे के समान परिमाणवाला परमात्मा उपासक मनुष्य के शरीर के मध्यभाग हृदय कमल में स्थित रहता है। क्योंकि लिखा है—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।'
(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १३)

अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परमात्मा सदा ही भक्तजनों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित हैं ॥१३॥ वह परमात्मा कालत्रयवर्ती समस्त चेतनाचेतन का शासक ईश्वर है। त्रिकालवर्ती निखिल चराचर के स्वामी तथा अतिशय वात्सल्यादि विशिष्ट होने से वह नारायण भक्तों के देहगत दोषों को भोग्यरूप से देखता है इस कारण से वह किसी की निन्दा नहीं करता है। वह प्राप्यरूप से—

'तद्विष्णोः परमं पदम्।' (कठो० अ० १ व० ३ श्रु० ६)

इस श्रुति में निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परमपद को ही इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमवल्ली की बारहवीं श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है। श्रीकरिशैलेश शिष्य भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'शब्दादेव प्रमितः।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० २३)

के श्रीभाष्य में और

'कम्पनात्।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४०)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमवल्ली की बारहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१२॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वै तत् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(अंगुष्ठमात्रः) अंगूठे की समान परिमाणवाला (पुरुषः) परम पुरुष परमात्मा (अधूमकः) धुएँ से रहित (ज्योतिः) अग्नि के प्रकाश के (इव) समान है (भूतभव्यस्य) भूत वर्तमान और भविष्य त्रिकालवर्ती समस्त चेतन तथा अचेतन के (ईशानः) निरङ्कुश नियन्ता (सः) वह परमात्मा (एव) निश्चय करके (अद्य) आज है और (उ) निश्चय करके (सः) वह परमात्मा (श्वः) कल भी होगा अर्थात् वह परमात्मा नित्य सनातन है (तत्) वह प्राप्यरूप से निर्दिष्ट विष्णु भगवान् के परम उत्कृष्ट पद (वै)

निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही है ॥१३॥

विशेषार्थ—अंगूठे के समान परिमाणवाला परब्रह्म परमात्मा धुएँ से रहित अग्नि के प्रकाश के समान है। त्रिकालवर्ती समस्त चराचर का निरङ्कुश नियन्ता वह परमात्मा है। वही आज है और कल भी रहेगा अथवा आज के उत्पन्न समस्त पदार्थ तथा कल उत्पन्न होनेवाले समस्त पदार्थ और त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ ब्रह्मात्मक हैं। वह प्राप्य रूप से—

'तद्विष्णोः परमं पदम् ।' (कठो० अ० १ व० ३ श्रु० ९)

इस श्रुति में निर्दिष्ट विष्णुभगवान् के परम पद को ही इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय के पहली वल्ली की तेरहवीं श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ही कथन किया गया है। श्रीयदुशैलेशपिता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'शब्दादेव प्रमितः ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की प्रथमावल्ली की तेरहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१३॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान्पृथक्पश्यं स्तानेवानुविधावति ॥१४॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार (दुर्गे) ऊँचे पहाड़ के शिखर पर (वृष्टम्) बरसा हुआ (उदकम्) जल (पर्वतेषु) पहाड़ के नाना स्थलों में (विधावति) नाना प्रकार के बिखरकर चारो ओर दौड़ता है (एवम्) उसी प्रकार (धर्मान्) परमात्मगत देवान्तर्यामित्व तथा मनुष्यान्तर्यामित्व आदिक धर्मों को (पृथक्) परमात्मा से अलग अधिकरण निष्ठ (पश्यन्) देखता हुआ मनुष्य (तान्) उसको (एव) निश्चय करके (अनुधावति) पीछे दौड़ता रहता है अर्थात् नाना उच्च नीच योनियों में भटकता रहता है ॥१४॥

विशेषार्थ—जैसे ऊँचे पहाड़ के शिखर पर बरसा हुआ जल तुरन्त ही नीचे की ओर बहकर विभिन्न वर्ण आकार और गन्ध को धारण करके पर्वत में चारो ओर बिखर कर नष्ट हो जाता है। वैसे ही परमात्मगत देवान्तर्यामित्व मनुष्यान्तर्यामित्व आदिक धर्मों को जो परमात्मा से अलग मानता है और पृथक् मानकर उन देव यज्ञ भूत आदिक की सेवा करता है वह मनुष्य पर्वत निर्झर से गिरे हुए जल की भाँति ही संसार कुहर में गिरकर नाना प्रकार की योनियों में भटकता रहता है। परब्रह्म नारायण को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥१४॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुने विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

॥ इति द्वितीयाध्याये प्रथमवल्ली ॥

अन्वयार्थ—(गौतम) हे गौतमवंशी नचिकेता (यथा) जिस प्रकार (शुद्धे) निर्मल जल में (आसिक्तम्) मिलाया हुआ (शुद्धम्) निर्मल (उदकम्) जल (तादृक्) उस शुद्ध जल के सदृश (एव) निश्चय करके (भवति) हो जाता है (एवम्) इस प्रकार (विजानतः) परब्रह्म परमात्मा को जाननेवाले (मुनेः) मननशील ज्ञानी पुरुष के (आत्मा) विशुद्ध परमात्मा के ज्ञान से (भवति) परमात्मा के सदृश हो जाता है ॥१५॥

विशेषार्थ—हे गौतमवंशी ब्राह्मण नचिकेता जैसे शुद्ध जल में मिलाया हुआ निर्मल जल उस शुद्ध जल के सदृश ही हो जाता है। वैसे ही परब्रह्म परमात्मा को जानने वाले मननशील ज्ञानी पुरुष की जीवात्मा विशुद्ध परमात्मा के ज्ञान से परमात्मा के समान हो जाती है। क्योंकि भगवद्गीता में लिखा है—

'इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।'

(गी० अ० १४ श्लो० २)

इस ज्ञान का आश्रय लेकर भगवान् की समता को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥ यहाँ पर "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की पहली वल्ली समाप्त हो गई ॥१५॥

॥ अथ द्वितीयवल्ली ॥

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥ एतद्वै तत् ॥१॥

अन्वयार्थ—(अजस्य) जन्मादिक विकार रहित (अवक्रचेतसः) ऋजुबुद्धि वाली विशुद्ध जीवात्मा के (एकादशद्वारम्) ग्यारह द्वारवाला (पुरम्) मनुष्य का शरीर रूप नगर है (अनुष्ठाय) इस शरीर के रहते हुए ही परब्रह्म परमात्मा की उपासना करके (न) नहीं (शोचति) साधक पुरुष शोक करता है (च) और (विमुक्तः) देह तथा आत्मा का विचार कर देहानुबन्धी दुःखों से रहित कामादिकों से छूट जाता है (विमुच्यते) तथा आध्यात्मिकादि दुःख से रहित पुरुष प्रारब्ध कर्म के अवसान होने पर अर्चिरादि मार्ग से विरजा नदी को पारकर सदा के लिये प्रकृति के संबन्ध से छूट जाता है (वै) निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य मुक्तात्मस्वरूप (तत्) वह ब्रह्मात्मक ही है ॥१॥

विशेषार्थ—जन्म जरा मरण आदिक विकारों से रहित सरल स्वभाव विशुद्ध जीवात्मा है। दो आँख दो कान दो नासिका के छिद्र एक मुख नाभि मूत्रद्वार मलद्वार और ब्रह्मरन्ध्र इन ग्यारह द्वारों वाले मनुष्य के शरीररूपी ग्राम में राजा के समान जो स्थित रहता है और जीवात्मा के हृदय-प्रासाद में महाराजा को

भाँति विशेष रूप से परमात्मा भी विराजमान रहता है। इस रहस्य को आचार्य से समझकर मनुष्यशरीर के रहते हुए ही जो पुरुष परब्रह्म नारायण महाराज का स्मरण भजन ध्यान आदिक करता है। वह उपासक मनुष्य कभी शोक नहीं करता है और चित्, अचित्, ईश्वर इन तीन तत्त्वों को विचारकर देहानुबन्धि दुःखों से छूट जाता है और आध्यात्मिकादि दुःख से तथा रागद्वेषादि से रहित पुरुष—

'भोगेन त्वितरे क्षपयित्वाथ संपद्यते।'(शा० मी० अ० ४ पा० १ सू० १६)

इस न्याय से प्रारब्ध कर्म के फलभोग समाप्त होने पर अर्चिरादि मार्ग से विरजा नदी को पारकर संसार में फिर से कभी जन्म धारण नहीं करता है। निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय के दूसरी वल्ली की पहली श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य मुक्तस्वरूप ब्रह्मात्मक ही है ॥१॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता
वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा
ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥२॥

अन्वयार्थ—(शुचिषद्) ग्रीष्म ऋतु में गमन करनेवाला तेजस्वी (हंसः) सूर्य (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्ष में निवास करने वाला (वसुः) वायु (वेदिषत्) यज्ञवेदी पर स्थापित (होता) अग्नि (दुरोणसत्) घर पर आया हुआ (अतिथिः) अतिथि (नृषत्) समस्त मनुष्यों में रहनेवाला (वरसत्) मनुष्यों से श्रेष्ठ देवताओं में रहनेवाला (ऋतसत्) सत्यलोक में रहनेवाला (व्योमसत्) परमव्योम-परमपद में वर्तमान (अब्जाः) जल से उत्पन्न होनेवाले (गोजाः) पृथ्वी में रहनेवाले (ऋतजाः) यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले (अद्रिजाः) पर्वत से उत्पन्न होनेवाले ये सब (बृहत्) बड़ा अपरिच्छिन्न (ऋतम्) सत्यरूप ब्रह्मात्मक है ॥२॥

विशेषार्थ—ग्रीष्म ऋतु में गमन करनेवाले तेजस्वी सूर्य। क्योंकि लिखा है—

'असौ वा आदित्यो हंसः।' (ब्राह्मण भा०)

वह सूर्य ही हंस है। अन्तरिक्ष में रहनेवाला वायु। और यज्ञवेदी पर प्रतिष्ठत ज्योतिर्मय अग्नि। क्योंकि लिखा है—

'इयंवेदिः परोऽन्तः पृथिव्याः।' (ऋ० सं० २।३।२०)

यह वेदी पृथ्वी-यज्ञ भूमिका उत्कृष्ट मध्यभाग है ॥२०॥

'अग्निर्वै होता।' (ब्राह्मण)

अग्नि ही होता है अथवा "वेदिषद्" यानी काञ्चीपुरी में ब्रह्मा की यज्ञवेदी में प्राप्त होनेवाला वरदाज, या बलि राजा की यज्ञवेदी में गमन करनेवाला वामन, या नैमिषारण्य की यज्ञवेदी पर बैठनेवाला श्रीरामचन्द्र और घरों में उपस्थित होनेवाला अतिथि। अतिथि का लक्षण लिखा है—

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥

(मनु० अ० ३ श्लो० १०२)

केवल एक रात्रि पराये घर में बसता हुआ ब्रह्मवेत्ता—ब्राह्मण सदा न रहने से अतिथि होता है। नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥१०२॥ दैत्यराज वलि के घर में उपस्थित होनेवाला अतिथि त्रिविक्रम। मनुष्य में रहनेवाला श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीपरशुराम, पृथु बुद्धदेव और देवताओं में रहनेवाला विष्णु, इन्द्र, आदिक सत्यलोक में रहनेवाला सत्यनारायण। परमव्योम—परमपद स्थान में वर्तमान वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न। जलों में मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, शंख शुक्ति आदि रूप से प्रकट होनेवाले। पृथ्वी में वन, वृक्ष, अङ्कुर, अन्न, ओषधि के रूप में उत्पन्न होनेवाले। अथवा "गोजा" यानी सिद्धाश्रम में लक्ष्मीनारायण अर्चावतार रूप से प्रकट होनेवाला। क्योंकि लिखा है—

'स वै भूमेरजायत।' (ब्राह्मणः)

वह लक्ष्मीनारायण भूमि से ही प्रकट हुआ और यज्ञ से प्रकट होनेवाला श्रीराम या वरदराज या यज्ञावतार तथा पर्वतों में नाना रूप से प्रकट होनेवाला "अद्रिजा" अर्थात् १ हिमालयाद्रि में वदरीनारायण तथा सालग्राम—मुक्तिनारायण रूप से २ मणिपर्वत में श्रीराम रूप से ३ गोवर्धनाद्रि में लक्ष्मीनारायण रूप से ४ विन्ध्याचल में विष्णु रूप से ५ धर्मशिला में गदाधर रूप से ६ चित्रकूट पर्वत में कामदनाथ रूप से ७ राजगिरिमें राजेन्द्ररामरूप से ८ नीलाद्रि में जगन्नाथ रूप से ९ रामगिरि में श्रीराम रूप से १० सिंहाद्रि में नृसिंह रूप से ११ मङ्गलाद्रि में गुडोदकपानरत नरसिंह रूप से १२ अञ्जनाद्रि में लक्ष्मीनृसिंह रूप से १३ शेषाद्रि में वराह तथा वेङ्कटेश और सुन्दरबाहु रूप से १४ वारणाद्रि में नृसिंह तथा वरदराज रूप से १५ तोयाद्रि में रङ्गराज रूप से १६ श्वेताद्रि में नारायण रूप से १७ औषधाद्रि में हयग्रीव रूप से १८ तोताद्रि में देवनायक रूप से १९ कुरङ्गनगराद्रि में पूर्णनम्बि रूप से २० यादवाद्रि में सम्पत्कुमार तथा नृसिंह रूप से २१ ऋष्यमूक पर्वत में कोदण्डपाणिराम रूप से और २२ रैवतकाद्रि में श्रीकृष्ण रूप से प्रकट होनेवाला। अथवा पर्वतों से नद नदी आदि के रूप में उत्पन्न होनेवाला—जैसेकी (१) मन्दाकिनीगङ्गा (२) भागीरथीगङ्गा (३) अलकनन्दागङ्गा (४)

गरुडगङ्गा (५) रामगङ्गा (६) मानसी गङ्गा (७) स्वर्गगङ्गा (८) नूपुरगङ्गा (९) यमुना (१०) सरयू (११) नारायणी (१२) गण्डकी (१३) कौशिकी (१४) व्याघ्रमती (१५) कमला (१६) पद्मा (१७) ब्रह्मपुत्र (१८) दामोदर (१९) फल्गु (२०) पुनःपुना (२१) शोणभद्र (२२) महानद (२३) वैतरणी (२४) कृष्णा (२५) गोदावरी (२६) पयस्विनी (२७) वेगवती (२८) कावेरी (२९) कृतमाला (३०) ताम्रपर्णी (३१) असिक्नी (३२) सिन्धु (३३) तापती (३४) भीमरथी (३५) तुङ्गभद्रा (३६) चन्द्रभागा (३७) स्वर्णमुखी (३८) क्षिप्रा (३९) साभ्रमती (४०) गोमती (४१) सरस्वती (४२) व्यासा आदिक नद नदी प्रभृति। पूर्वोक्त सब वस्तु बड़ा अपरिच्छिन्न सत्य रूप ब्रह्मात्मक है। इस श्रुति से अवतार मूर्तिपूजा तीर्थ यज्ञ आदिक सब कुछ सिद्ध होता है। यह श्रुति (यजुर्वेद अ० १० मं० २४) में भी है ॥२॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति। मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—जो परमात्मा सबके हृदय पुण्डरीक में रहता हुआ (प्राणम्) प्राणवायु को (ऊर्ध्वम्) ऊपर की ओर (उन्नयति) ले जाता है और (अपानम्) अपानवायु (प्रत्यक्) नीचे की ओर (अस्यति) ढकेलता है (मध्ये) शरीर के हृदय पुण्डरीक के मध्य में (आसीनम्) बैठा हुआ (वामनम्) सर्वश्रेष्ठ भजने योग्य परमात्मा को (विश्वे) समस्त (देवाः) सत्त्वप्रकृतिवाले—देवता उपासते उपासना करते हैं ॥३॥

विशेषार्थ—सबके हृदयान्तर्यामी परमात्मा प्राणवायु को ऊपर की ओर ले जाता है और अपानवायु को नीचे को ओर ढकेलता है। शरीर के हृदय पुण्डरीक के मध्य में बैठा हुआ सर्वश्रेष्ठ भजन करने योग्य उस परमात्मा को सत्त्व प्रकृतिवाले समस्त सात्त्विक पुरुष उपासना करते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—शरीर में प्राण और अपान कहाँ रहते हैं। इसका उत्तर "प्रश्नोपनिषद्" में लिखा है—

'पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः।'

(प्रश्नो० प्रश्न० ३ श्रु० ५)

मलद्वार और मूत्रद्वार पर अपान वायु रहता है और मुख तथा नासिका से निकलता हुआ आँख और कान में प्राण वायु रहता है ॥५॥ यह श्रुति "मध्य में आसीन वामन भगवान् को सब देवता उपासना करते हैं" इस अर्थ को प्रतिपादन करती हुई वामनावतार में भी प्रमाण है ॥३॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वैतत् ॥४॥

अन्वयार्थ—(अस्य) इस भगवदुपासक के (शरीरस्थस्य) शरीर में स्थित (विस्रंसमानस्य) एक शरीर से दूसरे शरीर में जानेवाली (देहिनः) जीवात्मा के (देहात्) शरीर से (विमुच्यमानस्य) निकल जाने पर (अत्र) यहाँ पर (किम्) क्या करने योग्य (परिशिष्यते) शेष रह जाता है अर्थात् कृतकृत्य होने से कुछ भी करने योग्य बाकी नहीं रह जाता है (वै निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य मुक्तात्म स्वरूप (तत्) वह ब्रह्मात्मक है ॥४॥

विशेषार्थ—यह एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन करने के स्वभाव वाला जीवात्मा जब इस वर्तमान शरीर से चला जाता है तब कृतकृत्य होने से भगवदुपासक के यहाँ पर कुछ भी करने योग्य शेष नहीं रह जाता है। क्योंकि यह लिखा है—

'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये ।'

(छा० उ० अ० ६ खं० १४ श्रु० २)

भगवदुपासक के मोक्ष होने में उतना ही विलम्ब है जबतक मर नहीं जाता है ॥२॥ निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय के दूसरी वल्ली की चौथी श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य मुक्तात्मस्वरूप ब्रह्मात्मक वही है ॥४॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥५॥

अन्वयार्थ—(कश्चन) कोई भी (मर्त्यः) मरणधर्मा प्राणी (न) नहीं (अपानेन) अपानवायु से जीता है (तु) किन्तु (इतरेण) दूसरे से ही (जीवन्ति) सब जीते है (यस्मिन्) जिस आत्मा में (एतौ) प्राण और अपान ये दोनों (उपाश्रितौ) आश्रय पाये हुए हैं ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—कोई भी मरणधर्मा प्राणी प्राण तथा अपान आदि वायु से और नेत्र आदिक इन्द्रियों से नहीं जीवित रह सकता है। इन सबको जीवित रखनेवाला तो कोई दूसरा ही आत्मतत्त्व है। जिस आत्मतत्त्व के अधीन प्राण और अपानवायु का जीवन है। इतना ही नहीं बल्कि समस्त इन्द्रियादिक के जिस प्रभु के अधीन जीवन है उसी आत्मा में प्राण और अपान ये दोनों आश्रय पाये हुए हैं ॥५॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥६॥

अन्वयार्थ—(गौतम) हे गोतमवंशीय नचिकेता (हन्त) आश्चर्य की बात है इस समय (गुह्यम्) अति रहस्यमय (सनातनम्) सनातन (ब्रह्म) परब्रह्म परमात्मा को (च) और (आत्मा) जीवात्मा (मरणम्) मोक्ष को (प्राप्य) पाकर (यथा) जिस प्रकार से विशिष्ट (भवति) होता है (इदम्) इस बात को (ते) रागादि रहित उपदेशयोग्य मोक्षाधिकारी तेरे लिये (प्रवक्ष्यामि) मैं फिर से भलीभाँति कहूँगा ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—यमराज ने कहा कि—हे गौतमवंशवाला नचिकेता अब फिर से उपदेश के योग्य रागादि रहित उत्तमाधिकारी तेरे लिये भलीभाँति मैं बतलाऊँगा कि—जीवात्मा मोक्ष पाकर किस प्रकार से विशिष्ट होती है और साथ ही यह भी बताऊँगा कि उस परम रहस्यमय, सवव्यापी, सर्वाधार, सर्वाधिपति, परब्रह्म परमेश्वर का क्या स्वरूप है ॥६॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनु संयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(अन्ये) परमात्मतत्त्व श्रवण विमुख कितने ही (देहिनः) देहधारी प्राणी (यथाकर्म) जिसका जैसा किया हुआ यज्ञादि कर्म है उस कर्म के अनुसार और (यथा श्रुतम्) शास्त्रादि के श्रवण द्वारा जिसको जैसा भाव प्राप्त हुआ है उस ज्ञान प्राप्ति के अनुसार (शरीरत्वाय) शरीर धारण करने के लिये (योनिम्) ब्राह्मणादियोनि को (प्रपद्यन्ते) प्राप्त हो जाते हैं और (अन्ये) दूसरे कितने अत्यन्त अधम (स्थाणुम्) स्थावर वृक्षादि भाव को (अनु) मरने के बाद (संयन्ति) प्राप्त हो जाते हैं ॥७॥

विशेषार्थ—परमात्मतत्त्व श्रवण विमुख कितने ही देहाभिमानी प्राणी अपने अपने किये हुए कर्मों के अनुसार और आचार्य से सुना हुआ शास्त्र से उत्पन्न अपने अपने ज्ञान के अनुसार मरने के बाद दूसरा शरीर धारण करने के लिये ब्राह्मणादि योनि को प्राप्त कर लेते हैं और दूसरे कितने अत्यन्त अधम मरने के बाद अपने किये अत्यन्त पापकर्मों के अनुसार वृक्षादि स्थावर भाव को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि लिखा है—

'तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनि मापद्येरन्ब्राह्मणयोनिंवा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥'

(छान्दो० उ० अ० ५ खं० १० श्रु० ७)

उन प्राणियों में जो अच्छे आचरणवाले होते हैं वे मरने पर शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि या क्षत्रिययोनि अथवा

वैश्ययोनि प्राप्त करते हैं और जो अशुभ आचरण वाले होते हैं वे मरने के बाद शीघ्र ही अशुभयोनि को प्राप्त होते हैं। वे कुत्ते की योनि सूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं। ॥७॥

'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते।'

(बृहदा० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० २)

मरने के बाद उस पुरुष के साथ-साथ ज्ञान और कर्म जाते हैं ॥२॥

'यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।'

(बृ० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० ५)

जो जैसा करनेवाला और जैसे आचरणवाला होता है वह वैसा ही हो जाता है। शुभ कर्म करनेवाला शुभ होता है और पापकर्मा पापी होता है। पुरुष पुण्यकर्म से पुण्यात्मा होता है और पापकर्म से पापी होता है ॥५॥ जिनके पाप अत्यधिक होते हैं वे वृक्ष, लता, तृण, पर्वत आदि जड शरीरों में उत्पन्न होते हैं ॥७॥

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन।
एतद्वैतत् ॥८॥

अन्वयार्थ—(सुप्तेषु) सब जीवों के सोने पर (यः) जो (एषः) यह हृदयान्तर्यामी (पुरुषः) परम पुरुष परमात्मा (कामं कामम्) संकल्प करके (निर्मिमाणः) स्वप्नावस्था में रचता हुआ (जागर्ति जागता रहता है (तत्) वही (एव) निश्चय करके (अमृतम्) निरुपाधिक अमृत (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उस परब्रह्म परमात्मा में (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (श्रिताः) आश्रय पाये हुए हैं (कश्चन) कोई भी (तत्) उस परब्रह्म को (उ) निश्चय करके (न) नहीं (अत्येति) अतिक्रमण कर सकता है (वै) निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप (तत्) वह ब्रह्मात्मक है ॥८॥

विशेषार्थ—जिस समय सब प्राणी सो जाते हैं उस समय जो परमात्मा जागता हुआ जीवों के सूक्ष्म कर्म के फल को स्वप्न में भोगवाने के लिये अपने सत्य संकल्प से सब वस्तु को निमार्ण करता है। वही परम विशुद्ध दिव्यतत्त्व है। वही परब्रह्म परमात्मा है। उसी को ज्ञानी महात्माओं के द्वारा

प्राप्य निरुपाधिक अमृत कहा जाता है। ये समस्त लोक उसी परमात्मा के आश्रित हैं। उसे कोई भी नहीं लाँघ सकता। सभी सर्वदा एकमात्र उसी के शासन में रहनेवाले हैं। निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की दूसरी वल्ली की आठवीं श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मस्वरूप ब्रह्मात्मक है। श्रीगोदाभीष्टप्रपूरक भगवद्रामानुजाचार्य स्वामी ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में तथा—

'निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च।' (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० २)

के श्रीभाष्य में और—

'मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्।'

(शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३)

के श्रीभाष्य में तथा—

'देहयोगाद्वा सोऽपि।' (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ५)

के श्रीभाष्य में और—

'तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः।' (शा० मी० अ० ४ पा० ४ सू० १३)

के श्रीभाष्य में तथा—

'विकारवर्ति च तथाहि स्थितिमाह।'(शा० मी० अ० ४ पा० ४ सू० १६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की दूसरी वल्ली की आठवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥९॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (एकः) एक (अग्निः) अग्नि-अर्थात् तेजोधातु (भुवनम्) त्रिवृत् करण के द्वारा अण्डान्तर्गत लोक में (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुई (रूपं रूपम्) समस्त भौतिकव्यक्तियों के रूपों में (प्रतिरूपः) उनके समान रूपवाली (बभूव) हुई (तथा) वैसे ही (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा परब्रह्म नारायण (रूपं रूपम्) अनेक प्रकार के रूपों में (प्रतिरूपः) उन्हीं के समान रूपवाला हो रहा है (च) और (बहिः) उन समस्त वस्तुओं के बाहर व्याप्त होकर रहता है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—जैसे एक ही प्रकाश स्वरूप अग्नि यानी तेजोधातु त्रिवृत्करण के द्वारा अण्डान्तर्गत समस्त लोक में प्रविष्ट होकर भौतिक काष्ठ आदि वस्तुएँ जितने आकारों वाली होती हैं उतने ही अकारों वाली प्रतीत होती है। वैसे ही समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा परब्रह्म नारायण एक हैं और सब में समभाव से व्याप्त हैं। तथापि वे भिन्न भिन्न प्राणियों में उन उन प्राणियों के अनुरूप नाना रूपों में प्रकाशित होते हैं और अनन्त शक्तिवाला वह परमात्मा सबके भीतर रहता हुआ उन सब से बाहर भी रहता है। क्योंकि यह लिखा है—

'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥'

(नारायणो० श्रु० १३)

जो कुछ संसार देखा जाता है या सुना जाता है उसके भीतर और बाहर व्यापक होकर नारायण स्थित हैं॥१३॥ यहाँ पर आत्मतत्त्व को दृढ करने के लिये फिरसे श्रुति कही है॥९॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥१०॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (एकः) एक (वायुः) वायु (भुवनम्) समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट (रूपं रूपम्) अनेक प्रकार के रूपों में (प्रतिरूपः) उनके समान रूपवाला (बभूव) हुआ (तथा) वैसे ही (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा परब्रह्म नारायण (रूपं रूपम्) अनेक प्रकार के रुपों में (प्रतिरूपः) उन्हीं के समान रूपवाला हो रहा है (च) और (बहिः) उन समस्त वस्तुओं के बाहर भी व्याप्त होकर रहता है॥१०॥

विशेषार्थ—जैसे एक ही वायु समस्त ब्राह्मण्ड में व्याप्त होकर प्राण अपान् आदि अनेकों आकार में अनेकों प्रकार का प्रतीत हो रहा है वैसे ही समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा परब्रह्म नारायण एक हैं और सब में समभाव से व्याप्त हैं। तौभी भिन्न भिन्न प्राणियों मे उन उन प्राणियों के अनुरुप नाना रुपों में प्रकाशित होते हैं और अनन्त शक्तिवाला वह परमात्मा सबके भीतर रहता हुआ सबके बाहर भी रहता है॥१०॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न
लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥११॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार (सर्वलोकस्य) समस्त ब्रह्माण्ड के प्राणियों के (चक्षुः) नेत्र के अधिष्ठाता रूप से (सूर्यः) नेत्रान्तर्गत भी सूर्यदेव (चाक्षुषैः) नेत्रसंबन्धी (बाह्यदोषैः) नेत्र के बाहर निकले हुए मलों से (न) नहीं (लिप्यते) स्पर्श किया जाता है (तथा) उसी प्रकार (बाह्यः) स्वेतरसमस्तवस्तुविलक्षण (एकः) एक पुष्करपत्रवन्निर्लेप (सर्वभूतान्तरात्मा) परमात्मा सब प्राणियों के भीतर रहता हुआ भी (लोकदुःखेन) लोगों के दुःखों से या दोषों से (न) नहीं (लिप्यते) स्पर्श किया जाता है ॥११॥

विशेषार्थ—ऐतरेयोपनिषद् में लिखा है—

'आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत् ।'(ऐत० उ० अ० १ खं० २ श्रु० ३)

सूर्य चक्षु होकर नेत्र गोलकों में प्रवेश कर गया ॥३॥ वृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'रश्मिभिरेषोऽस्मिन्प्रतिष्ठितः ।' (बृ० उ० अ० ५ ब्रा० ५ श्रु० २)

यह सूर्य रश्मियों के द्वारा इस नेत्रगोलक में प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ इन श्रुतियों के अनुसार जैसे समस्त ब्रह्माण्ड के प्राणियों के चक्षु का अधिष्ठातारूप से नेत्रान्तर्गत सूर्य चक्षुसंबन्धी बाहर नेत्र से निकले हुए चक्षु के मलों से नहीं स्पर्श होता है वैसे ही स्वाभाविक अपहत पाप्मत्वादिगुणों से युक्त तथा स्वेतरसमस्तवस्तुविलक्षण पुष्करपलाशवन्निर्लेप एक परब्रह्म परमात्मा सब प्राणियों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहता है तौभी लोगों के दुःखों से या दोषों से नहीं स्पर्श होता है । यह श्रुति यह प्रतिपादन करती है कि जीवात्मा के समान परमात्मा में दोष नहीं होते हैं ॥११॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
एकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(एकः) समाभ्यधिकरहित एक (वशी) समस्त जगत् को अपने वश में रखनेवाला (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी

(यः) जो परब्रह्म परमात्मा (एकम्) एकीभूत नामरूप विभागरहित (बीजम्) तमोलक्षण बीज को (बहुधा) महदादि बहुत प्रकार प्रपञ्चरूप से (करोति) करता है (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने अन्दर रहनेवाले अन्तर्यामी परमात्मा को (ये) जो (धीराः) ज्ञानी पुरुष (अनुपश्यन्ति) निरन्तर देखते हैं (तेषाम्) उन्हीं धीर पुरुषों को (शाश्वतम्) नित्य—सदा अटल रहनेवाला (सुखम्) सुख—मोक्ष होता है (इतरेषाम्) दूसरों को (न) मोक्ष—नित्य सुख नहीं होता है ।।१२।।

विशेषार्थ – जो परमात्मा समभ्यधिकरहित है । क्योंकि लिखा है—

'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः ।' (गी० अ० ११ श्लो० ४३)

आप के समान भी दूसरा नहीं है फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है ।।४३। तथा समस्त संसार को अपने वश में रखनेवाला है । क्योंकि लिखा है—

'जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ।' (विष्णु स० स्तो० श्लो० १३५)

यह समस्त चर अचर जगत् श्रीकृष्ण भगवान् के वश में रहता है ।। १३५ ।। और वह सब प्राणियों का अन्तर्यामी है । क्योंकि लिखा है—

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।'

(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० ११)

एक देव सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्वव्यापी समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है ।।११।। वही परमेश्वर एकीभूत नामस्वरूप विभागानर्ह तमोलक्षण बीज को महदादि बहुत प्रकार प्रपञ्चरूप से सत्यसंकल्प के द्वारा करता है क्योंकि लिखा है—

'आसीदिदं तमोभूतम् ।' (मनु० अ० १ श्लो० ५)

यह पहले नाम और रूप से रहित तमोलक्षण था ।।१।।

'एकं बीजं बहुधा यः करोति ।' (श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १२)

जो परमात्मा एकीभूत नाम और रूप से रहित तमोलक्षण बीज को महदादि बहुत प्रकार प्रपञ्चरूप है करता है ।।१२।।

'अव्यक्तमक्षरे लीयते अक्षरं तमसि लीयते
तमः परे देव एकीभूय तिष्ठति ।'

(सुबालो० खं० २)

अव्यक्त अक्षर में लय होता है अक्षर तम में लय होता है तम यानी सूक्ष्म अवस्था में स्थित अचिद्वस्तु परम देव में एक होकर रहता है ।। २ ।। जो धीर पुरुष अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को देखते हैं उन्हीं की मुक्ति होती है । दूसरों की मुक्ति नहीं होती है, क्योंकि लिखा है—

'तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।'

(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १२)

जो धीर पुरुष अपनी आत्मा में स्थित उस परब्रह्म परमात्मा को निरन्तर देखते हैं उन्हीं लोगों की मुक्ति होती है दूसरों की नहीं ॥१२॥

'य आत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति । स त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।

(बृह० उ० आ० ३ ब्रा० ७ श्रु० २२)

जो जीवात्मा रहनेवाला जीवात्मा की अपेक्षा अन्तरङ्ग है जिसको जीवात्मा नहीं जानती है जिसका जीवात्मा शरीर है जो जीवात्मा के अन्दर रहकर उसका नियम करता है वह अन्तर्यामी अमृत स्वरूप तेरी आत्मा है ॥२२॥ इन श्रुतियों के अनुसार अपने में स्थित परमात्मा को देखने वालों की मुक्ति होती है ॥१२॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां योविदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषांशान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(नित्यः) नित्य (चेतनः) चेतन (यः) जो (एकः) एक परमात्मा (नित्यानाम्) नित्य (बहूनाम्) अनन्तबहुत. (चेतनानाम्) चेतन जीवों के (कामान्) अपेक्षित वस्तुओं को (विदधाति) अनायास देता है (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने अन्दर रहनेवाले परमात्मा को (ये) जो (धीरा) धीर पुरुष (अनुपश्यन्ति) निरन्तर देखते हैं (तेषाम्) उन्हीं धीर पुरुषों को (शाश्वती) नित्य—सदा अटल रहनेवाली (शान्तिः) शान्ति प्राप्त होती है (इतरेषाम्) दूसरों को (न) नहीं शान्ति प्राप्त होती है ॥१३॥

विशेषार्थ—जो समस्त नित्य अनन्त चेतन जीवात्माओं के एक नित्य चेतन परब्रह्म परमात्मा समस्त मनोभिलषित वस्तुओं को कर्मानुसार देता है। उस सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तम को जो धीर पुरुष अपने अन्दर निरन्तर स्थित देखते हैं, उन्हीं को सदा स्थिर रहनेवाली–सनातनी परमशान्ति मिलती है दूसरों को नहीं। इस श्रुति का पूर्वार्ध [श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १३] में भी है। हारीतकुल-कमलदिवाकर भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।'   (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की दूसरीवल्ली की तेरहवीं श्रुति के पूर्वार्ध को दो बार उद्धृत किया है ॥१३॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥१४॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह पूर्वोक्त (एतत्) यह (अनिर्देश्यम्) लोक में नहीं निर्देश करने योग्य अलौकिक परब्रह्म को आपके समान निष्पन्नयोग भगवद्भक्त (परमम्) परम (सुखम्) आनन्द (इति) ऐसा (मन्यन्ते) मानते हैं (नु) निश्चय करके (तत्) उस परब्रह्म को (कथम्) किस प्रकार से (विजानीयाद्) परब्रह्म को ग्रहण करने में असमर्थ मानस वाला मैं बालक भलीभाँति समझ लूँ (उ) निश्चय करके (किम्) क्या वह (भाति) स्वयं दीप्त होता है (वा) या (विभाति) तेजों के भीतर संकलन होने से नहीं प्रकाशित होता है ॥१४॥

विशेषार्थ—यमराज के कहे हुए उपदेश को सुनकर नचिकेता ने कहा कि—हे आचार्य देव आप के समान निष्पन्नयोगवाला भगवदुपासक उस अनिर्देश्य—यानी लोक में नहीं निर्देश करने योग्य परमानन्दरूप परब्रह्म परमात्मा को करतल में प्राप्त आमलक फल के समान साक्षात्कार अनायास कर लेते हैं। परन्तु अनिर्देश्य परब्रह्म को ग्रहण करने में असमर्थ मानसवाला मैं किस प्रकार से उस परमात्मा को समझूँ। क्या वह परमात्मा स्वयं प्रकाशित होता है या सूर्यादि के तेजों के भीतर से संलग्न होने से नहीं प्रकाशित होता है ॥१४॥

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः ।
तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य
भासा सर्वमिदं विभाति ॥१५॥

॥ इति द्वितीयाध्याये द्वितीयवल्ली ॥

(तत्र) उस परब्रह्म परमात्मा में (सूर्यः) सूर्य देव (न) नहीं (भाति) प्रकाशित होता है (चन्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारागण (न) नहीं प्रकाशित होता है और (इमाः) ये (विद्युतः) बिजलियाँ (न) नहीं (भान्ति) प्रकाशित होती हैं (अयम्) यह लौकिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कैसे प्रकाशित हो सकती है क्योंकि (तम्) उस परमात्मा के (भान्तम्) प्रकाशित होने के (अनु) पीछे (निश्चय) करके (सर्वम्) ऊपर बतलाया हुआ सूर्य

आदिक सब (भाति) प्रकाशित होता है (तस्य) उसी परमात्मा के (भासा) प्रकाश से (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (विभाति) भलीभाँति प्रकाशित होता है ॥१५॥

विशेषार्थ —उस स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप—

'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ८)

अन्धकार से परे सूर्य के समानवर्णवाला ॥ ८ ॥

'यत्ते रूपं कल्याणतमम् ।' (ईशो० श्रु० १६)

जो तुम्हारा परममङ्गलमयरूप है ॥ १६ ॥ इन श्रुतियों से प्रतिपाद्य भगवद्विग्रह के समीप यह सूर्य नहीं प्रकाशित होता है और चन्द्रमा तारागण तथा बिजली भी वहाँ नहीं प्रकाशित होते हैं। फिर इस लौकिक अग्नि की तो बात ही क्या है। क्योंकि प्राकृत जगत् में जो कुछ भी तत्त्व प्रकाशशील हैं सब उस परब्रह्म की प्रकाश-शक्ति को पाकर ही प्रकाशित हैं। यह समस्त जगत् उस परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहा है। क्योंकि भगवद्गीता में लिखा है—

'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥'

(गी० अ० १५ श्लो० १२)

जो सूर्यगत तेज समस्त जगत् को प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो अग्नि में है उस तेज को तू मेरा ही जान ॥ १२ ॥ श्रीभूतपुरी में प्रादुर्भूत भगवद्रामानुजाचार्य ने

'ज्योतिर्दर्शनात् ।'　　(शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४१)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की दूसरीवल्ली की पन्द्रहवीं श्रुति को उद्धृत किया है। यहाँ पर "कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की द्वितीयवल्ली समाप्त हो गई ॥१५॥

॥ अथ तृतीयवल्ली ॥

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु
नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥१॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध्वमूलः) ऊपर की ओर मूलवाला अर्थात् सातों

लोकों के ऊपर रहनेवाला चतुर्मुख ब्रह्मा इसका आदि है, इसलिये जो ऊपर मूलवाला है (अवाक्शाखः) नीचे की ओर शाखावाला अर्थात् पृथ्वीलोक में बसनेवाले सब मनुष्य पशु पक्षी कृमि कीट पतङ्ग और स्थावरतक फैला होने के कारण जो नीचे शाखावाला है (एषः) यह (सनातनः) अनादिकाल से चला आनेवाला (अश्वत्थः) संसार रूप पीपल का वृक्ष है (तत्) वही निश्चय करके (शुक्रम्) अत्यन्तनिर्मल—या प्रकाशतत्त्व है (तत्) वही (ब्रह्म) सर्वव्यापक परब्रह्म है (तत्) वही (एव) निश्चय करके (अमृतम्) निरुपाधिक अमृत (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उस परब्रह्म परमात्मा में (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (श्रिताः) आश्रय पाये हुए हैं (कश्चन) कोई भी (तत्) उस परब्रह्म को (उ) निश्चय करके (न) नहीं (अत्येति) अतिक्रमण कर सकता है (वै) निश्चय करके (एतत्) इस श्रुति द्वारा प्रतिपाद्य संसार वृक्ष (तत्) वह—ब्रह्मात्मक है ॥१॥

विशेषार्थ—इस संसार रूप वृक्ष की मूल—जड़ ऊपर की ओर है अर्थात् सातों लोकों के ऊपर रहनेवाला चतुर्मुख ब्रह्मा इसका आदि मूल है। क्योंकि लिखा है—

'ऊर्ध्वमूलम् ।' (आरण्य० १।११,५)

ऊपर ब्रह्मा जड़ है ॥५॥

'ऊर्ध्वमूलम् ।' (गी० अ० १५ श्लो० १)

ऊपर चतुर्मुख ब्रह्मा मूल है ॥१॥ और शाखा नीचे की ओर है अर्थात् पृथ्वी लोक में रहनेवाले सब मनुष्य पशु मृग पक्षी कृमि कीट पतङ्ग और स्थावर तक फैला होने के कारण ये ही नीचे की ओर शाखा है क्योंकि लिखा है—

'अवाक्शाखं वृक्षम् ।' (आरण्य० १।११,५)

नीचे मनुष्यादि शाखावाला वृक्ष को ॥५॥

'अधःशाखमश्वत्थम् ।' (गी० अ० १५ श्लो० १)

नीचे मनुष्यादिशाखावाला पीपल के वृक्ष को ॥ १ ॥ और वेद जिसके पत्ते हैं क्योंकि लिखा है—

'छन्दांसि यस्य पर्णानि (गी० अ० १५ श्लो० १)

जिस संसार वृक्ष के चारो वेद पत्ते हैं ॥१॥ और सत्त्व आदि गुणों के द्वारा बढ़ता है क्योंकि लिखा है—

'गुणप्रवृद्धाः ।' (गी० अ० १५ श्लो० २)

सत्त्व गुण रजोगुण तमोगुण से बढ़ते हैं ॥२॥ तथा शब्दादि विषय कोंपल हैं क्योंकि लिखा है—

'विषयप्रवालाः ।' (गी० अ० १५ श्लो० २)

शब्दादिक विषय कोंपल है ॥२॥ इस संसार वृक्ष को काटने के लिये असंग ही शस्त्र है क्योंकि लिखा है—

'असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ।' (गी० अ० १५ श्लो० ६)

दृढ़ असङ्गरूपी शस्त्र से काटकर ॥ ३ ॥ और अनादिकाल से चला आनेवाला यह संसाररूप पीपल का वृक्ष है । क्योंकि लिखा है—

'अश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।' (गी० अ० १५ श्लो १)

इस पीपल के वृक्ष को अव्यय कहते हैं ॥ १ ॥

'अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलम् ।' (गी० अ० १५ श्लो० ३)

इस दृढ़ता पूर्वक जमी हुई जड़वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को ॥ ३ ॥ यह संसार पीपल वृक्ष जिससे उत्पन्न होता है तथा जिससे सुरक्षित है और जिसमें विलीन होता है वही परम विशुद्ध तत्त्व है । वही परब्रह्म परमात्मा है । उसी को ज्ञानी महात्माओं के द्वारा प्राप्य निरुपाधि अमृत कहा जाता है । ये समस्तलोक उसी परमात्मा के आश्रित हैं । उसे कोई भी नहीं लाँघ सकता । सभी सर्वदा एकमात्र उसी के शासन में रहनेवाले हैं । निश्चय करके इस "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की तृतीय वल्ली की पहली श्रुति के द्वारा प्रतिपाद्य संसाररूप पीपल-वृक्ष ब्रह्मात्मक है। केशवयज्वा के सुकुमार कुमार भगवद्रामानुजाचार्य ने(श्रीमद्भगवद्गी० अ० १५ श्लो० १) के भाष्य में "कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की तृतीय-वल्ली की पहली श्रुति के प्रथम पादको उद्धृत किया है ॥ १ ॥

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२॥

अन्वयार्थ—(निःसृतम्) प्राणरूप परब्रह्म से निकला हुआ और (प्राणे) प्राणरूप परब्रह्म में स्थित (इदम्) यह (तत्) जो (किं—च) कुछ भी समस्त (जगत्) संसार है वह (महत्) महान् (भयम्) भयस्वरूप परमात्मा से (उद्यतम्) उठे हुए (वज्रम्) वज्र आयुध के समान (एजति) काँपता है (ये) जो (एतत्) इस परमात्मा को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) मरण रहित (भवन्ति) हो जाते हैं ॥२॥

विशेषार्थ—यह जो कुछ समस्त चराचर जगत् है । यह सब परब्रह्म नारायण से उत्पन्न हुआ है । और उन्हीं प्राणस्वरूप परमात्मा में स्थित रहता है । क्योंकि लिखा है—

'विष्णोस्सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।'

(विष्णु पु० अंश० १ अध्या० १ श्लो० ३१)

यह जगत् विष्णु भगवान् से उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में स्थित रहता है ॥३१॥

'जङ्गमाजङ्गमंचेदं जगन्नारायणोद्भवम् ।'

(महाभार० अनुशासनप० विष्णुसह० श्लो० १३८)

यह स्थावर जङ्गम संसार नारायण से उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ वह परमात्मा परम दयालु होता हुआ भी महान् भयरूप है । इससे छोटे बड़े सभी परमात्मा के बड़े भय से काँपते हैं । साथ ही वह परमात्मा उठे हुए आयुधों में श्रेष्ठ वज्र के समान है । जिस प्रकार हाथ में वज्र लिये हुए स्वामी को देख कर सभी सेवक नियमानुसार उसकी आज्ञा पालन में तत्पर रहते हैं । उसी प्रकार चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा आदिक यह सारा संसार सर्वदा नियमानुसार परमात्मा के आज्ञा-पालन में तत्पर रहते हैं । क्योंकि लिखा है—

'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः ।

(बृह० उ० अ० ३ ब्रा० ८ श्रु० ६)

हे गार्गि अक्षर – परमात्मा के ही प्रशासन में सूर्य और चन्द्रमा विशेष रूप से धा ण किये हुए स्थित रहते हैं ॥६॥ जो इस परब्रह्म को जानते हैं वे तत्त्वज्ञ पुरुष अमर हो जाते हैं—अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाते हैं । अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है—"प्राण" शब्द का अर्थ परमात्मा कैसे होता है ? इसका उत्तर यह लिखा है—

'सर्वाणि ह वा भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते ।'

(छान्दो० उ० अ० १ खं० ११ श्रु० ५)

निश्चय करके प्रलय में समस्तप्राणी प्राणस्वरूपपरमात्मा में प्रवेश करते हैं और पुनः सृष्टिकाल में परमात्मा से ही प्रकट होते हैं ॥५॥

'अत एव प्राणः ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० २४)

इस न्याय से और—

'वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः ।' (विष्णुस० स्तो० श्लो० ५७)

वैकुण्ठ १, पुरुष १, प्राण ३, ये विष्णु भगवान् के नाम हैं ॥ ५७ ॥ इन प्रमाणों से "प्राण" शब्द का अर्थ परमात्मा होता है । कान्तिमतीनन्दन भगवद्रामाजाचार्य ने (कम्पनात्) ॥ शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४० ॥ के श्री भाष्य में "कठोपनिषद्" की द्वितीयवल्ली की दूसरी श्रुति को उद्धृत किया है ॥ २ ॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥३॥

अन्वयार्थ—(अस्य) इस परब्रह्म परमात्मा के (भयात्) भय से (अग्निः) अग्नि (तपति) जलाती है और (भयात्) परमात्मा के भय से (सूर्यः) सूर्य (तपति) ताप देता है (च) और (भयात्) परमात्मा के भय से (इन्द्रः) इन्द्रदेव अमरावतीपुरी में राज्यशासन करता है तथा (वायुः) वायु चलता है (च) और परमात्मा के भय से (पञ्चमः) पाँचवा (मृत्युः) मृत्युदेव (धावति) अपने काम में दौड़ता है ॥३॥

विशेषार्थ—इस परब्रह्म परमात्मा के भय से अग्निदेव जलाता है तथा इन्हीं के भय से सूर्य तप रहा है और परमात्मा के भय से इन्द्र नियमानुसार जल बरसाता है। इन्हीं के डर से वायुदेव चलता है और परमात्मा के भय से पाँचवा मृत्युदेव अपने काम में दौड़ता है। इस श्रुति के अर्थानुसार श्रुति (तैत्तिरीयो० आनन्द व० २ अनुवा० ८ श्रु० १) में भी है। मेषाद्रिसंजात भगवद्रामानुजाचार्य ने

'कम्पनात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४०)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की तृतीयवल्ली की तृतीय श्रुति को उद्धृत किया है ॥३॥

इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥४॥

अन्वयार्थ—(शरीरस्य) शरीर के (विस्रसः) पतन होने से (प्राक्) पहले (इह) इस लोक में (बोद्धुम्) परब्रह्म को जानने के लिये (अशकत्) समर्थ हुआ (चेत्) तो ठीक, नहीं तो (ततः) उस ब्रह्मज्ञान के अभाव होने से (सर्गेषु) जिससे प्राणियों की सृष्टि होती है ऐसे (लोकेषु) समस्त लोकों में या नाना योनियों में (शरीरत्वाय) शरीर धारण करने के लिये (कल्पते) समर्थ होता है ॥४॥

विशेषार्थ—यदि कोई साधक इस दुर्लभ मनुष्य शरीर के नाश होने से पहले ही सर्वशक्तिमान् सबके प्रेरक और सबके शासन करनेवाले परब्रह्म नारायण को जान लेता है तब तो उसका जीवन सफल हो जाता है। अनादिकाल से जन्ममृत्यु के प्रवाह में पड़ा हुआ जीव उससे छुटकारा पा जाता है। नहीं तो फिर उसे अनेक कल्पों तक अनेक लोकों और योनियों में शरीर धारण करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। इससे मरने से पहले ही परब्रह्म नारायण को जान लेना चाहिये ॥४॥

यथादर्शे तथात्मनि यथा
स्वप्ने तथा पितृलोके ।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा
गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (आदर्शे) दर्पण में चन्द्रिका के अभाव होने से प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं देखता है (तथा) वैसे ही (आत्मनि) इस मृत्युलोक में शरीर के अन्दर विना शरणागति के परब्रह्म स्पष्ट नहीं दीखता है और (यथा) जैसे (स्वप्ने) स्वप्न में देखा हुआ वस्तु जागृत् में देखा हुआ वस्तु के समान सम्यक् संशय आदिक के विरोध को दूर करनेवाला स्पष्ट नहीं दीखता है (तथा) वैसे ही (पितृलोके) पतृलोक में परमेश्वर का स्वरूप स्पष्ट नहीं दीखता है और (यथा) जैसे (अप्सु) जल में के वस्तु जल से बाहर पृथ्वी में के वस्तु के समान स्पष्ट नहीं दीखता है (परि) चारों तरफ से (ददृशे) दीखा हुआ के (इव) समान दीखता है (तथा) वैसे ही (गन्धर्वलोके) गन्धर्वलोक में भी परमात्मा का स्वरूप नहीं दीखता है और (छायातपयोः) छाया और धूप मिश्रण होने पर धूप में वर्तमान वस्तु के समान जैसे स्पष्ट वस्तु नहीं दीखता है (इव) वैसे ही (ब्रह्मलोके) वैसे ही परब्रह्म के लोक में भी स्थूलपदार्थ के समान स्पष्ट परब्रह्म का दर्शन नहीं होता है ॥५॥

विशेषार्थ—यहाँ पर परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप अत्यन्त दुर्बोध श्रुति कहती है—जैसे दर्पण में उसके सामने आयी हुई वस्तु चन्द्रिका के अभाव होने से स्पष्ट नहीं दिखलायी देती है । उसी प्रकार इस लोक में शरीर के भीतर हृदय में रहता हुआ भी परमात्मा सदाचार्य के समाश्रयण के अभाव होने से स्पष्ट नहीं दिखलायी देता है और जैसे स्वप्न में वस्तु समूह यथार्थ रूप में न दीख कर स्वप्नद्रष्टा की वासना तथा विविध संस्कारों के अनुसार कहीं की वस्तु कहीं विश्रृङ्खलरूप से स्पष्ट नहीं दीखायी देती है । वैसे ही पितृलोक में परमात्मा का स्वरूप स्पष्ट नहीं दीखता है । क्योंकि पितृलोक को प्राप्त प्राणी पूर्वजन्म की स्मृति और वहाँ के सम्बन्धियों का पूर्ववत् ज्ञान होने के कारण तदनुरूप वासना जाल में आबद्ध रहते हैं । जैसे जल में की वस्तु जल की लहरों के कारण हिलती हुई सी प्रतीत होती है पृथ्वी में की वस्तु के समान स्पष्ट नहीं दीखती है । वैसे ही गन्धर्वलोक में भी भोग लहरियों में लहराते हुए चित्त से युक्त वहाँ के निवासियों को भगवान् का स्पष्ट दर्शन नहीं होता है और जैसे छाया तथा धूप मिश्रण होने पर धूप में की वस्तु के समान स्पष्ट नहीं दीखती है । वैसे ही ब्रह्मलोक में भी छाया नित्य

जीव तथा मुक्त जीव और आतप—धूप पर वासुदेव इन सबों के मिश्रण होने से परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप स्पष्ट नहीं दीखता है ॥५॥

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥६॥

अन्वयार्थ—(पृथक्) अपने अपने कारण से भिन्न भिन्न रूपों में (उत्पद्यमानानाम्) उत्पन्न होनेवाली (इन्द्रियाणाम्) श्रोत्र आदिक इन्द्रियों के (यत्) जो (पृथग्भावम्) परस्पर वैलक्षण्य लक्षण पृथक्—भाव है (च) और (उदयास्तमयौ) उत्पन्न हो जाना और विनाश हो जाना है उसे इन्द्रियादिगत (मत्वा) जानकर (धीरः) आत्मा का स्वरूप शरीर इन्द्रियादिक से विलक्षण समझनेवाला धीर पुरुष (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥६॥

विशेषार्थ—अपने अपने शब्द स्पर्शादि विषय को ग्रहण करने के लिये अपने अपने कारण से भिन्न भिन्न रूपों में उत्पन्न होनेवाली इन्द्रियों को तथा इन्द्रियादिक के परस्पर वैलक्षण्य लक्षण पृथक् भाव को और उनकी उत्पत्ति तथा विनाश को इन्द्रियादिगत जानकर जो धीरपुरुष शरीर इन्द्रिय मन और बुद्धि आदि से अलग नित्य चेतन सर्वथा विशुद्ध आत्मा को समझता है। वह विवेकी सदा के लिये शोक से रहित हो जाता है। क्योंकि लिखा है—

'तरति शोकमात्मवित् ।' (छा० उ० अ० ७ खं० १ श्रु० ३)

आत्मा को जाननेवाला शोक को पार कर जाता है. ॥३॥ इससे आत्मवेत्ता होना चाहिये ॥६॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(इन्द्रियेभ्यः) श्रोत्रादिक इन्द्रिय और शब्दादि विषयों से (मनः) (मन परम्) प्रबल—या श्रेष्ठ है और (मनसः) मन से (सत्त्वम्) बुद्धि (उत्तमम्) उत्तम है तथा (सत्त्वात्) बुद्धि से (महान्) पूर्वोक्त सब का स्वामी—बड़ा (आत्मा) जीवात्मा (अधि) अधिक श्रेष्ठ है और (महतः) महान् जीवात्मा से (अव्यक्त) आदि अन्तवाला—शरीर (उत्तमम्) उत्तम है ॥७॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में "इन्द्रियेभ्यः" यह पद अर्थ का भी उपलक्षण है और "सत्त्वम्" यह पद बुद्धि वाचक है। क्योंकि इसी उपनिषद् में लिखा है—

'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥
(कठो० अ० १ व० ३ श्रु० १०)

निश्चय करके शब्दादि विषय श्रोत्रादिक इन्द्रियों से बलवान् हैं और मन शब्दादि विषयों से प्रबल है तथा बुद्धि मन से बलवती है और पूर्वोक्त सब का स्वामी महान्—बड़ा जीवात्मा बुद्धि से श्रेष्ठ और बलवान् है ॥१०॥ इस श्रुति के अनुसार प्रस्तुत श्रुति का अर्थ होता है कि—अश्वनिरूपित श्रोत्रादिक इन्द्रियों से गोचरत्वेन निरूपित शब्दादि विषय वश करने में प्रबल हैं। क्योंकि वश्य इन्द्रियों के भी एकान्त में विषय प्राप्त होने पर इन्द्रियों के निग्रह करना अत्यन्त कठिन हो जाता है और शब्दादि विषयों से भी प्रग्रह निरूपित मन बलवान् या श्रेष्ठ है। क्योंकि मन के विषय प्रवण होने पर विषयों के असंनिधान भी कुछ नहीं कर सकता है और लगामरूप मन से भी सारथि निरूपित बुद्धि बलवती या उत्तम है और सारथिरूप बुद्धि से रथी निरूपित जीवात्मा अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान् है। क्योंकि वे सब इन्द्रियादिक जीवात्मा की इच्छा के अनुकूल हैं और रथीरूप से निरूपित शरीर के अधिष्ठाता महान् जीवात्मा से भी रथनिरूपित अव्यक्त आदि तथा अन्तवाला—शरीर उत्तम है। क्योंकि शरीर के रहने पर ही जीवात्मा समस्त पुरुषार्थ के साधन में प्रवृत्त होता है ॥७॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥८॥

अन्वयार्थ—(अव्यक्तात्) अव्यक्त आदि अन्तवाले-शरीर से (तु) भी (व्यापकः) सर्वव्यापक (च) और (अलिङ्गः) लिङ्ग से अगम्य या प्राकृत लिङ्गशरीर रहित (पुरुषः) परब्रह्म परमात्मा (एव) निश्चय करके (परः) श्रेष्ठ है (यम्) जिस परमात्मा को (ज्ञात्वा) जानकर (जन्तुः) जीवात्मा (मुच्यते) संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है (च) और (अमृतत्वम्) निरुपाधिक अमृतस्वरूप परब्रह्म नारायण को (गच्छति) प्राप्त कर लेता है ॥८॥

विशेषार्थ—रथनिरूपित अव्यक्त आदि अन्तवाला शरीर से भी सर्व व्यापक प्राकृतशरीर रहित अकारण करुणा वरुणालय परब्रह्म परमात्मा श्रेष्ठ है। उसी प्रभु को सदाचार्य से शरणागति द्वारा जानकर यह जीवात्मा प्रकृति के बन्धन से सर्वथा छूट जाता है और निरुपाधिक अमृतस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को पा लेता है क्योंकि लिखा है—

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'
(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ८)

उस परमात्मा को जानकर ही भक्त मृत्यु को उल्लङ्घन कर जाता है परमपद की प्राप्ति के लिये दूसरा मार्ग नहीं है ॥८॥ इस श्रुति से प्रभु का शरण--वरण प्रतिपादन किया गया है ॥८॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न
चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥६॥

अन्वयार्थ—(अस्य) इस परमात्मा के (रूपम्) स्वरूप मङ्गलमय विग्रह (संदृशे) सम्यक् दर्शन के विषय में (न) नहीं (तिष्ठति) ठहरता है (कश्चन) कोई भी (एनम्) इस परमात्मा को (चक्षुषा) चर्म चक्षु से (न) नहीं (पश्यति) देखता है (मनीषा) धृतियुक्त (मनसा) मन से समाहितात्मा पुरुष (हृदा) भक्ति से (अभिक्लृप्तः) भलीभाँति ग्रहण होता है (ये) जो (एतत्) इस परमात्मा को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) मरण रहित (भवन्ति) हो जाते हैं ॥६॥

विशेषार्थ—इस परब्रह्म परमात्मा का दिव्य स्वरूप प्रत्यक्ष विषय के रूप में अपने सामने नहीं ठहरता है । कोई भी पुरुष परमात्मा के दिव्य रूप को प्राकृत चर्मचक्षु से नहीं देख सकता है क्योंकि लिखा है—

'न चक्षुषा गृह्यते ।' (मुण्डको० मु० ३ खं० १ श्रु० ८)

आत्मा चर्म नेत्र से नहीं ग्रहण कि जाती है ॥८॥'

'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।'
(गी० अ० ११ श्लो० ८)

अपने इस प्राकृत चर्मनेत्र से तू मुझे ईश्वर को नहीं देख सकेगा ॥८॥ धृतियुक्त मन से समाहितात्मा पुरुष भक्ति के द्वारा परमात्मा के दिव्य स्वरूप की झांकी करता है । क्योंकि महाभारत में लिखा है—

'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
भक्त्या च धृत्या च समाहितात्मा ज्ञानस्वरूपं परिपश्यतीह ॥'

इस परमात्मा का स्वरूप सम्यक् दर्शन के विषय में नहीं ठहरता है कोई भी इस परमात्मा को चर्मनेत्र से नहीं देखता है । धृति से समाहितात्मा पुरुष भक्ति द्वारा यहाँ ही ज्ञानस्वरूप परमात्मा को भलीभाँति देख लेता है । और भी लिखा है—

'भक्त्या त्वनन्यया शक्यः ।' (गी० अ० ११ श्लो० ५४)

केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही परमेश्वर जाना जा सकता है ॥ ५४ ॥

'भक्त्या मामभिजानाति ।' (गी० अ० १८ श्लो० ५५)

भक्ति के द्वारा भक्त पुरुष मुझ परमेश्वर को तत्त्व से जान लेता है ॥५५॥ श्रीविष्णुदर्शनस्थापनोत्सुक भगवद्रामानुजाचार्य ने

'तत्तु समन्वयात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और—

'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की तृतीयवल्ली की नवमी श्रुति के तृतीय पाद को उद्धृत किया है। जो इस श्रुति में प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा को जान लेते हैं। वे अमृत हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाते हैं ॥९॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यदा) जब (मनसा) मन के (सह) सहित (पञ्च) पाँचों (ज्ञानानि) श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और त्वक् ये ज्ञानेन्द्रियाँ (अवतिष्ठन्ते) भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं (च) और (बुद्धिः) बुद्धि भी (न) नहीं (विचेष्टते) किसी प्रकार की चेष्टा करती है (ताम्) उसको (परमाम्) परम (गतिम्) गति (आहुः) वैदिक योगी लोग कहते हैं। अर्थात् शरीरान्तः संचरण को त्यागकर मोक्ष के लिये गमन को ही परमागति कहते हैं ॥१०॥

विशेषार्थ—जब मन के सहित श्रोत्र १, चक्षु २, घ्राण ३, रसना ४, और त्वक् ५ ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने अपने व्यापार को छोड़कर भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं और अध्यवसायात्मिका बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती है उसी को "शरीरान्तः संचरण को त्यागकर मोक्षार्थगमनरूप" परमागति वैदिक योगी लोग कहते हैं। मन के विषय में "ब्रह्मबिन्दूपनिषद्" में लिखा है—

'मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं कामसङ्कल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥'

(ब्रह्मबिन्दूप० श्रु० १)

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥२॥'

'यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ।
'तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥३॥'

निश्चय करके शुद्ध तथा अशुद्ध भेद से मन दो प्रकार का कहा गया है। काम संकल्प युक्त मन अशुद्ध है, काम विवर्जित मन शुद्ध है ॥१॥ मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष में कारण है । विषयासक्त मन बन्धन के लिये कहा गया है और विषय रहित मन मोक्ष के लिये कहा गया है ॥२॥ जिस कारण से विषय रहित इस मन को मोक्ष कहा गया है इससे मुमुक्षु पुरुषों को चाहिये कि सर्वदा विषय रहित मन को करें ॥३॥ सप्तग्रन्थनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ।' (शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० ४)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की तृतीयवल्ली की दशवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१०॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

अन्वयार्थ—(ताम्) पूर्वश्रुति में निर्दिष्ट उस (स्थिराम्) स्थिर (इन्द्रियधारणाम्) इन्द्रियों की धारणा रूप परमागति को (योगम्) योग (इति) ऐसा (मन्यन्ते) अनुभवी योगी लोग मानते हैं (तदा) तब इन्द्रियों के निर्व्यापारत्व ही (अप्रमत्तः) समाहित चित्तता (भवति) हो जाता है (हि) निश्चय करके (योगः) योग (प्रभवाप्ययौ) इष्ट वस्तु को उत्पन्न करने वाला है और अनिष्ट वस्तु को विनाश करनेवाला है अथवा योग उदय और अस्त होनेवाला है ॥११॥

विशेषार्थ—कठोपनिषद् के दूसरे अध्याय की तृतीयवल्ली की दशवीं श्रुति में निर्दिष्ट उस इन्द्रिय मन और बुद्धि की स्थिर धारणारूप परमागति को ही योग ऐसा नाम अनुभवी योगी महानुभाव मानते हैं और शरीरान्तः संचरण को त्याग कर मोक्षार्थ गमन को परमा गति कहते हैं । जिस समय में इन्द्रियाँ निर्व्यापार हो जाती हैं उसी समय में समाहित चित्त हो जाता है । इससे इन्द्रियों के निर्व्यापारत्व ही एकाग्रचित्तता होती है । योग इष्ट वस्तु को उत्पन्न करने वाला और अनिष्ट वस्तु को विनाश करने वाला है । अथवा यह योग प्रतिक्षण उदय और अस्त होने वाला है । इस कारण से सदा सावधान रहना चाहिये । "योग" के विषय में जिसको अधिक जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "वैदिकयोगसंग्रह" ग्रन्थ को देख ले । अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है—कितनी इन्द्रियाँ हैं ? इसका उत्तर लिखा है—

'दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः ।'

(बृह. उ. अ. ३ ब्रा. श्रु. ४)

पुरुष में दश इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन इन्द्रिय है ॥४॥

'इन्द्रियाणि दशैकं च ।' (गी. अ. १३ श्लो. ५)

श्रोत्र १, त्वचा २, चक्षु ३, रसना ४, और घ्राण ५ ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और वाक् १, हाथ २, पैर ३, गुदा ४ तथा उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ये दस और एक मन ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं ॥५॥

'तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश । एकादशं मनश्चात्र ॥'

(विष्णुपु० अंश १ अध्या० २ श्लो० ४७)

ग्यारह मन के सहित इन्द्रियाँ हैं ॥४७॥ इन श्रुति स्मृति और पुराण के प्रमाणों से ग्यारह इन्द्रियाँ हैं ।

'सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः द्वाववाञ्चौ ।' (यजु० ७,३,१०)

इस श्रुति में अधिक संख्यावाद मनोवृत्ति के भेद के अभिप्राय से है और—

'अष्टौ ग्रहाः ।' (बृह० उ० अ० ३ ब्रा० २ श्रु० १)

इस श्रुति में न्यूनसंख्यावाद तत्तत् स्थान में विवक्षित गमनादि कार्य-विशेष के अभिप्राय से है । इस विषय को महाचार्य ने

'सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ।' (शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और—

'हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ।' (शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० ५)

के श्रीभाष्य में प्रतिपादन किया है ॥११॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥

अन्वयार्थ—वह परब्रह्म परमात्मा (वाचा) वाणी से (न) नहीं और (एव) निश्चय करके (मनसा) मन से (न) नहीं और (चक्षुषा) नेत्र से (न) नहीं (प्राप्तुम्) प्राप्त करने योग्य (शक्यः) शक्य है (अस्ति) परमात्मा है (इति) ऐसा (ब्रुवतः) कहनेवाला शास्त्र से (अन्यत्र) अतिरिक्त दूसरे में (तत्) वह परब्रह्म (कथम्) कैसे (उपलभ्यते) मिल सकता है ॥१२॥

विशेषार्थ—वह परब्रह्म परमात्मा वाणी आदि कर्मेन्द्रियों से और चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों से तथा मन आदि अन्तःकरण से नहीं प्राप्त होता है । क्योंकि लिखा है—

'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा ।' (मुण्डको० मु० ३ खं० १ श्रु० ८)

आत्मा न वाणी से न तो नेत्र से ग्रहण की जाती है ॥८॥

'यन्मनसा न मनुते ।' (केनो० खं० १ श्रु० ५)

जो मन से मनन नहीं की जाती है ॥८॥ परब्रह्म परमात्मा है ऐसा कहनेवाला वेदान्त से अतिरिक्त दूसरे में अर्थात् प्रत्यक्ष या अनुमान में कैसे वह परब्रह्म परमात्मा प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि लिखा है—

'शास्त्रयोनित्वात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ३)

इस न्याय से शास्त्रैकसमधिगम्य परब्रह्म परमात्मा है । इससे शास्त्र को नहीं माननेवाले परमात्मा को कैसे पा सकते हैं ॥१२॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१३॥

अन्वयार्थ—(तत्त्वभावेन) तत्त्व को भावना करने वाला अन्तःकरण से (अस्ति) परमात्मा है । (इति) इस प्रकार (इव) निश्चय करके (उपलब्धव्यः) प्राप्त करने योग है (च) और (अस्ति) वेदान्त वाक्यों से परमात्मा है (इति) ऐसा (एव) निश्चय करके (उपलब्धस्य) प्राप्त किया हुआ परब्रह्म परमात्मा का मन से परमात्मा है ऐसा निश्चय करके मनन और निदिध्यासन करके योग्य है (उभयोः) दोनों हेतुओं से (तत्त्वभावः) तत्त्व को भावना करनेवाला अन्तःकरण मन (प्रसीदति) प्रसन्न हो जाता है अर्थात् शान्तरागादि दोष हो जाता है ॥१३॥

विशेषार्थ—वेदान्तवाक्यों से आचार्य के द्वारा परब्रह्म परमात्मा अवश्य है इस प्रकार से निश्चय करके प्राप्त किया परब्रह्म नारायण को और अपने अन्तःकरण —मन से भी परमात्मा अवश्य है इस प्रकार के निश्चय करके प्राप्त करने योग्य है ऐसा जो साधक समझ कर मनन निदिध्यासन करता है तो वेदान्त और मन इन दोनों से परमात्मा है ऐसा निश्चय करने से उपासना करने वाले का मन प्रसन्न हो जाता है और मन प्रसन्न होने पर लिखा है—

'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।'

(गी० अ० २ श्लो० ६५)

साधक पुरुष के मन प्रसन्न हो जाने के कारण उसके प्रकृति संसर्ग से प्रयुक्त समस्त दुःखों का नाश हो जाता है ॥६५॥ इससे मन प्रसन्न होने के लिये सर्वदा भगवदुपासना करनी चाहिये ॥१३॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते ॥१४॥

अन्वयार्थ—(ये) जो (कामाः) विषय विषयक मनोरथ (अस्य) इस उपासक के (हृदि) हृदय में (श्रिताः) आश्रित या स्थित हैं (सर्वे) वे सब विषय विषयक मनोरथ (यदा) जब (प्रमुच्यन्ते) समूल नष्ट हो जाते हैं अर्थात् शान्त हो जाते हैं (अथ) इसके अनन्तर (मर्त्यः) मरण धर्मा उपासक मनुष्य (अमृतः) उत्तर और पूर्व अघ के अश्लेष तथा विनाशरूप अमृत (भवति) हो जाता है और (अत्र) यहाँ उपासनावेला में (ब्रह्म) परब्रह्म को (समश्नुते) वह उपासक अनुभव भली भाँति कर लेता है ॥१४॥

विशेषार्थ—जो समस्त विषय विषयक मनोरथ इस उपासक के हृदय में चिपटे हुए हैं। वे संपूर्ण विषय विषयक मनोरथ जिस समय समूल नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् हृद्गत शान्त हो जाते हैं। इसके अनन्तर वह मरणधर्मा उपासक उत्तर और पूर्व अघ के अश्लेष तथा विनाशरूप अमृत हो जाता है और यहाँ शरीरेन्द्रियादि सम्बन्ध को बिना भस्म किये ही उपासना समय में परब्रह्म विषयक अनुभव को वह उपासक पुरुष भलीभाँति कर लेता है। शारदातापसंहर्ता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य।'
(शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० ७)

के श्रीभाष्य में और—

'नोपमर्देनातः।' (शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० १)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की तृतीय वल्ली की चौदहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१४॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(यदा) जब इस उपासक के (हृदयस्य) हृदय के (सर्वे) समस्त (ग्रन्थयः) ग्रन्थि के समान दुर्मोच राग द्वेषादिक (प्रभिद्यन्ते) समूल नष्ट हो जाते हैं (अथ) इसके अनन्तर (मर्त्यः) मरणधर्मा उपासक मनुष्य (इह) इसी शरीर में (अमृतः) उत्तर और पूर्व अघ के अश्लेष तथा विनाश रूप अमृत (भवति) हो जाता है (एतावत्) उपासक के कर्तव्यत्वेन उपदेश देने योग्य इतना ही (अनुशासनम्) सनातन उपदेश हैं ॥१५॥

विशेषार्थ—जिस समय में इस उपासक के हृदय की समस्त ग्रन्थि के समान दुर्मोच रागद्वेषादिक समूल नष्ट हो जाते हैं उसी समय में इस शरीरेन्द्रियादि

संबन्ध रहते हुए ही वह मरण धर्मा उपासक उत्तर और पूर्व अघ के अश्लेष तथा विनाश रूप अमृत हो जाता है। उपासक के कर्त्तव्यत्वेन उपदेश देने योग्य इतना ही वेदान्त का सनातन उपदेश है। वक्ष्यमाण मूर्धन्य नाडी द्वारा निष्क्रमण और अर्चिरादि मार्ग से गमनादिक साधक का कृत्य नहीं है। किन्तु उपासना से प्रसन्न परब्रह्म नारायण का कृत्य है ॥१५॥

शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-
स्तासांमूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्-
ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

अन्वयार्थ—(हृदयस्य) हृदय की (शतम्) सौ (च) और (एका) एक (च) भी (नाड्यः) प्रधान नाड़ियाँ हैं (तासाम्) उन नाड़ियों के मध्य में (एका) एक सुषुम्ना नाड़ी (मूर्धानम्) मस्तक की ओर (अभिनिःसृता) निकली हुई है (तया) उस सुषुम्ना ब्रह्मनाड़ी के द्वारा (ऊर्ध्वम्) ऊपर ब्रह्मलोक को (आयन्) प्राप्त करता हुआ (अमृतत्वम्) परब्रह्म प्राप्तिपूर्वक स्व स्वरूप आविर्भाव लक्षण अमृत-मुक्ति को (एति) प्राप्त कर लेता है (अन्याः) दूसरी एक सौ नाड़ियाँ (उत्क्रमणे) मरण काल में बाहर जाने के समय (विष्वङ्) जीव को नाना प्रकार की योनियों में ले जाने को हेतु (भवति) होती हैं ॥१६॥

विशेषार्थ—हृदय में एक सौ एक प्रधान नाड़ियाँ हैं। उनमें सुषुम्ना नामक एक ब्रह्मनाड़ी मस्तक की ओर हृदय से गयी है। भगवान् के परम धाम में जाने का अधिकार उस सुषुम्ना नाड़ी द्वारा शरीर से बाहर निकलकर सबसे ऊपर भगवान् के परम धाम में अर्चिरादि मार्ग से जाकर परब्रह्म प्राप्तिपूर्वक स्वस्वरूप आविर्भाव लक्षण मुक्ति को उपासक प्राप्त कर लेता है। क्योंकि लिखा है—

'तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः ।'

(बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० २)

उस उपासक के इस हृदय का अग्र—यानी बाहर जाने का मार्ग अत्यन्त प्रकाशित होने लगता है उसी से यह आत्मा नेत्र से या मस्तक से अथवा शरीर के किसी अन्य कान आदिक भाग से बाहर निकलता है ॥ २ ॥ और हृदय से चारो ओर को फैली हुई दूसरी सौ नाड़ियों के द्वारा मरण काल में शरीर से

बाहर निकल कर जीव अपने अपने कर्म के अनुसार नाना योनियों को प्राप्त होते हैं। श्रीयामुनाङ्गुलित्रयविमोचनकर्ता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० ७)

के श्रीभाष्य में और

'तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्या-त्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० १६)

के श्रीभाष्य में और

'कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० ३ सू० ६)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के दूसरे अध्याय की तृतीयवल्ली की सोलहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥१६॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा ।
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥

अन्वयार्थ—(अन्तरात्मा) सबका अन्तर्यामी (अङ्गुष्ठमात्रः) अंगूठे के समान परिमाणवाला (पुरुषः) परमपुरुष परमात्मा (सदा) सदैव (जनानाम्) सभी मनुष्यों के (हृदये) हृदय में (संनिविष्टः) भलीभाँति प्रविष्ट है (मुञ्जात्) मूंज में से (इषीकाम्) सींक की (इव) समान (धैर्येण) धीरतापूर्वक—ज्ञान की कुशलता से (स्वात्) अपने (शरीरात्) शरीर से अर्थात् भगवच्छरीरभूत जनशब्दित चेतन से (तम्) उस सब जनों के अन्तर्यामी परमात्मा के (प्रवृहेत्) विचार कर पृथक् करके जाने (तम्) उसी को (शुक्रम्) निर्मल—या प्रकाश-स्वरूप और (अमृतम्) निरुपाधिक अमृत (इति) ऐसा (विद्यात्) जाने और (तम्) उसी परमात्मा को (शुक्रम्) निर्मल या प्रकाशस्वरूप तथा (अमृतम्) निरुपाधिक अमृतस्वरूप (विद्यात्) समझे ॥१७॥

विशेषार्थ—सबके अन्तर्यामी परमपुरुष परमात्मा मनुष्य के हृदय के अनुरूप अङ्गुष्ठमात्र रूपवाला होकर सदैव सभी मनुष्यों के भीतर निवास करता है। क्योंकि लिखा है—

'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।'

(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १३)

सबके अन्तर्यामी अंगुष्ठप्रमाण पुरुष मनुष्यों के हृदय में सर्वदा प्रविष्ट है ।।१३। जिस प्रकार मूंज में रहनेवाली सींक मूंज से विलक्षण और पृथक् है। उसी प्रकार वह शरीर और जीवात्मा के भीतर रहनेवाला परब्रह्म उन दोनों से विलक्षण है। ऐसा धीरतापूर्वक ज्ञानकौशल से अपने शरीर से अर्थात् भगवच्छरीरभूत जनशब्दित चेतन से उस सब जनों के अन्तर्यामी परमात्मा को विचार कर अलग जाने। वही परमात्मा निर्मल प्रकाशस्वरूप है और वही निरुपाधिक अमृतस्वरूप है ऐसा उपासक समझें। यहाँ अन्त के वाक्य की द्विरुक्ति और "इति" उपदेश की समाप्ति एवं सिद्धान्त की निश्चितता को सूचित करती है। बोधायनमतानुगामी भगवद्रामानुजाचार्य ने

'शब्दादेव प्रमितः ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० २३)

के श्रीभाष्य में और—

'कम्पनात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४०)

के श्रीभाष्य में तथा—

'सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ।'(शा० मी० अ० ३ पा० ३ सू० १)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की तृतीयवल्ली की सत्रहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ।।१७।।

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथलब्ध्वा
विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्यु-
रन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ।।१८।।

अन्वयार्थ—(अथ) इस प्रकार उपदेश सुनने के अनन्तर (नचिकेतः) नचिकेता (मृत्युप्रोक्ताम्) यमराज से कही हुई (एताम्) इस (विद्याम्) आत्म-विद्या को (च) और (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (योगविधिम्) योग की विधि को (लब्ध्वा) पाकर (ब्रह्मप्राप्तः) पर ज्योति स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त हुआ (विरजः) विशुद्ध सब प्रकार के विकार रहित (विमृत्युः) मरणरहित (अभूत्) हो गया (एव) निश्चय करके (अन्यः) दूसरा (अपि) भी (यः) जो कोई (अध्यात्मम्) इस अध्यात्म विद्या को (वित्) जानता है (एवम्) वह भी नचिकेता के समान हो जाता है ।।१८।।

विशेषार्थ—इस प्रकार उपदेश सुनने के अनन्तर मुमुक्षु नचिकेता यमराज से कही हुई इस आध्यात्मविद्या को और—

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ।' (कठो० अ० २ व० ३ श्रु० १०)

इस श्रुति से तथा—

'तां योगमिति मन्यन्ते ।' (कठो० अ० २ व० ३ श्रु० ११)

इस श्रुति से कथित सम्पूर्ण योग की विधि को पाकर परज्योतिस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करके विशुद्ध सब प्रकार के विकाररहित और मृत्युरहित आविर्भूत गुणाष्टक हो गया। क्योंकि लिखा है—

'परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ।'

(छां० उ० अ० ८ खं० ३ श्रु० ४)

परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने स्वरूप से युक्त हो जाता है ॥४॥

'य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको-
विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः ।'

(छां: उ० अ० ८ खं० ७ श्रु० १)

जो आत्मा पापशून्य १, जरारहित २, मृत्युरहित ३, शोकरहित ४, क्षुधारहित ५, पिपासारहित ६, सत्यकाम ७, और सत्यसंकल्प ८ है ॥१॥ और दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्म विद्या को इस प्रकार नचिकेता के समान ठीक ठीक जानता है। वह भी पुरुष नचिकेता की भाँति परज्योति को प्राप्त होकर आविर्भूतगुणाष्टक हो जाता है। अध्यात्म विद्या के विषय में लिखा है—

'अध्यात्मविद्या विद्यानाम् ।' (गी० अ० १० श्लो० ३२)

कल्याणसाधनरूपा विद्याओं में परम कल्याण साधनरूपा अध्यात्म विद्या मैं हूँ ॥३२॥ इस श्रुति में अध्यात्म विद्या की स्तुति के लिये इस आख्यायिका के अर्थ का उपसंहार कहा गया है ॥१८॥

स ह नाववतु । सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥१९॥

"ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः"

॥ इति द्वितीयाध्याये तृतीयवल्ली ॥

॥ इति कठोपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ इति कठोपनिषद् समाप्ता ॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) विद्याप्रकाशित वह परब्रह्म परमात्मा (न) हम दोनों शिष्य और आचार्य को (अवतु) स्व स्वरूप प्रकाश से रक्षा करें (नौ) हम दोनों गुरु तथा शिष्य को (सह) साथ साथ (भुनक्तु) विद्याप्रचय द्वारा पालन करें (सह) हम दोनों साथ साथ (वीर्यम्) विद्या के सामर्थ्य को (करवावहै) सनियम विद्या प्रदान से निष्पादन करें (नौ) हम दोनों गुरु शिष्य की (अधीतम्) पढी हुई विद्या (तेजस्वि) तेजवाली—या अधिक वीर्यवाली (अस्तु) हो (मा) नहीं (विद्विषावहै) हम दोनों शिष्य और आचाय अध्ययन तथा अध्यापन निमित्त द्वेष करें ॥१६॥

विशेषार्थ—गुरु और शिष्य के शास्त्रीय नियम प्रमाद से अतिलंघन करने के द्वारा होनेवाले दोष की शान्ति के लिये यह शान्तिपाठ श्रुति स्वतः उपदेश देती है कि—उपनिषद्विद्या के द्वारा प्रकाशित होनेवाला वह प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा हम दोनों पढ़ने पढ़ाने वालों को स्व स्वरूप प्रकाश करके रक्षा करें और वही परब्रह्म नारायण हम दोनों पढ़ने पढ़ाने वालों को साथ साथ विद्याप्रचय के द्वारा पालन करें तथा हम दोनों पढ़ने पढ़ानेवाले साथ साथ विद्या के सामर्थ्य को सनियम विद्या के प्रदान से निष्पादन करें। हम दोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसी से हम दोनों विद्या में परास्त न हो और हम दोनों पढ़ने पढ़ाने वाले जीवन भर स्नेह सूत्र से बँधे रहें हम में परस्पर कभी किसी प्रकार का द्वेष न हो। "ओम्" यानी हे परब्रह्म नारायण "शान्तिः" यानी आध्यात्मिकताप की निवृत्ति हो तथा "शान्तिः" यानी आधिभौतिक ताप की निवृत्ति हो और "शान्तिः" यानी आधिदैविक ताप की निवृत्ति हो। यहाँ पर "शान्तिः" पद का तीन बार उच्चारण संपूर्ण दोषों की निवृत्ति के लिये किया गया है। "कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की तृतीयवल्ली की अन्तिम श्रुति केवल इसी उपनिषद् का शान्तिपाठ नहीं है बल्कि "मुक्तिकोपनिषद्" में लिखा है—

'कठवल्लीतैत्तिरीयकब्रह्मकैवल्यश्वेताश्वतरगर्भनारायणामृतबिन्द्वमृतनादकालाग्निरुद्रक्षुरिकासर्वसारशुकरहस्यतेजोबिन्दुध्यानबिन्दुब्रह्मविद्यायागतत्त्वदक्षिणामूर्तिस्कन्दशारीरकयोगशिखैकाक्षराक्ष्यवधूतकठरुद्रहृदययोगकुण्डलिनीपञ्चब्रह्मप्राणाग्निहोत्रवराहकलिसन्तरणसरस्वतीरहस्यानां कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्याकानामुपनिषदां स ह नाववत्विति शान्तिः।

(मुक्ति० उ० अध्या० १ श्रु० ५३)

कठोपनिषद् १, तैत्तिरीयोपनिषद् २, ब्रह्मोपनिषद् ३, कैवल्योपनिषद् ४, श्वेताश्वतरोपनिषद् ५, गर्भोपनिषद् ६, नारायणोपनिषद् ७, अमृतबिन्दूपनिषद् ८,

अमृतनादोपनिषद् ६ कालाग्निरुद्रोपनिषद् १०, क्षुरिकोपनिषद् ११, सर्वसारोपनिषद् १२, शुकरहस्योपनिषद् १३, तेजोबिन्दूपनिषद् १४, ध्यानबिन्दूपनिषद् १५, ब्रह्मविद्योपनिषद् १६, योगतत्त्वोपनिषद् १७, दक्षिणामूर्त्युपनिषद् १८, स्कन्दोपनिषद् १९, शारीरकोपनिषद् २०, योगशिखोपनिषद् २१, एकाक्षरोपनिषद् २२, अक्ष्युपनिषद् २३, अवधूतोपनिषद् २४, कठरुद्रोपनिषद् २५, रुद्रहृदयोपनिषद् २६, योगकुण्डल्युपनिषद् २७, पञ्चब्रह्मोपनिषद् २८, प्राणाग्निहोत्रोपनिषद् २९, वराहोपनिषद् ३०, कलिसन्तरणोपनिषद् ३१ और सरस्वतीरहस्योपनिषद् ३२ ये कृष्णयजुर्वेद के बत्तीस उपनिषद् हैं। इनके शान्तिपाठ के मंत्र—**'स ह नाववतु।'** (कठो० अ० २ व० ३ श्रु० १९) वीं है इससे पूर्वोक्त बत्तीस उपनिषदों के पढ़नेवालों को चाहिये कि—"कठोपनिषद्" के द्वितीयाध्याय की तृतीयवल्ली की अन्तिम श्रुति को आदि और अन्त में अवश्य शान्ति पाठ करें ॥५३॥ द्वयमंत्र में जैसे दो खण्ड और छः पद हैं। वैसे ही परब्रह्मनारायण प्रतिपादक "कठोपनिषद्" में दो अध्याय और छः वल्लियाँ हैं। इस उपनिषद् की प्रथमवल्ली में तीस मंत्र हैं तथा द्वितीयवल्ली में पचीस मंत्र हैं और तृतीयवल्ली में सत्रह मंत्र हैं तथा चतुर्थवल्ली में पन्द्रह मंत्र हैं और पञ्चमवल्ली में भी पन्द्रह मंत्र हैं तथा षष्ठवल्ली में उन्नीस मंत्र हैं। इस प्रकार सब परिगणन करने से "कठोपनिषद्" में एक सौ ईक्तीस मंत्र हैं यहाँ द्वितीयाध्याय की तृतीयवल्ली तथा द्वितीय अध्याय और यह उपनिषद् समाप्त हो गया ॥१९॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रं
श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम् ।
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधं
भक्त्या भजामि गुरुवर्यमनन्तसूरिम् ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्यश्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवदनन्तपादीय-श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यत्रिदण्डिस्वामिविरचिता "गूढार्थदीपिका" समाख्या "कृष्णयजुर्वेदीयकाठकशाखान्तर्गता—"कठोपनिषद्" भाषा व्याख्या समाप्ता।

ॐ पराङ्कुशमुनये नमः

अथर्ववेदीया

प्रश्नोपनिषद्

अथ प्रथमप्रश्नः

सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च
सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः ।
कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनः।
ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणाः
एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते समित्पाणयो
भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

❀गूढार्थदीपिकाव्याख्या❀

मङ्गलाचरणम्

नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्टज्ञानवैराग्यराशये ।
नाथाय मुनयेऽगाधभगवद्भक्तिसिन्धवे ॥ १ ॥

(भारद्वाजः) भरद्वाज का पुत्र (सुकेशा) सुकेशा नामवाला (च) और (शैब्यः) शिबि का पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम नामवाला (च) और (सौर्यायणी) सूर्यायण का पुत्र (गार्ग्यः) गर्गगोत्र में उत्पन्न होनेवाला (च) और (आश्वलायनः) अश्वल का पुत्र (कौशल्यः) कौशल्य नामवाला (च) और (वैदर्भिः) विदर्भ का पुत्र (भार्गवः) भृगुगोत्र में उत्पन्न होनेवाला (च) और (कात्यायनः) कात्यायन गोत्र में उत्पन्न या कत्य का पुत्र (कबन्धी) कबन्धी नामवाला (ते) वे (ह) प्रसिद्ध (एते) ये छः ऋषि (ब्रह्मपराः) वेदपरायण (ब्रह्मनिष्ठाः) वेदार्थतात्पर्य में निष्ठावाले (परम्) सब से उत्कृष्ट (ब्रह्म) स्वरूप से और गुण से सब से बड़े (परमात्मा) को (अन्वेषमाणाः) खोजते हुए (एषः) यह हम सबों की बुद्धि में वर्तमान (ह) ब्रह्मवेत्ताओं में प्रसिद्ध पिप्पलाद

महर्षि (वै) निश्चय कर के (तत्) हम सबों के द्वारा जिज्ञासित उस (सर्वम्) समस्त अर्थों का (वक्ष्यति) कहेगा (इति) ऐसा विचार कर (समित्पाणयः) हाथ में समिधा लिये हुए (ते) वे सुकेशा, सत्यकाम प्रभृति छः प्रसिद्ध ऋषि (भगवन्तम्) शास्त्रदृष्ट विधि से पूज्य भगवान् (पिप्पलादम्) पिप्पलाद महर्षि के (उपासनाः) समीप में गये ॥ १ ॥

विशेषार्थ—अथर्ववेद की पिप्पलादशाखा का यह 'प्रश्नोपनिषद्' है। यहाँ पर परा विद्या की स्तुति के लिये ऋषियों के प्रश्न और उत्तर रूप आख्यायिका श्रुति कहती है—प्रसिद्ध है कि भरद्वाज का पुत्र सुकेशा नामवाला और शिबिकुमार सत्यकाम नामवाला २ तथा सूर्यायणका पुत्र गर्ग गोत्र में उत्पन्न होनेवाला ३ और अश्वलतनय कौसल्य नामवाला ४ तथा विदर्भनन्दन भृगुगोत्र में उत्पन्न होनेवाला ५ और कत्य का पुत्र कबन्धी नामवाला ६ ये छः ऋषि वेदाभ्यासपरायण वेदार्थतात्पर्य में निष्ठावाले परब्रह्म नारायण की जिज्ञासा से एक साथ बाहर निकले। इन्होंने सुना था कि पिप्पलाद महर्षि इस विषय को विशेषरूप से जानते हैं। इससे वे हमको परब्रह्म के विषय में सब कुछ बता देंगे, ऐसा विचार कर भगवान् पिप्लाद महर्षि के समीप समिधा, पुष्प आदि हाथ में लेकर गये। और वह भेंट उनको समर्पण कर श्रीचरणों में साष्टाङ्ग प्रणिपात कर के बोले कि हे भगवन् हमको ब्रह्मविद्या का उपदेश करें क्योंकि मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।'

(मु० उ० मु० १ खं० १ श्रु० १२)

परब्रह्मको जानने के लिये वह मुमुक्षु हाथ में समिधा आदि लिये हुए वेदवेत्ता ब्रह्मविचार में मग्न गुरु की शरण जाय ॥१२॥ और भी लिखा है—

'आचार्यवान् पुरुषो वेद।'

(छा० उ० अ० ६ खं० १४ श्रु० २)

आचार्यवाला पुरुष परब्रह्म नारायण को जानता है ॥२॥

'आचार्याद्ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति।'

(छा० उ० अ० ४ खं० ६ श्रु० ३)

आचार्य से जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुता को प्राप्त कराती है ॥३॥

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।'

(गी० अ० ४ श्लो० ३४)

उस ब्रह्मज्ञान को साष्टाङ्ग प्रणाम के द्वारा तुम जानो ॥३४॥ इन श्रुति स्मृति

के नियमानुसार वे छः ऋषि भगवान् पिप्पलाद के पास गये। समिधा के लिये यज्ञीय वृक्षों का वर्णन है—

'पलाशफल्गुन्योग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः।
उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये ॥
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा।
समिदर्थे प्रशास्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः ॥
ग्राह्याः कण्टकिनश्चैवं यज्ञिया एव केचन।
पूजिताः समिदर्थेषु पितॄणां वचनं यथा ॥'

(वायुपुरा०)

पलाश १, फल्गु २, वट ३, पाकड़ ४, पीपल ५, स्रुवावृक्ष ६ गूलर ७, श्रीफल ८, चन्दन ९, सरल १०, देवदारु ११, शाल १२, खैर १३ ये वृक्ष यज्ञ की समिधा के लिये विशेषरूप से प्रशस्त हैं। और भी यज्ञ में ग्रहण करने योग्य जो काँटेवाले सुन्दर वृक्ष हैं वे समिधा के लिये श्रेष्ठ हैं। ऐसा पितरों का वचन है।

'नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतमा क्वचित्।
न निर्मुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥'

(कात्यायन०)

अंगूठे से अधिक मोटी समिधा कभी भी नहीं ग्रहण करनी चाहिये। बिना छिलके की तथा कीट से युक्त और फारी हुई समिधा भी यज्ञ में नहीं ग्रहण करनी चाहिये।

'प्रादेशान्नाधिका नोना न च शाखासमन्विता।
न त्वग्धीना न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता ॥'

(आह्निकसू०)

एक बीता से अधिक या न्यून समिधा नहीं यज्ञ में ग्रहण करनी चाहिये और होम की विधि को जाननेवाले शाखायुक्त तथा छिलकारहित और बिना वीर्य की समिधा को यज्ञ में ग्रहण नहीं करते हैं।

'निवासा ये च कीटानां लताभिर्वेष्टिताश्च ये।
अयज्ञिया गर्हिताश्चवल्मीकैश्च समावृताः ॥
शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान् महीरुहान्।
अन्यांश्चैवंविधान् सर्वान् यज्ञियांश्च विवर्जयेत् ॥'

(वायुपुरा०)

जिस वृक्ष में कीट निवास करते हों तथा लताओं से जो वेष्टित हो और यज्ञिय जो न हो तथा गर्हित हो और जिसपर पक्षि-विशेष निवास करते हों तथा इस प्रकार के अन्य वृक्षों को समिधा के लिये यज्ञ में बरा देना चाहिये ।। इस कथनानुसार यज्ञिय समिधा को हाथ में लिये हुए सुकेशा आदि छः ऋषि पिप्पलाद महर्षि के समीप गये। इस श्रुति में

'यथा देवे तथा गुरौ ।'

(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० २३)

जिस प्रकार परमात्मा देव में उसी प्रकार गुरु में भी ।। २३।। इस श्रौतसिद्धान्त को जानने के लिये आचार्य पिप्पलाद में 'भगवच्छब्द' का प्रयोग हुआ है ।।१।।

तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा
ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ ।
यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः
सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(सः) वह (ह) प्रसिद्ध (ऋषिः) मंत्रद्रष्टा पिप्पलाद महर्षि (तान्) उन सुकेशा आदि छः ऋषियों से (उवाच) स्पष्ट कहा कि (एव) निश्चय कर के (भूयः) फिर भी (तपसा) तप कर के (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्यपालन कर के (श्रद्धया) आस्तिक्य बुद्धिलक्षणा श्रद्धा से (संवत्सरम्) एक वर्ष तक यहाँ (संवत्स्यथ) भली भाँति निवास करो (यथाकामम्) उस के बाद अपनी अपनी इच्छा के अनुसार (प्रश्नान्) प्रश्नों को (पृच्छत) पूछना (यदि) जो (विज्ञास्यामः) तुम्हारी पूछी हुई बातों को मैं जानता होऊँगा तो (ह) स्पष्ट विना वञ्चना के (सर्वम्) सब बातों को (वः) तुम लोगों के प्रति (इति) इस प्रकार (वक्ष्यामः) कहूँगा ।। २ ।।

विशेषार्थ—उस प्रसिद्ध महर्षि पिप्पलाद ने उन आये हुए छः ऋषियों से स्पष्ट कहा कि तुम लोग तपस्वी हो तथापि अभी और भी मेरे आश्रम में रहकर एक वर्ष तक श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तपश्चर्या करो। तदनन्तर इच्छानुसार चाहे सो प्रश्न करना। यदि तुम्हारी पूछी हुई बातों को मैं जानता होऊँगा तो उन सब का उत्तर तुम लोगों के प्रति स्पष्ट करके मैं समझा दूँगा।

अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ऋषि और तप तथा ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं, इसका उत्तर यह लिखा है—

'ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत् सन्नियतं यस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ॥'

(वायुपुरा० अ० ५६ श्लो० ७६)

'गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नाम निर्वृत्तिरादितः ।
यस्मादेष स्वयंभूतस्तस्माच्च ऋषिता स्मृता ॥'८१॥

ऋषि धातु गमन, श्रवण, सत्य और तप इन अर्थों में प्रयुक्त होता है ये सब बातें जिसके अन्दर एक साथ निश्चितरूप से हों उसी का नाम ब्रह्मा ने ऋषि रखा है ॥ ७६ ॥ गत्यर्थक ऋष धातु से ही ऋषि शब्द की निष्पत्ति हुई है और आदि काल में यह ऋषिवर्ग स्वयं उत्पन्न होता है इसी से इस की ऋषि संज्ञा है ॥८१॥

'वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः ॥'

(जाबालद० उ० खं० २ श्रु० ३)

वेदोक्त प्रकार से और कृच्छ्रचान्द्रायणादिक से जो शरीर को सुखाना है उसी को बुध जन तप कहते हैं ॥ ३ ॥

'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभषणम् ।'
संकल्पोऽधयवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।'

(अत्रिस्मृ०)

स्त्री का स्मरण १, कीर्तत २, केलि करना ३, देखना ४, गुह्यभाण ५, संकल्प ६, अध्यवसाय ७, धातु पतन ८ ये आठ अङ्ग मैथुन के हैं, ऐसा मनीषी लोग कहते हैं । सर्वदा जो मैथुन को परित्याग करना है उसीको बुध जन ब्रह्मचर्य कहते हैं । और श्रद्धा के विषय में लिखा है—

'श्रद्धा हि स्वाभिमतंसाधयति एतदिति विश्वासपूर्विका साधने त्वरा'

(भगवद्गीतारामानुजभाष्य अ० १७ श्लो० २)

यह अपने अभिमत कार्य को सिद्ध कर सकेगा इस विश्वास के साथ जो साधन में शीघ्रता होती है, उसका नाम श्रद्धा है ॥ २ ॥ प्रथम प्रश्न की द्वितीय श्रुति में 'यदि' शब्द से पिप्पलाद महर्षि ने अपनी नम्रता प्रकट की हैं । और यह भी सिद्ध किया है कि कोई भी जीव सर्वज्ञ नहीं है ॥ २ ॥

**अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥३॥**

अन्वयार्थ—(अथ) पिप्पलाद महर्षि के आश्रम पर रहकर एक वर्ष श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करते हुए तपस्या करने के अनन्तर (कात्यायनः) कात्यायन गोत्रवाले (कबन्धी) कबन्धी नाम के ऋषि ने (उपेत्य) पिप्पलाद महर्षि के पास जाकर (पप्रच्छ) पूछा (भगवान्) हे भगवन् (वै) निश्चय कर के (ह) प्रसिद्ध (इमाः) यह (प्रजाः) सारी प्रजा (कुतः) किससे (प्रजायन्ते) नाना रूपों में उत्पन्न होती है) इति) यह मेरा प्रश्न है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—पिप्पलाद महर्षि के आश्रम पर निवास कर के नियमानुसार एक वर्ष तक श्रद्धापूर्वक पालन करते हुए तपस्या करने के अनन्तर सुकेशा आदि ऋषियों की अनुज्ञा से कात्यायन गोत्रवाले कबन्धी नाम के ऋषि समिधा, पुष्प आदिक भेंट हाथ में लेकर पिप्पलाद महर्षि के समीप में गये और वहाँ श्री चरणों में भेंट समर्पण कर के साष्टाङ्ग प्रणिपात किये । तदनन्तर श्रद्धा से विनयपूर्वक प्रश्न किये कि हे भगवन् यह जगत् भर के प्राणी कहाँ से उत्पन्न होते हैं ॥३॥

तस्मै स होवाच प्रजाकामो ह वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं चेति । एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥४॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) वह पिप्पलाद महर्षि (तस्मै) उस प्रश्नकर्ता कबन्धी ऋषि से (उवाच) बोला (वै) निश्चय कर के (प्रजाकामः) प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा वाला (ह) प्रसिद्ध (सः) वह (प्रजापतिः) प्राणियों का रक्षक परब्रह्म परमात्मा (तपः) स्रष्टव्यालोचनरूप तप को (अतप्यत) किया (सः) वह परब्रह्म परमात्मा (तपः) स्रष्टव्यालोचनरूप तप को (च) कर के (रयिम्) प्रकृति को (च) और (प्राणम्) पुरुष – जीव को (च) भी (इति) इस प्रकार के (मिथुनम्) जोड़े को (उत्पादयते) उत्पन्न किया (इति) ऐसा समझकर कि—(एतौ) ये दोनों प्रकृति पुरुष (मे) प्रजा उत्पन्न करने की इच्छावाले मेरे अर्थ (बहुधा) अनेक प्रकार के (प्रजाः) प्राणियों को (करिष्यतः) उत्पन्न करेंगे ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—वह प्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता पिप्पलाद महर्षि उस उपसन्न प्रशान्त कबन्धी ऋषि से बोला—हे कात्यायन प्रजाओं की रचना की इच्छा वाला

प्रसिद्ध प्राणियों का रक्षक उस परब्रह्म नारायण ने स्रष्टव्य चराचर के आलोचनरूप तप को किया। इसके बाद ये दोनों जोड़ा प्रकृति पुरुष अनेक प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न करेंगे ऐसा विचार कर अपने सत्यसंकल्प से जोड़ा प्रकृति पुरुष को उत्पन्न किया। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि 'प्रजापति' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण कैसे होता है? इसका उत्तर यह लिखा है—

'प्रजापतिश्चरति गर्भे।'

(यजुर्वे० अ० ३१ मं० १९)

प्रजाओं का रक्षक परब्रह्म नारायण गर्भ में चलता है ॥ १९ ॥

'प्रजापतिस्त्वम्।'

(गी० अ० ११ श्लो० ३९)

आप प्रजापति हैं ॥ ३९ ॥

'ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।'

(महाभार० अनुशासनप० विष्णुस० स्तो० श्लो० २१)

ज्येष्ठ १, श्रेष्ठ २, प्रजापति ३ ये विष्णु भगवान् के नाम हैं ॥ २१ ॥ इन श्रुति, स्मृति और इतिहास के प्रमाणों से 'प्रजापति' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है ॥ ४ ॥

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः। रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय कर के (आदित्यः) जो भोजन करता है वह भोक्ता—पुरुष (प्राणः) प्राण है और (एव) निश्चय कर के (चन्द्रमाः) भोग्यवस्तु—प्रकृति (रयिः) रयि है (यत्) जो (मूर्तम्) आकारवाला पृथ्वी जल, और तेज (च) और (अमूर्तम्) जो रूपरहित (च) भी वायु तथा आकाश है (एतत्) यह (सर्वम्) सब कुछ (वै) निश्चय कर के (रयिः) अन्न—भोग्य है (तस्मात्) उस कारण से (एव) निश्चय कर के (मूर्तिः) पाञ्चभौतिक शरीर सब स्थूल (रयिः) रयि है अर्थात् अन्न—भोग्य है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—'आदत्ते' इति 'आदित्यः' जो अन्नादिक को ग्रहण करता है उसको आदित्य कहते हैं। निश्चय कर के प्रसिद्ध वह आदित्य—यानी भोक्ता-पुरुष ही प्राण है और चन्द्रमा —यानी भोग्यवस्तु रयि है और जो मूर्त पृथ्वी १,

जल २, तेज ३ तथा अमूर्त वायु १, आकाश २, है यह सब रयि यानी अन्न—भोग्य वस्तु है। उस कारण से पाञ्चभौतिक शरीर सब स्थूल रयि—यानी भोग्य है। इस श्रुति से स्पष्ट रयि का निरूपण किया गया है ॥ ५ ॥

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति
तेन प्राच्यान्प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।
यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं
यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो
यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान्
प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(अथ) रयि—यानी भोग्य के निरूपण के अनन्तर (आदित्यः) आदित्य—यानि भोक्ता यह जीव (उदयन्) सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ (यत्) जो (प्राचीम्) पूर्व (दिशम्) दिशा को और (यत्) जो (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा को और (यत्) जो (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को तथा (यत्) जो (उदीचीम्) उत्तर दिशा को और (यत्) जो (अधः) नीचे को तथा (यत्) जो (ऊर्ध्वम्) ऊपर को और (यत्) जो (अन्तरा—दिशः) बीच या कोण की दिशाओं को (यत्) जो (सर्वम्) सबको (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (तेन) उस कारण से (सर्वान्) समस्त तत्तत् दिग्वर्ती (प्राणान्) प्राणशब्दित इन्द्रियों को (रश्मिषु) धर्मभूत ज्ञानाख्य रश्मि में (संनिधत्ते) धारण करता है और पूर्व दिशा को (प्रविशति) प्रवेश करता है अर्थात् प्रकाशित करता है (तेन) उस कारण से (प्राच्यान्) पूर्वदिग्वर्ती (प्राणान्) प्राणशब्दित इन्द्रियों को (रश्मिषु) धर्मभूत ज्ञान रश्मि में (संनिधत्ते) धारण करता है ॥६॥

विशेषार्थ—रयि यानी भोग्य निरूपण के अनन्तर आदित्य यानी भोक्ता का निरूपण किया जाता है। यह भोक्ता जीवात्मा सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो पूर्व दिशा को प्रकाशित करता है उस कारण से पूर्वदिग्वर्ती प्राणशब्दित इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानाख्य रश्मि में धारण करता है और भोक्ता यह जीव सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो दक्षिण दिशा को प्रकाशित करता है उस कारण से दक्षिणदिग्वर्ती प्राणशब्दित इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानाख्य रश्मि में धारण करता है तथा भोक्ता जीव सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो पश्चिम

दिशा को प्रकाशित करता है उस कारण से पश्चिमदिग्वर्ती प्राणशब्दित इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानाख्यरश्मि में धारण करता है और यह भोक्ता सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो उत्तर दिशा को प्रकाशित करता है उस कारण से उत्तरदिग्वर्ती प्राणाशब्दित इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानारण्यरश्मि में धारण करता है और यह भोक्ता सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो नीचे को प्रकाशित करता है उस कारण से नीचे की इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानाख्यरश्मि में धारण करता है और यह भोक्ता जीव सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो ऊपर को प्रकाशित करता है उस कारण से ऊपर के प्राणशब्दित समस्त इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानाख्यरश्मि में धारण करता है और यह भोक्ता जीव सुषुप्तिस्थान से प्रबुध्यमान होता हुआ जो समस्त कोणों को प्रकाशित करता है उस कारण से समस्तकोणवर्ती प्राणशब्दित इन्द्रियों को धर्मभूत ज्ञानाख्यरश्मि में धारण करता है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि प्रजा सिसृक्षु परमात्मा ने प्रकृति और पुरुष को बनाया, ऐसा स्पष्ट इस उपनिषद् में क्यों नहीं कहा गया ? इस से विपरीत रयि और प्राण को बनाया ऐसा कहकर रयि चन्द्रमा है और प्राण आदित्य है इस प्रकार के उपदेश देकर सिद्ध किया गया कि परमात्मा ने प्रकृति और पुरुष को बनाया। इसका उत्तर यह है—

'परोक्षप्रिया इव हि देवाः।'

(ऐतरेयो० अध्याय १ खं० ३ श्रु० १४)

क्योंकि देवगण परोक्ष से प्रेम करनेवाले ही होते है ॥ १४ ॥ इस नियमानुसार रहस्य अर्थ का स्फुटतर उपदेश देना योग्य नहीं है इस बात की सूचना करने के लिए शास्त्रानुसार 'प्रश्नोपनिषद्' में स्पष्ट नहीं कहा गया है ॥६॥

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ।
तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

विशेषार्थ | (वैश्वानरः) समस्त नरों के नेता—वैश्वानरशब्दवाच्य (विश्वरूपः) सर्वशरीरतया सकलप्रपञ्चस्वरूप (अग्निः) अग्रनेता अग्निस्वरूप (सः) वह (एषः) यह प्रजाओं का रक्षक परमात्मा (प्राणः) भोक्ता होता हुआ (उदयते) उदित यानी प्रकाशित होता है (तत्) सो (एतत्) यह ब्रह्म को अभिमुख कर के (ऋचा) मंत्र के द्वारा (अभ्युक्तम्) आगे विशेष से कहा गया है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—समस्त नरों के नेता होने से वैश्वानर शब्दवाच्य। क्योंकि लिखा है—

'आत्मानं वैश्वानरमुपास्ते।'

(छा० उ० अ० ५ खं० १८ श्रु० १)

जो वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है ॥ १ ॥

'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तो पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥'

(गी० अ० १५ श्लो० १४)

मैं प्राणियों के देह में रहनेवाला वैश्वानर होकर और प्राण अपान के साथ युक्त हो कर चार प्रकार के भोजन को पचाता हूँ। सर्वशरीरतया विश्वरूपशब्दित क्योंकि लिखा है—

'पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।'

(गी० अ० ११ श्लो० १६)

हे विश्वेश्वर विश्वरूप मैं देखता हूँ ॥ १ ॥ यहाँ पर स्पष्ट विश्वरूप भगवान् को स्मृति कहती है। अग्रनेता होने से अग्निशब्दित। क्योंकि लिखा है—

'अग्रं नयति।'

(निरुक्तदैवतकां० ३ अ० ७ खं० १४)

आगे प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

'तदेवाग्निः।'

[श्वे० उ० अ० ४ श्रु० २]

वह परब्रह्म ही अग्नि है ॥ २ ॥

'अहमग्निः।'

[गी० अ० ९ श्लो० १६]

मैं अग्नि हूँ ॥ १६ ॥ वह यह

'प्रजाकामो ह वै प्रजापतिः।'

(प्रश्नो० प्रश्न० १ श्रु० ४)

इस श्रुति में प्रजापति शब्द से निर्दिष्ट परब्रह्म—परमात्मा

'आदित्यो ह वै प्राणः।'

(प्रश्नोप० प्रश्न १ श्रु० ५)

इस श्रुति में प्राणशब्दित भोक्ता होता हुआ प्रकाशित होता है। वही यह बात परब्रह्म को अभिमुख कर के अगली ऋचा द्वारा समझायी गयी है।

श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजाचार्य ने

'वैश्वानरस्साधारणशब्दविशेषात् ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २५)

के श्रीभाष्य में और

'शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्न तथा दृष्ट्युपदेशादसम्भवात्पुरुषमपि चैनमधीयते ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २७)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के प्रथम प्रश्न की सातवीं श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है ॥ ७ ॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं
परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(विश्वरूपम्) संपूर्ण रूपों के केन्द्र या सर्वशरीरवाले (जातवेदसम्) सब ज्ञानों के उत्पादक (परायणम्) परम प्राप्य (ज्योतिः) सर्वप्रकाशक (एकम्) अद्वितीय (तपन्तम्) जठराग्निरूप से तपते हुए (हरिणम्) हरि यानी परब्रह्म नारायण को (वर्तमानः) अनुवर्तमान अर्थात् परमात्मा के शरीरभूत (सहस्ररश्मिः) अनेक प्रकार के विषयों का ज्ञानवाला (प्रजानाम्) स्थावरजङ्गमात्मक समस्त प्राणियों का (प्राणः) जीवनदाता—धारक (सूर्यः) सूर्य के समान प्रकाशक (एषः) यह जीवात्मा (शतधा) देव, मनुष्य, पशु, खग आदिक सैकड़ों प्रकार से देहात्माभिमानशाली होने से (उदयति) सुषुप्तिस्थान से उदय होता है अर्थात् प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—समस्तरूपों के केन्द्र या सर्वशरीरवाले । क्योंकि लिखा है—

'यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम् ।'

(बृह० उ० अ० ३ ब्राह्म० ८ श्रु० १५)

जिस के सब भूत शरीर हैं ॥ १५ ॥

'सर्वभूतान्तरात्मापहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः ।'

(सुबालो० खं० ७)

सब भूतों की अन्तरात्मा पापरहित दिव्य देव एक नारायण हैं ॥ ७ ।'

'जगत्सर्वं शरीरं ते ।'

(वाल्मीकिरामा० युद्धका० ६ सर्ग० १२१)

समस्त जगत् आपका शरीर है ॥ १२१ ॥ और सब ज्ञानों के उत्पादक क्योंकि लिखा है—

'प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ।'

(श्वे० उ० अ० ४ श्रु० १८)

उसी परमात्मा से यह पुराना ज्ञान फैला हुआ है ॥ १८ ॥ और सर्वाधार परमप्राप्य सर्वप्रकाशक अद्वितीय जठराग्निरूप से तपते हुए । क्योंकि लिखा है—

'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥'

(गी० अ० १५ श्लो० १४)

मैं प्राणियों के देह में रहनेवाला वैश्वानर होकर और प्राण अपान के साथ युक्त होकर चार प्रकार के भोजन को पचाता हूँ ॥ १४ ॥ उस परब्रह्म परमात्मा के शरीरभूत हजारों विषयों का ज्ञानवाला स्थावरजंगमात्मा समस्त प्राणियों का जीवन दाता—धारक सूर्य के समान प्रकाशक यह जीवात्मा देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक सैकड़ों प्रकार से देहात्माभिमानशाली होने से सुषुप्ति स्थान से प्रकाशित होता है । जीवात्मा भी परमात्मा का शरीर है, क्योंकि शतपथब्राह्मण में लिखा है—

'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम् ।'

(शत० ब्रा० १४।६।७।३१)

जो परमात्मा जीवात्मा के भीतर रहता है परन्तु जीवात्मा उसको नहीं जानती है, जीवात्मा जिस परमात्मा का शरीर है ॥३१॥ उसीका इस श्रुति में वर्णन है।८।

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च । तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । एष वै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(संवत्सरः) संवत्सर बारह महीनोंवाला काल (वै)

निश्चय कर के (प्रजापतिः) प्राणियों का रक्षक परमात्मा है (तस्य) उस संवत्सर नामवाले प्रजापति के (दक्षिणम्) एक दक्षिण (च) और (उत्तरम्) दूसरा उत्तर (च) भी (अयने) सूर्य की गति के आधारभूत दो मार्ग हैं (तत्) वहाँ मनुष्यों में (ये) जो लोग (ह) प्रसिद्ध है (वै) निश्चय कर के (तत्) उन (इष्टापूर्ते) इष्ट यानी यज्ञादि और पूर्त यानी वापी, कूप, तड़ागादि की तथा (कृतम्) दान कर्म की (इति) इस प्रकार (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे लोग (चान्द्रमसम्) चन्द्रमा संबन्धी (लोकम्) लोकको (एव) निश्चय कर के (अभिजयन्ते) प्राप्त होते हैं (ते) वे लोग (एव) निश्चय करके (पुनः) फिर भी (आवर्तन्ते) वहाँ से लौटकर आते हैं (तस्मात्) उस कारण से (एके) एक केवल कर्मठ (प्रजाकामाः) सन्तान स्वर्गादिलक्षण क्षुद्रफल की इच्छावाले (ऋषयः) क्षुद्रफलद्रष्टा ऋषि (दक्षिणम्) दक्षिणमार्ग को प्रतिपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (एषः) यह (पितृयाणः) पितृयान नामक मार्ग (वै) निश्चय कर के (रयिः) अन्नप्रधान—वैषयिक भोगात्मक रयि है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—बारह महीनों का संवत्सररूप काल ही मानो प्रजापति का स्वरूप है। क्योंकि लिखा है—

'स ऐक्षत प्रजापतिः इमं वा आत्मनः प्रतिमामसृक्षि यत्संवत्सर-मिति तस्मादाहुः प्रजापतिः संवत्सर इत्यात्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत यद्वेव चतुरक्षरः संवत्सरश्चतुरक्षरः प्रजापतिस्तेनो हैवास्यैष प्रतिमा।'

(शतप० ब्रा० ११।१।६।१३)

प्रजापति ने इच्छा की कि मैं अपनी प्रतिमा को बनाऊँ तब अपनी प्रतिमा संवत्सर नामको उत्पन्न किया इसी कारण कहते हैं कि प्रजापति संवत्सर है देखो संवत्सर में चार अक्षर हैं और प्रजापति में भी चार अक्षर हैं इसी कारण से संवत्सर प्रजापति की प्रतिमा है ॥ १३ ॥ संवत्सररूप प्रजापति के दो अयन हैं। एक दक्षिण और दूसरा उत्तर। दक्षिणायन के जो छः महीने हैं, जिनमें सूर्य दक्षिण की ओर घूमता है ये मानो इसके दक्षिण अङ्ग हैं और उत्तरायण के छः महिने ही इसके उत्तर अङ्ग हैं। क्योंकि लिखा है—

'षण्मासा उत्तरायणम्।'

(गी० अ० ८ श्लो० २४)

षण्मासा दक्षिणायनम् ॥ २५ ॥'

छः महीने उत्तरायण ॥ २४ ॥ और छः महीने दक्षिणायन ॥ २५ ॥

'द्वौ द्वौ मार्गादिमासौ स्यादृतुस्तैरयनं त्रिभिः ।
अयने द्वे गतिरुदग्दक्षिणार्कस्य वत्सरः ॥'

(अमरको० कां० १ वर्ग० ४ श्लो० १३)

दो दो अगहन आदिक मास ऋतु कहे जाते हैं और उन्हीं तीन ऋतुओं का अयन होता है और वह अयन दो प्रकार का होता है एक सूर्य की उत्तरगति उत्तरायण और दूसरी सूर्य की दक्षिणगति दक्षिणायन है और वही दो अयन मिलकर वत्सर यानी वर्षा होता है ॥ १३ ॥ मकर की संक्रान्ति से लेकर छः महीना उत्तरायण कहा जाता है और कर्क की संक्रान्ति से लेकर छः महीना दक्षिणायन कहा जाता है । जो लोग प्रसिद्ध यज्ञादि को तथा वापी, कूप, तडागादि को और दानादि को कर्तव्य समझ कर सर्वदा सकाम करते रहते हैं । इस के प्रभाव से वे चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं । और वहाँ वे अपने कर्मों का फल भोगकर पुनः वहाँ से इस लोक में लौट आते हैं । क्योंकि लिखा है—

'ये इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ।'

(छा० उ० अ० ५ खं० १० श्रु० ३)

जो यहाँ ग्रामों में रहकर इष्ट, पूर्त और दानादि सकाम कर्म करते हैं ॥३॥

'पुनर्निवर्तन्ते ।'

(छा० उ० अ० ५ खं० १० श्रु० ५)

वे फिर से यहाँ लौट आते हैं ॥ ५ ॥ उस कारण से एक कोई केवल कर्म-काण्ड में निरत सन्तान स्वर्गादिलक्षण क्षुद्रफलकी इच्छावाले क्षुद्रफलद्रष्टा ऋषि दक्षिण मार्ग को प्राप्त होते हैं । यही पितृयान मार्ग है और निश्चय कर के यही अन्नप्रधान वैषयिक भोगात्मक रयि है । अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि इष्ट और पूर्त किसको कहते हैं । इसका उत्तर धर्मशास्त्र में लिखा है —

'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामुपलम्भनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ १ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥' २ ॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य भाषण, वेदपाठ, अतिथिसत्कार और वैश्वदेव कर्म इष्ट कहलाता है ॥ १ ॥ बावड़ी, कूप, तालाब, देवमन्दिर निर्माण, अन्नदान और बगीचा लगाना यह कर्म पूर्त कहलाता है ॥ २ ॥ इन पूर्वोक्त वस्तुओं को इष्टापूर्त कहते हैं ॥ ९ ॥

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—(अथ) और दूसरे विरक्त (तपसा) कायक्लेशादिलक्षण तप कर के (ब्रह्मचर्येण) स्त्रीसङ्गराहित्यलक्षण ब्रह्मचर्य कर के (श्रद्धया) आस्तिक्यबुद्धिलक्षणा श्रद्धा कर के और (विद्यया) प्रत्यगात्मविद्या कर के (आत्मानम्) परमात्मा को (अन्विष्य) उपासना कर के (उत्तरेण) अर्चिरादि उत्तरायण मार्ग से (आदित्यम्) सूर्य को (अभिजयन्ते) प्राप्त करते हैं (एतत्) यह परब्रह्म (वै) निश्चय कर के (प्राणानाम्) प्राणियों का (आयतनम्) आधारभूत है (एतत्) यह परब्रह्म (अमृतम्) निरुपाधिक अमृत है और यह परब्रह्म (अभयम्) निर्भय है (एतत्) यह परब्रह्म (परायणम्) परम प्राप्य है (एतस्मात्) इस परब्रह्म के यहाँ से (पुनः) फिर (न) नहीं (आवर्तन्ते) उपासक लौटकर आते हैं (इति) इस प्रकार (एषः) यह प्रजापति (निरोधः) पुनरावृत्ति का निवारक है (तत्) उस संवत्सरस्वरूप प्रजापति के विषय में (एषः) वह वक्ष्यमाण अगला (श्लोकः) श्लोक है ॥ १० ॥

विशेषार्थ—कल्याणकामी दूसरे मन्त्रद्रष्टा ऋषि कायक्लेशादि लक्षण तपस्या कर के तथा स्त्रीसङ्गराहित्यलक्षण ब्रह्मचर्य कर के और आस्तिक्यबुद्धिलक्षणा श्रद्धा कर के तथा प्रत्यगात्मविद्या कर के परमात्मा को उपासना कर के अर्चिरादि उत्तरायण मार्ग से आदित्य को प्राप्त करते हैं । क्योंकि लिखा है—

'तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङेति मासाँस्तान् ।'

(छा० उ० अ० ५ खं० १० श्रु० १)

'मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति।'२।

वे जो इस प्रकार जानते हैं तथा वे जो वन में श्रद्धा और तप इनकी उपासना करते हैं वे अर्चि को प्राप्त होते हैं अर्चि से दिन को दिन से शुक्लपक्ष को शुक्लपक्ष से जिन छः महीनों में सूर्य उत्तर की ओर आता है उन छः महीनों को ॥१॥ और उन महीनों से संवत्सरको संवत्सर से आदित्य को आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं। वहां एक अमानव पुरुष है वह उन्हें ब्रह्म को प्राप्त करा देता है। यही देवयान मार्ग है ॥२॥ परब्रह्म परमात्मा ही सब प्राणधारियों का आधारभूत है। तथा यह परब्रह्म ही निरुपाधिक अमृत है और यह परब्रह्म ही निर्भय पद है। तथा यह परब्रह्म ही परम प्राप्य है। प्राण के विषय में 'कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्' में लिखा है—

'तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिता एष प्राण एव प्रज्ञात्मानन्दोऽजरोऽमृतः।'

(कौषी० ब्रा० उ० अध्या० ३ श्रु० ६)

जैसे रथ की नेमि अरों में और अरे रथ की नाभि के आश्रित हैं, इसी प्रकार ये भूतमात्रायें प्रज्ञामात्राओं में स्थित हैं। और प्रज्ञामात्रायें प्राण में प्रतिष्ठित हैं। वह यह प्राण ही प्रज्ञात्मा, आनन्दमय, अजर और निरुपाधिक अमृत है ॥ ६ ॥ भगवदुपासक उस परब्रह्म परमात्मा को पाकर फिर वहाँ से लौटकर मृत्यु लोक में नहीं आते हैं। क्योंकि लिखा है—

'इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते।'

(छा० उ० अ० ४ खं० १५ श्रु० ६)

इस मनुष्य लोक में लौटकर नहीं आते हैं ॥ ६ ॥

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।'

(गी० अ० ८ श्लो० १६)

हे कुन्तीपुत्र मुझे पा लेने के बाद पुनःजन्म नहीं होता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार यह प्रजाओं का रक्षक परमात्मा ही पुनरावृत्ति का निवारक है। उस संवत्सरस्वरूप प्रजापति के विषय में यह वक्ष्यमाण अगला ग्यारहवाँ श्लोक यानी श्रुति है। यतिपति भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषानुग्रहश्च।'

(शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० ३८)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के प्रथम प्रश्न की दशवीं श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है ॥ १० ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं
सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥११॥

अन्वयार्थ—काल के वेत्ता लोग उस संवत्सरस्वरूप प्रजापति को (पञ्चपादम्) वत्सर १, संवत्सर २, परिवत्सर ३, इडावत्सर ४ और अनुवत्सर ५ रूप पाँच चरणोंवाला या बसन्त १, ग्रीष्म २, वर्षा ३, शरद् ४ और हेमन्त तथा शिशिर को एक मानकर यह ५ ये ऋतु रूप पाँच चरणोंवाला (पितरम्) सबका जनक (द्वादशाकृतिम्) वैशाख १, ज्येष्ठ २, आषाढ ३, श्रावण ४, भादो ५, आश्विन ६, कार्तिक ७, अगहन ८, पौष ६, माघ १०, फाल्गुन ११, और चैत्र १२ रूप बारह महीने की आकृतिवाला (दिवः) स्वर्ग लोक से (परे) पर (अर्धे) स्थान में (पुरीषिणम्) स्वर्गभूमिसंनिहित ब्रह्माण्डगोलकावरणरूप स्थानवाला या जल की वर्षा करनेवाला (आहुः) कहते हैं (अथ) और (उ) निश्चय कर के (अन्ये) पूर्वोक्त कालवेत्ताओं से दूसरे (परे) उत्कृष्ट (इमे) ये कालतत्त्ववेत्ता लोग (सप्तचक्रे) सूर्य १, चन्द्र २, मङ्गल ३, बुध ४, बृहस्पति ५, शुक्र ६ और शनैश्चर ७ ग्रहरूप सातचक्रवाले या भूर्लोक १, भुवर्लोक २, स्वर्लोक ३, महर्लोक ४, जनलोक ५, तपोलोक ६, सत्यलोक ७ रूप सात पहियोंवाले और (षडरे) हेमन्त १, शिशिर २, वसन्त ३, ग्रीष्म ४, वर्षा ५ और शरद् ६ ऋतुरूप छःअरेवाले संवत्सर नाम के रथ में (विचक्षणम्) कुशल जैसे निश्चल होता है (अर्पितम्) वैसे ही समस्त जगत् समर्पित—स्थित है ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥११॥

विशेषार्थ—काल के वेत्ता लोग उस संवत्सरस्वरूप प्रजापति को वत्सर १, संवत्सर २, परिवत्सर ३, इडावत्सर ४ और अनुवत्सर ५ पाँच चरणोंवाला या वसन्त १, ग्रीष्म २, वर्षा ३, शरद् ४ और हेमन्त तथा शिशिर को एक मानकर यह एक ऋतु ५ ये ऋतुरूप पाँच चरणोंवाला सबका पिता और वैशाख १, ज्येष्ठ २ आषाढ ३, श्रावण ४, भाद्रपद ५, आश्विन ६, कार्तिक ७, अगहन ८, पौष ६, माघ १०, फाल्गुन ११ और चैत्र १२ रूप बारह महीने की आकृतिवाला स्वर्ग लोक से परस्थान में स्वर्गभूमिसंहित ब्रह्माण्डगोलकावरणरूप स्थानवाला या जल की वर्षा करनेवाला कहते हैं और निश्चय कर के पूर्वोक्त कालवेत्ताओं से दूसरे उत्कृष्ट ये कालतत्त्ववेत्ता लोग सूर्य १, चन्द्र २, मङ्गल ३ बुध ४, बृहस्पति ५,

शुक्र ६ और शनैश्चर ७ ग्रहरूप सातचक्रवाले या भूर्लोक १, भुवर्लोक २, स्वर्लोक ३, महर्लोक ४, जनलोक ५, तपोलोक ६ और सत्यलोक ७ रूप सात पहियोंवाले और हेमन्त १, शिशिर २, वसन्त ३, ग्रीष्म ४, वर्षा ५ तथा शरद् ६ ऋतुरूप छः अरेवाले संवत्सर नाम के रथ में समस्त जगत् कुशल जैसे निश्चय होता है वैसे ही समर्पित —स्थित है ऐसा कहते हैं। इस श्रुति में संवत्सररूप प्रजापति का वर्णन उपासना के लिये किया गया है ॥ ११ ॥

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष
एव रयिः शुक्लपक्षः प्राणः ।
तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं
कुर्वन्ति इतर इतरस्मिन् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(मासः) महीना (वै) निश्चय कर के (प्रजापतिः) प्रजापति है (तस्य) उस मासरूप प्रजापति के (कृष्णपक्षः) कृष्णपक्ष (एव) निश्चय कर के (रयिः) रयि यानी अन्न—भोग्य है और (शुक्लपक्षः) शुक्लपक्ष (प्राणः) प्राण यानी भोक्ता—पुरुष है (तस्मात्) उस कारण से (एते) ये (ऋषयः) अतीन्द्रिय अर्थद्रष्टा ऋषि (शुक्ले) शुक्लपक्ष में (इष्टम्) यज्ञादि-शुभ कर्म को (कुर्वन्ति) करते हैं (इतरे) दूसरे अज्ञानी (इतरस्मिन्) दूसरे कृष्णपक्ष में सकाम कर्म करते हैं ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—निश्चय कर के मासस्वरूप प्रजाओं का रक्षक परब्रह्म परमात्मा है। उस मासस्वरूप प्रजापति के कृष्णपक्ष ही रयि यानी अन्न—भोग्य है और मासस्वरूप प्रजापति के शुक्लपक्ष ही प्राण यानी भोक्ता है। शुक्लपक्ष प्राण होने से उत्कृष्ट है इसलिये अतीन्द्रिय अर्थद्रष्टा ज्ञानी महानुभाव शुक्लपक्ष में यज्ञादि शुभ कर्मों को करते हैं और दूसरे अज्ञानी पुरुष कृष्णपक्ष में सकाम कर्म करते हैं। पक्ष और मास के विषय में लिखा है—

'ते तु त्रिंशदहोरात्रः पक्षस्ते दश पञ्च च ।
पक्षौ पूर्वापरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावुभौ ॥'

(अमरको० कां० १ वर्ग० ४ श्लो० १२)

वे मुहूर्त तीस मिलकर अहोरात्रसंज्ञक हैं और वे अहोरात्र पन्द्रह मिलकर पक्षसंज्ञक हैं और वह पक्ष दो प्रकार का है शुक्ल तथा कृष्ण। इन में मास का पूर्वपक्ष शुक्लसंज्ञक है और अपर पक्ष कृष्णसंज्ञक है और वे दो पक्ष मिलकर

माससंज्ञक हैं ॥ १२ ॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि इष्ट किसको कहते हैं। इसका उत्तर यह लिखा है—

'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामुपलम्भनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥'

(स्मृति०)

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य भाषण, वेदपाठ, अतिथिसत्कार और वैश्वदेव कर्म इष्ट कहाता है। इस श्रुति में मासरूप प्रजापति का उपासना के लिये वर्णन किया गया है ॥ १२ ॥

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः । प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संप्रयुज्यन्ते । ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ—(अहोरात्रः) दिन और रात का जोड़ा (वै) निश्चय कर के (प्रजापतिः) प्राणियों का रक्षक परमात्मा है (तस्य) उस दिनरातस्वरूप प्रजापति के (अहः) दिन (एव) निश्चय कर के (प्राणः) प्राण यानी भोक्ता—पुरुष है और (रात्रिः) रात (एव) निश्चय कर के (रयिः) रयि यानी अन्न—भोग्य है इससे (ये) जो लोग (दिवा) दिन में (रत्या) स्त्रीसहवासरूप रति कर के (संप्रयुज्यन्ते) संयुक्त होते हैं (एते) ये लोग (वै) निश्चय कर के (प्राणम्) अपने प्राण को (प्रस्कन्दन्ति) प्रकर्षरूप से नाश कर देते हैं और (यत्) जो गृहस्थ मनुष्य (रात्रौ) रात में (रत्या) अपनी भार्या के सहवासरूप रति कर के (संयुज्यन्ते) संयुक्त होते हैं (तत्) वह (एव) निश्चय करके (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य है ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में अहोरात्रस्वरूप प्रजापति का वर्णन उपासना के लिये किया गया है कि दिनरातस्वरूप प्राणियों का रक्षक परमात्मा ही है। उस दिनरातस्वरूप प्रजापति का दिन ही प्राण यानी भोक्ता है और रात ही रयि यानी अन्न—भोग्य है। जो मूर्ख पुरुष दिन में स्त्री के साथ मैथुनरूप रति करते हैं वे मूर्ख निश्चय करके अपने प्राण को प्रकर्षरूप से नाश कर देते हैं। अतः दिन में स्त्रीसहवास नहीं करना चाहिये और जो गृहस्थ।

'ऋतौ भार्यामुपेयात् ।'

इस श्रुति के अनुसार ऋतुकाल में रात्रि के समय नियमानुकूल अपनी

भार्या के सहवासरूप रति को करते हैं, वह तो शास्त्र की आज्ञा का पालन करने के कारण से उनका ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि लिखा है—

'कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम्।
ऋतौ भार्यां तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते॥'

(जाबालद० उ० खं० १ श्रु० १३)

' मन, वाणी और शरीर के द्वारा परस्त्रियों के सहवास का परित्याग और ऋतुकाल में धर्मबुद्धि से केवल अपनी ही पत्नी से विषयभोग करना यही ब्रह्मचर्य कहा जाता है॥ १३॥ मनुस्मृति में लिखा है—

'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥'

(मनु० अ० ३ श्लो० ५)

जो कन्या माता की छः पीढ़ियों में न हो और विवाह करनेवाले के पिता के गोत्र की न हो उससे ही द्विजातियों का विवाह करना चाहिए और वही स्त्री मैथुन में प्रशस्त है॥ ५॥

'तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तथा।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्तास्तत्र रात्रयः॥'

(मनु० अ० ३ श्लो० ४५)

'अमावस्याष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्दशी।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः॥'४७॥

रजोदर्शन से लेकर सोलह दिनों तक स्वभाविक ऋतुकाल कहलाता है इनमें पहली चार रात्रियाँ और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रात्रियाँ सर्वथा वर्जित है और शेष रात्रियाँ मैथुन कर्म में प्रशस्त हैं॥ ४५॥ और शेष दश रात्रियों में पर्व—एकादशी, अमावस्या, अष्टमी, पौर्णमासी और चतुर्दशी—तिथि को छोड़कर पत्नी की रतिकामना से जो स्नातक—गृहस्थ द्विज अपनी स्त्री से मैथुन करता है वह गृहस्थाश्रम में रहता हुआ नित्य ब्रह्मचारी है॥ ४७॥

'अथर्त्तुमतीं जायामभिगच्छेत्।'

(पारस्करगृह्य सू० १३)

ऋतुमती भार्या को प्राप्त करे।

'अथ गर्भाधानं स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वम्॥' १४॥

ऋतुमती स्त्री के रजोदर्शन से चार दिन के बाद गर्भाधान करे॥ १४॥

'ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥'
(सुश्रुत अ० १० श्लो० ४७)

'जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥' ४८ ॥

सोलह वर्ष से कम अवस्थावाली स्त्री में पचीस वर्ष से कम अवस्थावाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षि में प्राप्त हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ जो उत्पन्न हो तो चिरकाल तक न जीवे और जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इस कारण से अतिबाल्यावस्था में गर्भस्थापन न करे ॥ ४८ ॥

'ततः स्त्रियं सुस्नातां चतुर्थेऽहनि धौतवाससमलङ्कृतां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां भर्ता पश्येत् ।'

(धन्वन्तरि०)

चौथे दिन सुन्दर स्नान की हुई और स्वच्छ वस्त्र पहनी हुई सुन्दर अलंकृत और मङ्गल तथा स्वस्तिवाचन की हुई पत्नी को पति अवलोकन करे ॥

'कञ्चुकेन समं नारी भर्तुः सङ्गं समाचरेत् ।
त्रिभिर्वर्षैश्च मध्ये वा विधवा भवति ध्रुवम् ॥

(स्मृति०)

चोली पहनी हुई जो स्त्री पति से सङ्ग करती है वह तीन वर्ष के भीतर विधवा होती है ॥

'स्तोकां तु न स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्वलाम् ।
नातिबालां न कुपितामप्रशस्तां च गर्भिणीम् ॥'

(आह्निकसू० भाग० ६)

छोटी, रोगी, रजस्वला, अत्यन्तबाल्यावस्थावाली, खिसिआयी हुई, आचरण-भ्रष्ट और गर्भवाली स्त्री को रति के लिये कभी नहीं प्राप्त करे ॥ ८ ॥ इन नियमों के अनुसार रात में जो ऋतुमती अपनी स्त्री से मैथुन करते है वे ब्रह्मचारी ही हैं ॥ १३ ॥

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अन्नम्) अन्नस्वरूप (वै) निश्चय कर के (प्रजापतिः)

प्राणियों का रक्षक परमात्मा है (ततः) उस अन्नस्वरूप प्रजापति से (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय कर के (तत्) वह (रेतः) वीर्य होता है और (तस्मात्) उस रेतःस्वरूप प्रजापतिशब्दित परब्रह्म परमात्मा से (इति) इस प्रकार (इमाः) ये समस्त (प्रजाः) प्रजायें (प्रजायन्ते) उत्पन्न होती हैं ॥ १४ ॥

विशेषार्थ—तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

'अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ।'

(तैत्तिरीयो० आनन्दव० २ अनुवा० २)

प्राणियों करके खाया जाता है और प्राणियों को खाता है उस से वह अन्न कहा जाता है ॥ २ ॥ वह अन्नस्वरूप ही प्राणियों का रक्षक—प्रजापति है । अन्नस्वरूप प्रजापति से वीर्य होता है । क्योंकि लिखा है—

'अन्नाद्रेतः ।'

(तैत्ति० उ० व० २ अनुवा० १)

अन्न से वीर्य होता है और निश्चय कर के वीर्यस्वरूप प्रजापति से यह संपूर्ण प्रजा उत्पन्न होती है अर्थात् हे कात्यायन तूने पूछा था—

'कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्ते ।'

(प्रश्नो० प्रश्नो० १ श्रु० ३)

यह संपूर्ण प्रजा कहाँ से उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥ सो इसका उत्तर स्पष्ट यह है—

'तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्ते ।'

(प्रश्नो० प्रश्न० १ श्रु० १४)

प्रकृति, पुरुष, संवत्सर, मास, अहोरात्र, अन्न, वीर्य अवस्थारूप परब्रह्म परमात्मा से यह संपूर्ण प्रजा उत्पन्न होती है ॥१४॥

तद्ये ह वै प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते
मिथुनमुत्पादयन्ते तेषामेवैष लोकः ।
येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(तत्) उस कारण से (ये) जो लोग (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय कर के (प्रजापतिव्रतम्) पूर्व चौदहवीं श्रुति में प्रजापतिशब्दित अन्न के व्रत यानी भक्षण को (चरन्ति) करते हैं (ते) वे अन्नभक्षणशील ब्रह्मचर्यरहित संसारी लोग (मिथुनम्) पुत्री और पुत्र रूप जोड़े को (उत्पादयन्ते) उत्पन्न

करते हैं (तेषाम्) उन्हीं अन्नभक्षणशील ब्रह्मचर्य रहित प्रजापतिव्रतवालों के (एव) निश्चय कर के (एषः) यह पुत्र, पशु, अन्नादिलक्षण (लोकः) लोक होता है और (येषाम्) जिन मुमुक्षुओं में (तपः) शरीरशोषणरूप तपस्या और (ब्रह्मचर्यम्) सर्वदा मैथुनवर्जनरूप ब्रह्मचर्य है तथा (येषु) जिन मुमुक्षुओं में (सत्यम्) सत्य भाषण (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित यानी स्थित है यहाँ पर 'येषाम्' इत्यादि पदों का सम्बन्ध आगे की सोलहवीं श्रुति से है ।। १५ ।।

विशेषार्थ - इस कारण से जो लोग प्रसिद्ध निश्चय कर के

'अन्नं वै प्रजापतिः ।'

(प्रश्नो० प्रश्न० १ श्रु० १४)

इस श्रुति में प्रजापतिशब्दित अन्न के व्रत यानी भक्षण को करते हैं। वे अन्नभक्षणशील ब्रह्मचर्यरहित संसारी लोग पुत्र और पुत्री रूप जोड़ों को उत्पन्न करते हैं। उन्हीं अन्नभक्षणशील ब्रह्मचर्यरहित प्रजापतिव्रतवालों को निश्चय कर के यह पुत्र, पशु, अन्न आदि लक्षण लोक प्राप्त होता है। यहाँ तक भगवदुपासनारहित पुरुषों की दुर्दशा जन्म-मरण-चक्र का श्रुति ने वर्णन किया है और 'येषाम्' इत्यादि पदों से मुमुक्षुओं को मिलनेवाले पद को वर्णन किया है। 'येषाम्' इत्यादि पदों का अन्वय आगे की सोलहवीं श्रुति के साथ जानना चाहिये। जो प्रजापतिव्रतवालों से भिन्न मुमुक्षु हैं। जिन मुमुक्षुओं में शरीरशोषणरूप तप तथा सर्वदा मैथुनवर्जनरूप ब्रह्मचर्य और सत्य वचन स्थित है, उन्हीं को वह परब्रह्म प्राप्त होता है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि सत्य किसको कहते हैं। इसका उत्तर यह लिखा है—

'चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर ।
तस्यैवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ।।'

(जाबालद० उ० खं० १ श्रु० ६)

हे मुनीश्वर ! नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा जो जिस रूप में देखा, सुना, सूँघा और समझा हुआ विषय है उसको उसी रूप में वाणी द्वारा प्रकट करना सत्य है। हे विप्र ! इसके सिवा सत्य का और कोई प्रकार नहीं है ।। ६ ।। श्रीमहापूर्ण स्वामी के कृपापात्र भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के प्रथम प्रश्न की पन्द्रहवीं श्रुति के 'तेषामेवैषः' इस खण्ड को उद्धृत किया है ।। १५ ।।

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको
न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥१६॥

इति प्रथमप्रश्नः

अन्वयार्थ—(येषु) जिन मुमुक्षुओं में (जिह्मम्) कुटिलता और (अनृतम्) भूतों के अहित वचनलक्षण असत्य भाषण (न) नहीं है (च) और (माया) माया—कपट (न) नहीं है (तेषाम्) उन्हीं मुमुक्षुओं को (असौ) वह (विरजः) निर्दोष (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक मिलता है (इति) इस प्रकार से प्रथम प्रतिवचन यहाँ पर समाप्त होता है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—जिन मुमुक्षुओं में शरीरशोषणरूप तप तथा सर्वदा मैथुनवर्जनरूप ब्रह्मचर्य और सत्य भाषण प्रतिष्ठित है और जिस प्रकार अनेकों विरुद्ध व्यवहाररूप प्रयोजनवाला होने से साधारण मनुष्य में कुटिलता होती है उस प्रकार जिन मुमुक्षुओं में कुटिलता नहीं है तथा जिस प्रकार साधारण मनुष्य में क्रीडादिनिमित्त से होनेवाला अनृत अनिवार्य है वैसे जिन मुमुक्षुओं में भूतों के अहित वचनलक्षण असत्य भाषण नहीं है। जिन मुमुक्षुओं में साधारण मनुष्य के समान माया यानी कपट नहीं है, उन मुमुक्षुओं को वह निर्दोष परब्रह्म परमात्मा मिलता है। यहाँ पर प्रतिवचन समाप्ति के लिये 'इति' शब्द का प्रयोग किया गया है। श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी के शिष्य भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के प्रथम प्रश्न की अन्तिम सोलहवीं श्रुति के

'विरजो ब्रह्मलोकः ।'

इस खण्ड को उद्धृत किया है। यहाँ पर 'प्रश्नोपनिषद्' का प्रथम प्रश्न समाप्त हो गया है ॥ १६ ॥

अथ द्वितीयप्रश्नः

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ ।
भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते ।
कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वलिष्ठ इति ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) कबन्धी ऋषि के प्रश्न के पश्चात् (ह) प्रसिद्ध (एनम्)

इस पिप्पलाद महर्षि से (वैदर्भिः) विदर्भ के पुत्र (भार्गवः) भृगुगोत्र में उत्पन्न होनेवाले ऋषि ने (पप्रच्छ) पूछा कि (भगवन्) हे भगवन्! (एव) निश्चय कर के (कति) कितने संख्यावाले (देवाः) देवता (प्रजाम्) स्थावर-जङ्गमरूप प्रजा को (विधारयन्ते) धारण करते हैं तथा (कतरे) इन देवताओं में से कौन कौन देवता (एतत्) इस शरीर को या शरीर के कार्य को (प्रकाशयन्ते) प्रकाशित करते हैं और (पुनः) फिर (एषाम्) इन सब देवताओं में (कः) कौन देवता (बलिष्ठः) सर्वश्रेष्ठ है (इति) यह मेरा प्रश्न है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—कबन्धी ऋषि के प्रश्न के उत्तर होने के बाद भृगुगोत्र में उत्पन्न होनेवाले विदर्भ के पुत्र वैदर्भि ऋषि ने नियमानुसार सविधि महर्षि पिप्पलाद के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। तदनन्तर श्रद्धा से विनयपूर्वक तीन प्रश्न किये कि हे भगवन् स्थावर-जङ्गमरूप प्रजा को धारण करनेवाले कुल कितने देवता हैं ? ॥१॥ तथा उन देवताओं में से कौन कौन देवता इस शरीर को प्रकाशित करनेवाले हैं ? ॥२॥ और इन सब देवताओं में अत्यन्त श्रेष्ठ देवता कौन हैं ? ३। देह, इन्द्रिय, मन और प्राणादि से विलक्षण प्रत्यगात्मा का संशोधन करने के लिए ये तीन प्रश्न किये गये हैं ॥ १ ॥

तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम इति ॥२॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) वह पिप्पलाद महर्षि (तस्मै) उस वैदर्भि ऋषि के अर्थ (उवाच) कहा कि (आकाशः) आकाश (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय कर के (एषः) यह (देवः) देवता है (वायुः) हवा (अग्निः) आग (आपः) जल (पृथिवी) पृथ्वी (वाक्) वाणी आदिक कर्मेन्द्रियाँ (च) और (चक्षुः) नेत्र तथा (श्रोत्रम्) कान आदिक ज्ञानेन्द्रियाँ और (मनः) मन—अन्तःकरण भी देवता हैं (ते) वे आकाशादिक सब (प्रकाश्य) पुरोवर्ती शरीर को प्रकाशित कर के (अभिवदन्ति) अभिमानपूर्वक कहने लगे कि (वयम्) हम सब (बाणम्) बाण के समान संचारशील (एतत्) इस पुरोवर्ती शरीर को (अवष्टभ्य) आश्रयदेकर (इति) इस प्रकार से (विधारयामः) धारण करते हैं ॥२॥

विशेषार्थ—इस प्रकार वैदर्भि ऋषि के पूछने पर वह प्रसिद्ध पिप्पलाद महर्षि वैदर्भि से स्पष्ट बोले कि हे भार्गव ! आकाश १, वायु २, अग्नि ३, जल ४, पृथ्वी ५, वाक् ६, पाणि ७, पाद ८, पायु ९, उपस्थ १०, श्रोत्र ११, नेत्र १२,

घ्राण १३, रसना १४, त्वचा १५, मन १६, बुद्धि १७, अहङ्कार १८ और चित्त १९ ये सब देवता एक समय पुरोवर्ती शरीर को प्रकाशित कर के अभिमानपूर्वक परस्पर कहने लगे कि हमने बाण के समान संचारशील इस पुरोवर्ती शरीर को आश्रय देकर धारण कर रखा है। वराहोपनिषद् में लिखा है--

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव श्रोत्रत्वग्लोचनादयः।'

(वराहोप० अध्याय० १ श्रु० २)

'कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव वाक्पाण्यङ्घ्र्यादयः क्रमात् ॥३॥ मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् ॥४॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥५॥ देहत्रयं स्थूलसूक्ष्मकारणानि विदुर्बुधाः ॥६॥

श्रोत्र १, नेत्र २, घ्राण ३, रसना ४, त्वचा ५ ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं ॥ २ ॥ वाक् १, पाणि २, पाद ३, पायु ४, उपस्थ ५ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ३ ॥ मन १, बुद्धि २, अहंकार ३, चित्त ४ ये चार अन्तःकरण हैं ॥ ४ ॥ पृथ्वी १, जल २, तेज ३, वायु ४ आकाश ५ ये पाँच महाभूत हैं ॥ ५ ॥ स्थूल १, सूक्ष्म २, कारण ३, ये तीन प्रकार के शरीर बुध जन कहते है ॥६॥ इस श्रुति में 'प्रजा को धारण करनेवाले कुल कितने देवता हैं इस प्रथम प्रश्न का पहले उत्तर दिया गया है कि पाँच भूत, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण ये उन्नीस देवता प्रजा को धारण करनेवाले हैं'' इस दूसरे प्रश्न का भी उत्तर इसी श्रुति में दिया गया है कि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण ये चौदह देवता इस शरीर को प्रकाशित करनेवाले हैं ॥ २ ॥

तान्वरिष्ठ प्राण उवाच। मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं विभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य धारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ॥३॥

अन्वयार्थ—(वरिष्ठः) सबसे श्रेष्ठ (प्राणः) प्राण ने (तान्) उन आकाश आदिक देवताओं को (उवाच) कहा कि (मोहम्) मोह को (मा) मत (आपद्यथ) तुम लोग प्राप्त होओ (अहम्) मैं (एव) निश्चय कर के (एतत्) इस (आत्मानम्) अपने स्वरूप को (पञ्चधा) प्राण १, अपान २, व्यान ३, समान ४, उदान ५ रूप से पाँच भागों में (विभज्य) विभक्त कर के (बाणम्) बाण के समान संचारशील (एतत्) इस पुरोवर्ती शरीर को (अवष्टभ्य) व्यापकर (धारयामि) धारण करता हूँ (इति) इस प्राण वाक्य में (ते) वे

आकाशादि देवता (अश्रद्दधानाः) विश्वासरहित (बभूवुः) हुए ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—तब—उस समय सर्वश्रेष्ठ प्राण ने उन उन्नीस देवताओं से कहा कि तुम लोग अज्ञानवश विवाद मत करो। तुम में से किसी में भी इस शरीर को धारण और प्रकाशित करने की शक्ति नहीं है। मैं ही अपने को प्राण १, अपान २ व्यान ३, समान ४ और उदान ५ रूप पाँच भागों में बाँटकर इस शरीर में व्याप्त होकर बाण के समान संचारशील इस शरीर को धारण करता हूँ और प्रकाशित भी मैं ही करता हूँ। प्राण के इस वाक्य को सुनकर भी मोह से पूर्वोक्त देवताओं ने विश्वास नहीं किया। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि मोह किसको कहते हैं। इसका उत्तर यह लिखा है—

'मोहः विपरीतज्ञानम्।'

(भगवद्गीता-रामानुजभाष्य अ० १८ श्लो० ७३)

विपरीत ज्ञान का नाम मोह है ॥७३॥ मोह से वे देवता सदुपदेश को नहीं ग्रहण किये ॥३॥

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव। तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिँस्तु प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा सवोत्क्रामन्ते। तस्मिंस्तु प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रतिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रीताः प्राणं स्तुवन्ति ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(सः) तब वह प्राण (अभिमानात्) देवताओं के गर्वको देखकर अहंकार के आवेश से (ऊर्ध्वम्) अपना सामर्थ्य प्रकट करने के लिये अपने स्थान से एक सौ आठ मर्मस्थानों के ऊपर को (उत्क्रमते) बाहर निकलते हुए के (इव) समान हुआ (तस्मिन्) उस मुख्य प्राण के (उत्क्रामति) बाहर निकलने पर (अथ) अनन्तर उसी के साथ ही साथ (इतरे) अन्य वागादि देवता (सर्वे) सब (एव) निश्चय कर के (उत्क्रामन्ते) शरीर से बाहर निकलने लगे (तु) और (तस्मिन्) शरीरपात के भय से उस मुख्य प्राण के (प्रतिष्ठमाने) स्थित रहने पर (सर्वे) सब वागादि देवता (एव) निश्चय कर के (प्रतिष्ठन्ते) स्थित रहते हैं (तत्) सः (यथा) जैसे (मधुकरराजानम्)

मधु के छत्ते से मधुमक्खियों के राजा के (उत्क्रामन्तम्) उड़ने पर उसी के साथ साथ (सर्वाः) सब (एव) ही (मक्षिकाः) मधुमक्खियाँ (उत्क्रमन्ते) उड़ जाती हैं (तु) और (तस्मिन्) उस मधुमक्खियों के राजा के (प्रतिष्ठमाने) बैठ जाने पर (सर्वाः) सब मधुमक्खियाँ (एव) निश्चय कर के प्रतिष्ठन्ते) बैठ जाती हैं (एवम्) ऐसे ही (वाक् वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ तथा (मनः) मन आदिक अन्तःकरण (चक्षु) नेत्र (च) और (श्रोत्रम्) कर्ण आदिक ज्ञानेन्द्रियों की दशा हुई। इस से (ते) वे सभी वागादि देवता (प्रीताः) प्राण की श्रेष्ठता का अनुभव कर के प्रसन्न होकर (प्राणम्) प्राण को (स्तुन्वन्ति) स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—यहाँ पर 'सब में श्रेष्ठ कौन है' इस तृतीय प्रश्न का उत्तर आख्यायिकारूप से पिप्पलाद महर्षि देते हैं कि हे भागव सब वागादि देवताओं के गर्व को देखकर अहंकार के आवेश से वह मुख्य प्राण अपना सामर्थ्य प्रकट करने के लिये अपने स्थान से एक सौ आठ मर्म स्थानों के ऊपर को थोड़ासा बाहर निकलने लगा। तब तो प्राण के साथ ही साथ विवश होकर सब वागादिक देवता बाहर निकलने लगे। जब वह प्राण शरीरपात के भय से पुनः अपने स्थानपर स्थित हो गया तब अन्य सब वागादि देवता स्थित हो गये। जैसे मधुमक्खियों का राजा मधुके छत्ते से जब उड़ता है तब उसके साथ ही वहाँ बैठी हुई अन्य सब मधुमक्खियाँ भी उड़ जाती हैं और जब वह बैठ जाता है तब अन्य सब भी बैठ जाती हैं। ऐसी ही दशा इन सब वागादि देवताओं की भी हुई। यह देखकर वाणी, श्रोत्र, चक्षु आदि सब इन्द्रियों को और मन आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को भी यह विश्वास हो गया कि हम सबों में प्राण ही श्रेष्ठ है। अतः वे सब वागादि देवता प्रसन्नतापूर्वक निम्न प्रकार से प्राण की स्तुति करने लगे ॥४॥

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः ।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(एषः) यह मुख्य प्राण (अग्निः) अग्निरूप से (तपति) जलता है (एषः) यह मुख्य प्राण (सूर्यः) सूर्यरूप से प्रकाश करता है (एषः) यह मुख्य प्राण (पर्जन्यः) मेघरूप से वरसता है (एषः) यह मुख्य प्राण (मघवान्) इन्द्ररूप से प्रजा का पालन और असुरों का नाश करता है (एषः) यह मुख्य प्राण (वायुः) वायुरूप से चलता है यह मुख्य प्राण (पृथिवी) पृथ्वी रूप से समस्त जगत् को धारण करता है। (देवः) यह मुख्य प्राणदेव (रयिः

चन्द्रमारूप से सबका पोषण करता है (च) और (यत्) जो कुछ (सत्) वर्तमान या प्रत्यक्ष या चेतन या स्थूल है (च) और (असत्) अवर्तमान या परोक्ष या अचेतन या सूक्ष्म है तथा (अमृतम्) मरणरहित मोक्ष है सो सब यह मुख्य प्राण ही है ॥५॥

विशेषार्थ—यह मुख्य प्राण अग्निरूप से प्रज्वलित होता है। यह श्रेष्ठ प्राण सूर्यरूप से प्रकाश करता है। यह प्राण मेघरूप से बरसता है। यह मुख्य प्राण इन्द्ररूप से प्रजा का पालन और असुरों का विनाश करता है। यह प्राण वायुरूप से सर्वत्र चलता है। यह मुख्य प्राण पृथ्वीरूप से समस्त जगत् को धारण करता है। यह मुख्य प्राणदेव चन्द्रमारूप से सबका पोषण करता है। अधिक क्या कहें जो कुछ भी सत् और असत् पदवाच्य वर्तमान तथा अवर्तमान अथवा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अथवा चेतन तथा अचेतन अथवा स्थूल तथा सूक्ष्म वस्तु है और मरणरहित मोक्ष है वह सब यह मुख्य प्राण ही है ॥५॥

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥६॥

अन्वयार्थ—(रथनाभौ) रथ यानी चक्र की नाभि यानी मध्यप्रदेश में (अराः) अर यानी नाभि और चक्र के अन्तरालवर्ती तिरछे काठों के (इव) समान (ऋचः) ऋग्वेद के मंत्र (यजूंषि) यजुर्वेद के मंत्र (सामानि) सामवेद के मंत्र (च) चकार से अथर्ववेद के मंत्र और (यज्ञः) वेदविहित यज्ञ तथा (ब्रह्म) ब्राह्मण (क्षत्रम्) क्षत्रिय आदि अधिकारिवर्ग (सर्वम्) ये सबके सब (प्राणे) प्राण में (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित हैं ॥६॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभि में तिरछे काठ स्थित रहते हैं उसी प्रकार समस्त ऋग्वेद के मंत्र तथा यजुर्वेद के मंत्र और सामवेद के मंत्र तथा अथर्ववेद के मंत्र और वेदों के द्वारा सिद्ध होनेवाले यज्ञादि शुभकर्म और यज्ञादि कर्म करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अधिकारिवर्ग—ये सब मुख्य प्राण में ही स्थित रहते हैं। यहाँ पर प्रश्न होता है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद किसको कहते हैं और चारों वेदों की कितनी शाखाएँ हैं। इसका उत्तर यह लिखा है—

'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ।'

(मीमांसा० अध्या० २ पाद० १ सू० ३५)

जिसमें अर्थवश से पाद की व्यवस्था होती है उसीको ऋग्वेद कहते हैं ॥३५॥

'एकविंशतिशाखायमृग्वेदः परिकीर्तितः ।'

(सीतोपनि०)

'ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्यु रेकविंशतिसंख्यकाः ।'

(मुक्तिकोप० अ० १ श्रु० १२)

'एकविंशतिधा बह्वृच्यः ।'

(महाभाष्य अ० १ पा० १ आह्निक १)

इक्कीस शाखा ऋग्वेद की हैं ॥ १ ॥ उन में से मंत्रभाग की शाकल-शाखा १, बाष्कलशाखा २ और शांख्यायनशाखा ३ ये तीन ही इस समय में शाखाएँ प्राप्त होती हैं और ब्राह्मणभाग के ऐतरेयब्राह्मण १ तथा शांख्यायनब्राह्मण २ ये दो प्राप्त हुए हैं ।

'शेषे यजुःशब्दः ।'

(मीमां० अ० २ पा० १ सू० ३७)

शेष में यजुर्वेद कहा जाता है ॥ ३७ ॥

'एकशतमध्वर्युशाखाः ।'

(महाभाष्य अ० १ पा० १ आह्निक १)

एक सौ एक शाखाएँ यजुर्वेद की हैं ॥ १ ॥

'शुक्लंकृष्णमिति द्वेधा यजुश्च समुदाहृतम्
शुक्लं वाजसनेयं तु कृष्णं स्यात्तैत्तिरीयकम् ।'

(प्रतिज्ञासूत्रभाष्य०)

यजुर्वेद शुक्ल और कृष्ण भेद से दो प्रकार का कहा गया है । उन में वाजसनेय शुक्लयजुर्वेद है और तैत्तिरीय कृष्णयजुर्वेद है ।

'यजुर्वेदमहाकल्पतरोरेकोत्तरं शतम् ।
शाखास्तत्र शिखाकारा दश पञ्चाथ शुक्लगाः ॥'

(बृहन्नारदीय०)

यजुर्वेद महाकल्पतरु की एक सौ शाखाएँ हैं । उनमें शुक्लयजुर्वेद की शिखाकार पन्द्रह शाखाएँ हैं । वर्तमान समय में शुक्लयजुर्वेद के मंत्रभाग की वाजसनेयशाखा १ और काण्वशाखा २ ये दो शाखाएँ दृक्पथ होती हैं और कृष्णयजुर्वेद के मंत्रभाग की तैत्तिरीयशाखा १, मैत्रायणीशाखा २ और काठकशाखा ३ ये तीन ही इस समय में शाखाएँ प्राप्त होती हैं । शुक्लयजुर्वेद के ब्राह्मणभाग के वाजसनेयिशतपथब्राह्मण १ तथा काण्वशतपथब्राह्मण २ ये दो प्राप्त होते हैं और कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मणभाग का तैत्तिरीब्राह्मण १ यह एक ही मिलता है ॥

'गीतिषु सामाख्या ।'

(मी० अ० २ पा० १ सू० ३६)

गान में सामवेद नाम होता है ॥ ३६ ॥

'साम्नः सहस्रशाखाः स्युः ।'

(सीतोपनि०)

'सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।'

(मुक्तिकोप० अ० १ श्रु० १३)

'सहस्रवर्त्मा सामवेदः ।'

(महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्नि० १)

'सामवेदं सहस्रेण शाखानां च विभेदतः ।'

(कूर्मपुरा० अध्या० ४९ श्लो० ५१)

सामवेद की एक हजार शाखाएँ हैं ॥५१॥ उनमें से वर्तमान में मंत्रभाग की जैमिनीयशाखा १, राणायनीयशाखा २ और कौथुमीशाखा ३ ये तीन ही शाखाएँ उपलब्ध होती हैं। सामवेद के ब्राह्मण भाग के ताण्डी ब्राह्मण १, षड्विंशब्राह्मण २, मंत्रब्राह्मण ३, दैवतब्राह्मण ४, जैमिनीयार्षेयब्राह्मण ५, आर्षेयब्राह्मण ६, सामविधान-ब्राह्मण ७, संहितोपनिषद्ब्राह्मण ८, वंशब्राह्मण ९ और जैमिनीयब्राह्मण १० ये दश ही प्राप्त होते हैं ।

'निगदो वा चतुर्थं स्याद्धर्मविशेषात् ।'

(मी० अ० १ पा० १ सू० ३८)

विशेष धर्म होने से निगद ही चतुर्थ—अथर्ववेद है ॥३८॥

'नवधा अथर्वणः ।'

(महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्नि० १)

'आथर्वणमथो वेदं बिभेद नवकेन तु ।'

(कूर्मपुरा० अ० ४९ श्लो ५२)

नव शाखाएँ अथर्ववेद की हैं ॥ ५२ ॥ उनमें से शौनकीशाखा १ और पिप्पलादशाखा २ ये दो ही मंत्र भाग की शाखाएँ दृष्टिगोचर होती हैं और अथर्व-वेद के ब्राह्मण भाग का गोपथब्राह्मण १ यह केवल एक ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार से वर्तमान काल में ऋग्वेद के ऐतरेयारण्यक १ और शांख्यायनारण्यक २ ये दो ही आरण्यक उपलब्ध होते हैं और कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीयारण्यक १ यह एक ही प्राप्त होता है। वेद दो भागों में विभक्त है। एक का नाम मंत्र और दूसरे का नाम ब्राह्मण है। क्योंकि लिखा है—

'मंत्रब्राह्मणमित्याहुः ।'

(बौधायनगृह्यसूत्र २-६-२)

'आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च ।'

(कौशि० सू० १—३)

'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।'

(आपस्त० श्रौतसूत्र २४-१-३१)

'मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते ।'

(बौधायनगृह्य० २-६-३३)

मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों का नाम वेद है ॥३३॥

'तच्चोदकेषु मंत्राख्या ।'

(मी० अ० २ पा० १ सू० ३२)

प्रेरणालक्षण श्रुति का ही नाम मन्त्र है ॥३२॥

'शेषे ब्राह्मणशब्दः ।'

(मी० अ० २ पा० १ सू० ३३)

मंत्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है ॥ ३३ ॥ समस्त वेदादिक प्राण में प्रतिष्ठित हैं ॥६॥

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे । तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमाबलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥७॥

अन्वयार्थ—(त्वम्) हे प्राण तू (एव) निश्चय कर के (प्रजापतिः) प्राणियों का रक्षक है (गर्भे) और तू ही गर्भ में (चरसि) प्राणादि वायुरूप से विचरता है (प्रतिजायसे) और तू ही माता पिता के अनुरूप हो कर पुत्ररूप से उत्पन्न होता है (प्राण) हे प्राण (तु) निश्चय कर के (इमाः) ये सब (प्रजाः) तुम्हारी शेषभूत प्रजा (तुभ्यम्) तेरे लिये (बलिम्) अन्नादिक भेंट को (हरन्ति) समर्पण करते हैं (यः) जो तू (प्राणैः) प्राणादिव्यापारों से (प्रतितिष्ठसि) सर्वत्र प्रतिष्ठित हो रहा है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—हे मुख्य प्राण तू ही प्रजाओं का रक्षक प्रजापति है और तू ही गर्भ में प्राणादि वायुरूप से विचरता है । तू ही माता पिता के प्रातिलोम्य हो कर पुत्ररूप से जन्म लेता है और ये समस्त तुम्हारे शेषभूत जीव इन्द्रियों के द्वारा तेरे लिये अन्नादिक भोग्यविषयरूप भेंट समर्पण करते हैं । तू ही प्राणादिव्यापारों के शरीर में स्थित हो रहा है ॥ ७ ॥

देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(देवानाम्) हे प्राण देवताओं के (वह्नितमः) हवि पहुँचानेवाला उत्तम अग्नि (असि) तू है तथा (पितृणाम्) पितरों की (प्रथमा) मुख्य—पहली (स्वधा) पितृप्रीतिहेतुभूत स्वधा तू है और (अथर्वाङ्गिरसाम्) अथर्वाङ्गिरस् (ऋषीणाम्) मंत्रद्रष्टा ऋषियों के (सत्यम्) सत्य या उत्कृष्ट (चरितम्) आचरण किया हुआ नित्य नैमित्तिकादि लक्षण कर्म (असि) तू है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—हे प्राण तू पैंतीस करोड़ देवताओं को हवि पहुँचानेवाला उत्तम अग्नि है । देवता के विषय में लिखा है—

'त्रीणि शता त्रीणि सहस्राण्य-
ग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।'

(यजुर्वे० अ० ३३ मं० ७)

'त्रीणि शता ।'

३०० तीन सौ

'त्री सहस्राणि ।'

३००० तीन सहस्रगुणित अर्थात् ९००००० नव लाख,

'त्रिंशत् नव च ।'

और उन्तालीस ९०००३९ नव लाख उन्तालीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं ॥७॥ अथवा

'नवैवाङ्कास्त्रिरुद्राः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः ।
ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदतः ॥'

इस आगम प्रमाण से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र की शक्ति से ३३३३३३३३३ इतने देवता होते हैं । (जिसको अधिक जानना हो वह मेरी बनाई हुई 'ईशोपनिषद्' की चौथी श्रुति की व्याख्या 'गूढार्थदीपिका' का अवलोकन कर ले ।) और हे मुख्य प्राण ! तू अग्निष्वात्त, आज्यपा बर्हिषद् प्रभृति पितरों की मुख्य यानी पहली पितृप्रीति हेतुभूत स्वधा है । अथर्वाङ्गिरस् आदि मंत्रद्रष्टा ऋषियों का सत्य या उत्कृष्ट आचरण किया हुआ नित्य नैमित्तिकादिलक्षण कर्म तू है । क्योंकि लिखा है—

'ऋषयो मंत्रद्रष्टारः ।'

मंत्रद्रष्टाको ऋषि कहते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥९॥

अन्वयार्थ—(प्राण) हे मुख्य प्राण (त्वम्) तू (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर है तथा (तेजसा) सर्वसंहारलक्षण तेज से (रुद्रः) रोदनहेतु—रुद्र तू है और (परिरक्षिता) स्थितिकाल में रक्षा करने वाला (असि) तू है (त्वम्) तू (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (चरसि) विचरता है और (त्वम्) तू (ज्योतिषाम्) समस्त प्रकाशकों का (पतिः) स्वामी (सूर्यः) सूर्य है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—हे मुख्य प्राण तू परमैश्वर्ययुक्त तीनों लोकों का शासन करनेवाला इन्द्र यानी परमेश्वर है। तू ही संहारकाल में सर्वसंहारक तेज से रुद्र यानी रोदन-हेतु है। स्थितिकाल में तू ही सबका भलीभाँति रक्षा करनेवाला है और तू ही पृथ्वी तथा स्वर्ग के बीच में विचरनेवाला वायु है। तू ही अग्नि, चन्द्र, तारे आदि समस्त प्रकाशकों का स्वामी सूर्य है ॥ ९ ॥

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामयान्नं भविष्यतीति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(प्राण) हे मुख्य प्राण (यदा) जब (त्वम्) तू (अभिवर्षसि) मेघरूप होकर भलीभाँति बरसाता है (अथ) तब इस के बाद (ते) तेरी (इमाः) यह समस्त (प्रजाः) प्रजायें (कामाय) इच्छा के अनुसार पर्याप्त (अन्नम्) खाद्य—अन्न (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा समझ कर (आनन्द-रूपाः) आनन्द को प्राप्त हुई (तिष्ठन्ति) स्थित हो जाती हैं ॥ १० ॥

विशेषार्थ—हे मुख्य प्राण जब तू मेघरूप होकर पृथ्वी लोक में सबओर भली भाँति वर्षा करता है तब तेरी यह संपूर्ण प्रजा हम लोगों के जीवननिर्वाह के लिये यथेष्ट अन्न उत्पन्न होगा ऐसा समझ कर आनन्दित हो जाती है। क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीति ॥'

(छा० उ० अ० ७ खं० १० श्रु० १)

जब सुवृष्टि होती है तब समस्त प्राणी आनन्दवाले हो जाते हैं कि अब अन्न बहुत उत्पन्न होगा ॥ १ ॥ सुवृष्टि से प्रजा आनन्द में मग्न हो जाती है ॥ १० ॥

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः ॥११॥

अन्वयार्थ—(प्राण) हे मुख्य प्राण (त्वम्) तू (व्रात्यः) संस्कारहीन ब्राह्मण होता हुआ भी (एकर्षिः) मुख्य सर्वश्रेष्ठ मंत्रद्रष्टा ऋषि है और तू (विश्वस्य) समस्त जगत् का (अत्ता) खानेवाला—संहर्ता है तथा तू (सत्पतिः) साधुओं का रक्षक है (वयम्) हम लोग (आद्यस्य) समस्त भक्ष्यपदार्थ के (दातारः) तेरे लिये देनेवाले किंकर हैं (मातरिश्व) हे आकाश में विचरनेवाले वायुदेव (त्वम्) तू (नः) हम लोगों का (पिता) पोषक पिता है ॥११॥

विशेषार्थ—हे मुख्य प्राण तू सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ उस समय किसी संस्कार करनेवाले के न होने से तू संस्कारहीन स्वभाव से शुद्ध ब्राह्मण होता हुआ भी मुख्य सर्वश्रेष्ठ मंत्रद्रष्टा—ऋषि है। तू ही समस्त स्थावर जंगम संसार का खानेवाला—संहर्ता है। तू ही साधुओं का रक्षक है। हम सब इन्द्रियाँ और मन आदि तेरे लिये नाना प्रकार की भोजन-सामग्री अर्पण करनेवाले किंकर हैं। हे आकाश में विचरनेवाले वायुस्वरूप प्राण तू हम लोगों का पोषक पिता है। अथवा 'मातरिश्वनः' यह वायु वाचक एक पद है तो यह अर्थ होता है कि तू आकाश में विचरनेवाले वायु का पिता ॥११॥

या च ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥१२॥

अन्वयार्थ—(या) जो (ते) तेरी (तनूः) मूर्ति (वाचि) वाणी में (प्रतिष्ठिता) स्थित है (च) और (या) जो (श्रोत्रे) कान में स्थित है (च) और (या) जो (चक्षुषि) नेत्र में स्थित है (च) और (या) जो (मनसि) मन में स्थित है (ताम्) उस (संतताम्) निरन्तर प्रतिष्ठित मूर्ति को (शिवाम्) कल्याणमय—शोभन (कुरु) करो (मा) मत (उत्क्रमीः) तुम उत्क्रमण करो अर्थात् शरीर से बाहर तुम मत निकलो ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—हे मुख्य प्राण जो तेरी मूर्ति यानी शक्ति वाणी, श्रोत्र, नेत्र आदि समस्त इन्द्रियों में और मन आदि अन्तःकरण की वृत्तियों में प्रतिष्ठित है। तुम उस सतत प्रतिष्ठित शक्ति को कल्याणतम—शोभन करो। तुम शरीर से उठकर बाहर न निकलो। यह हम लोगों की प्रार्थना है ॥१२॥

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां विधेहि नः ॥१२॥

॥ इति द्वितीयप्रश्नः ॥

अन्वयार्थ—(इदम्) यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला जगत् और (यत्) जो कुछ (त्रिदिवे) स्वर्गादिलोक में (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (सर्वम्) वह सब (प्राणस्य) मुख्य प्राण के (वशे) अधीन है । हे प्राण ! (माता) माता (पुत्रान्) अपने पुत्रों को (इव) जैसे रक्षा करती है वैसे ही (रक्षस्व) तुम हमारी रक्षा करो और (नः) हमारे लिए (श्रीः) स्वस्वकार्यनिष्पादन-सामर्थ्यलक्षण लक्ष्मी को (च) और (प्रज्ञाम्) तदनुकूल बुद्धि को (विधेहि) प्रदान करो ॥१३॥

विशेषार्थ--हे प्राण हम अधिक क्या कहें इस लोक में जो कुछ दीखता है और स्वर्गादिलोक में भी जो पदार्थ है वह सब प्राण के ही वश में है । हे मुख्य प्राण ! जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है वैसे ही तुम हमारी रक्षा करो और हमारे लिये अपने अपने कार्य निष्पादन की सामर्थ्यलक्षणा लक्ष्मी को तथा तदनुकूल बुद्धि को भी प्रदान करो । इससे सिद्ध हो गया कि प्राण सबसे श्रेष्ठ है । इसी प्रकार प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन 'छान्दोग्योपनिषद्' के पाँचवें अध्याय के पहले ब्राह्मण में किया गया है और यहाँ पर 'प्रश्नोपनिषद्' का दूसरा प्रश्न समाप्त हो गया ॥ १३ ॥

अथ तृतीयप्रश्नः

अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ । भगवन् कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं वा प्रातिष्ठते । केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) भार्गव ऋषि के अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इस पिप्पलाद महर्षि से (आश्वलायनः) अश्वल ऋषि का पुत्र (कौशल्यः) कौशल्य ऋषि ने (च) भी (पप्रच्छ) पूछा (भगवन्) हे भगवन् ! (एषः) यह (प्राणः) प्राण (कुतः) किससे (जायते) उत्पन्न होता है और (अस्मिन्) इस (शरीरे) शरीर में (कथम्) कैसे (आयाति) आता है (वा) तथा (आत्मानम्) अपने को (प्रविभज्य) विभक्त करके (कथम्) कैसे (प्रतिष्ठते)

शरीर में स्थित होता है (वा) और (केन) किस ढंग से (उत्क्रमते) शरीर से बाहर निकलता है और (कथम्) कैसे (बाह्यम्) बाहर की वस्तु को और (कथम्) कैसे (अध्यात्मम्) शरीर के भीतर की वस्तु को (अभिधत्ते) भली भाँति धारण करता है (इति) यही मेरा प्रश्न है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—भार्गव ऋषि के प्रश्न के उत्तर होने के अनन्तर अश्वल ऋषि के पुत्र कौशल्य ऋषि ने नियमानुसार सविधि पिप्पलाद महर्षि के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। तदनन्तर श्रद्धा से विनयपूर्वक छः प्रश्न किये कि हे भगवन्! यह प्राण किससे उत्पन्न होता है? १ इस शरीर में कैसे आता है? २ अपने को विभक्त करके किस प्रकार शरीर में स्थित रहता है? ३ एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाते समय पहले शरीर से किस प्रकार निकलता है? ४ इस बाह्य पाञ्चभौतिक जगत् को किस प्रकार धारण करता है? ५ मन, इन्द्रिय आदिक आध्यात्मिक वस्तु को किस प्रकार धारण करता है? ६ यहाँ प्राण के विषय में वे ही बातें पूछी गयी हैं जिनका वर्णन पहले उत्तर में नहीं आया है ॥१॥

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि।
ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥२॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) वह पिप्पलाद महर्षि (तस्मै) उस कौशल्य ऋषि के अर्थ (उवाच) कहा कि (अतिप्रश्नान्) बड़े कठिन प्रश्नों का अर्थात् रहस्य अर्थों को (पृच्छसि) तू पूछता है (तस्मात्) तिससे (ब्रह्मिष्ठः) वेदों को अच्छी तरह जाननेवाला या प्रायः करके ब्रह्मवेत्ता (असि) तू है इससे (अहम्) मैं (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) प्रश्नों का उत्तर कहता हूँ ॥२॥

विशेषार्थ—प्रसिद्ध उस पिप्पलाद महर्षि ने उस कौशल्य ऋषि से कहा कि बड़े कठिन रहस्य अर्थों को तू पूछता है। इससे ज्ञात होता है कि तू प्राकृत नहीं है। वेदों को अच्छी तरह जाननेवाला ब्रह्मवेत्ता तू है। अतः सुयोग्य होने से मैं तेरे लिये यथार्थ प्रश्नों का उत्तर कहता हूँ, सावधान होकर सुनो॥ २ ॥

आत्मन एवैष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छाये-
तस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे ॥३॥

अन्वयार्थ—(एषः) यह (प्राणः) प्राण (एव) निश्चय कर के आत्मनः) परमात्मा से (जायते) उत्पन्न होता है (यथा) जैसे (पुरुषे) पुरुष में

(एषा) यह (छाया) छाया है वैसे ही (एतस्मिन्) इस जीवात्मा में (एतत्) यह (मनः) मन (अकृतेन) बिना यत्न से (आततम्) संश्रित है उसी प्रकार बिना यत्न के पुरुष के साथ सम्बन्धवाला प्राण भी (अस्मिन्) इस (शरीरे) में (आयाति) आता है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—'प्राण किस से उत्पन्न होता है' इस पहले प्रश्न का उत्तर पिप्पलाद महर्षि ने दिया है कि निश्चय कर के सर्वश्रेष्ठ यह प्राण परब्रह्म नारायण से उत्पन्न होता है। क्योंकि लिखा है—

'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।'

(मुण्डकोप० मु० २ खं० १ श्रु० ३)

इस परमात्मा से प्राण और मन तथा संपूर्ण इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं ॥३॥

'नारायणात्प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥'

(नारायणोप० श्रु० १)

नारायण से प्राण उत्पन्न होता है और मन तथा समस्त इन्द्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं ॥ १ ॥ शेष पदों से इस श्रुति में 'प्राण इस शरीर में कैसे आता है' इस दूसरे प्रश्न का उतर महर्षि ने दिया है कि जैसे मनुष्य में यह छाया स्वतः मनुष्य के जाने पर साथ ही चली जाती है। वैसे ही इस जीवात्मा में यह मन यत्न के विना ही सर्वदा संश्रित है। पुरुष तथा पुरुष की छाया जिस प्रकार है ठीक उसी प्रकार मन और प्राण है। तो यह सिद्ध हो गया कि पुरुष जहाँ जाता है वहाँ पर बिना उपाय के ही उसकी छाया चली जाती है। तुल्य न्याय से मन की छाया के तुल्य प्राण है और मन सर्वदा जीवात्मा में संश्रित है। इससे जीवात्मा के साथ ही प्राण का भी संबन्ध ज्ञात होता है। अतः इस शरीर में प्राण के आने में दूसरा कोई कारण नहीं है। क्योंकि लिखा है—

'सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति ।'

(गर्भोपनि० श्रु० ३)

सातवें मास में मनुष्य का शरीर जीवात्मा से संयुक्त होता है ॥३॥

'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥'

(गी० अ० ८ श्लो० ६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन जिस जिस भी भाव को अन्तकाल में स्मरण करता हुआ मनुष्य शरीर छोड़ता है वह सदा पूर्व से ही उस भाव से भावित हुआ उस उस भाव को ही प्राप्त होता है ॥६॥ इससे सिद्ध हो गया कि जीवात्मा

के साथ ही प्राण इस शरीर में बिना यत्न के ही आता है। इस श्रुति में कौशल्य ऋषि के आदि के दो प्रश्नों का उत्तर दिया गया है ॥३॥

यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते । एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राणः । इतरान्प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते ॥४॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार (सम्राट्) चक्रवर्ती महाराजा (एव) निश्चय कर के (अधिकृतान्) कार्य में अधिकृत अपने सेवकों को (एतान्) इन (ग्रामान्) ग्रामों को (एतान्) इन (ग्रामान्) ग्रामों को (अधितिष्टस्व) अधिपति बनकर तुम शासन करो (इति) इस प्रकार (विनियुङ्क्ते) अलग नियुक्त करता है (एवम्) ऐसे ही (एव) निश्चय कर के (एषः) यह (प्राणः) मुख्य प्राण (इतरान्) दूसरे (प्राणान्) स्वांशभूत प्राणापानादिकों को (पृथक्) अलग (पृथक्) अलग (एव) ही (संनिधत्ते) स्थापित करता है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में पिप्पलाद महर्षि उदाहरण द्वारा 'प्राण अपने को विभक्त करके किस प्रकार शरीर में स्थित रहता है' इस तीसरे प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार भूमण्डल का चक्रवर्ती महाराजा भिन्न भिन्न ग्राम मण्डलादि में अलग अलग अपने कर्मचारियों को अधिकार पर नियुक्त करता और उनका कार्य बाँट देता है। उसी प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ प्राण भी अपने अङ्गस्वरूप अपान, व्यान आदि दूसरे प्राणों को शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों में अलग अलग कार्य के लिये नियुक्त कर देता है ॥ ४ ॥

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातितिष्ठते मध्ये समानः । एषह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥५॥

अन्वयार्थ—(प्राणः) मुख्य प्राण (पायूपस्थे) मलद्वार और मूत्रद्वार में (अपानम्) अपान को रखता है (स्वयम्) अपने आप (प्राणः) प्राण (मुखनासिकाभ्याम्) मुख और नासिका से निकलता हुआ (चक्षुःश्रोत्रे) नेत्र और श्रोत्र में (प्रतितिष्ठते) स्थित होता है तथा (मध्ये) शरीर के मध्यभाग में (समानः) समान रहता है (हि) निश्चय कर के (एषः) यह समान वायु (एतत्) इस (हुतम्) प्राणाग्नि में हवन किये हुए यानी भोजन

किये हुए (अन्नम्) खाद्य अन्न को (समम्) सब शरीर में समान रूप से (नयति) पहुँचाता हैं (तस्मात्) उस समानवायु के कारण जठराग्नि से (सप्त) सात (अर्चिषः) ज्वालायें (भवन्ति) उत्पन्न होती हैं ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—यह मुख्य प्राण अपने आप मुख और नासिका से निकलता हुआ नेत्र तथा कर्ण में निवास करता है और मलद्वार तथा मूत्रद्वार में अपान को स्थापित करता है। अपान का काम मल तथा मूत्र को शरीर से बाहर निकाल देना है। रज और वीर्य तथा गर्भ को बाहर करना भी अपान का ही काम है। शरीर के मध्यभाग नाभि में समान को रखता है। यह समानवायु प्राणरूप अग्नि में हवन किये हुए अर्थात् खाये हुए अन्न को समान रूप से ले जाता है। अर्थात् अन्न के सार को सम्पूर्ण शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग में यथायोग्य समभाव से पहुँचाता है। उस समान वायु के कारण जठराग्नि से दो नेत्र, दो कान, दो नासारन्ध्र और एक रसना ये सात ज्वालाएँ समस्त विषयों को प्रकाशित करनेवाली उत्पन्न होती हैं। अथवा अर्चिः जिह्वा के तुल्य होने से काली आदि ज्वालाएँ उत्पन्न होती हैं। वे सात मुण्डकोपनिषद् में प्रतिपादित की गई हैं।

'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।'
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी ॥'

(मुण्डको० मु० १ खं० २ श्रु० ४)

काले रङ्गवाली—काली १, अति उग्र—कराली २, मन की भाँति अत्यन्त चंचल—मनोजवा ३, अत्यन्तलाल—सुलोहिता ४, सुन्दर धूएँ के से रंगवाली—सुधूम्रवर्णा ५, चिनगारियोंवाली—स्फुलिङ्गिनी ६ सब ओर से प्रकाशत देदीप्यमान—विश्वरुची देवी ७ ॥ ४ ॥ ये सात दीप्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस श्रुति में प्राण १, अपान २, समान ३ इन तीनों का निवास और कार्य बतलाये गये हैं ॥ ५ ॥

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्ति। तासु व्यानश्चरति ॥६॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय कर के (एषः) यह (आत्माः) आत्मा (हृदि) हृदय देश में रहती है (अत्र) इस हृदय में (नाडीनाम्) नाड़ियों का मूलरूप (एकशतम्) एक सौ प्रधान हैं (तासाम्) उन नाड़ियों में से (एकैकस्याम्) एक एक नाड़ी में (शतम्) सौ (शतम्) सौ शाखाएँ हैं। प्रत्येक शाखानाड़ी की (द्वासप्ततिः) बहत्तर (द्वासप्ततिः) बहत्तर (प्रतिशाखानाडीसहस्राणि)

हजार प्रतिशाखा नाड़ियाँ (भवन्ति) होती हैं (तासु) उन बहत्तर करोड़ नाडियों में (व्यानः) व्यान वायु (चरति) विचरता है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—इस शरीर के हृदय देश में ही जीवात्मा निवास करती है। और इस हृदय में एक सौ मूलभूत प्रधान नाड़ियाँ हैं। उन में से प्रत्येक नाड़ी की एक एक सौ शाखा नाड़ियाँ है। प्रत्येक शाखा नाड़ी की बहत्तर बहत्तर हजार प्रतिशाखा नाड़ियाँ हैं। इस प्रकार इस शरीर में सब मिलकर बहत्तर करोड़ नाड़ियाँ हैं। इन बहत्तर करोड़ नाड़ियों में व्यान वायु विचरता है। सन्धिस्थान, स्कन्धदेश और मर्मस्थलों में व्यानवायु की अभिव्यक्ति होती है। यही व्यानवायु पराक्रमयुक्त कर्मों को करनेवाला है। श्रीशैलपूर्ण स्वामी के छात्रोत्तम भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अत्रस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि।'

(शा० मी० अ० ३ पा० ३ सू० २५)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के तृतीय प्रश्न की छठवीं श्रुति के प्रथम पाद को उद्धृत किया है ॥ ६ ॥

अथैकयोर्ध्वं उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति।
पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (एकया) बहत्तर करोड़ नाड़ियों से अलग सर्वश्रेष्ठ सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्वमुख (उदानः) उदान वायु ऊपर की ओर विचरता है और (पुण्येन) पुण्य कर्म कर के (पुण्यम्) पुण्य—स्वर्ग (लोकम्) लोक को (नयति) ले जाता है और (पापेन) पाप कर्म कर के (पापम्) पाप यानी नरकादि लोक को ले जाता है और (एव) निश्चय कर के (उभाभ्याम्) पुण्य और पाप इन दोनों प्रकार के कर्मों कर के (मनुष्यलोकम्) मनुष्यलोक को ले जाता है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—इन ऊपर बतलाई हुई बहत्तर करोड़ नाड़ियों से भिन्न एक सुषुम्ना नाड़ी है। जो हृदय से निकल कर ऊपर मस्तक में गयी है। उसी नाड़ी के द्वारा ऊर्ध्वमुख उदान वायु शरीर में ऊपर की ओर विचरता है। इस प्रकार तीसरे प्रश्न का समाधान कर के अब पिप्पलाद महर्षि 'पहले शरीर से किस प्रकार निकलता है' इस चौथे प्रश्न का उत्तर संक्षेप में देते हैं कि हे कौशल्य जो मनुष्य पुण्यात्मा होता है उस को पुण्य कर्म के द्वारा यह उदान वायु निश्चय कर के अन्य सब प्राण इन्द्रियों के सहित वर्तमान शरीर से निकालकर देवयोनि आदि स्वर्गलोक को पहुँचाता है और पाप कर्मों से युक्त मनुष्य को शूकर कूकर आदि पापयोनियों में तथा नरक में ले जाता है। जो पुण्य तथा पाप

इन दोनों प्रकार के मिश्रित कर्मों को करनेवाले हैं उन लोगों को पाप तथा पुण्य दोनों प्रकार के कर्म से मनुष्ययोनि में ले जाता है। श्रौत सिद्धान्तानुसार यहाँ तक पूर्वोक्त चार प्रश्नों का उत्तर प्रतिपादन किया गया है ॥ ७ ॥

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमुपष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥८॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय करके (आदित्यः) सूर्य (बाह्यः) बाहर का (प्राणः) प्राण है (एषः) यही (हि) निश्चय कर के (एनम्) इस (चाक्षुषम्) चक्षुगोलकवर्ती इन्द्रियसंबन्धी (प्राणम्) प्राण के प्रति (अनुगृह्णानः) अनुग्रह करता हुआ (उदयते) बाहर आदित्यरूप से उदित होता है (पृथिव्याम्) पृथ्वी में (या) जो प्राणकलारूपा (देवता) देवता है (सा) वही (एषा) यह देवता (पुरुषस्य) मनुष्य के (अपानम्) अपानवायु को (उपष्टभ्य) अनुग्रह करके स्थिर किये रहता (अन्तरा) पृथ्वी और स्वर्ग के बीच (यत्) जो (आकाशः) आकाश है (सः) वही (समानः) समान है और (वायुः) सामान्य से त्वगिन्द्रियस्पर्श करनेवाला जो बाहर का वायु है (व्यानः) वही व्यान है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'प्राण इस बाह्य पाञ्चभौतिक जगत् को कैसे धारण करता है' इस पाँचवें प्रश्न का और 'मन, इन्द्रिय आदिक आध्यात्मिक वस्तु को प्राण कैसे धारण करता है' इस छठे प्रश्न का भी उत्तर पिप्पलाद महर्षि देते हैं कि हे सौम्य कौशल्य प्रसिद्ध सूर्य ही सबके बाहर का प्राण है। वह मुख्य प्राण सूर्यरूप से उदय होकर इस शरीर के बाह्य अङ्गों को पुष्ट करता है और नेत्रेन्द्रियरूप आध्यात्मिक शरीर पर अनुग्रह करके रूप को ग्रहण करने के लिये चक्षु में प्रकाश देता है। पृथ्वी में जो प्राणकलारूप देवता है वही देवता इस मनुष्य के भीतर रहनेवाले अपानवायु को आश्रय देता है। अपान वायु की शक्ति गुदा और उपस्थ इन्द्रियों का सहायक है और इनके बारी स्थूल आकार को धारण करती है। स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य में जो आकाश है वही समान वायु का बाह्य स्वरूप है। वह इस शरीर के बाहरी अङ्गों को अवकाश देकर इसकी रक्षा करता है और शरीर के भीतर रहनेवाले समान वायु को विचरने के लिये देह में अवकाश देता है। आकाश में विचरनेवाला प्रत्यक्ष वायु ही व्यान का बाह्य स्वरूप है। यह इस शरीर के बाहरी अङ्गों को चेष्टाशील करता है और भीतरी

व्यान वायु को नाड़ियों में संचारित करने तथा त्वगिन्द्रिय को स्पर्श का ज्ञान कराने में भी यह सहायता देता रहता है ॥८॥

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः ।
पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि संपद्यमानैः ॥९॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (तेजः) तेज यानी गर्मी (वै) निश्चय कर के (उदानः) उदान है (तस्मात्) उस कारण से (उपशान्ततेजाः) जिसके शरीर का तेज शान्त हो जाता है वह पुरुष (मनसि) मन में (संपद्यमानैः) विलीन हुई (इन्द्रियैः) इन्द्रियों के साथ (पुनः) फिर से (भवम्) जन्म को प्राप्त करता है ॥९॥

विशेषार्थ—सूर्य, अग्नि आदि की जो बाहरी गर्मी है। वही उदान का बाह्यस्वरूप है। वह शरीर के बाहरी अङ्गों को ठंढा नहीं होने देता है और शरीर के भीतर भी गर्मी को स्थिर रखता है। जिस के शरीर से उदान वायु निकल जाता है, उसका शरीर गर्म नहीं रहता है। इस से शरीर की गर्मी शान्त होते ही शरीर में रहनेवाली जीवात्मा मन में प्रविष्ट हुई इन्द्रियों के साथ दूसरे शरीर में चली जाती है। इन्द्रियाँ मन में विलीन होती हैं। क्योंकि लिखा है—

'वाङ्मनसि मनः प्राणे प्राणस्तेजसि ।'

(छा० उ० अ० ६ खं० ८ श्रु० ६)

वाणी मन में विलीन होती है और मन प्राण में प्रविष्ट होता है तथा प्राण तेज में विलीन होता है ॥ ६ ॥ इसी आशय से महर्षि बादरायणाचार्य ने

'वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० १)

का निर्माण किया है। श्रीमालाधार स्वामी के माणवकोत्तम भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अत एव सर्वाण्यनु ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० २)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के तृतीय प्रश्न की नवमी श्रुति के उत्तरार्ध को उद्धृत किया है ॥ ९ ॥

यच्चित्तस्तेन स प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः ।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यच्चितः) मुमूर्षु जीव मरण-समय में जिस मनुष्य, पशु

आदि योनि में जन्म का संकल्पवाला होता है (तेन) उस संकल्प के साथ (प्राणम्) प्राणवृत्ति के प्रति (आयाति) आता है और (प्राणः) मुख्य प्राण (तेजसा) तेज यानी उदान से (युक्तः) युक्त हुआ (आत्मना) जीवात्मा के (सह) सहित (यथा) जैसा (संकल्पितम्) संकल्प किया है उसी संकल्प के अनुसार (लोकम्) भिन्न भिन्न लोकों को अथवा योनि को (नयति) ले जाता है ॥ १० ॥

विशेषार्थ—मरण-काल में इस जीव की कामना जैसी होती है वैसी ही कामना के साथ वह प्राण को प्राप्त करता है। मुख्य प्राण उदान से युक्त होकर जीवात्मा के साथ मिलकर पुण्य-पापरूप कर्म के वशीभूत हुए मन में जैसा संकल्प होता है उसके अनुसार लोक या योनि में पहुँचा देता है। सब इन्द्रियों से संयुक्त मन प्राण से संयुक्त होता है। क्योंकि लिखा है—

'तन्मनः प्राण उत्तरात् ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० २ सू० ३)

सर्वेन्द्रियसंयुक्त मन प्राण से संयुक्त होता है।

'मनः प्राणे ।'

(छा० उ० अ० ६ खं० ८ श्रु० ६)

ऐसा उत्तर वाक्य होने से ॥३॥ अथवा प्रस्तुत श्रुति का अर्थ

'प्राणस्तेजसि तेजः परस्यांदेवतायाम् ।'

(छा० उ० अ० ६ खं० ८ श्रु० ६)

प्राण तेज में और तेज पर देवता में संयुक्त हो जाता है ॥ ६ ॥ इस श्रुति के अनुसार तेज और परमात्मा से संयुक्त प्राण तत्तत् जीवात्मा के संकल्पानुसार मरनेवाले पुरुष को उस उस लोक में ले जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में तो लिखा है—

'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥'

(गी० अ० ८ श्लो० ६)

हे अर्जुन ! जिस जिस भी भाव को अन्त काल में स्मरण करता हुआ मनुष्य शरीर छोड़ता है वह सदा पूर्व से ही उस भाव से भावित हुआ उस उस भाव को ही प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ अतः मनुष्य को उचित है कि अपने मनमें निरन्तर परब्रह्म नारायण को ही चिन्तवन करे ॥१०॥

य एवं विद्वान्प्राणं वेद। न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥११॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (विद्वान्) ज्ञानी—उपासक (एवम्) उत्पत्ति, आगमन, प्रतिष्ठा आदिक इस प्रकार से (प्राणम्) प्राण को (वेद) उपासना करता है (अस्य) इस उपासना करनेवाले की (ह) प्रसिद्ध (प्रजा) पुत्रपौत्रादिपरंपरा (न) नहीं (हीयते) नष्ट होती है और वह (अमृतः) परिशुद्ध प्रत्यगत्मस्वरूपप्राप्तिमुख से परब्रह्मोपासनप्रीति द्वारा मोक्ष का हेतु (भवति) हो जाता है (तत्) उस प्राणवेदन के विषय में (एषः) यह अगला (श्लोकः) श्लोक है ॥११॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में प्राणोपासना के फल को महर्षि बतलाते हैं कि जो कोई विद्वान् उपासक इस प्रकार से प्राण की उत्पत्ति तथा आगमन और प्रतिष्ठा आदिक रहस्य को समझकर प्राण की उपासना करता है। उसकी पुत्र पौत्रादि सन्तान-परम्परा कभी नष्ट नहीं होती है। वह परिशुद्ध प्रत्यगात्मस्वरूपप्रतिपत्तिमुख से परब्रह्मोपासनप्रीति द्वारा मोक्ष का हेतु हो जाता है। इस प्राणोपासना के विषय में ही यह अलग मंत्र है। समस्त उपनिषदों में मोक्ष के साधारणरूप से विहित वेदन को ही उपासना कहते हैं। क्योंकि लिखा है—

'वेदनमुपासनं स्यात्तद्विषये श्रवणात्।'

(बोधायनवृत्ति)

वेदन को ही उपासना कहते हैं क्योंकि वेदन के विषय में ही उपासना श्रुति है। छान्दोग्योपनिषद् में

'मनो ब्रह्मेत्युपासीत।'

(छा० उ० अ० ३ खं० १८ श्रु० १)

मन ब्रह्म है इस प्रकार उपासना करे॥ १ ॥ यहाँ पर उपासना से उपक्रम करके।

'भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद।'

(छा० उ० अ० ३ खं० १८ श्रु० ६)

जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति से, यश से और ब्रह्मवर्चस से प्रकाशित होता है और तपता है ॥ ६ ॥ इस श्रुति में वेदन में उपसंहार किया गया है।

'यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्तः।'

(छा० उ० अ० ४ खं० १ श्रु० ४)

जो बात यह जानता है उसे जो कोई भी जानता है उसके विषय में भी मुझसे यह कह दिया गया ॥ ४ ॥ यहाँ पर वेदन से उपक्रम करके

'अनुम एतां भगवो देवतां शाधि यां देवतामुपास्से ।'

(छा० उ० अ० ४ खं० २ श्रु० २)

हे भगवन् ! आप मुझे उस देवता का उपदेश दीजिये जिसकी आप उपासना करते हैं ॥ २ ॥ इस श्रुति में उपासना में उपसंहार किया गया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदन को ही उपासना कहते हैं ॥११॥

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते इति ॥१२॥

॥ इति तृतीयप्रश्नः ॥

अन्वयार्थ—(प्राणस्य) मुख्य प्राण की (उत्पत्तिम्) परमात्मा से उत्पत्ति को (आयतिम्) मन के साथ शरीर में आगमन को (स्थानम्) पायु, उपस्थादि स्थान में स्थिति को (च) और (एव) निश्चय कर के (विभुत्वम्) चक्रवर्ती राजा के समान प्रणवृत्ति के भेद से पाँच प्रकार के स्थापनरूप व्यापकता को और (पञ्चधा) प्राणादिरूप से पाँच प्रकार के (अध्यात्मम्) आध्यात्मिक को (एव) निश्चय कर के (च) चकार से आदित्यादि रूप से पाँच प्रकार की बाह्य स्थिति को (विज्ञाय) भली भाँति जानकर (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) पाता है (इति) इस प्रकार यह तृतीय प्रश्न समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

विशेषार्थ—मुख्यप्राण वायु की परब्रह्म नारायण से उत्पत्ति को और मन से किये हुए कर्म से शरीर में आगमन को तथा पायु, उपस्थ आदि स्थानों में स्थिति को और चक्रवर्ती राजा के समान प्राणवृत्ति के भेद से पाँच प्रकार के स्थापनरूप स्वामीपन को तथा प्राणादिरूप से पाँच प्रकार के आध्यात्मिक को और आदित्यादिरूप से पाँच प्रकार की बाह्य स्थिति को भली भाँति जानकर मोक्ष को पाता है। यहाँ पर

'विज्ञायामृतमश्नुते ।'

यह वाक्य दो बार कह कर और 'इति' इस पद का प्रयोग कर के इस सिद्धान्त की निश्चितता और तृतीय प्रश्न की समाप्ति का लक्ष्य कराया गया है। यहाँ पर 'प्रश्नोपनिषद्' का तृतीय प्रश्न समाप्त हो गया ॥१२॥

अथ चतुर्थप्रश्नः

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति । कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति । कस्यैतत्सुखं कस्मिन्नु सर्वे प्रतिष्ठिता भवन्ति ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) कौशल्य ऋषि के प्रश्न के अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इस पिप्पलाद महर्षि से (सौर्यायणी) सूर्यायण के पुत्र (गार्ग्यः) गर्गगोत्र में उत्पन्न होनेवाले—गार्ग्य ऋषि ने (पप्रच्छ) पूछा (भगवन्) हे भगवन् ! (एतस्मिन्) इस (पुरुषे) जीव के सोने पर (कानि) मनुष्य शरीर में कौन कौन (स्वपन्ति) सोते हैं ? (कानि) कौन कौन (अस्मिन्) इस शरीर में (जाग्रति) जागते हैं ? (एषः) यह (देवः) द्योतनादिगुणयुक्त देव जीवात्मा (कतरः) कैसा होता हुआ (स्वप्नान्) स्वप्नरथादिकों को (पश्यति) देखता है ? (कस्य) किसके हेतु से (एतत्) यह वैषयिक (सुखम्) सुख होता है और (सर्वे) ये सब (कस्मिन्) किस में (नु) निश्चितरूप से (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठित (भवन्ति) होते हैं ? यह मेरा प्रश्न है ॥१॥

विशेषार्थ—कौशल्य ऋषि के प्रश्नों के उत्तर होने के बाद सूर्यायण के पुत्र गर्गगोत्र में उत्पन्न होनेवाले गार्ग्य ऋषि ने नियमानुसार सविधि पिप्पलाद महर्षि के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया । तदनन्तर श्रद्धा से विनयपूर्वक पाँच प्रश्न किये कि हे भगवन् गाढनिद्राके समय इस मनुष्य के शरीर में कौन कौन सी इन्द्रियाँ शयन करती हैं ? १ कौन कौन सी इन्द्रियाँ इस शरीर में जागती रहती हैं ? २ यह द्योतनादिगुण युक्त जीव कैसा होता हुआ रथादिक स्वप्नोंको देखता हैं ? ३ किसके हेतु से यह वैषयिक सुख होता है ? ४ तथा सब इन्द्रियाँ किस में निश्चत रूप से स्थित रहती हैं ? ५ ये ही पाँच प्रश्न हैं ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच । यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न

जिघ्रति न रसयति न स्पृशति नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥२॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) वह पिप्पलाद महर्षि (तस्मै) उस सौर्यायणी ऋषि के अर्थ (उवाच) बोले कि (गार्ग्य) हे गार्ग्य (यथा) जैसे (अस्तम्) साँयकाल में अस्त को (गच्छतः) जाते हुए (अर्कस्य) सूर्य की (सर्वाः) समस्त (मरीचयः) किरणें नाना दिशाओं में प्रसरण के बिना (एतस्मिन्) इस (तेजोमण्डले) तेजोमण्डल सूर्य में (एकीभवन्ति) एकता को प्राप्त हो जाती हैं (पुनः) फिर (उदयतः) सूर्य के उदय होते ही (ताः) वे सब किरणे (प्रचलन्ति) सब ओर फैलती हुई प्रकाश करती हैं (एवम्) ऐसे ही (वै) निश्चय कर के (ह) प्रसिद्ध (तत्) वह (सर्वम्) सब इन्द्रियगण (परे) अन्य वागादि इन्द्रियों से उत्कृष्ट (देवे) द्योतनादिगुणयुक्त (मनसि) मन में (एकीभवति) निद्रासमय अपने अपने बाह्य व्यापार को त्याग कर एक हो जाती है (तेन) उस श्रोत्रादि इन्द्रियों के उपरत हो जाने के कारण से (हि) निश्चय कर के (एषः) यह (पुरुषः) जीवात्मा (न) नहीं (श्रृणोति) सुनती है (न) नहीं (पश्यति) देखती है (न) नहीं (जिघ्रति) सूंघती है (न) नहीं (रसयति) स्वाद लेती है (न) नहीं (स्पृशति) स्पर्श करती है (न) नहीं (अभिवदते) बोलती है (न) नहीं (आदत्ते) ग्रहण करती है (न) नहीं (आनन्दयते) मैथुन का आनन्द भोगती है (न) नहीं (विसृजते) मल त्यागती है (न) नहीं (इयायते) चलती है तब (स्वपिति) वह सोती है (इति) ऐसा (आचक्षते) सब लोग कहते हैं ॥ २ ॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'गाढ़ निद्रा के समय इस शरीर में कौन कौन सोते हैं' इस पहले प्रश्न का उत्तर पिप्पलाद महर्षि ने दिया है कि हे गार्ग्य जैसे सूर्य के अस्त होते समय उसकी सब किरणें इस तेजोमण्डल सूर्य में प्रविष्ट हो कर एकीभूत हो जाती हैं। फिर सूर्य के उदय होते समय वह किरणों का समूह उस तेजोमण्डल सूर्य में से निकल कर बाहर फैलकर प्रकाश करता है। ठीक उसी प्रकार गाढ़ निद्रा के समय सब इन्द्रियाँ सब वागादि इन्द्रियों से उत्कृष्ट द्योतनादिगुणयुक्त मन में प्रविष्ट हो जाती हैं। इसलिये गाढ़ निद्रा के समय यह जीवात्मा न तो सुनती है, न देखती है, न सूंघती है, न स्वाद लेती है, न स्पर्श करती है, न बोलती है, न ग्रहण करती है, न चलती है, न मल त्याग करती है और न मैथुन का आनन्द ही भोगती है। भाव यह है कि उस समय दसों इन्द्रियों का सब कार्य सर्वथा बन्द हो जाता है तब सब लोग कहते हैं कि इस समय यह पुरुष सो रहा है। पतञ्जलि महर्षि ने कहा है—

'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।'

(योग० अ० १ पा० १ सू० ६)

प्रमाण १, विपर्यय २, विकल्प ३, निद्रा ४ और स्मृति ५ ॥ ६ ॥ ये पाँच चित्त की वृत्तियाँ हैं। उन में

'अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।'

(योग० अ० १ पा० १ सू० १०)

अभाव प्रत्यय का अवलम्बन करनेवाली वृत्ति को निद्रा कहते हैं ॥ १० ॥ इस से जान पड़ता है कि मन विलीन नहीं होता है। मन में ही सब इन्द्रियाँ विलीन होती हैं। इस से सिद्ध हो गया कि वाक् १, पाणि २, पाद ३, पायु ४, उपस्थ ५, श्रोत्र ६, चक्षु ७, घ्राण ८, रसना ९ और त्वचा १० ये देवता शरीर में शयन करते हैं। इस प्रकार पहले प्रश्न का उत्तर यहाँ दिया गया है ॥ २ ॥

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्राणयनादाहवनीयः प्राणः ॥३॥

अन्वयार्थ—(प्राणाग्नयः) प्राण अपानादिरूप पाँच अग्नियाँ (एव) निश्चय कर के (एतस्मिन्) इस (पुरे) पुरशब्दनिर्दिष्ट शरीर में (जाग्रति) जागती रहती हैं (ह) प्रसिद्ध (एषः) यह (अपानः) अपान वायु (वै) निश्चय कर के (गार्हपत्यः) गार्हपत्य अग्नि है और (व्यानः) व्यान वायु (अन्वाहार्यपचनः) अन्वाहार्यपचन नामक अग्नि यानी दक्षिणाग्नि है तथा (यत्) जो (गार्हपत्यात्) गार्हपत्य अग्नि से (प्रणीयते) उठा कर ले जाया जाता है वह (प्राणः) प्राण ही (प्राणयनात्) उठा कर ले जाये जाने के कारण से (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'कौन कौन इस शरीर में जागते हैं' इस दूसरे प्रश्न का उत्तर महात्मा पिप्पलाद ने दिया है कि हे गार्ग्य गाढ़ निद्रा के समय इस मनुष्यशरीररूप नौ द्वारवाले नगर में प्राण १, अपान २, व्यान ३, समान ४, उदान ५, रूप पाँच अग्नियाँ निश्चय कर के जागती रहती हैं। शरीररूप पुर के विषय में लिखा है—

'नवद्वारे पुरे ।'

(गी० अ० ५ श्लो० १३)

नव द्वार वाले शरीर में ॥ १३ ॥ यहाँ पर निद्रादशा में और जाग्रत् दशा में उपासना के लिये यज्ञ निरूपण किया गया है । यज्ञ में अग्नि की प्रधानता होती है, इसलिये प्राणादि पाँचों को अग्नि बतलाया गया है । आगे इस यज्ञ के रूपक में किसको किसके स्थान में कल्पना करनी चाहिये । यही स्पष्ट कहते हैं कि इस शरीर में अपान ही गार्हपत्य नामक यज्ञ की प्रधान अग्नि है और व्यान अन्वाहार्य पचन नामक दक्षिणाग्नि है । जिस से और अग्नियाँ बनाई जायँ ऐसे गार्हपत्य से आहवनीय बनाई जाती है । अतएव प्राण आहवनीय है । जैसे आहवनीय अग्नि गार्हपत्य अग्नि से बनाई जाती है वैसे ही प्राण भी अपान वायु से बनाया जाता है ॥ ३ ॥

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति समानः । मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानो य एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥४॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (उच्छ्वासनिःश्वासौ) ऊर्ध्वश्वास और अधःश्वास है (एतौ) ये दोनों (आहुती) अग्निहोत्र की दो आहुतियाँ हैं । (समम्) इन को जो समान भाव से सब ओर (नयति) ले जाता है (इति) इस से वह (समानः) समान कहलाता है । वही अध्वर्यु है (ह) प्रसिद्ध (मनः) मन (वाव) निश्चय कर के (यजमानः) यजमान है । (उदानः) उदान वायु (एव) निश्चय कर के (इष्टफलम्) याग का फल है । (यः) जो यह उदान (एनम्) इस (यजमानम्) मनरूप यजमान को (गमयति) प्राप्त कराता है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—यह जो मुख्य प्राण का श्वास-प्रश्वास के रूप में शरीर के बाहर निकलना और भीतर प्रवेश कर जाना है वही इस यज्ञ में दो आहुतियाँ हैं । इन दोनों आहुतियों को जो समान भाव से सब ओर ले जाता है उसी को समान कहते हैं । यह पूर्व तृतीय मंत्र के अनुसार अग्नि रूप होने पर भी आहुतियों का नेता होने के कारण इस यज्ञ में अध्वर्यु है और मन ही इस यज्ञ में यजमान है । उदान वायु ही इष्टफल यानी यज्ञ का फल है । यह उदान वायु मन को प्रतिदिन निद्रा के समय हृदय में परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कराता है । इस प्रकार से यहाँ तक दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया गया है ॥ ४ ॥

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति। देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति। दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥५॥

अन्वयार्थ—(अत्र) इस (स्वप्ने) स्वप्न के अवसर में (एषः) यह (देवः) द्योतनादिगुणयुक्त जीवात्मा (महिमानम्) करितुरगादि लक्षण महिमा को (अनुभवति) अनुभव करती है, यानी देखती है (यत्) जो (दृष्टम्) जागने में देखा हुआ होता है (दृष्टम्) उस देखे हुए को ही (अनुपश्यति) जीवात्मा स्वप्न में बार बार देखती है और (श्रुतम्) जाग्रत् अवस्था में जो सुना होता है (श्रुतम्) उस सुने हुए (अर्थम्) अर्थ यानी वचन को (एव) निश्चय कर के (अनुशृणोति) जीवात्मा स्वप्न में बार बार सुनती है (च) और (देशदिगन्तरैः) नाना देश तथा दिशाओं में (प्रत्यनुभूतम्) बार बार अनुभव किये हुए विषयों को (पुनः पुनः) बार बार स्वप्न में (प्रत्यनुभवति) अनुभव करती है। इतना ही नहीं (दृष्टम्) इस जन्म में देखे हुए को (च) और (अदृष्टम्) नहीं देखे हुए को (च) भी (श्रुतम्) सुने हुए को (च) और (अश्रुतम्) नहीं सुने हुए को (च) भी (अनुभूतम्) इस जन्म में अनुभव किये हुए को (च) और (अननुभूतम्) मस्तकच्छेदनादिक नहीं अनुभव किये हुए को (च) भी (सत्) विद्यमान को (च) और (असत्) नहीं विद्यमान को (च) भी (सर्वम्) सब को (पश्यति) जीवात्मा स्वप्न में देख लेती है (सर्वः) स्वयं सब द्रष्टा आदिक होता हुआ (पश्यति) देखता है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'कौन देवता स्वप्नों को देखता है' इस तीसरे प्रश्न का उत्तर पिप्पलाद महर्षि ने दिया है कि हे गार्ग्य स्वप्नावस्था में जीवात्मा ही करि, तुरङ्ग आदिक लक्षण अपनी महिमा का अनुभव करती है। जो जाग्रत् अवस्था में पहले कहीं पर कभी भी देखा है या सुना है उसी को स्वप्न में जीवात्मा बार बार देखती है या बार बार सुनती है। अनेक देश और दिशाओं में अनुभव की हुई वस्तुओं को बार बार स्वप्न में जीवात्मा अनुभव करती है। इतना ही नहीं इस जन्म में देखे हुए को और न देखे हुए को तथा सुने हुए को और न सुने हुए को तथा अनुभव किये हुए को और शिरश्छेदनादिक अनुभव न किये हुए को तथा

विद्यमान वस्तु को और नहीं विद्यमान वस्तु को भी जीवात्मा स्वप्न में देखती है। इस प्रकार स्वप्न में जीवात्मा विचित्र ढंग से समस्त वस्तुओं को देख लेती है। स्वयं जीवात्मा द्रष्टा, श्रोता, वक्ता आदिक सब कुछ होती हुई देखती है। स्वप्न के अवसर में पहले की बाह्य इन्द्रियों के उपरतव्यापार होने पर भी परब्रह्म नारायण से बनाये हुए स्वाप्निक शरीर और इन्द्रियादिक से युक्त जीवात्मा तत्तत् विषयों को अनुभव करती है। स्वाप्निक सृष्टि का कर्ता परमात्मा ही है। क्योंकि लिखा है—

'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते। न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते। न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान् पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्ता।'

(बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ३ श्रु० १०)

उस स्वप्न अवस्था में न रथ हैं, न रथ में जोतेजाने वाले अश्वादि हैं और न मार्ग ही हैं। परन्तु यह रथ, रथ में जोते जानेवाले अश्वादि तथा रथ के मार्गों को बनाता है। उस अवस्था में आनन्द, मोद और प्रमोद भी नहीं हैं किन्तु यह आनन्द मोद और प्रमोद को रचता है। वहाँ छोटे छोटे कुण्ड, सरोवर और नदियाँ नहीं हैं परन्तु परमात्मा ही कुण्ड, सरोवर और नदियों को बनाता है। निश्चय कर के वह परमात्मा स्वाप्निक वस्तुओं का कर्ता है ॥ १० ॥ और स्वप्न के विषय में लिखा है—

'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति।
समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने ॥'

(छा० उ० अ० ५ खं० २ श्रु० ६)

जिस समय काम्य कर्मों में स्वप्न में स्त्री को देखे तो उस स्वप्नदर्शन के होने पर उस कर्म में समृद्धि जाने ॥ ६ ॥ इस विषय पर श्रीभाष्य के सन्ध्याधिकरण में विशेष विमर्श किया गया है ॥ ५ ॥

स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यति। अथ यदैतस्मिञ्छरीर एतत्सुखं भवति ॥६॥

अन्वयार्थ—(स) वह जीवात्मा (यदा) जिस समय में (तेजसा) तेजस्वरूप परमात्मा से (अभिभूतः) अच्छी प्रकार संयुक्त (भवति) हो जाती है तब (अत्र) इस दशा में (एषः) यह (देवः) द्योतनादिगुण युक्त जीवात्मा (स्वप्नान्) रथादिक स्वप्नों को (न) नहीं (पश्यति) देखती है। अर्थात्

परब्रह्म की संपत्ति की विरहदशा में जीवात्मा स्वप्नों को देखता है (अथ) इस के अनन्तर (एतस्मिन्) इस (शरीरे) शरीर के रहने पर ही (यत्) जो (एतत्) यह वैषयिक (सुखम्) सुख है वह (भवति) होता है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—यह जीवात्मा जिस समय में तेजस्वरूप परमात्मा से अच्छी प्रकार संयुक्त हो जाती है। उस समय में स्वप्नों को नहीं देखती है। क्योंकि लिखा है—

'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति।'

(छा० उ० अ० ६ खं० ८ श्रु० १)

हे सोम्य उस समय में जीवात्मा परमात्मा से सम्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

'तेजसा सोम्य।'

(छा० उ० अ० ६ खं० ८ श्रु० ४)

हे प्रियदर्शन तेज से सम्पन्न होता है ॥ ४ ॥

'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः।'

(बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ३ श्रु० १४)

यहाँ पर यह पर पुरुष स्वयं तेजस्वरूप है ॥ १४ ॥

'यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्।'

(बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ३ श्रु २१)

जिस प्रकार अपनी प्रिया भार्या को आलिङ्गन करनेवाले पुरुष को न कुछ बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का इसी प्रकार यह जीवात्मा परमात्मा से आलिङ्गित होनेपर न कुछ बाहर का विषय जानती है न तो भीतर का ॥ २१ ॥ इससे सिद्ध हो गया कि परमात्मा की संपत्ति की विरहदशा में स्वप्नों को देखता है। यहाँ तक तृतीय प्रश्न का उत्तर है। इसके बाद 'वैषयिक सुख का हेतु कौन है' गार्ग्य ऋषि के इस चौथे प्रश्न का उत्तर पिप्पलाद महर्षि देते हैं कि हे गार्ग्य इस शरीर के रहने पर ही यह वैषयिक सुख होता है इससे सुख का हेतु शरीर है। क्योंकि लिखा है—

'न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।'

(छा० उ० अ० ८ खं० १२ श्रु० १)

सशरीर रहते हुए इस के प्रियाप्रिय का नाश नहीं हो सकता और अशरीर होने पर इसे प्रिय और अप्रिय स्पर्श नहीं कर सकते हैं ॥ १ ॥ यहाँ पर चौथे

प्रश्न का भी उत्तर समाप्त हो गया ॥ ६ ॥

स यथा सोम्य वयांसि वासो वृक्षं संप्रतिष्ठन्ते।
एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥७॥

अन्वयार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (सः) वह दृष्टान्त है कि (यथा) जिस प्रकार (वयांसि) बहुत से पक्षी (वासो वृक्षम्) सायंकाल में अपने निवासरूप वृक्षपर आकर (संप्रतिष्ठन्ते) आराम से ठहरते हैं (एवम्) इसी प्रकार (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय कर के (तत्) वह आगे कहा जानेवाला (सर्वम्) पृथ्वी तत्त्व से लेकर प्राण तक सब के सब (परे) पर (आत्मनि) ब्रह्म नारायण में (संप्रतिष्ठते) सुखपूर्वक आश्रय पाते हैं ॥७॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में 'सब इन्द्रियादिक किसमें स्थित रहते हैं' इस पाँचवें प्रश्न का उत्तर पिप्पलाद महर्षि देते हैं कि हे प्यारे गार्ग्य आकाश में उड़नेवाले पक्षी सब जिस प्रकार सायंकाल में लौटकर अपने निवासभूत वृक्षपर आराम से ठहरते हैं। ठीक उसी प्रकार आगे बतलाये जानेवाले पृथ्वी से लेकर प्राण तक सब ही तत्त्व परब्रह्म परमात्मा में सुखपूर्वक आश्रय लते हैं। क्योंकि लिखा है—

'नारायणे प्रलीयन्ते ।'

(नारायणो० श्रु० १)

नारायण में सब तत्त्व लीन हो जाते हैं ॥ १ ॥ इससे सिद्ध हो गया कि 'सब नारायण में स्थित रहते हैं' ॥ ७ ॥

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक् च स्पर्शयितव्यं च वाक् च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहंकारश्चाहङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥८॥

अन्वयार्थ—(पृथिवी) स्थूल कार्यरूपा पृथ्वी (च) और (पृथिवीमात्रा) सूक्ष्म पृथ्वी की पूर्वावस्था (च) भी (आपः) जल (च) और (आपोमात्रा) सूक्ष्म जल की पूर्वावस्था (च) भी (तेजः) स्थूलतेज (च) और (तेजोमात्रा) सूक्ष्म तेज की पूर्वावस्था (च) भी (वायुः) वायु (च) और (वायुमात्रा) सूक्ष्म वायु की पूर्वावस्था (च) भी (आकाशः) आकाश (च) और (आकाशमात्रा) आकाश की पूर्वावस्था (च) भी (चक्षुः) नेत्र (च) और (द्रष्टव्यम्) देखनेयोग्य वस्तु (च) भी (श्रोत्रम्) कान (च) और (श्रोतव्यम्) सुननेयोग्य वस्तु (च) भी (घ्राणम्) घ्राणेन्द्रिय (च) और (घ्रातव्यम्) सूंघनेयोग्य वस्तु (च) भी (रसः) रसना इन्द्रिय (च) और (रसयितव्यम्) स्वाद लेनेयोग्य वस्तु (च) भी (त्वक्) त्वक् इन्द्रिय (च) और (स्पर्शयितव्यम्) स्पर्श करनेयोग्य वस्तु (च) भी (वाक्) वाणी (च) और (वक्तव्यम्) बोलनेयोग्य वस्तु (च) भी (हस्तौ) दोनों हाथ (च) और (आदातव्यम्) दोनों हाथों से ग्रहण करनेयोग्य वस्तु (च) भी (उपस्थः) जननेन्द्रिय आनन्द देनेयोग्य वस्तु (च) भी (पायुः) गुदा इन्द्रिय (च) और (विसर्जयितव्यम्) मलरूप से त्यागनेयोग्य वस्तु (च) भी (पादौ) दोनों चरण (च) और (गन्तव्यम्) चलनेयोग्य वस्तु (च) भी (मनः) मन (च) और (मन्तव्यम्) मनन करनेयोग्य वस्तु (च) भी (बुद्धिः) बुद्धि (च) और (बोद्धव्यम्) जाननेयोग्य वस्तु (च) भी (अहङ्कारः) अहंकार (च) और (अहंकर्तव्यम्) अहंकार करनेयोग्य वस्तु (च) भी (चित्तम्) चित्त (च) और (चेतितव्यम्) चिन्तन करनेयोग्य वस्तु (च) भी (तेजः) प्रकाश (च) और (विद्योतितव्यम्) प्रकाश करनेयोग्य वस्तु (च) भी (प्राणः) प्राण (च) और (विधारयितव्यम्) प्राण के द्वारा धारण करनेयोग्य वस्तु (च) भी परमात्मा में स्थित हैं ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—पृथ्वी और पृथ्वी की पूर्वावस्था गन्ध-तन्मात्रा तथा जल और जल की पूर्वावस्था रस-तन्मात्रा तथा तेज और तेज की पूर्वावस्था रूप तन्मात्रा तथा वायु और वायु की पूर्वावस्था स्पर्श-तन्मात्रा तथा आकाश और आकाश की पूर्वावस्था शब्द-तन्मात्रा, इस प्रकार अपनी मात्राओं के सहित पाँचों महाभूत तथा नेत्र और देखनेयोग्य पदार्थ, कर्ण और सुननेयोग्य पदार्थ, नासिका और सूंघनेयोग्य पदार्थ, जिह्वा और स्वाद लेनेयोग्य पदार्थ, त्वचा और छूनेयोग्य पदार्थ, वाणी और बोलनेयोग्य वस्तु, दोनों हाथ और उनके द्वारा ग्रहण करनेयोग्य सब वस्तुएं, जननेन्द्रिय और उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला मैथुन सुख, गुदा इन्द्रिय और मलरूप से त्यागनेयोग्य वस्तु, चरण तथा चलनेयोग्य स्थान, मन और मनन करनेयोग्य पदार्थ बुद्धि और जाननेयोग्य पदार्थ, अहंकार और अहंकार करनेयोग्य पदार्थ,

चित्त और चिन्तन करनेयोग्य पदार्थ, प्रकाश और प्रकाश करनेयोग्य पदार्थ, प्राण और प्राण के द्वारा धारण करनेयोग्य सब शरीर अर्थात् चेतन अचेतन रूप तथा कर्तृकरणकर्म रूप समस्त प्रपञ्च परब्रह्म नारायण के ही आश्रित हैं। सुबलोपनिषद् में भी लिखा है—

'चक्षुश्च द्रष्टव्यं च। श्रोत्रं च श्रोतव्यं च। घ्राणं च घ्रातव्यं च। जिह्वा च रसयितव्यं च। त्वक् च स्पर्शयितव्यं च। मनश्च मन्तव्यं च। बुद्धिश्च बोद्धव्यं च। अहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यं च। चित्तं च चेतितव्यं च। वाक् च वक्तव्यं च। हस्तौ चादातव्यं च पादौ च गन्तव्यं च। पायुश्च विसर्जयितव्यं च। उपस्थश्चानन्दयितव्यं च नारायणः।'

(सुबा० उ० खं० ६)

नेत्र और देखनेयोग्य पदार्थ। कान और सुननेयोग्य पदार्थ। नाक और सूँघनेयोग्य पदार्थ। जिह्वा और स्वाद लेने योग्य पदार्थ। त्वचा और छूनेयोग्य पदार्थ। मन और मनन करनेयोग्य पदार्थ। बुद्धि और जाननेयोग्य पदार्थ। अहंकार और अहंकार करनेयोग्य पदार्थ। चित्त और चिन्तन करनेयोग्य पदार्थ। वाणी और बोलनेयोग्य शब्द। दोनों हाथ और उनके द्वारा ग्रहण करनेयोग्य सब वस्तु से दोनों चरण और उनके द्वारा चलनेयोग्य स्थान। गुदा, इन्द्रिय और उसके द्वारा त्यागा जानेवाला मल। उपस्थ इन्द्रिय और मैथुन का सुख। ये सब नारायण में प्रतिष्ठित हैं, इस से चराचर नारायणात्मक है ॥ ६ ॥ इस से सिद्ध हो गया कि ये सब परमात्मा के आश्रित हैं ॥ ८ ॥

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥९॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय करके (एषः) यह जीवात्मा (द्रष्टा) देखने वाला (स्प्रष्टा) स्पर्श करनेवाला (श्रोता) सुननेवाला (घ्राता) सूँघनेवाला (रसयिता) स्वाद लेनेवाला (मन्ता) मनन करनेवाल (बोद्धा) जाननेवाला (कर्ता) कर्म करनेवाला (विज्ञानात्मा) विज्ञानस्वरूप (पुरुषः) शरीर में शयन करनेवाला पुरुष है (सः) वह जीवात्मा (अक्षरे) अविनाशी (परे) सर्वोत्कृष्ट (आत्मनि) परमात्मा में (संप्रतिष्ठते) भली भाँति स्थित होता है ॥९॥

विशेषार्थ—देखनेवाला, पूछनेवाला, सुननेवाला, सूंघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला, समस्त कर्म करनेवाला जो विज्ञानस्वरूप पुरुष—जीवात्मा है यह भी उन परम अविनाशी परब्रह्म नारायण में ही स्थिति पाता है। श्रीवररङ्गपूर्ण स्वामी के छात्रोत्तम भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के और

'ज्ञोऽत एव।'

(शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १६)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के चौथे प्रश्न की नवमी श्रुति के पूर्वार्द्ध को उद्धृत किया है॥ ६॥

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (ह) प्रसिद्ध (यः) जो उपासक (वै) निश्चय कर के (तत्) उस (अच्छायम्) ज्ञानसंकोचक कर्मरहित (अशरीरम्) प्राकृत शरीररहित (अलोहितम्) प्राकृतरूपों से रहित (शुभ्रम्) स्वयंप्रकाश या उज्जवल (अक्षरम्) अविनाशी परमात्मा को (वेदयते) जानता है (सः) वह उपासक (परम्) सबसे श्रेष्ठ (अक्षरम्) अविनाशी परवासुदेव को (एव) निश्चय करके (प्रतिपद्यते) प्राप्त हो जाता है और (यः) जो कोई (तु) भी (सर्वज्ञः) परमात्मा को पाकर सर्वज्ञ हो जाता है (सः) वह उपासक (सर्वः) सर्वकामयुक्त (भवति) हो जाता है (तत्) उस विषय में (एषः) यह (श्लोकः) अगला श्लोक है॥ १०॥

विशेषार्थ—हे प्रियदर्शन गार्ग्य जो कोई भी मनुष्य उस ज्ञानसंकोचक कर्मरहित प्राकृत शरीररहित प्राकृत रूपरहित स्वप्रकाश विशुद्ध अविनाशी परमात्मा को जान लेता है, वह निश्चय कर के परम अक्षर—अविनाशी परवासुदेव भगवान् को प्राप्त हो जाता है और जो कोई परमात्मा को प्राप्त कर लेता है वह सर्वज्ञ तथा सर्वकामयुक्त हो जाता है। इस विषय में निम्नलिखित श्रुति प्रमाण है। इस श्रुति में 'अशरीरम्' इत्यादि पद से प्राकृत हेय शरीर परमात्मा का निषेध किया गया है। दिव्यमङ्गलमय विग्रह का निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि लिखा है—

(सर्वम्) सब लोकों में (आविवेश) कामचार प्रविष्ट हो जाता है (इति) इस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—हे प्रियदर्शन गार्ग्य जिस परब्रह्म परमात्मा में प्राण १, अपान २, व्यान ३, समान ४, उदान ५ ये पाँचों प्राण और पृथ्वी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५ ये पाँचों महाभूत तथा वाक् १, पाणि २, पाद ३, पायु ४, उपस्थ ५, श्रोत्र ६, चक्षु ७, घ्राण ८, रसना ९, त्वचा १० ये दश इन्द्रियाँ और मन १, बुद्धि २, चित्त ३, अहंकार ४ ये अन्तःकरण तथा जीवात्मा भली भाँति प्रतिष्ठित होते हैं। उस निर्मल निर्विकार अविनाशी परमात्मा को जो कोई जान लेता है वह सर्वज्ञ हो जाता है और निश्चय कर के सब लोकों में स्वेच्छानुसार प्रवेश करनेवाला हो जाता है। क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्म-मिथुन आत्मानन्दः।'

(छा० उ० अ० ७ खं० २५ श्रु० २)

यह जीवात्मा इस प्रकार परमात्मा को देखता हुआ तथा मनन करता हुआ और भली भाँति जानता हुआ आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन और आत्मानन्द हो जाता है ॥ २ ॥

'तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।'

(छा० उ० अ० ७ खं० २५ श्रु० २)

सब लोकों में उस जीवात्मा की यथेच्छगति होती है ॥ २ ॥ इस श्रुति में 'इति' पद से चौथे प्रश्न की समाप्ति का लक्ष्य कराया गया है। यहाँ पर 'प्रश्नोपनिषद्' का चौथा प्रश्न समाप्त हो गया ॥ ११ ॥

॥ अथ पञ्चमप्रश्नः ॥

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) गार्ग्य ऋषि के प्रश्न के बाद (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इस पिप्पलाद महर्षि से (शैब्यः) शिवि का पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम नामवाले ऋषि ने (पप्रच्छ) पूछा (भगवन्) हे पूजार्ह भगवन्! (मनुष्येषु) मनुष्यों में (सः) वह (यः) जो अधिकारी पुरुष (ह) प्रसिद्ध

विशेषार्थ—देखनेवाला, पूछनेवाला, सुननेवाला, सूंघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला, समस्त कर्म करनेवाला जो विज्ञानस्वरूप पुरुष—जीवात्मा है यह भी उन परम अविनाशी परब्रह्म नारायण में ही स्थिति पाता है। श्रीवररङ्गपूर्ण स्वामी के छात्रोत्तम भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के और

'ज्ञोऽत एव।'

(शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १६)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के चौथे प्रश्न की नवमी श्रुति के पूर्वार्द्ध को उद्धृत किया है॥ ६॥

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः॥१०॥

अन्वयार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (ह) प्रसिद्ध (यः) जो उपासक (वै) निश्चय कर के (तत्) उस (अच्छायम्) ज्ञानसंकोचक कर्मरहित (अशरीरम्) प्राकृत शरीररहित (अलोहितम्) प्राकृतरूपों से रहित (शुभ्रम्) स्वयंप्रकाश या उज्जवल (अक्षरम्) अविनाशी परमात्मा को (वेदयते) जानता है (सः) वह उपासक (परम्) सबसे श्रेष्ठ (अक्षरम्) अविनाशी परवासुदेव को (एव) निश्चय करके (प्रतिपद्यते) प्राप्त हो जाता है और (यः) जो कोई (तु) भी (सर्वज्ञः) परमात्मा को पाकर सर्वज्ञ हो जाता है (सः) वह उपासक (सर्वः) सर्वकामयुक्त (भवति) हो जाता है (तत्) उस विषय में (एषः) यह (श्लोकः) अगला श्लोक है॥ १०॥

विशेषार्थ—हे प्रियदर्शन गार्ग्य जो कोई भी मनुष्य उस ज्ञानसंकोचक कर्मरहित प्राकृत शरीररहित प्राकृत रूपरहित स्वप्रकाश विशुद्ध अविनाशी परमात्मा को जान लेता है, वह निश्चय कर के परम अक्षर—अविनाशी परवासुदेव भगवान् को प्राप्त हो जाता है और जो कोई परमात्मा को प्राप्त कर लेता है वह सर्वज्ञ तथा सर्वकामयुक्त हो जाता है। इस विषय में निम्नलिखित श्रुति प्रमाण है। इस श्रुति में 'अशरीरम्' इत्यादि पद से प्राकृत हेय शरीर परमात्मा का निषेध किया गया है। दिव्यमङ्गलमय विग्रह का निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि लिखा है—

(वै) निश्चय कर के (प्रायणान्तम्) मरणपर्यन्त (तत्) उस (ओङ्कारम्) ओङ्कार को (अभिध्यायीत) भली भाँति ध्यान करता है (सः) वह प्रणवोपासक (तेन) उस ओङ्कार से (वाव) निश्चय कर के (कतमम्) किस (लोकम्) लोक को (जयति) जीतता है अर्थात् प्राप्त करता है (इति) यह मेरा प्रश्न है–

विशेषार्थ—गार्ग्य ऋषि के प्रश्न का उत्तर होने के बाद शिबि के पुत्र सत्यकाम ऋषि ने नियमानुसार सविधि पिप्पलाद महर्षि के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। तदनन्तर श्रद्धा से विनयपूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् जो मनुष्य मरणपर्यन्त ओङ्कार की भली भाँति उपासना करता है उसे प्रणवोपासना के द्वारा कौन से लोक की प्राप्ति होती है? क्योंकि लिखा है—

'ओमित्यनेनैतदुपासीताजस्रम् ।'

(मैत्रायण्युप० प्रपाठक० ५ श्रु० ४)

ओङ्कार द्वारा सर्वदा परब्रह्म की उपासना करे ॥ ४ ॥

'ओमित्यात्मानं युञ्जीत ।'

(नारायणो० श्रु० ७६)

ओङ्कार से आत्मा को संयोग करे ॥ ७६ ॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ओङ्कार क्यों कहा जाता है। इसका उत्तर 'अथर्वशिर उपनिषद्' में लिखाहै—

'अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यते—ओङ्कारः ।'

(अथर्वशिर० उप० श्रु० ४)

ओङ्कार क्यों कहा जाता है जिसका उच्चारण करने से प्राणादिक ऊपर को जाते हैं इससे ओङ्कार कहा जाता है ॥ ४ ॥ इस श्रुति में 'ओङ्कारोपासक को किस लोक की प्राप्ति होती है' यह प्रश्न किया गया है।

'ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः ।'

(शा० मी० १।३।१२)

के श्रीभाष्य में इस श्रुति को यतिराज ने उद्धृत किया है ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम परं चापरं ब्रह्म यदोङ्कारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥२॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) वह पिप्पलाद महर्षि (तस्मै) उस सत्यकाम ऋषि के अर्थ (उवाच) कहा (सत्यकाम) हे सत्यकाम (यत्)

जो (ओङ्कारः) ओंकार है (एतत्) यह (वै) निश्चय कर के (परम्) पर यानी कारण (च) और (अपरम्) अपर यानी कार्य (ब्रह्म) ब्रह्म है (तस्मात्) उस कारण से (विद्वान्) उपासक पुरुष (एतेन) इस ओङ्काररूप (आयतनेन) मार्ग के अवलम्ब से (एव) निश्चय कर के (एकतरम्) पर या अपर किसी एक ब्रह्म की (अन्वेति) उपासना करता है ॥ २ ॥

विशेषार्थ—प्रसिद्ध उस पिप्पलाद महर्षि ने सत्यकाम ऋषि से कहा कि हे प्यारे सत्यकाम यह जो ओंकार है। यही पर और अपर ब्रह्म है। क्योंकि लिखा है—

'सर्वमोङ्कार एव ।'

(माण्डूक्यो० श्रु० १)

सब ओङ्कार ही है ॥ १ ॥ यह श्रुति नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् की चौथी उपनिषद् की दूसरी श्रुति में है और नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद् के पहले खण्ड में भी है। यह रामोत्तरतापिन्युपनिषद् की पहली श्रुति में भी है। ओङ्कार ही कारण और कार्य ब्रह्म है। इस कारण से उपासना करनेवाला मनुष्य इस ओङ्काररूप मार्ग के अवलम्बन से ही पर या अपर किसी एक ब्रह्म की उपासना करता है और अपनी उपासना के अनुसार फल को पाता है। श्रीकाञ्चीपूर्ण स्वामी के सहवासी भगवद्रामानुजाचार्य ने

'ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः ।'

(शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० १२)

के श्रीभाष्य में "प्रश्नोपनिषद्" के पाँचवें प्रश्न की दूसरी श्रुति को उद्धृत किया है ॥ २ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसंपद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संपन्नो महिमानमनुभवति ॥३॥

अन्वयार्थ—(सः) वह उपासक (यदि) जो (एकमात्रम्) एकमात्रावाले अपरब्रह्मवाचक ह्रस्व प्रणव से (अभिध्यायीत) भलीभाँति उपासना करता है (सः) वह उपासक (तेन) उस एक मात्रावाले अपर ब्रह्मवाचक ह्रस्व प्रणव की उपासना से (एव) निश्चय कर के (संवेदितः) ज्ञान को प्राप्त हुआ (तूर्णम्) शीघ्र (एव) ही (जगत्याम्) पृथ्वी में (अभिसंपद्यते) अभ्यर्हितश्रेष्ठ उत्पन्न हो जाता है (तम्) उस उपासक को (ऋचः) ऋग्वेद के मंत्र (मनुष्यलोकम्) मनुष्यशरीर को (उपनयन्ते) प्राप्त करा देते हैं (सः) वह (पुरुष)

पुरुष (तत्र) उस मनुष्यशरीर में (तपसा) अनशनादिक तपस्या से (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से (श्रद्धया) और आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धा से (संपन्नः) संपन्न हो जाता है तब (महिमानम्) श्रेयसाधक भगवदुपासना को (अनुभवति) अनुष्ठान करता है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—जो उपासक एक मात्रावाले अपरब्रह्म वाचक ह्रस्वप्रणव से अक्षर ब्रह्म की उपासना करता है। वह उपासक मरने के बाद उस एकमात्रावाले अपर-ब्रह्म वाचक ह्रस्व प्रणव की उपासना से ही अपनी सत्ता को प्राप्त हुआ शीघ्र ही पृथ्वी में अत्यन्त श्रेष्ठ भारतवर्ष में उत्पन्न होता है। उस उपासक को ऋग्वेद की ऋचाएँ मनुष्यशरीर को प्राप्त करा देती हैं और वह उपासक उस मनुष्यशरीर में तपस्या, ब्रह्मचर्य और आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धा से संपन्न हो जाता है। तदनन्तर वह पुरुष ऐहिक ऐश्वर्य का उपभोग करता हुआ कल्याणसाधक परब्रह्म नारायण की उपासना का अनुष्ठान करता है। ऋग्वेद के विषय में लिखा है—

'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ।'

(मी॰मां॰ अ॰ २ पा॰ १ सू॰ ३५)

जिसमें अर्थवश से पाद की व्यवस्था होती है उसी को ऋग्वेद कहते हैं ।३५।

'एकविंशतिधा बह्वृच्यः ।'

(महाभाष्य॰ अ॰ १ पा॰ १ आह्नि॰ १)

इक्कीस शाखाएँ ऋग्वेद की हैं ॥ १ ॥ तप और ब्रह्मचर्य के विषय में लिखा है—

'वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः ॥

(जाबालद॰ उ॰ खं॰ २ श्रु॰ ३)

वेदोक्त प्रकार से और कृच्छ्रचान्द्रायणादिक से जो शरीर को सुखाना है उसी को बुधजन तप कहते हैं ॥ ३ ॥

'कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम् ।
ऋतौ भार्यां तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥'

(जाबालद॰ उ॰ खं॰ १ श्रु॰ १३)

मन, वाणी और शरीर के द्वारा पर स्त्रियों के सहवास का परित्याग और ऋतुकाल में धर्मबुद्धि से केवल अपनी ही पत्नी से विषय भोग करना यही ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥ १३ ॥ प्रस्तुत प्रश्नोपनिषद् की इस श्रुति में अपर कार्य ब्रह्म के ऐहिक और आमुष्मिक दो प्रकार के विभाग कर के ह्रस्व प्रणवोपासना से

ऐहिक मनुष्यलोक की प्राप्तिरूप फल का प्रतिपादन किया गया है ॥ ३ ॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते । सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते देवलोकम् । स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥४॥

अन्वयार्थ—(अथ) और (यदि) जो (द्विमात्रेण) दो मात्रावाले अपरब्रह्मवाचक दीर्घ प्रणव से (मनसि) मन में (संपद्यते) अपरब्रह्म की उपासना करता है (सः) वह द्विमात्रोपासक (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक में स्थित (देवलोकम्) चन्द्रदेव के लोक को (यजुर्भिः) यजुर्वेद के मंत्रों से (उन्नीयते) ऊपर की ओर ले जाया जाता है (सः) दो मात्रावाले अपरब्रह्मवाचक दीर्घप्रणव की उपासना करनेवाला (सोमलोके) चन्द्रलोक में (विभूतिम्) आमुष्मिक ऐश्वर्य को (अनुभूय) भोगकर पुण्य का अवसान होनेपर (पुनः) फिर (आवर्तते) मृत्युलोक में लौट आता है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—जो उपासक दो मात्रावाले अपरब्रह्मवाचक दीर्घ प्रणव से मन में अपरब्रह्म की उपासना करता है वह द्विमात्रोपासक मरने के बाद अन्तरिक्ष लोक में स्थित चन्द्रदेव के लोक को यजुर्वेद के मंत्रों से ऊपर की ओर पहुँचाया जाता है और वहाँ पर नाना प्रकार के आमुष्मिक ऐश्वर्य को भोगकर अपनी उपासना के पुण्य का क्षय हो जानेपर पुनः मृत्युलोक में ही आ जाता है । यजुर्वेद के विषय में लिखा है—

'शेषे यजुःशब्दः ।'

(मीमां० अ० २ पा० १ सू० ३७)

शेष में यजुर्वेद कहा जाता है ॥ ३७ ॥

'एकशतमध्वर्युशाखाः ।'

[महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्निक० १]

एक सौ एक शाखाएँ यजुर्वेद की हैं ॥ १ ॥ अब यहाँ पर प्रश्न होता है कि अन्तरिक्ष लोक कौन है । इसका उत्तर यह लिखा है—

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।'

(योगशा० अ० १ पा० १ सू० २४]

'तस्य प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोको मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्षलोकः।

(व्यासभाष्य)

सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है।। २४ ।। उस भुवन का विस्तार सात लोक हैं । अवीची नाम के स्थल से लेकर सुमेरु पर्वत की पीठ तक भूलोक है और सुमेरु की पीठ से लेकर ध्रुवपर्यन्त नक्षत्र, ग्रह, तारा आदिकों से सुशोभित अन्तरिक्षलोक है । इस श्रुति में दो मात्रावाले अपरब्रह्मवाचक दीर्घप्रणवोपासना से आमुष्मिक अन्तरिक्ष शब्दोपलक्षित लोक के भोग की प्राप्तिरूप फल का प्रतिपादन किया गया है ।। ४ ।।

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परमपुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये संपन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम् । एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते । तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥५॥

अन्वयार्थ—(पुनः) फिर (यः) जो उपासक (त्रिमात्रेण) तीन मात्रा वाले परब्रह्मवाचक प्लुत (ओम्) ओम् (इति) इस प्रकार के (एतेन) इस (अक्षरेण) अक्षर से (एव) निश्चय कर के (एतम्) इस (परमपुरुषम्) परमात्मा को (अभिध्यायीत) निरन्तर ध्यान यानी उपासना करता है (सः) वह उपासक (तेजसी) तेजोमण्डल (सूर्ये) सूर्यलोक में (संपन्नः) प्राप्त हो जाता है (यथा) जैसे (पादोदरः) सर्प (त्वचा) केंचुली से (विनिर्मुच्यते) छूट जाता है (एवम्) ऐसे ही (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय कर के (सः) वह प्लुतप्रणवोपासक (पाप्मना) पाप से (विनिर्मुक्तः) सर्वथा छूटा हुआ हो जाता है । इस के बाद (सः) वह पुरुष (सामभिः) सामवेद के मंत्रों कर के (ब्रह्मलोकम्) भगवल्लोक वैकुण्ठ को (उन्नीयते) ऊपर की ओर ले जाया जाता है (एतस्मात्) इस (जीवघनात्) जीवसमुदायरूप संसारमण्डल से (परात्) पर यानी परिशुद्धात्मा उस से (परम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (पुरिशयम्) सबके शरीर में शयन करनेवाले सर्वान्तर्यामी (पुरुषम्) निरुपाधिक पुरुष शब्दवाच्य परब्रह्म परमात्मा को (ईक्षते) साक्षात् कर लेता है (तत्) उस विषय में (एतौ) ये दो अगले (श्लोकौ) श्लोक (भवतः) हैं ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—जो कोई उपासक तीनमात्रावाले परब्रह्मवाचक प्लुत ओऽम् इस अक्षर के द्वारा परब्रह्म नारायण की उपासना करता है वह मरने के बाद तेजो मण्डल सूर्यलोक में पहुँच जाता है । जैसे सर्प केंचुली से छूटता है वैसे ही वह उपासक सब पापों से मुक्त हो जाता है । इस के बाद

उस उपासक को सामवेद के मंत्र भगवल्लोक वैकुण्ठ में सर्वोपरि पहुँचा देते हैं। वहाँ पर वह उपासक जीवसमुदायरूप चेतन तत्त्व से अत्यन्त श्रेष्ठ सब के शरीर में सोनेवाले सर्वान्तर्यामी परब्रह्म नारायण को देख लेता है। इस विषय में ये दो अगले मंत्र हैं। सामवेद के विषय में लिखा है—

'गीतिषु सामाख्या।'

(मी० अ० २ पा० १ सू० ३६)

गान में सामवेद नाम होता है ॥ ३६ ॥

'सहस्रवर्त्मा सामवेदः।'

(महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्नि० १)

सामवेद की एक हजार शाखाएँ हैं ॥ १ ॥ इस श्रुति में 'ब्रह्मलोकम्' पद का भगवल्लोक वैकुण्ठ अर्थ होता है। क्योंकि लिखा है—

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्।'

(श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १८)

जिस नारायण ने सब से पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया है ॥ १८ ॥

'नारायणाद् ब्रह्मा जायते।'

(नारायणोप० श्रु० १)

नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ और लिखा है—

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।'

(सुबालो० खं० ६)

विष्णु भगवान् के उस श्रेष्ठ स्थान वैकुण्ठ को सर्वदा सूरि लोग देखते हैं ॥६॥

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।'

(कठो० अ० १ व० ३ श्रु० ९)

वह भक्त संसारमार्ग से पार होकर विष्णु भगवान् के उस श्रेष्ठ स्थान वैकुण्ठ को प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि 'पुरुष' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण है इसमें क्या प्रमाण है ? इसका उत्तर यह लिखा है—

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।'

(ऋग्वेद अ० ८ म० १० अ० ४ अनु० ७ सू० ९ मं० १)

हजारों मस्तकवाला परब्रह्म नारायण है ॥ १ ॥ (शुक्लयजुर्वे० अ० ३१ मं० १) और (सामवे० पूर्वार्चि० प्रपाठक० ६ सूक्त० १३ मं० ३) में भी यह मंत्र है।

'सहस्रबाहुः पुरुषः ।'

(अथर्ववे० काण्ड १६ अनु० १ सू० ६ मं० १)

हजारों बाहुवाला नारायण है ॥ १ ॥

'योसावसौ पुरुषः ।'

(ईशो० श्रु० १६)

सूर्यमण्डल में जो वह नारायण है ॥ १६ ॥

'पुरुषान्न परं किञ्चित् ।'

(कठोप० अ० १ व० ३ श्रु० ११)

नारायण से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है ॥ ११ ॥

'उपासते पुरुषं ये ह्यकामाः ।'

(मुण्डको० मुं० ३ खं० २ श्रु० १)

जो निष्काम भक्त परब्रह्म नारायण की उपासना करते हैं ॥ १ ॥

'हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते ।'

(छा० उ० अ० १ खं० ६ श्रु० ६)

हिरण्मय परब्रह्म नारायण देखा जाता है ॥ ६ ॥

'तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा महारजनं वासः ।'

(बृह० उ० अ० २ ब्रा० ३ श्रु० ६)

जैसा हल्दी में रङ्गा हुआ वस्त्र होता है वैसा ही नारायण का रूप है ॥६॥

'वेदाहमेतं पुरुषम् ।'

(श्वे० अ० ३ श्रु० ८)

इस परब्रह्म नारायण को मैं जानता हूँ ॥ ८ ॥

'सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषः ।'

(शतप० १३।६।२।१)

वह नारायण इस शरीररूप नगर में सोता है इससे पुरुष कहा जाता है ॥१॥

'अनेन विधिना कृत्वा स्नपनं पुरुषस्य तु ।'

(बोधायनसूत्र० विष्णवाराधनप्रकर०)

इस विधि से नारायण का स्नपन कर के

'दीपवत्पुरुषं ध्यायेत् ।'

(विष्णुस्मृ० अध्या० ९८)

दीपक के समान परब्रह्म नारायण का ध्यान करे ॥ ९८ ॥

'एष वै पुरुषो विष्णुः ।'

(शंखस्मृ० अ० ७)

यह विष्णु परब्रह्म नारायण है ॥ ७ ॥

'सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।'

(गी० अ० ११ श्लो० १८)

आप सनातन परब्रह्म नारायण हैं ऐसा मेरा मत है ॥ १८ ॥

'अव्ययः पुरुषः साक्षी ।'

(विष्णुस० स्तो० श्लो० २)

अव्यय १, पुरुष २, साक्षी ३ ये नारायण के नाम हैं ॥ २ ॥

'सर्वलोकपतिः साक्षात्पुरुषः प्रोच्यते हरिः ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽन्यः पुरुशब्दभाक् ॥'

(नरसिंहपु०)

अखिल ब्रह्माण्डनायक साक्षात् परब्रह्म नारायण पुरुष कहे जाते हैं। उस कमलनयन भगवान् के बिना दूसरा कौन पुरुषशब्द से कहा जा सकता है।

'पुंसंज्ञे तु शरीरेऽस्मिन् शयनात्पुरुषो हरिः ।
शकारस्य षकारोऽयं व्यत्ययेन प्रयुज्यते ॥
यद्वा पुरे शरीरेऽस्मिन्नास्ते स पुरुषो हरिः ।
यदि वा पुरवासीति पुरुषः प्रोच्यते हरिः ॥
यदि वा पूर्वमेवासमिहेति पुरुषं विदुः ।
यदि वा बहुदानाद्वै विष्णुः पुरुष उच्यते ॥
पूर्णत्वात्पुरुषो विष्णुः पुराणत्वाच्च शार्ङ्गिणः ।
पुराणभजनाचापि विष्णुः पुरुष ईर्यते ॥'

(पद्मपुराण)

पुं नाम इस शरीर में सोने से नारायण भगवान् पुरुष हैं। शकार का इस पुरुष शब्द में षकार व्यत्यय से प्रयोग किया जाता है। अथवा इस शरीर में नारायण भगवान् रहते हैं इससे पुरुष कहे जाते हैं या शरीर में वास करते हैं इससे परब्रह्म नारायण पुरुष कहे जाते हैं। अथवा इस संसार में पहले से नारायण थे इससे महर्षि लोग उनको पुरुष जानते हैं। या बहुत दान देने से ही विष्णु भगवान् पुरुष शब्द से कहे जाते हैं। नारायण भगवान् के पूर्ण होने से विष्णु कहे जाते हैं अथवा सबसे पुराने होने से नारायण

पुरुष कहे जाते हैं। या पुराण के सेवन करने से परब्रह्म नारायण पुरुष कहे जाते हैं।

'पुराणपुरुषो यज्ञः पुरुषः पुरुषोत्तमः।'

(अभिधानको०)

पुराणपुरुष १, यज्ञ २, पुरुष ३, पुरुषोत्तम ४ ये परमात्मा नारायण के नाम हैं। ये श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और कोश प्रमाण हैं कि 'पुरुष' शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण है। यतीन्द्र भगवद्रामानुजाचार्य ने

'ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः।'

(मी० शा० अ० १ पा० ३ सू० १२)

के श्रीभाष्यमें 'प्रश्नोपनिषद्' के पाँचवें प्रश्न की पाँचवीं श्रुति के

'एतस्माज्जीवघनात्परात्परम्।'

इस खण्ड को उद्धृत किया है। इस श्रुति में तीन मात्रावाले परब्रह्मवाचक प्लुतप्रणव से परमात्मा की उपासना करनेवालों को परब्रह्म प्राप्त होता है, यह स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है ॥ ५ ॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्यान्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥६॥

अन्वयार्थ—(अनिविप्रयुक्ताः) अत्यन्तद्रुतोच्चारणरहित (अन्योन्यसक्ताः) परस्पर संबद्ध (प्रयुक्ताः) प्रयुक्त की हुई (तिस्रः) प्रणव के तीन 'अ' 'उ' तथा 'म' (मात्राः) मात्राएँ (मृत्युमत्यः) मृत्युप्रद यानी अनर्थावह हैं (बाह्यान्तरमध्यमासु) यज्ञादिक बाहरी क्रिया तथा भीतरी मानस क्रिया और बीच की वाचिक जपरूप (क्रियासु) क्रियाओं में (सम्यक्) भली भाँति (प्रयुक्तासु) प्लुतप्रणव का प्रयोग किये जाने पर (ज्ञः) प्लुतप्रणवोपासक नारायण को जाननेवाला (न) नहीं (कम्पते) परब्रह्मप्राप्तिरूप फल से विचलित होता है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ - प्लुतोच्चारण से रहित एक दूसरी से संयुक्त रहकर प्रयुक्त की हुई प्रणव के अकार, उकार और मकार ये तीन मात्राएँ जन्ममरणरूप अनर्थ को देनेवाली हैं। अर्थात् ह्रस्वप्रणवोपासक मरने के बाद पृथ्वी में मनुष्य बनकर उपयुक्त ऐश्वर्य का उपभोग करता है और दीर्घप्रणवोपासक मरने के बाद अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रलोक को पाकर नाना प्रकार के उपभोग करके पुण्य के

क्षय हो जाने पर पुनः मृत्युलोक में आ जाता है और जो उपासक बाह्ययज्ञादिक क्रिया में तथा आन्तर मानस क्रिया में और मध्यम वाचिक जपक्रिया में प्लुतप्रणव से परब्रह्म की उपासना करता है। वह मरने के बाद परब्रह्म नारायण को प्राप्त कर लेता है। इससे प्लुतप्रणवोपासक कभी जन्म मरण में नहीं पड़ता है। प्रणव में तीन मात्राएँ हैं। क्योंकि लिखा है—

'मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।

(माण्डूक्यो० खं० ३ श्रु० १)

'अ' 'उ' और 'म' ये तीनों मात्राएँ पाद हैं ॥ १ ॥ प्रणव के जप के विषय में भी लिखा है—

'ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं प्लुतमात्रया।
जपेत्पूर्वार्जितानां तु पापानां नाषहेतवे ॥'

(योगतत्त्वो० श्रु० ६३)

इसके बाद एकान्त में बैठकर पूर्वजन्मार्जित पापों का नाश करने के लिये प्लुत मात्रा करके प्रणव को जपे ॥ ६३ ॥

'शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥'

(योगचूडामण्युप० श्रु० ८८)

जो पवित्र या अपवित्र सब समय में प्रणव को जपता है वह जैसे जल से कमलपत्र नहीं लिप्त होता है वैसे ही पाप से लिप्त नहीं होता है ॥ ८८ ॥

'तस्य वाचकः प्रणवः।'

(योगशा० अ० १ पा० १ सू० २७)

'तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥'२८॥

उस परमात्मा का वाचक प्रणव है ॥ २७ ॥ प्रणव का जप करना चाहिये और प्रणव का अर्थानुसन्धान करना चाहिये ॥ २८ ॥

'तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥'

(गी० अ० १७ श्लो० २४)

इसलिये वेदवादियों की शास्त्रोक्त यज्ञ, दान और तप की क्रियाएँ सदा ओम् ऐसा उच्चारण करके हुआ करती हैं ॥ २४ ॥ इस श्रुति में प्लुतप्रणवोपासक के अक्षय्य फल का प्रतिपादन किया गया है ॥ ६ ॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्कवयो वदन्ति। तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृत-मभयं परं चेति ॥७॥

इति पञ्चमप्रश्नः

अन्वयार्थ—(ऋग्भिः) ह्रस्व प्रणव की उपासना से उपासक ऋग्वेद के मंत्रों कर के (एतम्) इस मनुष्यलोक को प्राप्त होता है तथा (यजुर्भिः) दीर्घ प्रणव की उपासना से उपासक यजुर्वेद के मंत्रों कर के (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रलोक को प्राप्त होता है और (कवयः) क्रान्तदर्शी प्लुत प्रणव की उपासना से (सामभिः) सामवेद के मंत्रों कर के (यत्) जिस परब्रह्म लोक की प्राप्ति को (वदन्ति) कहते हैं, (विद्वान्) विवेकशील उपासक (ओङ्कारेण) ओङ्काररूप (एव) निश्चय कर के (आयतनेन) मार्ग के अवलम्बन से (तम्) उस परब्रह्म नारायण को (अन्वेति) प्राप्त होता है (यत्) जो (तत्) वह परब्रह्म नारायण (शान्तम्) परम शान्त (अजरम्) जरारहित (अमृतम्) मरणरहित (अभयम्) भयरहित (च) और (परम्) सर्वश्रेष्ठ है (इति) इस प्रकार इस पाँचवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ ॥७॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में तीसरे, चौथे और पाँचवें मंत्र के भावका संक्षेप में वर्णन कर के ब्राह्मण भाग में कही हुई बात का समर्थन किया गया है कि अतिक्रान्तदर्शी ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि एकमात्रावाले ह्रस्व प्रणव की उपासना से उपासक ऋग्वेद के मंत्रों कर के इस मनुष्यलोक को पा लेता है तथा दो मात्रावाले दीर्घ प्रणव की उपासना से उपासक यजुर्वेद के मंत्रों कर के अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रलोक को पा लेता है और तीन मात्रावाले प्लुत प्रणव की उपासना से सामवेद के मंत्रों कर के उपासक परब्रह्म नारायण को पा लेता है। जो परब्रह्म नारायण परम शान्त और सब प्रकार के विकारों से रहित, बुढ़ापारहित, मरणरहित भयरहित, सब से श्रेष्ठ है। क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'एतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म ।'

(छा० उ० अ० ५ खं० १५ श्रु० १)

यह अमर और निर्भय परब्रह्म है ॥ १ ॥ और मात्रा के विषय में लिखा है—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रो भवेत्प्लुतः ॥'

(याज्ञवल्क्यशि०)

एकमात्रावाला ह्रस्व तथा दो मात्रावाला दीर्घ और तीन मात्रावाला प्लुत कहा जाता है। प्रातःस्मरणीय भगवद्रामानुजाचार्य ने

'ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः।'

(शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० १२)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के पाँचवें प्रश्न की सातवीं श्रुति को उद्धृत किया है। इस श्रुति में 'इति' शब्द पञ्चम प्रश्न की परिसमाप्ति के लिये है। यहाँ पर पाँचवाँ प्रश्न समाप्त हो गया ॥ ७ ॥

॥ अथ षष्ठप्रश्नः ॥

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन् हिरण्यनाभः कौशल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैनं प्रश्नमपृच्छत् । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ इति । तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति । समूलो ह वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम् । स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(अथ) सत्यकाम ऋषि के प्रश्न के बाद (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इस पिप्पलाद महर्षि से (भारद्वाजः) भारद्वाज ऋषि के पुत्र (सुकेशा) सुकेशा ऋषि ने (पप्रच्छ) पूछा (भगवन्) हे पूजार्ह भगवन् (कौशल्यः) कोशलदेशाधिपति (हिरण्यनाभः) हिरण्यनाभ नामवाले (राजपुत्रः) राजकुमार ने (माम्) मेरे (उपेत्य) समीप में आकर (एनम्) इस वक्ष्यमाण (प्रश्नम्) प्रश्न को (अपृच्छत्) पूछा (भारद्वाज) हे भरद्वाजकुमार (षोडशकलम्) सोलह कलावले (पुरुषम्) पुरुष को (वेत्थ) तुम जानते हो (इति) यह मेरा प्रश्न है (अहम्) सुकेशा नामवाला मैं (तम्) उस हिरण्यनाभ नामवाले (कुमारम्) राजकुमार से (अब्रुवम्) बोला (अहम्) मैं (इमम्) इस सोलह कलावाले पुरुष को (न) नहीं (वेद) जानता हूँ (यदि) जो (अहम्) मैं (इमम्) इस सोलह कलावाले पुरुष को (अवेदिषम्) जानता होता तो (कथम्) किस कारण से (ते) योग्य राजकुमार तेरे लिए (इति) इस प्रश्न का उत्तर (न) नहीं (अवक्ष्यम्) कहता (यः) जो (अनृतम्) झूठ (अभिवदति) बोलता है (एषः) वह मनुष्य (वै) निश्चय कर के (ह) प्रसिद्ध है कि (समूलः)

जड़सहित यानी श्रेय के हेतुभूत वासना सहित पुण्य (परिशुष्यति) नष्ट हो जाता है (तस्मात्) उस से (अनृतम्) झूठ (वक्तुम्) बोलने के लिये (न) नहीं (अर्हामि) मैं समर्थ हूँ (सः) वह राजकुमार मेरा उत्तर सुनकर (तूष्णीम्) चुपचाप (रथम्) रथपर (आरुह्य) चढ़कर (प्रवव्राज) चला गया (तम्) उस सोलहकलावाले पुरुष को (त्वा) तुम्हारे से (पृच्छामि) पूछ रहा हूँ कि (क्व) कहाँ अर्थात् किस प्रदेश में (असौ) यह सोलहकलावाला (पुरुषः) पुरुष रहता है (इति) यही मेरा प्रश्न है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—सत्यकाम ऋषि के प्रश्न का उत्तर होने के बाद भरद्वाज ऋषि के पुत्र सुकेश ऋषि ने नियमानुसार सविधि पिप्पलाद महर्षि के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। तदनन्तर श्रद्धा से विनयपूर्वक प्रश्न किया कि हे पूजार्ह भगवन् एक बार कोशलदेशाधिपति हिरण्यनाभ नामवाले राजकुमार ने मेरे पास आकर यह पूछा कि हे भरद्वाजपुत्र सोलह कलावाले पुरुष को तुम जानते हो क्या ? मैंने उस राजकुमार से स्पष्ट कहा कि मैं नहीं जानता हूँ। यदि मैं जानता होता तो सुयोग्य राजकुमार तेरे लिये अवश्य बता देता। न बताने का कोई दूसरा कारण नहीं है। जो पुरुष झूठ बोलता है वह समूल सूख जाता है। अर्थात् श्रेय के हेतुभूत वासनासहित पुण्य नष्ट हो जाता है। इसलिये मैं झूठ नहीं बोल सकता हूँ। इस मेरी बात को सुनकर वह राजकुमार चुपचाप रथपर सवार होकर चला गया। अब मैं आपसे उस सोलह कलावाले पुरुष को पूछ रहा हूँ। कृपया आप कहिये वह पुरुष कहाँ यानी किस प्रदेश में रहता है। यहाँ पर आधारभूत देश के प्रश्न द्वारा सोलह कलावाला पुरुष जीवात्मा है या परमात्मा है यह निर्णय करने के लिये यह प्रश्न हुआ है। जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'बुद्ध्यर्थः पादवत्।'

(शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३२)

के श्रीभाष्य में **'प्रश्नोपनिषद्'** के छठवें प्रश्न की पहली श्रुति के **'षोडशकलम्'** इस खण्ड को उद्धृत किया है,

'परमतस्सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः।'

(शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३०)

के श्रीभाष्य में भी पूर्वोक्त खण्ड को उद्धृत किया है ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच । इहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्ति ॥२॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (सः) उस पिप्पलाद महर्षि ने (तस्मै) उस सुकेशा ऋषि से अर्थ (उवाच) कहा (सोम्य) हे प्रियदर्शन (इह) यहाँ

(अन्तःशरीरे) इस शरीर के भीतर (एव) निश्चय कर के (सः) वह सोलह कलावाला (पुरुषः) पुरुष यानी जीव है (यस्मिन्) जिस पुरुष में (एताः) ये वक्ष्यमाण प्राण से लेकर नामपर्यन्त (षोडशकलाः) सोलह कलाएँ (प्रभवन्ति) स्वसंसर्गप्रयुक्त सुखदुःखादिभोग के उपकार करने के लिये उत्पन्न होती हैं ॥ २ ॥

विशेषार्थ—उस प्रसिद्ध पिप्पलाद महर्षि ने सुकेशा ऋषि से कहा कि हे प्रियदर्शन ! जिस पुरुष में ये वक्ष्यमाण प्राण से लेकर नामपर्यन्त सोलह कलाएँ स्वसंसर्गप्रयुक्त सुखदुःखादि भोग का उपकार करने के लिये उत्पन्न होती हैं वह सोलह कलावाला पुरुष यानी जीव इस शरीर के भीतर ही रहता है । इस श्रुति में स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है कि सोलह कलावाला पुरुष जीवात्मा है ॥२॥

स ईक्षांचक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामीति कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥३॥

अन्वयार्थ—(सः) वह (इति) इस प्रकार (ईक्षांचक्रे) विचार किया कि (अहम्) मैं (कस्मिन्) शरीर से किसके (उत्क्रान्ते) निकलने पर (उत्क्रान्तः) बाहर निकला हुआ (भविष्यामि) हो जाऊँगा (वा) और (कस्मिन्) किसके (इति) इस प्रकार (प्रतिष्ठिते) शरीर में स्थित रहने पर (प्रतिष्ठास्यामि) मैं स्थित रहूँगा ॥३॥

विशेषार्थ—इस पुरुष ने ऐसा विचार किया कि देह में से किसके निकलने पर मैं बाहर निकला हुआ हो जाऊँगा और देह में किसके स्थित रहने पर मैं स्थित रहूँगा । इससे सिद्ध होता है कि स्वोपकाराभिसंधिपूर्वक जीव के प्राणादिस्रष्टृत्व होने से भोक्तृत्व संभव है ।परमात्मा के विषय में भगवद्गीता में लिखा है—

'न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।'

(गी० अ० ४ श्लो० १४)

न तो मुझे कर्म लिपायमान करते हैं और न मुझे कर्मफल में स्पृहा है ॥१४॥

'न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥'

(गी० अ० ९ श्लो० ९)

हे अर्जुन उन सब कर्मों में उदासीन की भाँति स्थित मुझ आसक्तिरहित को वे कर्म नहीं बाँधते हैं ॥ ९ ॥ इस उक्त रीति से परमात्मा के स्वोपकाराभिसंधिपूर्वक स्रष्टृत्व का अभाव ज्ञात होता है । श्रद्धेय भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'ईक्षतेर्नाशब्दम् ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० ५)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के छठवें प्रश्न की तीसरी श्रुति के 'स ईक्षाञ्चक्रे' इस खण्ड को और

'सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ।'

(मी० अ० ४ पा० २ सू० ४)

के श्रीभाष्य में 'कस्मिन्नुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि' इस खण्ड को उद्धृत किया है ॥ ३ ॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वीन्द्रियं मनः । अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मंत्राः कर्म लोका लोकेषु नाम च ॥४॥

अन्वयार्थ—(सः) उस पुरुष ने (प्राणम्) मुख्य प्राण की (असृजत) रचना की (प्राणात्) मुख्यप्राण से (श्रद्धाम्) आस्तिक्यबुद्धि को उत्पन्न किया उसके बाद क्रमशः (खम्) आकाश (वायुः) वायु (ज्योतिः) तेज (आपः) जल (पृथ्वी) पृथ्वी ये पाँच महाभूत उत्पन्न हुए फिर (इन्द्रियम्) वागादि दश इन्द्रियाँ (मनः) मन और (अन्नम्) व्रीह्यादिरूप अन्न हुआ (अन्नात्) अन्न से (वीर्यम्) शरीरेन्द्रियसामर्थ्यरूप वीर्य उत्पन्न हुआ फिर (तपः) शरीरशोषणादिलक्षण तप (मंत्राः) ऋग्यजुःसामादि नाना प्रकार के मंत्र (कर्म) ज्योतिष्टोमादि नाना प्रकार के कर्म (लोकाः) नाना प्रकार के स्वर्गादिलोक (च) और (लोकेषु) उन स्वर्गादिलोको में (नाम) उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—सबसे पहले जो मुख्य प्राण शरीर में आता है और जाता है उस मुख्य प्राण को उस पुरुष ने उत्पन्न किया और उस मुख्य प्राण से समस्त प्राणियों की शुभ कर्म में प्रवृत्ति होने के हेतु आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धा को उत्पन्न किया । तदनन्तर क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पाँच महाभूतों को उत्पन्न किया । इस के बाद वाणी, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियों को और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, त्वचा इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों को उत्पन्न किया तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन अन्तःकरणों का भी निर्माण किया । तदनन्तर शरीर की स्थिति के लिये व्रीह्यादिरूप अन्न हुआ । अन्न से शरीरेन्द्रियसामर्थ्यरूप वीर्य को उत्पन्न किया । तदनन्तर शरीरशोषणादि लक्षण तप को रचा । फिर कर्मादि के उपयोगी ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद रूप मंत्रों को प्रकट किया । तदनन्तर ज्योतिष्टोमादि नाना प्रकार के कर्मों का

निर्माण किया। पुनः उन कर्मों के फलरूप अनेक लोकों को बनाया। तदनन्तर स्वर्गादिलोकों में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों के नामों को उत्पन्न किया। प्राण १, श्रद्धा २, आकाश ३, वायु ४, अग्नि ५, जल ६, पृथ्वी ७, इन्द्रिय ८, मन ९, अन्न १०, वीर्य ११, तप १२, मंत्र १३, कर्म १४, लोक १५ और नाम १६ ये सोलह कलाएँ हैं। श्रीपूज्यपाद भगवद्रामानुजाचार्य ने

'ईक्षतेर्नाशब्दम्।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ५)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के छठवें प्रश्न की चौथी श्रुति के 'स प्राणमसृजत' इस खण्ड को उद्धृत किया है ॥४॥

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥५॥

अन्वयार्थ—(सः) वह (यथा) जिस प्रकार (इमाः) ये (स्यन्दमानाः) बहती हुई (समुद्रायणः) समुद्र की ओर जानेवालीं (नद्यः) गंगा आदि नदियाँ (समुद्रम्) समुद्र को (प्राप्य) पाकर (अस्तम्) अदर्शन (गच्छन्ति) हो जाती हैं (तासाम्) उन नदियों के (नामरूपे) पहले की गङ्गा, यमुना आदिक नाम और शुक्ल, कृष्ण आदि रूप ये दोनों (भिद्येते) समुद्र में प्रवेश होने पर नष्ट हो जाते हैं (समुद्रः) समुद्र (इति) है (एवम्) ऐसा (प्रोच्यते) कहा जाता है (एवम्) इसी प्रकार (एव) निश्चय कर के (अस्य) इस (परिद्रष्टुः) परिद्रष्टा —भोक्ता जीवात्मा के (इमाः) भोगोपकरणभूत ये ऊपर बतायी हुई (पुरुषायणाः) परम पुरुष की ओर जाने वाली (षोडशकलाः) सोलह कलाएँ (पुरुषम्) निरुपाधिक पुरुषशब्दवाच्य परब्रह्म नारायण को (प्राप्य) पाकर (अस्तम्) अदर्शन (गच्छन्ति) हो जाती हैं (च) और (आसाम्) इन सोलह कलाओं के (नामरूपे) भोग, भोग्यस्थान, भोगोपकरणादि नाम रूप (भिद्येते) नष्ट हो जाते हैं (पुरुषः) परम पुरुष (इति) है (एवम्) ऐसा (प्रोच्यते) कहा जाता है (सः) वही (एषः) यह परमात्मा (अकलः) भोक्तृत्वाभाव होने से कलारहित है और (अमृतः) मरणरहित अमृत (भवति) है

(तत्) उस परमात्मा के विषय में (एषः) यह अगला (श्लोकः) श्लोक है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—मुमुक्षु परब्रह्म नारायण को दृष्टान्त द्वारा यहाँ पर श्रुति कहती है कि जैसे बहती हुई समुद्र की ओर जानेवाली गङ्गा आदि सब नदियाँ समुद्र को पाकर अदर्शन हो जाती हैं और उन नदियों के पहले का गङ्गा, यमुना आदिक नाम तथा शुक्ल, कृष्ण आदिक रूप समुद्र में प्रवेश करने पर अलग नहीं दीखता है। उस समय केवल समुद्र ही कहा जाता है। वैसे ही इस परिद्रष्टा यानी भोक्ता जीवात्मा के भोगोपकरणभूत परमपुरुष की ओर जानेवाली प्रश्नोपनिषद् (प्रश्न० ६ श्रु० ४) बतायी हुई प्राण १, श्रद्धा २, आकाश ३, वायु ४, तेज ५, जल ६, पृथ्वी ७, इन्द्रियाँ ८, मन ९, अन्न १०, वीर्य ११, तप १२, मंत्र १३, कर्म १४, लोक १५ और नाम १६ ये सोलह कलाएँ परब्रह्म नारायण को पाकर अदर्शन हो जाती हैं और उन सोलह कलाओं के जीवात्मा के विषय में भोग, भोग्यस्थान, भोगोपकरणादिरूप नाम और रूप जो अलग ज्ञात होते हैं वह भोग्यस्थान, भोगोपकरणादिरूप नाम और रूप परब्रह्म नारायण में प्रवेश करने पर अलग नहीं ज्ञात होते हैं। उस समय निरूपाधिक पुरुष शब्दवाच्य परब्रह्म नारायण ही कहा जाता है। वह परब्रह्म नारायण भोक्तृत्वभाव होने से कलारहित है और भोक्तृत्व-रूप कलासंबन्धाधीन मरण से रहित अमृत है। उस परमात्मा के विषय में यह अगला मंत्र है। यतिराज भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'ज्ञोऽत एव।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के छठवें प्रश्न का पाँचवीं श्रुति के तृतीय पाद को उद्धृत किया है ॥५॥

अरा इव रथनाभौ कला यत्र प्रतिष्ठिताः।
तं वेद्यं पुरुषं वेत्थ मा वो मृत्युः परिव्यथाः ॥६॥

अन्वयार्थ—(रथनाभौ) रथके पहिये की नाभि में (अराः) अरा यानी तिरछे काठों के (इव) समान (यत्र) जिस परब्रह्म नारायण में (कलाः) ऊपर बतायी हुई सोलह कलाएँ (प्रतिष्ठिताः) सर्वदा स्थित हैं (तम्) उस (वेद्यम्) मुमुक्षुओं के जानने योग्य (पुरुषम्) निरुपाधिक पुरुषशब्दवाच्य परब्रह्म नारायण

को (वेत्थ) तुम सब जानो (वः) परब्रह्म को जाननेवाले तुम लोगों को (मृत्युः) मृत्युः (मा) मत (परिव्यथाः) पीड़ा दे ।।६।।

विशेषार्थ—रथ के पहिये की नाभी में जैसे तिरछे काठ आश्रित रहते हैं वैसे ही जिस परब्रह्म नारायण में प्रश्नोपनिषद् के छठवें प्रश्न की चौथी श्रुति में बतायी हुई प्राण १, श्रद्धा २, आकाश ३, वायु ४, अग्नि ५, जल ६, पृथ्वी ७, इन्द्रियाँ ८, मन ९, अन्न १०, वीर्य ११, तप १२, मंत्र १३, कर्म १४, लोक १५, नाम १६ ये सोलह कलाएँ सर्वदा आश्रित रहती हैं उन मुमुक्षुओं के जानने योग्य निरुपाधिक पुरुषशब्दवाच्य परब्रह्म नारायण को तुम सब यथार्थ जान लो। हे शिष्यगण परब्रह्म को जाननेवाले तुम लोगों को मृत्यु इस जन्म-मरण रूप संसार में डाल कर दुःखी नहीं कर सकेगी। पुरुषशब्दवाच्य परब्रह्म नारायण ही है इसी से ऋग्वेदसंहिता (अष्टक ८ मण्डल १० अध्या० ४ वर्ग० १७ अनुवा० ७) में और शुक्लयजुर्वेदसं० (अध्या० ३१) में तथा सामवेदसंहिता (पूर्वार्चिक० प्रपाठक० ६ अर्धप्रपाठक० ३) में और अथर्ववेदसंहिता (काण्ड १९ अनुवाक १ सूक्त० ६) में भगवत्प्रतिपादक 'पुरुषसूक्त' है और श्रीमद्भागवत में लिखा है—

'तत्र गत्वा जगन्नाथं वासुदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ।।'

(श्रीमद्भाग०)

वहाँ पर जाकर वृषाकपि अखिल ब्रह्माण्डनायक वासुदेव परब्रह्म नारायण को समाहित होकर पुरुषसूक्त से उपस्थान किये। प्रस्तुत श्रुति के अन्त में परब्रह्म की उपासना का फल कहा गया है ।। ६ ।।

तान्होवाचैतावदेवाहं परं ब्रह्म वेद ।
नातः परमस्तीति ।।७।।

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध उस पिप्पलाद महर्षि ने (तान्) उन सुकेशा आदि छः ऋषियों को (इति) इस प्रकार से (उवाच) कहा (अहम्) मैं (एतावत्) इतना ही (एव) निश्चय करके (परम्) सबसे श्रेष्ठ (परं) पर (ब्रह्म) ब्रह्म नारायण को (वेद) जानता हूँ (अतः) इस परब्रह्म नारायण से (परम्) पर यानी उत्कृष्ट तत्त्व (न) नहीं (अस्ति) है ।। ७ ।।

विशेषार्थ—प्रसिद्ध पिप्पलाद महर्षि ने उन सुकेश आदि छः ऋषियों से इस प्रकार स्पष्ट कहा कि मैं परब्रह्म नारायण के विषय में इतना ही जानता हूँ, इस परमात्मा से अन्य जाननेयोग्य श्रेष्ठ पदार्थ और कोई नहीं है। क्योंकि नारायणोपनिषद् में लिखा है—

'नारायणः परो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ॥'
(नारा० उ० श्रु० १३)

नारायण पर ज्योति है । नारायण पर आत्मा है । नारायण परब्रह्म है । नारायण पर तत्त्व है ॥१३॥ नारायण से श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥७॥

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥८॥

॥ इति षष्ठप्रश्नः ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषद् समाप्ता ॥

अन्वयार्थ—(ते) उन सुकेशा आदि छः ऋषियों ने (तम्) उस आचार्य पिप्पलाद महर्षि को (अर्चयन्तः) पूजते हुए (इति) इस प्रकार कहा (त्वम्) आप (हि) निश्चय करके (नः) हम लोगों के (पिता) पिता हैं (यः) जो (अस्माकम्) हम लोगों के (अविद्यायाः) अविद्यारूप संसारसागर के (परम्) दूसरे (पारम्) तीर को (तारयसि) पहुँचा दिया है (परमऋषिभ्यः) परम मंत्रद्रष्टा ऋषियों के लिये (नमः) नमस्कार है (परमऋषिभ्यः) परम ऋषियों के अर्थ (नमः) साष्टाङ्गप्रणिपात यानी नमस्कार है ॥८॥

विशेषार्थ—ऐसे आचार्य पिप्पलाद महर्षि से परब्रह्म के उपदेश को सुन कर उन सुकेशा १, सत्यकाम २, गार्ग्य ३, कौशल्य ४, वैदर्भि ५, कबन्धी ६ छः ऋषियों ने उस प्रसिद्ध पिप्पलाद महर्षि की षोडशोपचार से शास्त्रानुसार पूजा की । क्योंकि शाट्यायनीयोपनिषद् में लिखा है—

'अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा ।
यथैव तेन न गुरुर्भोजनीयस्तथैव चान्नं न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥'
(शाट्या० उ० श्रु० ३५)

'एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिनन्दति ।
तस्य श्रुतं तथा ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ३६ ॥
गुरुरेव परो धर्मो गुरुरेव परा गतिः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३७ ॥

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
'स ब्रह्मवित्परं प्रेयादिति वेदानुशासनम् ॥'३८॥

जो विप्र अध्ययन कर के पढ़ानेवाले गुरु का मन, वाणी और कर्म से आदर नहीं करते हैं और जैसे गुरु नहीं भोजनीय है ऐसा समझते हैं वैसे ही उनका सुना हुआ वह श्रौत वचन और खाद्य अन्न नहीं उस शिष्य को पालन करता है ॥३५॥ जो शिष्य एक अक्षर प्रदाता गुरु का आदर नहीं करता है उसका सुना हुआ ज्ञान कच्चे मिट्टी के घट में रखे हुए जल के समान बह जाता है ॥३६॥ गुरु ही परधर्म है, गुरु ही परा गति है, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म है उस श्रीगुरु के लिये साष्टाङ्ग प्रणिपात है ॥३७॥ जिस भक्त की परमदेव नारायण में परा भक्ति होती है तथा जिस प्रकार नारायण में होती है उसी प्रकार अपने गुरु में भी होती है तब वह उपासक परब्रह्म नारायण को प्राप्त कर लेता है ऐसा वेद का अनुशासन है ॥३८॥ इस श्रौतसिद्धान्तानुसार उन ऋषियों ने षोडशोपचार से आचार्य की पूजा की। बृहत्पाराशरस्मृति में लिखा है—

'आद्ययावाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ।
द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं चैव तृतीयया ॥'

(बृहत्पाराशरस्मृ० अध्या० २ श्लो० ३६४)

'अर्घ्यश्चतुर्थ्या दातव्यः पञ्चम्याचमनं तथा ।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रधौतकम् ॥३६५॥
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ।
पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम् ॥३६६॥
द्वादश्या दीपकं दद्यात् त्रयोदश्या निवेदनम् ।
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणाः ॥३६७॥
षोडश्योद्वासनं कुर्याद् देवदेवस्य चक्रिणः ॥'३६८॥

पुरुषसूक्त की पहली ऋचा से भगवान् का आवाहन करे, दूसरी ऋचा से आसन दे और तीसरी ऋचा से पाद्य दे ॥ ३६४ ॥ चौथी ऋचा से अर्घ्य दे, पाँचवीं ऋचा से आचमन दे और छठवीं ऋचा से स्नान करावे, सातवीं ऋचा से धौतवस्त्र दे ॥ ३६५ ॥ आठवीं ऋचा से यज्ञोपवीत दे, नवमी ऋचा से गन्ध दे, दशवीं ऋचा से पुष्प दे और ग्यारहवीं ऋचा से धूप दे ॥ ३६६ ॥ बारहवीं ऋचा से दीप दे, तेरहवीं ऋचा से नैवेद्य दे, चौदहवीं ऋचा से नमस्कार करे तथा पन्द्रहवीं ऋचा से प्रदक्षिणा करे ॥ ३६७ ॥ और सोलहवीं ऋचा से

उद्वासन करे ॥ ३६८ ॥ पूजाविधि विशेष जिस को जानना हो वह मेरी बनाई हुई पुरुषसूक्त की 'मर्मबोधिनी' टीका का अवलोकन करे। उन ऋषियों ने आचार्य की पूजा कर के सविनय हाथ जोड़कर कहा कि हे भगवन् आप ही हम लोगों के वास्तविक पिता हैं। क्योंकि आपने विद्यारूप नौका से हम लोगों को संसारसमुद्र के पार पहुँचा दिया। ऐसे गुरुदेव से बढ़कर दूसरा कोई नहीं हो सकता है। आप के इस उपकार के बदले में भेंट करने योग्य इस संसार में हम कोई भी पदार्थ नहीं देखते इस कारण से ब्रह्मविद्या संप्रदाय के प्रवर्तक परमर्षि आप के लिए साष्टाङ्ग प्रणिपात हो। यहाँ पर 'नमः परमऋषिभ्यः' यह दूसरी बार ग्रन्थ की समाप्ति सूचित करने के लिये कहा गया है। उभयविभूतिनायक भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'तत्तु समन्वयात्।'

(शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में 'प्रश्नोपनिषद्' के छठवें प्रश्न की अन्तिम आठवीं श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है। इस उपनिषद् के प्रथम प्रश्न में सोलह मंत्र हैं, द्वितीय प्रश्न में तेरहमंत्र हैं, तृतीयप्रश्न में बारह मंत्र हैं, चतुर्थ प्रश्न में ग्यारह मंत्र हैं, पञ्चमप्रश्न में सात मंत्र हैं, तथा षष्ठ प्रश्न में आठ मंत्र हैं। इस प्रकार सब परिगणन करने से 'प्रश्नोपनिषद्' में सरसठ मंत्र हैं। यहाँ पर छठा प्रश्न और यह उपनिषद् समाप्त हो गया ॥ ८ ॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रं
श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम्।
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधं
भक्त्या भजामि गुरुवर्यमनन्तसूरिम् ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्यश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवदनन्तपादीय-
श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यत्रिदण्डिस्वामिविरचिता
'गूढार्थदीपिका' समाख्या अथर्ववेदीय-
पिप्पलादशाखान्तर्गत'प्रश्नोपनिषद्'-
भाषाव्याख्या समाप्ता।

ॐ यतिराजाय नमः

अथर्ववेदीया

मुण्डकोपनिषद्

अथ प्रथममुण्डकः

अथ प्रथमखण्डः

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

❀ गूढार्थदीपिका व्याख्या ❀

मङ्गलाचरणम्

क्षेमाय यः करुणया क्षितिनिर्जराणां
भूमावजृम्भयत भाष्यसुधामुदारः ।
वामागमाध्वगवदावदतूलवातो
रामानुजः स मुनिराद्रियतां मदुक्तिः ॥१॥

अन्वयार्थ—(विश्वस्य) समस्तभुवन के (कर्ता) रचयिता और (भुवनस्य) समस्त लोक के (गोप्ता) रक्षक (ब्रह्मा) चतुर्मुख ब्रह्मा (देवानाम्) इन्द्रादि सब देवताओं में (प्रथमः) पहले (संबभूव) उत्पन्न हुआ (सः) वह ब्रह्मा (ज्येष्ठपुत्राय) सबसे बड़े पुत्र (अथर्वाय) अथर्व नामवाला के लिये (सर्ववि-द्यावरिष्ठाम्) समस्त विद्याओं के आश्रयभूत (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (प्राह) भली भाँति उपदेश किया ॥ १ ॥

विशेषार्थ—अथर्ववेद की शौनकी शाखा का यह "मुण्डकोपनिषद्" है। यहाँ पर ब्रह्मविद्या की स्तुति के लिये आख्यायिका रूप से श्रुति कहती है कि—

सर्वशक्तिमान् परब्रह्मनारायण से इन्द्रादि सब देवताओं में सर्वप्रथम चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुआ और वही चतुर्मुख ब्रह्मा समस्त संसार के उत्पन्न करनेवाला तथा उत्पन्न हुए सकल लोकों का पालन करनेवाला है। ब्रह्मा के विषय में लिखा है—

'भूतानां ब्रह्मा प्रथमो ह्त जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः।

(अथर्ववे० १६।२३।३०)

सब प्राणियों में ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्न हुआ है उस ब्रह्मा से स्पर्धा करने के लिये कौन समर्थ है ॥ ३० ॥ और भी लिखा है—

'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्।' (श्वेता० उ० अ० ६ श्रु० १८)

जिस परब्रह्म नारायण ने सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया ॥४॥

'योब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ४)

जो परब्रह्म नारायण सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करता है ॥१८॥

'नारायणाद्ब्रह्मा जायते। (नारायणो० श्रु० १)

नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होता है ॥१॥

'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥'

(मनुस्मृ० अ० १ श्लो० ६)

वह बीज सुवर्ण के सदृश पवित्र और सूर्य के समान प्रकाशित नारायण की इच्छा से अंडाकार हो गया उस में स्वयं सबलोक के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ वह चतुर्मुख ब्रह्मा अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा नामक ऋषि के लिये समस्त विद्याओं के आश्रयभूत। क्योंकि लिखा है—

'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्।'

(छान्दो० उ० अ० ६ खं० १ श्रु० ३)

जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है तथा अज्ञात ज्ञात हो जाता है ॥ ३ ॥ इस श्रुति के अनुसार सब विद्याओं के प्रतिष्ठाभूत ब्रह्मविद्या को ब्रह्म यानी परमात्मा कि विद्या को क्योंकि लिखा है —

'येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्।' (मुण्डको० मु० १ खं० २ श्रु० १३)

जिस से अक्षर सत्य पुरुष परब्रह्म को जानता है ॥ १३ ॥ उस ब्रह्मविद्या का भलीभाँति उपदेश किया। श्रीशेषावतार भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के पहले मुण्डक के पहलेखण्ड की पहली श्रुति के उत्तरार्ध को उद्धृत किया है ॥ १ ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा
तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह
भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(ब्रह्मा) चतुर्मुख ब्रह्मा (याम्) जिस ब्रह्मविद्या को (अथर्वणे) अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व नामवाले ऋषि के लिये (प्रवदेत) उपदेश दिया था (ताम्) उस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (अथर्वा) अथर्व नामवाले ऋषि ने (पुरा) पहले (अङ्गिरे) अपने शिष्य अङ्गिर् नामवाले ऋषि के लिये (उवाच) कहता हुआ (सः) वह अङ्गिर् नामवाले ऋषि ने (भारद्वाजाय) भरद्वाज गोत्रवाले (सत्यवाहाय) अपने शिष्य सत्यवाह-नामवाले ऋषि के लिये (प्राह) उपदेश दिया और (भारद्वाजः) भरद्वाज गोत्री सत्यवाह ऋषि ने (परावराम्) श्रेष्ठ से कनिष्ठ को प्राप्त होती हुई अथवा पर और अवर सब विद्याओं की प्राप्ति के कारण "परावर" कही जानेवाली विद्या को (अङ्गिरसे) अपने शिष्य अङ्गिरस् नामवाले ऋषि के लिये उपदेश दिया ॥२॥

विशेषार्थ—इस श्रुति में ब्रह्मविद्या की गुरुपरम्परा को श्रुति कहती है कि चतुर्मुख ब्रह्मा ने जिस ब्रह्मविद्या को अथर्वानामक ऋषि के लिये उपदेश दिया था और अथर्वानामक ऋषि ने उस ब्रह्मविद्या को अपने शिष्य अङ्गिर्नामवाले ऋषि के लिये उपदेश दिया तथा अङ्गिर् नामक ऋषि ने अपने शिष्य भरद्वाजगोत्री सत्यवाह नामक ऋषि के लिये उस ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया और सत्यवाह नामक ऋषि ने श्रेष्ठ से कनिष्ठ को प्राप्त होती हुई अथवा पर और अवर सब विद्याओं की प्राप्ति के कारण "परावर" कही जानेवाली ब्रह्मविद्या को अपने शिष्य अङ्गिरा नामक ऋषि के लिये उपदेश दिया । छान्दोग्यपनिषद् में लिखा है

'आचार्याद्धयेव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति ।'

(छा० उ० अ० ४ खं० ६ श्रु० ३)

आचार्य से जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुता को प्राप्त कराती है ॥३॥

'आचार्यवान् पुरुषो वेद ।' (छा० उ० अ० ६ खं० १४ श्रु० २)

आचार्यवाला पुरुष परब्रह्म नारायण को जानता है ॥२॥ यहाँ पर ब्रह्मविद्या की परम्परा दिखायी गयी है ॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥३॥

अन्वयार्थ—(ह) विख्यात है कि (महाशालः) बड़ा गृहस्थ (शौनकः) शुनक ऋषि के पुत्र शौनक नामक ऋषि ने (वै) निश्चय करके (अङ्गिरसम्) सत्यवाह नामक ऋषि के शिष्य अङ्गिरा नामक ऋषि को (विधिवत्) शास्त्र विधि के अनुसार (उपसन्नः) समीप में प्राप्त हुआ और उनसे (पप्रच्छ) विनय पूर्वक पूछा कि (भगवः) हे पूज्य भगवन् (नु) निश्चय करके (कस्मिन्) किसके (विज्ञाते) जान लेने पर (इदम्) यह (सर्वम्) सब कुछ (विज्ञातम्) जाना हुआ (भवति) हो जाता है (इति) यह मेरा प्रश्न है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—पुराणों के अनुसार जिनके ऋषिकुल में अट्ठासी हजार ऋषि रहते थे उस विख्यात महागृहस्थ शौनक ऋषि ने ब्रह्मविद्या को जानने के लिये शास्त्रविधि के अनुसार समिधा पुष्पादि हाथ में लेकर अङ्गिरा ऋषि के समीप में जाकर और साष्टाङ्ग प्रणिपात करके श्रद्धापूर्वक सविनय आचार्य अङ्गिरा से पूछा। क्योंकि लिखा है—

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।
(मुण्डको० मु० १ खं० २ श्रु० १२)

उस परब्रह्म नारायण को जानने के लिये वह भक्त हाथ में समिधा आदि लिए वेदवेत्ता ब्रह्मविचार में मग्न गुरु की ही शरण जाय ॥ १२ ॥

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।' (गीता० अ० ४ श्लो० ३४)

उस ब्रह्मज्ञान को साष्टाङ्ग प्रणिपात के द्वारा तथा जिज्ञासुभाव से प्रश्न करके और सेवा के द्वारा तुम जानो ॥ ३४ ॥ इस नियमानुसार प्रश्न किया कि—हे भगवन् किसको भलीभाँति जान लेने पर यह सब जाना हुआ हो जाता है। वह कृपया बतलाइये। अर्थात् सबके निमित्तोपादनभूत वस्तु क्या है। यहाँ पर ब्रह्मस्वरूप को पूछा है। यहाँ पर अङ्गिरस् ऋषि के लिये औपचारिक "भगवः" पद का प्रयोग शौनक ऋषि ने किया है। क्योंकि लिखा है—

'शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते।
मैत्रेय भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ॥'
(विष्णुपु० अंश० अध्या० ५ श्लो० ७२)

'संभर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥ ७३ ॥

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥७४॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतान्यखिलात्मनि।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥७५॥

हे मैत्रेय शुद्ध महाविभूति नामवाले सब कारणो के कारण परब्रह्म में भगवत् शब्द कहा जाता है ॥७२॥ संभर्ता और भर्ता भगवत् शब्द में जो भकार है उसका अर्थ है और हे मुने नेता, गमयिता, तथा स्रष्टा गकार का अथ है ॥७३॥ अथवा समस्त ऐश्वर्य १, वीर्य २, यश ३, श्री ४, ज्ञान ५ और वैराग्य ६, इन छः वस्तुओं को भग कहते हैं ॥७४॥ उस अखिलात्मा में समस्त भूत वसते हैं और सब भूतों में जो वसता है वह वकार का अर्थ है ॥७५॥

'ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः ॥'
(विष्णुपु० अं ६ अध्या० ५ श्लो० ७६)

समस्त ज्ञानशक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य और तेज भगवत् शब्द वाच्य हैं हेय गुणादिकों से रहित ॥७६॥

'एवमेष महाशब्दो मैत्रेय भगवानिति।
परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः ॥'
(विष्णुपु० अं ६ अध्या० ५ श्लो० ७६)

'तत्र पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषा समन्वितः।
शब्दोऽयंनोपचारेण ह्यन्यत्र ह्युपचारतः ॥'७७॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार यह महान् भगवत् शब्द परब्रह्म वासुदेव का ही वाचक है दूसरे का नहीं ॥७६॥ उस परब्रह्म नारायण में ही लक्षणयुक्त भगवत् शब्द का पूर्ण अर्थ है दूसरे में औपचारिक है ॥७७॥ इससे सिद्ध हो गया कि अङ्गिरा ऋषि में औपचारिक भगवत् शब्द का प्रयोग किया गया है। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तपरिपोषक भगवद्रामानुजाचार्यने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याश्च नेतरौ।'
(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के पहले मुण्डक के पहले खण्ड की तिसरी श्रुति को उद्धृत किया है।

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति। परा चैवापरा च ॥४॥

अन्वयार्थ—(ह) विख्यात (सः) उस अङ्गिरा महर्षि ने (तस्मै) उस शौनक ऋषि के लिये (उवाच) कहा (यत्) जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिये (द्वे) दो (विद्ये) ज्ञान (वेदितव्ये) जानने योग्य उपादेयभूत हैं (इति) इस प्रकार (ह) निश्चय करके (ब्रह्मविदः) वेदाभिज्ञ पराशरादि महर्षि (वदन्ति स्म) कहते आये हैं (एव) निश्चय करके (परा) पर यानी अपरोक्ष योगजन्य ज्ञान (च) और (अपरा) अपर यानी परोक्ष शास्त्रजन्य ज्ञान (च) भी ॥४॥

विशेषार्थ—परब्रह्म स्वरूप को शौनक ऋषि के पूछने पर उस प्रसिद्ध अङ्गिरा महर्षि ने शौनक ऋषि से कहा कि–हे प्रियतम शौनक ! परब्रह्म प्रेप्सु मुमुक्षु करके परब्रह्म के विषय में परोक्ष और अपरोक्ष रूप दो ज्ञान जानने योग्य उपादेयभूत हैं। इस प्रकार निश्चय करके वेदाभिज्ञ पराशरादि महर्षि कहते आये हैं। क्योंकि लिखा है—

'आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते।'

(विष्णुपु० ६।५।६०)

शास्त्रजन्य ज्ञान और विवेक से योगजन्य ज्ञान ये दो प्रकार के ज्ञान ब्रह्म विषय में कहा जाता है ॥ ६० ॥ परोक्ष शास्त्रजन्य ज्ञान हैं और अपरोक्ष योगजन्य ज्ञान है। एक परब्रह्म नारायण को जान लेने पर यह सब कुछ जाना हुआ हो जाता है। भगवदाराधनग्रन्थनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद" के पहले मुण्डक के पहले खण्ड की चौथी श्रुति को उद्धृत किया है ॥४॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमितिहासपुराण-न्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणीति अथ परा यया तदक्षर-मधिगम्यते ॥५॥

अन्वयार्थ—(तत्र) उन योगजन्यज्ञान और शास्त्रजन्यज्ञान दोनों में से (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (अथर्ववेदः) अथर्ववेद (शिक्षा) शिक्षा (कल्पः) कल्प (व्याकरणम्) व्याकरण (निरुक्तम्) निरुक्त (छन्दः) छन्द (ज्योतिषम्) ज्योतिष (इतिहासपुराणन्यायमीमांसाध-र्मशास्त्राणि) श्रीरामायणादिइतिहास, विष्णु, पद्मादि पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्म शास्त्र (इति) यह सब तो (अपरा) परोक्षज्ञान है (अथ)

और (यया) जिस अपरोक्ष योगजन्य ज्ञान से (तत्) वह (अक्षरम्) अविनाशी परब्रह्म (अधिगम्यते) यथार्थ (जाना) जाता है वह (परा) अपरोक्ष योगजन्य ज्ञान है ।।५।।

विशेषार्थ—मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की चौथी श्रुति में परोक्ष और अपरोक्ष भेद से दो प्रकार का ज्ञान कहा गया है तथा विष्णु पुराण में लिखा है—

'तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने ।
आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ।।'

(विष्णुपु० अं० ६ अ० ५ श्लो० ६०)

हे महामुने ब्रह्म प्राप्ति में हेतु ज्ञान और कम को मैंने पहले कहा है। अब शास्त्रजन्य और विवेक से योगजन्य ये दो प्रकार के ज्ञान को मैं कहता हूँ ।। ६० ।। उन दोनों परोह और अपरोक्ष ज्ञान में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों परोक्ष ज्ञान हैं । ऋग्वेद के विषय में लिखा है—

'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था (मीमां० अ० २ पा० १ सू० ३५)

जिसमें अर्थ वश से पादकीव्यवस्था होती है उसी को ऋग्वेद कहते हैं ।।३५।।

'एकविंशतिशाखायमृग्वेदः परिकीर्तितः ।' (सीतोपनि०)

'ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः ।'

(मुक्तिकोप० अ० १ श्रु० १२)

'एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा ।'(कूर्मपु० अ० ४९ श्लो० ५१)

'एकविंशतिधा बह्वृच्यः ।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्नि० १)

इक्कीस शाखाएँ ऋग्यवेद की हैं ।।१।। और यजुर्वेद के विषय में लिखा है—

शेषे यजुः शब्दः ।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३७)

शेष में यजुर्वेद कहा जाता है ।।३७।।

शतं च नवशाखासु यजुषामेव जन्मनाम् (सीतोप०)

'नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज ।'(मुक्तिको०अ० १ श्रु० १२)

हे महावीर यजुर्वेद की एक सौ नव शाखाएँ हैं ।। १२ ।। महर्षि पतञ्जलि के समय में ।

'एक शतमध्वर्युशाखाः ।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आ० १)

एक सौ एक शाखाएँ यजुर्वेद की प्राप्त होती थीं ।। १ ।।

शुक्लं कृष्णमितिद्वेधा यजुश्च समुदाहृतम् ।
शुक्लं वाजसनेयं तु कृष्णं स्यात्तैत्तिरीयकम् ॥
(प्रतिज्ञासूत्रभाष्य०)

यजुर्वेद शुक्ल और कृष्ण भेद से दो प्रकार का कहा गया। उनमें वाजसनेय शुक्लयजुर्वेद है और तैत्तिरीय कृष्णयजुर्वेद है।

'यजुर्वेदमहाकल्पतरोरेकोत्तरं शतम् ।
शाखास्तत्र शिखाकारा दश पञ्चाथशुक्लगाः ॥'
(बृहन्नारदीय०)

यजुर्वेद महाकल्पतरु की एक सौ एक शाखाएँ हैं। उनमें शुक्लयजुर्वेद की १५ शाखाएँ हैं। तथा सामवेद के विषय में लिखा है--

'गीतिषु समाख्या । (मी० अ० २ पा० १ सू० ३६)

गान में सामवेद नाम होता है ॥३६॥

'साम्नः सहस्रशाखाः स्युः । (सीतोप०)

'सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।
(मुक्तिकोप० अ० १ श्रु० १३)

'सामवेदं सहस्रेण शाखानां च विभेदतः ।'
(कूर्मपु० अ० ४६ श्लो० ५१)

'सहस्रवर्त्मा सामवेदः ।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आ० १)

एक हजार शाखाएँ सामवेद की हैं ॥ १ ॥ और अथर्ववेद के विषय में लिखा है—

'निगदो वा चतुर्थं स्याद्धर्मविशेषात् ।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३८)

विशेष धर्म होने से निगद ही चतुर्थ अथर्ववेद है ॥ ३८ ॥

'अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे ।'
(मुक्तिकोप० अ० १ श्रु० १३)

पच्चास शाखाएँ अथर्ववेद की हैं ॥ १३ ॥ पतञ्जलिमहर्षि के समय में—

'नवधा अथर्वणः ।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आ० १)

'आथर्वणमथो वेदं विभेद नवकेन तु ।
(कूर्मपु० अ० ४६ श्लो० ५२)

अथर्ववेद की नवशाखाएँ प्राप्त होती थीं ॥ ५२ ॥ वेद के विषय में लिखा है—

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।' (आपस्तम्ब० श्रौतसू० २४।१।३१)

मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों का नाम वेद है ॥३१॥

'मन्त्रब्राह्मणमित्याहुः ।' (बौधायनगृह्यसू० २, ६, २)

मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों को वेद कहते हैं ।।२।।

'आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च ।' (कौशिक सू० १, ३)

मन्त्र और ब्राह्मण को वेद कहते हैं ।।३।।

'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३२)

प्रेरणा लक्षण श्रुति का ही नाम मन्त्र है ।।३२।।

'शेषे ब्राह्मणशब्दः ।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३३)

मन्त्र से जो शेष वेद हैं वह ब्राह्मणशब्द से कहा जाता है ।। ३३ ।। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये षडङ्ग परोक्ष ज्ञान हैं । क्योंकि लिखा है—

'कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं ज्योतिषं छन्द एतानि षडङ्गानि ।'

(सीतोपनिष)

कल्प १, व्याकरण २, शिक्षा ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५, और छन्द ६ ये छः वेद के अङ्ग हैं ।

'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।।' (शिक्षा०)

वेद के दोनों चरण छन्द है और दोनों हाथ कल्प है तथा नेत्र ज्योतिष हैं और कान निरुक्त कहा गया है तथा नाक शिक्षा है और वेद का मुख व्याकरण कहा गया है । वेदों के यथार्थ उच्चारण आदि की रीति बताने वाले याज्ञवल्क्य आदि मुनियों की रचित शिक्षा है । वेद में कहे हुए कर्म का अनुष्ठान करने की रीति को बताने वाले कात्यायन बौधायन आदि ऋषियों के प्रकाशित किये हुए सूत्ररूप कल्प हैं । और

'लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम् ।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आ० १)

लक्ष्य तथा लक्षण में व्याकरण होता है ।। १ ।। अर्थात् वैदिक और लौकिक शब्दों के अनुशासन का प्रकृति प्रत्यय विभागपूर्वक शब्द साधक की प्रक्रिया शब्दार्थ बोध के प्रकार की रीति को बताने वाले पाणिनि आदि मुनियों की रचित व्याकरण है । वेद के अप्रसिद्ध पदों के अर्थ का बोधक यास्कमुनि विरचित निरुक्त है । और

'मृत्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छादनाय च ।
छन्दांसि संस्मृतानीह छादितास्तैस्ततोऽमराः ।।'

(बृहत्पाराशरस्मृ० अध्या० २ श्लो० ३६)

'छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी कृत्तिरेव च।
छन्दोभिरावृतं सर्वं विद्यात्सर्वत्र नान्यतः ॥४०॥'

पहले मृत्यु के भय से अपने को ढकने के लिये देवताओं ने छन्दों को स्मरण किया उसके बाद सब देवता छन्द से आच्छादित हुए ॥ ३९ ॥ छादन करने से छन्द कहा जाता है। कृत्ति वस्त्र है। छन्द से ही सब देवता आच्छादित हैं दूसरे से नहीं ॥ ४० ॥ वेद तथा लोक में गायत्री अनुष्टुप् आदि छन्दों का बोधक पिङ्गल मुनि विरचित छन्द है। ग्रह नक्षत्रों की स्थिति गति और वैदिक कर्म के अनुष्ठान का काल आदि बतानेवाला आदित्य, गर्ग, भृगु आदि का कहा हुआ ज्योतिष है। ये छः वेदाङ्ग परोक्ष ज्ञान हैं और इतिहास, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ये सब ही परोक्ष ज्ञान हैं। इतिहासादि के विषय में लिखा है—

'उपाङ्गमयनं चैव मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मज्ञसेवितार्थं च वेदवेदोऽधिकं तथा।
निबन्धाः सर्वशाखा च समयाचारसङ्गतिः।
धर्मशास्त्रं महर्षीणामन्तःकरणसंभृतम्।
इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च प्रकीर्तितम्।
वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने।
आयुर्वेदश्च पञ्चैते उपवेदाः प्रकीर्तिताः ॥' (सीतोपनि०)

अयन मीमांसा और न्यायशास्त्र का विस्तार ये वेदों के उपाङ्ग हैं। धर्मज्ञ पुरुष के सेवन के लिये चारो वेद तथा वेदों से अधिक ये अङ्ग उपाङ्गादि हैं। सभी वैदिक शाखाओं में उनके समयाचार—साम्प्रदायिक आचरण के शास्त्र के साथ संगति लगाने के लिये निबन्ध हैं। महर्षियों के अन्तःकरण के दिव्यज्ञान को धर्मशास्त्र कहते हैं। मुनियों ने इतिहासपुराण १, वास्तुवेद २, धनुर्वेद ३, गान्धर्ववेद ४, तथा आयुर्वेद ५ ये पाँच उपवेद बताये हैं। कई सज्जनों ने इतिहास और पुराण को आधुनिक बतलाकर खण्डन करके उड़ाने की चेष्टा की है, इससे यहाँ पर इतिहस और पुराण की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये कुछ प्रमाणों को मैं उद्धृत करता हूँ। कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें।

'स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै सपुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥'

(अथर्ववे० कां० १५ प्र० ६ अनु० १ म० १२)

वह बड़ी दिशा को चला उसके पीछे से इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसी भी चले जो पुरुष इस प्रकार जानता है वह पुरुष इतिहास तथा पुराण और गाथा तथा नाराशंस का प्रिय धाम होता है ॥ १२ ॥

'मध्याहुतयो ह वा एता देवानां यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं गाथा नाराशंस्यः य एवं विद्वाननुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते ।'

(शतपथ ब्रा० अ० ११ प्र० ३।८।८)

शास्त्र देवताओं की मध्यम आहुति हैं। देवविद्या ब्रह्मविद्या आदिक विद्याएँ उत्तरप्रत्युत्तररूप ग्रन्थ, इतिहास, पुराण, गाथा, और नाराशंसी ये शास्त्र हैं। जो इनका नित्यप्रति स्वाध्याय करता है वह मानो देवताओं के लिये आहुति देता है ॥ ८ ॥

'एष देवांस्तर्पयति य एवं विद्वान् वाकोवाक्यमितिहासः पुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते ।'　　(शत० अ० ११ प्र० ५।७।९)

जो इस प्रकार के नित्य प्रति उत्तरप्रत्युत्तररूप ग्रन्थ का और इतिहास का तथा पुराण का स्वाध्याय करता है वह देवताओं को तृप्त करता है ॥ ९ ॥

'स यथार्द्रेन्धाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतोभूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।'

(शत० प्रं० १४ ब्रा० ४ कं० १०)

जिस प्रकार से गीले इन्धन के संयोग से अग्नि में नाना विध धूम प्रगट होते हैं इसी प्रकार से उस परमात्मा के ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान, ये सब श्वासभूत हैं ॥ १० ॥

'सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।' (छां० उ० अ० ७ खं० १ श्रु० २)

नारद ऋषि बोले कि हे भगवन् ऋग्वेद को, यजुर्वेद को, सामवेद को, और चौथा अथर्ववेद को स्मरण करता हूँ तथा इतिहास पुराण पाँचवा वेद को श्राद्धकल्प को गणित को जिससे देवताओं को किये हुये उत्पात का ज्ञान होता है उसको महाकालादि निधिशास्त्र को उत्तरप्रयुत्तररूप ग्रन्थ को नीतिशास्त्र

को निरुक्त को ब्रह्मसम्बन्धी उपनिषद्विद्या को भूततन्त्र को धनुर्वेद को ज्योतिष को सर्पविद्या गारुडिगन्धयुक्त नृत्यगीतादिवाद्य शिल्पज्ञान को भी मैं स्मरण करता हूँ ॥ २ ॥

'अरेऽस्यमहतोभूतस्य निःश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानीनिष्टं हुतमाशितं पायितमयञ्चलोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैताणि सर्वाणि निःश्वसितानि ।'

(बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ५ श्रु० ११)

उस परब्रह्म नारायण के निःश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, यज्ञ, हवन किया हुआ खिलाया हुआ पिलाया हुआ यह लोक परलोक और समस्त भूत हैं ॥ ११ ॥

'यदृचोऽधीते पयसःकुल्या यस्य पितृन् स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्यकुल्या यद्ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः ।

(आश्वलायनसूत्र० अ० ३ पंचयज्ञ प्रकरण०)

जो ऋग्वेद को पढ़ता है उसके पितरों को दूध की छोटी नदी, यजुर्वेद पढ़नेवालों के पितरों को घृत की छोटी नदी, सामवेद के पढ़नेवालों के पितरों को मधु की छोटी नदी, अथर्ववेद के पढ़नेवालों के पितरों को सोमरस की छोटी नदी और ब्राह्मण, कल्प, गाथा, नाराशंसी, इतिहास, पुराण के पढ़नेवालों के पितरों को अमृत की छोटी सी नदी प्राप्त होती है ॥३॥

'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्न एकशतमध्वर्युशाखाःसहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बह्वृच्यः नवधाथर्वणो वेदो वाको वाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्ये तावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः ॥'

(महाभाष्य० अ० १ पा० १ आ० १)

सात द्वीप सहित पृथ्वी तीनों लोक शिक्षा कल्पादि अंग सहित चारों वेद उपनिषद् एक सौ एक शाखाएँ यजुर्वेद की, हजार शाखा सामवेद की, इक्कीसशाखा ऋग्वेद की, नौ शाखा अथर्ववेद की उत्तरप्रत्युत्तररूप ग्रन्थ, इतिहास, पुराण, वैद्यक ये सब शब्द के प्रयोग के विषय हैं ॥१॥

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥'

(महाभार० आदिप० १ अध्या० १ श्लो० ६७)

इतिहास और पुराण से वेद को उपबृंहण करें। अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह मुझको ठगेगा ॥ ६७ ॥ इन प्रमाणों से इतिहास पुराण अति प्राचीन सिद्ध होतें हैं। वेद के उपबृंहणरूप पूर्व चरित कथा प्रसंगात्मक वाल्मीकि वेद व्यास आदि ऋषियों के प्रकाशित श्रीरामायण और महाभारत इतिहास हैं। क्योंकि लिखा है—

'पूर्वचरितसंकीर्तनमितिहासः ।'

पूर्वचरितसंकीर्तन को इतिहास कहते हैं। वेद के उपबृंहणरूप जगत् की उत्पत्ति प्रलयादि लक्षण युक्त वेदव्यास मुनि विरचित पुराण है। क्योंकि लिखा है—

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥'

सृष्टि की उत्पत्ति १, प्रलय २, वंशवर्णन ३, मन्वन्तरवर्णन ४, वंशानुचरित ५, पुराण के पाँच ये लक्षण हैं। जिसमें ये पाँच लक्षण हों वह पुराण कहलाता है।

'मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापकूस्कलिंगानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥'

(देवीभागव०)

म आदि अक्षरवाला मत्स्य पुराण मार्कण्डेय पुराण ये दो पुराण हैं। भ आदि अक्षरवाला भविष्यपुराण और भागवत पुराण ये दो पुराण हैं। ब्र आदि अक्षरवाला ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और ब्राह्मपुराण ये तीन पुराण हैं। व आदि अक्षरवाले चार पुराण हैं, वराहपुराण, वामनपुराण, वायुपुराण और विष्णुपुराण। अ आदि अक्षरवाला एक अग्निपुराण है। ना आदि अक्षरवाला एक नारदपुराण है। प आदि अक्षरवाला एक पद्मपुराण है। कू आदि अक्षरवाला एक कूर्मपुराण है। स्क आदि अक्षरवाला एक स्कन्दपुराण है। लिं आदि अक्षरवाला एक लिङ्गपुराण है। ग आदि अक्षरवाला एक गरुडपुराण है। ये अलग अलग अठारह पुराण हैं (मुण्डकोप० मुण्डक० १ खं० १ श्रु० ५) में त्यक्तानुबन्ध पुराण शब्द है तो

"त्यक्तानुबन्धग्रहणे सामान्यस्य ग्रहणम्"

त्यक्तानुबन्धग्रहण होनेपर सामान्य का ग्रहण होता है। इस न्याय से समस्त पुराणों का ग्रहण होता है। पुराण के विषय में जिसको अधिक जानना हो वह मेरी बनायी हुई "श्रीवचनभूषण" के पहलेसूत्र की "चिन्तामणि" टीका को देख ले। प्रस्तुत श्रुति में "न्याय" शब्द से गौतम महर्षिप्रणीत—

'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितन्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।' (न्याय० अ० १ आह्नि० १ सू० १)

इस सूत्र से लेकर—

(हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः) (न्याय० अ० ५ आ० २ सू० २४)

इस सूत्रपर्यन्त न्यायशास्त्र का बोध होता हुआ कणादमहर्षिप्रणीत—

'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।' (वैशेषि० अ० १ आ० १ सू० १)

इस सूत्र से लेकर—

'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति।' (वैशे० अ० १० आ० २ सू० ६)

इस सूत्र पर्यन्त समस्त वैशेषिक शास्त्र का भी बोध होता है और प्रस्तुत श्रुति में "मीमांसा" शब्द से जैमिनिमहर्षिप्रणीत—

'अथातो धर्मजिज्ञासा। (पूर्वमीमां० अ० १ पा० १ सू० १)

इस सूत्र से लेकर—

'अन्वाहार्ये च दर्शनात्।' (पूर्वमी० अ० १२ पा० ४ सू० ४८)

इस सूत्र पर्यन्त पूर्व मीमांसाशास्त्र का बोध होता हुआ श्रीवेदव्यासमुनि प्रणीत—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शारीरकमी० अ० १ पा० १ सू० १)

इस सूत्र से लेकर—

अनावृत्तिश्शब्दादनावृत्तिश्शब्दात्।'(शारीरकमी०अ० ४ पा० ४ सू० २२)

इस सूत्रपर्यन्त समस्त वेदान्तशास्त्र का भी बोध होता है प्रस्तुत। श्रुति में "धर्मशास्त्र" शब्द से कपिल महर्षिप्रणीत—

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।'
(सांख्य० अ० १ सू० १)

इस सूत्र से लेकर—

'यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः।'
(सांख्य० अ० ६ सू० ७३)

इस सूत्रपर्यन्त सांख्यशास्त्र का बोध होता हुआ पतञ्जलि महर्षि प्रणीत—

'अथ योगानुशासनम्।' (योगशा० अ० १ पा० १ सू० १)

इस सूत्र से लेकर—

'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितशक्तिरिति। (यो० अ० १ पा० ४ सू० ३४)

इस सूत्रपर्यन्त योगशास्त्र का भी बोध होता है और—

'धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।' (मनुस्मृति०)

धर्मशास्त्र स्मृति को कहते हैं। इस नियमानुसार—मनुस्मृति १, वृद्धहारीतस्मृति २, बृहत्पराशरस्मृति ३, वशिष्ठस्मृति ४, कश्यपस्मृति ५, व्यासस्मृति ६, बोधायनस्मृति ७, विष्णुस्मृति ८, याज्ञवल्क्यस्मृति ९, गौतमस्मृति १०, शंखस्मृति ११, लिखितस्मृति १२, अत्रिस्मृति १३, अङ्गिरास्मृति १४, आपस्तम्बस्मृति १५, शातातपस्मृति १६, उशनास्मृति १७, यमस्मृति १८, प्रभृतिवेदानुसार स्मृतियाँ ये पूर्वोक्त शास्त्रजन्य परोक्ष ज्ञान हैं। यहाँ तक इस श्रुति में परब्रह्म के साक्षात्कार में हेतुभूत आगमजन्य परोक्ष ज्ञान कहा गया है और जिस अपरोक्ष योगजन्य ज्ञान से वह अविनाशी परब्रह्मनारायण यथार्थ जाना जाता है वह अपरोक्ष योगजन्य ज्ञान है। यहाँ पर उपासना नामवाला परब्रह्म के साक्षात्कार लक्षण भक्तिरूपापन्न ज्ञान कहा गया है। गद्यत्रयनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और —

'अदृश्यत्वादि गुणको धर्मोक्तेः'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में तथा—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ '

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में और—

'अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ९)

के श्रीभाष्य में और—

'अक्षरधियां त्ववरोधस्सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ।'

(शा० मी० अ० ३ पा० ३ सू० ३३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के पहले मुण्डक के पहले खण्ड की पाँचवीं श्रुति के चौथे पाद को उद्धृत किया है ॥५॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (तत्) वह परब्रह्म (अद्रेश्यम्) ज्ञानेन्द्रियों का अविषय है (अग्राह्यम्) पाण्यादि के हानोपादान का अविषय है

(आगोत्रम्) कुल आदि से रहित है (अवर्णम्) ब्राह्मण क्षत्रिय आदिक वर्ण से रहित है (अचक्षुःश्रोत्रम्) नेत्र श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय रहित है (अपाणिपादम्) हाथ पैर आदि कर्मेन्द्रिय रहित है और (तत्) वह प्रसिद्ध (यत्) जो (नित्यम्) नित्य—काल से अपरिच्छिन्न (विभुम्) देश से अपरिच्छिन्न (सर्वगतम्) सबके भीतर प्रवेश करके स्थित रहने वाला (सुसूक्ष्मम्) अत्यन्त सूक्ष्म (अव्ययम्) विकार रहित (तत्) उस परब्रह्म नारायण को (धीराः) प्रज्ञाशाली उपासक (भूतयोनिम्) सकल भूतों के उपादानरूप को (परिपश्यन्ति) भली भाँति देखते हैं ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—परब्रह्मनारायण ज्ञानेन्द्रियों का अविषय है और पाणि आदि कर्मेंद्रियों के ग्रहण का अविषय है तथा गोत्र आदि से रहित है और ब्राह्मण क्षत्रिय आदिक वर्ण रहित है। तथा श्रोत्र नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय रहित है और हाथ पैर आदि कर्मेन्द्रिय रहित है। क्योंकि लिखा है—

'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।'
(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १९)

वह परमात्मा हाथ पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं को ग्रहण करनेवाला और वेग से चलनेवाला है। विना नेत्र के वह सब कुछ देखता है तथा विना कान के वह सब कुछ सुनता है ॥ १९ ॥ वह प्रसिद्ध परब्रह्म नारायण नित्य—यानी काल से अपरिच्छिन्न विभु—यानी देश से अपरिच्छिन्न सबके भीतर प्रवेश करके स्थित रहनेवाला अत्यन्त सूक्ष्म अव्यय परब्रह्म नारायण को प्रज्ञाशाली ज्ञानी पुरुष समस्त भूतों के उपादानस्वरूप साक्षात्कार करते हैं। इस श्रुति में परोक्षज्ञान तथा अपरोक्ष ज्ञान का विषय परब्रह्म नारायण का स्वरूप कहा गया है। यहाँ पर प्राकृत हेय गुणों को पूर्वार्ध में निषेध करके उत्तरार्ध में नित्यत्व, विभुत्व, अतिसूक्ष्मत्व, सर्वगतत्व, अव्ययत्व, भूतयोनित्व, आदिक कल्याण गुणों का योग परब्रह्म नारायण का प्रतिपादन किया गया है। वेदान्तसारनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेतिचेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।'
(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० ७)

के श्रीभाष्य में तथा—

'अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में और—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में तथा—

'वदतीतिचेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।'
(शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० ५)

के श्रीभाष्य में और—

'अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ।'
(शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३६)

के श्रीभाष्य में तथा—

'अक्षरधियां त्ववरोधस्सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ।'
(शा० मी० अ० ३ पा० ३ सू० ३३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की छठवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ ६ ॥

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(यस्मात्) जिस परमात्मा से (परम्) उत्कृष्ट (अपरम्) दूसरा (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं (अस्ति) है (यस्मात्) जिस परमात्मा से बढ़कर (कश्चित्) कोई भी (न) नहीं (अणीयः) सूक्ष्म है और (न) नहीं (ज्यायः) महान् सर्वेश्वर (अस्ति) है (वृक्षः) वृक्ष के (इव) समान (स्तब्धः) अप्रणतस्वभाव (एकः) अकेला जगत् का प्रधानभूत (दिवि) परमपद वैकुण्ठ में (तिष्ठति) स्थिर रहता है (तेन) नियमन करने के लिये भीतर प्रविष्ट उस (पुरुषेण) परमपुरुष परमात्मा से (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण चर अचर संसार (पूर्णम्) व्याप्त या परिपूर्ण है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—जिस परमात्मा से उत्कृष्ट दूसरा कोई नही है और सर्वव्यापक होने से परमात्मा से सूक्ष्म कोई भी नहीं है तथा सर्वेश्वर होने से परमात्मा से महान् भी कोई नहीं है । क्योंकि लिखा है—

'अणोरणीयान्महतो महीयान् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० २०)

सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म महान् से भी अत्यन्त महान् परमात्मा है ॥ २३ ॥ अनन्तव्य वस्तु के अभाव होने से वृक्ष के समान अप्रणतस्वभाव जगत् के प्रधानभूत परमपद वैकुण्ठ में स्थित रहता है । वह परब्रह्म नारायण स्थावर जंगमरूप समस्त संसार के बाहर और भीतर व्याप्त होकर रहता है । क्योंकि लिखा है—

'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥'

(नारायणो० श्रु० १३)

जो कुछ संसार देखा जाता है या सुना जाता है उसके भीतर और बाहर व्यापक होकर नारायण स्थित है ॥ १३ ॥ प्रस्तुत मुण्डकोपनिषद् की श्रुति बहुत ग्रन्थों में नहीं है तौ भी विशिष्टाद्वैत के बड़े बड़े विद्वानों ने इसकी व्याख्या की है इससे प्रक्षेप की शंका नहीं करनी चाहिये । यह प्रस्तुत श्रुति (श्वेताश्वतरो० अध्या०३ श्रु० ६) में भी स्पष्ट पठित है ॥७॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति । यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (ऊर्णनाभिः) मकड़ी (सृजते) जालेको किसी की अपेक्षा न करती हुई बनाती है (च) और (गृह्णते) निगल जाती है तथा (यथा) जैसे (पृथिव्याम्) पृथ्वी में (ओषधयः) नाना प्रकार की ओषधियाँ (संभवन्ति) उत्पन्न होती हैं और (यथा) जैसे (सतः) जीवित (पुरुषात्) पुरुष यानी चेतन से (केशलोमानि) अचेतन केश तथा रोएँ उत्पन्न होते हैं (तथा) वैसे ही (इह) यहाँ इस सृष्टि में (अक्षरात्) निमित्तान्तर निरपेक्ष उपादेयविलक्षण निर्विकार परमात्मा से (विश्वम्) परस्पर विलक्षण चेतनाचेतनात्मक निखिल जगत् (संभवति) उत्पन्न होता है ॥८॥

विशेषार्थ—जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट में स्थित तन्तु को किसी की अपेक्षा न करती हुई बाहर निकालकर जाले को बनाती है और फिर उसे निगल जाती है । उसी प्रकार वह परब्रह्म नारायण अपने अन्दर सूक्ष्मरूप से स्थित हुए जड़ चेतनरूप जगत् को सृष्टि के आदि में नाना प्रकार के उत्पन्न करके किसी की अपेक्षा न करता हुआ फैलाता है और प्रलयकाल में अपने भीतर ग्रहण कर लेता है । जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार के अन्न तृण वृक्ष लता आदि ओषधियाँ पृथ्वी की पूर्वावस्था के उपमर्द तथा तिरोधान के अभाव होने पर भी उत्पन्न होती हैं । उसी प्रकार परब्रह्म नारायण में उपमर्दादि के अभाव होने पर भी परब्रह्म से अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार मनुष्य के जीवित शरीर से सर्वथा विलक्षण अचेतन केश रोएँ और नख उत्पन्न होते हैं । उसी प्रकार इस सृष्टि में निमित्तान्तरनिरपेक्ष उपादेयविलक्षण निर्विकार परब्रह्म नारायण से परस्पर विलक्षण चेतनाचेतनात्मक समस्त संसार उत्पन्न होता है । इस श्रुति में

अक्षर परब्रह्मनारायण से समस्त चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च की उत्पत्ति कही गई है। वेदान्तदीपनिर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में और—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याश्च नेतरौ ।'(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की आठवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ ८ ॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(ब्रह्म) परब्रह्म परमात्मा (तपसा) ज्ञानमय तप से (चीयते) उपचय को प्राप्त होता है अर्थात् सृष्टि के उन्मुख होता है (ततः) उस परब्रह्म से (अन्नम्) भोग्य भोक्तृरूप चेतनाचेतन संघात लक्षण अव्याकृत (अभिजायते) उत्पन्न होता है और (अन्नात्) उस समष्टिरूप चिदचित् संघातात्मक अन्नशब्द-वाच्य अव्याकृत से क्रमशः (प्राणः) प्राण (मनः) मन यानी अन्तःकरण (सत्यम्) भोक्तृवर्ग (लोकाः) स्वर्गादिक समस्त लोक (च) और (कर्मसु) कर्मों में (अमृतम्) मोक्षार्थ कर्म उत्पन्न होता है ॥६॥

विशेषार्थ—छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'तदैक्षत वहुस्याम् ।' (छा० उ० अ० ६ खं० २ श्रु० ३)

उस परब्रह्म ने संकल्प किया कि—मैं बहुत हो जाऊँ ॥ ३ ॥ इस बहुभवन संकल्प के द्वारा तथा—

'यस्य ज्ञानमयं तपः ।' (मुण्डको० मु० १ खं० १ श्रु० १६)

जिसका ज्ञानमय तप है ॥ १० ॥ इस श्रुति के अनुसार ज्ञानमय तप से वह परब्रह्म नारायण सृष्टि के उन्मुख होता है। उसके बाद उस परब्रह्म नारायण से अन्न यानी भोग्य भोक्तृरूप चेतनाचेतन संघात लक्षण अव्याकृत उत्पन्न होता है। अन्न के विषय में लिखा है—

'अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं यदुच्यते ।'
(तैत्तिरीयो० व० २ अनुवा० २)

प्राणियों से जो खाया जाता है और प्राणियों को जो खाता है उससे वह अन्न कहा जाता है ॥२॥ उस अन्न से यानी समष्टिरूप चिदचित् संघातात्मक अव्याकृत से क्रमशः प्राण—यानी अन्तःकरण भोक्तृवर्ग स्वर्गादिक समस्त लोक और कर्मों में मोक्षार्थ—जन्म मरण निवृत्त करनेवाला कर्म उत्पन्न होता है। वेदार्थ संग्रह निर्माता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में और

'स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० ४)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की नवमी श्रुति को उद्धृत किया है ॥९॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥१०॥

॥ इति प्रथममुण्डके प्रथमखण्डः ॥

अन्वयार्थ—(यः) जो परमात्मा (सर्वज्ञ) सामान्य रूप से सर्वविषयक ज्ञानवाला है और (सर्ववित्) विशेष रूप से तत्तत् वस्तुगत सर्वप्रकार ज्ञानवाला है (यस्य) जिस परमात्मा को (ज्ञानमयम्) ज्ञानमय (तपः) तप है (तस्मात्) उस सृष्टि के उन्मुख परब्रह्म से (एतत्) यह भोग्य भोक्तृ रूप चेतनाचेतन संघात लक्षण अव्याकृत (ब्रह्म) ब्रह्म (जायते) साक्षात् उत्पन्न होता है (च) और तद्द्वारा (नाम) हरि नारायणादि नाम यथा (रूपम्) श्याम गौर इत्यादि रूप उत्पन्न होता है तथा नाम रूप के समान (अन्नम्) अन्न यानी भोग्य भोक्तृ रूप उत्पन्न होता है ॥१३॥

विशेषार्थ—जो परब्रह्म नारायण सामान्य रूप से सर्वविषयक ज्ञानवाला है और विशेष रूप से तत्तद्वस्तुगत सर्वप्रकारक ज्ञानवाला भी है ।

तदैक्षत बहु स्याम् । (छा० उ० अ० ६ खं० २ श्रु० ३)

उस परब्रह्म ने संकल्प किया कि—मैं बहुत हो जाउँ ॥ ३ ॥ इस श्रुति के अनुसार बहुभवनसंकल्प के द्वारा अपने ज्ञानमय तप से सृष्टि के उन्मुख परमात्मा होता है। उस सृष्टि के उन्मुख परब्रह्म नारायण अक्षर पुरुष से यह कार्याकार ब्रह्म नाम रूप से विभक्त भोग्य भोक्तृ रूप उत्पन्न होता है । अन्न के विषय में लिखा है—

'अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ।'

(तै० उ० व० २ अनुवा० २)

प्राणियों से जो खाया जाता है और प्राणियों को जो खाता है उससे वह अन्न कहा जाता है ॥ २ ॥ इस श्रुति के अनुसार "अन्न" का अर्थ भोग्य और भोक्ता होता है । प्रस्तुत मुण्डक के इस श्रुति में सृष्टि के उपकरणभूत सार्वज्ञ्य सत्यसंकल्पत्वादिक प्रतिपादन किया गया है । भगवद्गीताभाष्य निर्माता भगद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'तत्तु समन्वयात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में तथा

'ईक्षतेर्नाशब्दम् ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ५)

के श्रीभाष्य में और

'अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में तथा

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांश्च नेतरौ ।'(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में और

'आकाशोऽर्थान्तरत्वादि व्यापदेशात् ।'(शा०मी०अ० १ पा० ३ सू० ४२)

के श्रीभाष्य में तथा

'परिणामात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० २७)

के श्रीभाष्य में और

'अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ८)

के श्रीभाष्य में तथा

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० १५)

के श्रीभाष्य में और

'स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० ४)

के श्रीभाष्य में तथा

'तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ।'

(शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० २६)

के श्रीभाष्य में और

'दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ।' (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० १७)

के श्रीभाष्य में तथा

'अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ।'

(शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० ८)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की अन्तिम दसवीं श्रुति को उद्धृत किया है। यहाँ पर "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक का प्रथम खण्ड समाप्त हो गया ॥ १० ॥

॥ अथ द्वितीयखण्डः ॥

तदेतत्सत्यं मंत्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥१॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह (एतत्) यह परब्रह्म (सत्यम्) नित्य उत्पत्ति विनाशादि षड्भाव विकार शून्य है (कवयः) अतीन्द्रिय अर्थों के साक्षात्कार करने में समर्थ बुद्धिमान लोग (यानि) जिन (कर्माणि) अग्निहोत्र कर्मों को (मंत्रेषु) वेद के मंत्रों में (अपश्यन्) देखे थे (तानि) वे अग्निहोत्रकर्म (त्रेतायम्) गार्हपत्यादिक वैतानिक अग्नि में (बहुधा) अधिकारी मंत्र तथा फल के भेद से बहुत प्रकार के (संततानि) विहित विस्तृत हैं (सत्यकामाः) हे सत्य यानी परब्रह्म को चाहनेवाले फलाभिसंधिरहित पुरुष (तानि) उन अग्निहोत्र कर्मों को (नियतम्) निन्तर (आचरथ) तुम सब अनुष्ठानकरो (सुकृतस्य) पुण्यफल-भूत (लोके) इस लोक में (वः) तुम्हारे मुमुक्षु के लिये (एषः) यही वक्ष्यमाण (पन्थाः) मार्ग है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की आठवीं नवमी श्रुति में वर्णित वह यह परब्रह्म नित्य उत्पत्ति विनाशादि षड्भाव विकारशून्य निरुपाधिक सत्य है। षड्भाव विकृति वाराहोपनिषद् में लिखा है—

षड्भावविकृतिश्चास्ति जायते वर्धतेऽपि च।
परिणामं क्षयं नाशं षड्भावविकृतिं विदुः ॥

(वारहो० अध्या० १ श्रु० ८)

है १, उत्पन्न होता है २, बढ़ता है ३, परिणाम होता है ४, क्षय होता है ५, नाश होता है ६, इन छः को षड्भाव विकार महात्मा लोग जानते हैं ॥ ८ ॥ अतीन्द्रिय अर्थों के साक्षात्कार करने में समर्थ बुद्धिमान् पुरुष जिन अग्निहोत्र कर्मों को ऋग् यजुः अथर्ववेद के प्रेरणात्मक मंत्रों में देखे थे। क्योंकि लिखा है—

'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् ।' जबतक जीता रहे तबतक अग्निहोत्र करे।

तच्चोदकेषु मंत्राख्या ।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३२)

प्रेरणा लक्षण श्रुति ही का नाम मंत्र है ॥ ३२ ॥ अग्निहोत्र कर्म गार्हपत्यादिक वैतानिक अग्नि में अधिकारी मंत्र और फल के भेद से बहुत प्रकार के विस्तारपूर्वक वर्णित है। सत्य परब्रह्म नारायण को चाहनेवाले फलाभिसन्धिरहित मनुष्यों वेदविहित उन अग्निहोत्र कर्मों को निरन्तर तुम सब अनुष्ठान करो। पुण्य फलभूत

इस लोक में तुम्हारे मुमुक्षुओं के लिये यही वक्ष्यमाण सुन्दर मार्ग है । इस श्रुति में वर्णाश्रमोचित नियत अग्निहोत्र को फलाभिसन्धिरहित करने के लिये प्रतिपादन किया गया है । प्रातः स्मरणीय भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ ।'(शा मी अ १ पा २ सू ३३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के दूसरे खण्ड की पहली श्रुति को उद्धृत किया है ॥ १ ॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ॥२॥

अन्वयार्थ—(हव्यवाहने) हविष्य को देवताओं के पास पहुँचानेवाले अग्नि के (समिद्धे) भलीभाँति प्रज्वलित हो जानेपर (हि) निश्चय करके (यदा) जिस समय (अर्चिः) ज्वाला (लेलायते) लपलपाने लगती है (तदा) उस समय (आज्यभागौ) आज्य भाग के (अन्तरेण) मध्य में (आहुतीः) आहुतियों को (प्रतिपादयेत्) डाले ॥२॥

विशेषार्थ—इस श्रुति—

'एष वः पन्थाः ।'　　(मुण्डको मु १ खं २ श्रु १)

में निर्दिष्ट मुमुक्षुओं के लिये जो मार्ग है उसी को अङ्गिरा महर्षि ने कहा है कि हे प्रियतम शौनक अधिकारी मनुष्यों को नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चाहिये । क्योंकि लिखा है —

'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् ।'

जबतक जीता रहे तबतक अग्निहोत्र करे ।

'अग्निहोत्रं यथा नित्यम् ।'(पद्मपु उत्तरखं ६ अध्या ६७ श्लो ८१)

जैसे नित्य अग्निहोत्र वेद विधान किया है ॥ ८१ ॥ अग्नि के भले प्रकार से प्रज्वलित होने पर जब उस अग्नि में से लपटें निकलने लगें उस समय आज्यभागों के मध्य "आवाप" स्थान में देवताओं के उद्देश्य से आहुतियाँ देनी चाहिये क्योंकि नित्य अग्निहोत्र में आज्यभाग की दो आहुतियाँ देने का नियम नहीं है । इससे आज्यभाग के स्थान को छोड़कर बीच में आहुतियाँ डालनी चाहिये । यजुर्वेद के अनुसार आहवनीय अग्नि में "ओं प्रजापतये स्वाहा" इस मन्त्र से प्रजापति के लिये मौनभाव से एक आहुति दी जाती है और "ओमिन्द्राय स्वाहा" इस मन्त्र से इन्द्र के लिये "आघार" नाम की दो आहुतियाँ दी जाती हैं । इसके बाद "ओमग्नये स्वाहा" इस मन्त्र को कहकर आहवनीय अग्नि के उत्तर ओर पूर्वार्ध में एक आहुति दी जाती है और "ओं सोमाय स्वाहा" इस मन्त्र को कहकर सोमदेवता के लिये आहवनीय अग्नि में दक्षिण ओर पूर्वार्ध में

एक आहुति दी जाती है। ये उत्तर तथा दक्षिण ओर अग्नि और सोमदेवता के लिये अलग अलग जो दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनका नाम "आज्यभाग" है। नित्य अग्निहोत्र करनेवालों को चाहिये कि "आज्यभाग" को बराकर प्रदीप्त अग्नि के "आवापस्थान" में प्रातः और सायंकाल आहुतियों को डाले। आसक्ति और फल की कामना को त्यागकर यही सुन्दर मार्ग है ॥२॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयण- मतिथिवर्जितं च। अहुतमवैश्वदेवमश्रद्धयाविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान्हिनस्ति ॥३॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस पुरुष का (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र नामक याग (अदर्शम्) प्रत्येक अमावस्या को किये जानेवाले दर्श नामक यज्ञ से रहित है (अपौर्णमासम्) प्रत्येक पूर्णिमा के किये जानेवाले पौर्णमास नामक यज्ञ से रहित है (अचातुर्मास्यम्) चार महीनों में पूरा होनेवाले चातुर्मास्य नामक यज्ञ से रहित है (अनाग्रयणम्) शरद आदि ऋतु में नवीन अन्न से होनेवाले आग्रयण कर्म से रहित है (च) और (अतिथिवर्जितम्) अतिथि सत्कार रहित है (अहुतम्) अग्निहोत्र के समय में हवन नहीं किया गया है (अवैश्वदेवम्) बलिवैश्वदेव नामक कर्म से रहित है और (अश्रद्धया) विना श्रद्धा के (अविधिना) शास्त्र विधि की अवहेलना करके (हुतम्) हवन किया हुआ अग्निहोत्र कर्म (तस्य) उस अग्निहोत्री के (आसप्तमान्) पृथ्वी लोक से लेकर सत्यलोक सातों (लोकान्) पुण्यलोकों को (हिनस्ति) नाश कर देता है अथवा सात पीढ़ियों को नष्ट कर देता है ॥३॥

विशेषार्थ—जिस मनुष्य का अग्निहोत्र नामक याग प्रत्येक अमावस्या में होनेवाले दर्शयज्ञ से रहित है और प्रत्येक पूर्णिमा में होने वाले पौर्णमास यज्ञ से रहित है। क्योंकि लिखा है कि—"दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत" दर्श और पौर्णमास से यजन करे। चार महीने में पूरा होनेवाल चातुर्मास्य यज्ञ से रहित है। क्योंकि लिखा है—

'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति।'

चातुर्मास्य याजियों के अक्षयपुण्य प्राप्त होता है और शरद आदि ऋतु में नए अन्न से होनेवाले आग्रयण कर्म से रहित है। तथा अतिथिपूजन से रहित है। अतिथि के विषय में लिखा है—

'अतिथिदेवोभव।' (तैत्तिरीयो० व० १ अनुवा० ११)

अतिथि को देवता के समान माननेवाले होवो ॥११॥

'एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥'

(मनु० अ० ३ श्लो० १०२)

केवल एक रात्रि पराये घर में बसता हुआ ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सदा न रहने से अतिथि कहा जाता है। नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥ १०२ ॥ और नित्य अग्निहोत्र में ठीक समयपर शास्त्रविधि के अनुसार हवन रहित है तथा बलिवैश्वदेव कर्म के अनुष्ठान से रहित है। तथा विना श्रद्धा के हवन किया है। क्योंकि लिखा है—

'श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयादेयम् ।' (तै० उ० व० १ अनुवा० ११)

श्रद्धा से देना चाहिये विना श्रद्धा के नहीं देना चाहिये ॥ ११ ॥ और शास्त्र विधि की अवहेलना करके हवन किया हुआ अग्निहोत्र कर्म उस अग्निहोत्र पुरुष के भूर्लोक १, भुवर्लोक २, स्वर्लोक ३, महर्लोक ४, जनलोक ५, तपोलोक ६, सत्यलोक ७, इन सातों लोकों को नाश कर देता है अथवा उस अग्निहोत्री के पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीन पूर्वपुरुष तथा पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र ये तीन आगे होनेवाली सन्ततियाँ और एक स्वयं अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य ये सात पीढ़ियों को नष्ट कर देता है। इस श्रुति से यह ज्ञात होता है कि—नित्य नैमित्तिक संपूर्ण कर्म अनुष्ठान करने योग्य हैं। इस श्रुति स्मृतिविहित कर्मों में एक कर्म भी वैधुर्य होने पर दूसरे अनुष्ठान किये हुए कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥३॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥४॥

अन्वयार्थ—(काली) कालेरङ्गवाली—काली (कराली) अति उग्र कराली (च) और (मनोजवा) मन के समानवेगवाली—मनोजवा (च) और (सुलोहिता) सुन्दरलाली लिये हुये—सुलोहिता (च) और (या) जो (सुधूम्रवर्णा) सुन्दर धुएँ के से रङ्गवाली—सुधूम्रवर्णा (स्फुलिङ्गिनी) चिनगारियोंवाली—स्फुलिङ्गिनी (च) और (विश्वरुची) सकल सुन्दरताओं से युक्त—विश्वरुची (देवी) देवी (इति) ये (सप्त) अग्नि की सात (लेलायमानाः) लपलपाती हुई (जिह्वाः) जिह्वाएँ हैं ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—कालेरङ्गवाली काली १, अतिउग्र जिसमें आग लग जाने का डर रहता है वह कराली २, और मन की समान वेगवाली मनोजवा ३, तथा सुन्दरलाली लिये सुई सुलोहिता ४, और सुन्दर धुएँ के से रङ्गवाली

सुधूम्रवर्णा ५, चिनगारियोंवाली स्फुलिङ्गिनी ६, और सकल सुन्दरताओं से युक्त देदीप्यमान विश्वरुची देवी ७, ये अग्नि की सात लपलपाती हुई जिह्वाएँ हैं। इस श्रुति में अग्नि के जिह्वाओं का नाम रङ्ग और संख्या का वर्णन किया गया है ॥ ४ ॥

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥५॥

अन्वयार्थ—(यः) जो अग्निहोत्री (एतेषु) इन अग्नि की जिह्वाओं के (भ्राजमानेषु) देदीप्यमान होने पर (यथा कालम्) ठीक अग्निहोत्र के समय पर (हि) निश्चय करके (आददायन्) होम द्रव्य को लेकर के (चरते) अग्निहोत्र करता है (च) तो (एताः) ये (आहुतयः) आहुतियाँ (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें होकर (यत्र) जहाँ (देवानाम्) देवताओं के (एकः) एक (पतिः) स्वामी ब्रह्मा (अधिवासः) निवास करता है वहाँ (तम्) उस अग्निहोत्र को (नयन्ति) पहुँचा देती हैं ॥५॥

विशेषार्थ—जो अग्निहोत्री पूर्वोक्त अग्नि की सात काली आदिक जिह्वाओं के प्रज्वलित होने पर ठीक अग्निहोत्र के समय में शास्त्रविधि के अनुसार नित्यप्रति हवन के द्रव्य को लेकर अग्निहोत्र करता है उस अग्निहोत्री को मरने पर अपने साथ लेकर ये आहुतियाँ सूर्य की किरणें बनकर वहाँ पहुँचा देती हैं जहाँ सब देवताओं के स्वामी चतुर्मुख ब्रह्मा सबसे ऊपर रहता है। ब्रह्मा के विषय में लिखा है—

'भूतानां ब्रह्मा प्रथमो ह त जज्ञे ।' (अथर्ववेद १६, २३, ३०)

सब प्राणियों में ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्न हुआ ॥३०॥

'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्यकर्ता भुवनस्यगोप्ता ।'
(मुण्डको० मु० १ खं० श्रु० १)

समस्त भुवन के रचयिता और समस्त लोक के रक्षक चतुर्मुख ब्रह्मा इन्द्रादि देवताओं में सबसे पहले उत्पन्न हुआ ॥१॥

'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ४)

जिस परब्रह्म नारायण ने सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया ॥४॥

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् ।' (श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १८)

जिस परमात्मा ने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को बनाया ॥१८॥

'नारायणाद्ब्रह्मा जायते ।' (नारायणो० श्रु० १)

नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होता है ॥१॥

तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।'

(मनुस्मृ अ १ श्लो ९)

हैम अण्ड में स्वयं सब लोक के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए ।। ९ ।। इन प्रमाणों से देवताओं से श्रेष्ठ ब्रह्मा सिद्ध होता है ।। ५ ।।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥

अन्वयार्थ—(सुवर्चसः) सुन्दर दीप्तिवाली (आहुतयः) आहुतियाँ (एहि) आओ (एहि) आओ (एषः) यह (वः) तुम्हारे (सुकृतः) सुन्दर अग्निहोत्र कर्म से प्राप्त (पुण्यः) पवित्र (ब्रह्मलोकः) चतुर्मुख ब्रह्मा के लोक है (इति) इस प्रकार की (प्रियाम्) प्रिय (वाचम्) वाणी को (अभिवदन्त्यः) बार बार कहती हुई और (अर्चयन्त्यः) आदर सत्कार करती हुई (तम्) उस अग्निहोत्र करनेवाले (यजमानम्) यजमान को (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (वहन्ति) ले जाती हैं ।। ६ ।।

विशेषार्थ—वे पूर्वरूप से प्रज्वलित होती हुई समस्त आहुतियाँ उस अग्निहोत्र करनेवाले यजमान को आओ आओ तुम्हारे सुन्दर अग्निहोत्र कर्म से प्राप्त हुआ यह पवित्र चतुर्मुख ब्रह्मा का लोक है । ऐसे प्रसन्न करनेवाले प्रिय वाक्यों को बार बार कहती हुई बड़े सत्कार के साथ सूर्य की किरणों के द्वारा ले जाती हैं । इस श्रुति में अग्निहोत्र कर्मानुष्ठान करनेवाले को जिस प्रकार से आहुतियाँ ब्रह्मलोक में ले जाती हैं उसी प्रकार का वर्णन किया गया है । श्रीपूज्यपाद भगवद्रामानुजाचार्य ने

विशेशणभेदव्यपदेशाभ्याश्च नेतरौ ।'(शा०मी०अ० २ पा० २ सू० ६३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के पहले मुण्डक के दूसरे खण्ड की छठवीं श्रुति के—

एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ।'

इस खण्ड को उद्धृत किया है ।।६।।

प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥७॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय करके (एते) ये (अष्टादस) सोलह

ऋत्विक् तथा यजमान और यजमानपत्नी ये अठारह (यज्ञरूपाः) यज्ञरूप (प्लवाः) नौकाएँ (अदृढाः) दृढ नहीं हैं (येषु) जिनमें (अवरम्) फलाभिसन्धियुक्त नीची श्रेणी का (कर्म) उपासना रहित सकाम कर्म (उक्तम्) कहा गया है (एतत्) यह अश्रेष्ठकर्म (श्रेयः) कल्याण का मार्ग है ऐसा मानकर (ये) जो (मूढाः) मूर्ख पुरुष (अभिनन्दन्ति) इसकी प्रशंसा करते है (ते) वे मूढ (पुनः) फिर (अपि) भी (एव) निश्चय करके (जरामृत्युम) बुढापे और मरण को (यन्ति) प्राप्त होते रहते हैं ॥७॥

विशेषार्थ—निश्चय करके होता है १, अध्वर्यु २, ब्रह्मा ३, उद्गाता ४, प्रशास्ता ५, प्रतिप्रस्थाता ६, ब्राह्मणाच्छंसी ७, प्रस्तोता ८, अच्छावाक ६, नेष्टा १०, आग्नीध्र ११, प्रतिहर्ता १२, ग्रावस्तुत् १३, नेता १४, होता १५, सुब्रह्मण्य १६, यजमान १७, और यजमान की स्त्री १८ इन अठारह से सिद्ध होनेवाले यज्ञ रुप डोंगे अधिक समय रहने वाले दृढ़ नहीं हैं। अर्थात् जैसे छोटी छोटी नौका समुद्र में थोड़ी दूर जाकर फिर वहाँ से लौट आती हैं वैसे ही यज्ञरूपी नौका ब्रह्मा आदिक के लोक में पहुँचा देती हैं और कर्मफल के क्षीण होने पर फिर वहाँ से लौटना पड़ता है। जिनमें फलाभिसन्धियुक्त अश्रेष्ठ उपासना रहित सकाम कर्म कहा गया है। जो मूढ पुरुष उपासना रहित केवल यज्ञादि कर्म को ही श्रेय का साधन मानकर इसकी प्रशंसा करते हैं वे मनुष्य बारंबार इसलोक में आकर जरामरण आदि के दुःख को भोगते हैं। क्योंकि भगवद्गीता में लिखा है—

'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।' (गी० अ० ८ श्लो० १६)

हे अर्जुन ब्रह्माण्ड के अन्दर रहनेवाले ब्रह्मा के लोक पर्यन्त सभी लोक पुनरावृत्तिशील हैं ॥ १६ ॥

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।'

(गी० अ० ६ श्लो० २१)

वे सकाम यज्ञ करनेवाले विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य के क्षीण होने पर पुनःमृत्युलोक में प्रवेश करते हैं ॥ २१ ॥ प्रस्तुत "मुण्डकोपनिषद्" की इस श्रुति में फलाभिसन्धिपूर्वक ज्ञानविधुर अवर यज्ञकर्म करनेवाले पुरुषों की पुनरावृत्ति कही गयी है। जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ ।'(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के द्वितीय खण्ड की सातवीं श्रुति को उद्धृत किया है।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० सू० १)

के श्रीभाष्य में भी प्रस्तुत श्रुति के प्रथमपाद को उद्धृत किया है।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥८॥

अन्वयार्थ—(अविद्यायाम्) काम्यकर्मात्मिका अविद्या के (अन्तरे) भीतर (वर्तमानाः) वर्तमान् अविवेकप्रधान (स्वयम्) अपने आप (धीराः) प्रज्ञाशाली-बुद्धिमान् और (पण्डितम्) ऊहापोह क्षमधी या शास्त्रकुशल पण्डित (मन्यमानाः) माननेवाले (मूढाः) भोग की इच्छा करनेवाले वे अविवेकी मूर्ख (जङ्घन्यमानाः) बारम्बार जरा मरण आदिक से आघात सहन करते हुए (यथा) जैसे (अन्धेन) अन्धे मनुष्य करके (एव) निश्चय करके (नीयमानाः) ले जाये जाते हुए (अन्धाः) अन्धे मनुष्य (परियन्ति) चारों ओर भटकते हुए अच्छी प्रकार से भ्रमण करते रहते हैं वैसे ही नाना योनियों में चारो ओर भटकते हुए जन्ममरण चक्र में घूमते हैं ॥८॥

विशेषार्थ—काम्यकर्मात्मिका अविद्या के भीतर पड़े हुए मूढ भोग की इच्छा करने वाले अविवेकी मनुष्य आचार्य के सदुपदेश विना अपने आप बुद्धिमान् और शास्त्र कुशल ऊहापोह करने वाले पण्डित मानने वाले अज्ञानी जरा मरण रोग आदि अनेकों अनर्थों से अत्यन्त पीडित होते हुए अनेक योनियों में दुर्दशाओं को भोगते हुए चारो ओर घूमते रहते हैं। जैसे अन्धे मनुष्य को मार्ग दिखानेवाला भी अन्धा ही है। ऐसे अपने इच्छित स्थान को जाते हुए अन्धे गढ़े और कांटों के दुर्गम मार्ग में पड़ जाते हैं। वैसे ही वह पण्डितमानी मूढ भी जन्ममरणरूप बड़े कष्टों में पड़ जाते हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—पण्डित किस को कहते हैं। इसका उत्तर यह लिखा है--

'यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥'
(गी० अ० ४ श्लो० १९)

जिसके समस्त कर्म कामना और संकल्प से रहित हैं उस ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध हुए कर्मों वाले पुरुष को बुधजन पण्डित कहते हैं ॥१९॥ प्रस्तुत "मुण्डकोपनिषद्" की श्रुति थोड़े पाठ भेद से (कठोप० अध्या० १ वल्ली० २ श्रु० ५) में भी है ॥ ८ ॥

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयमेव कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥९॥

अन्वयार्थ—(अविद्यायाम्) प्रकृतिमण्डल में (बहुधा) देव मनुष्य आदिक बहुत प्रकार से अभिमान करके (वर्तमानाः) वर्तते हुए (बालाः) अज्ञानी लोग (वयम्) हम (एव) निश्चय करके (कृतार्थाः) कृतार्थ हैं (इति) ऐसा (अभिमन्यन्ति) अभिमान करते है (यत्) क्योंकि (कर्मिणः) वे सकाम करनेवाले लोग (रागात्) कर्म फल स्वर्गादि पाने में आसक्ति होने से यथार्थ तत्त्व को (न) नहीं (प्रवेदयन्ति) जानते हैं (तेन) उस तत्त्वज्ञान के अभाव होने से (क्षीणलोकाः) बारंबार दुःख से व्याकुल हुए (च्यवन्ते) स्वर्गादि लोक से नीचे गिर जाते हैं अर्थात् मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—इस प्रकृतिमण्डल में देव मनुष्य आदिक बहुत प्रकार से अभिमान् करके केवल कर्म में ही लगे हुए अज्ञानीरूप बालक हम ही अपने प्रयोजन को साधकर कृतार्थ हुए हैं ऐसा अभिमान करते हैं। क्योंकि—ऐसे कर्म करनेवाले पुरुष कर्म के फल में लालसा होने के कारण यथार्थतत्त्व को विशेषरूप से नहीं जानते हैं। उस तत्त्वज्ञान के अभाव होने के कारण उनके कर्म का फल क्षीण होने पर वे दुःख से व्याकुल होते हुए स्वर्गादि लोक से नीचे गिर जाते हैं। क्योंकि लिखा है—

'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (गीता० अ० ९ श्लो० २१)

पुण्य के क्षीण होने पर मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं ॥ २२ ॥ अर्थात् स्वर्गादिलोक से नीचे गिर जाते हैं ॥ ९ ॥

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(इष्टापूर्तम्) यागादि कर्म को और कूप खननादिक कर्म को (वरिष्ठम्) सबसे श्रेष्ठ (मन्यमानाः) यही सब पुरुषार्थ के सार हैं ऐसा मानते हुए (प्रमूढाः) अत्यन्त मूर्ख लोग (अन्यत्) दूसरे (श्रेयः) वास्तविक श्रेय को (न) नहीं (वेदयन्ते) जानते हैं (ते) वे इष्टापूर्त कर्म करनेवाले (सुकृते) शुभ कर्म से प्राप्त हुए (नाकस्य) स्वर्गलोक से (पृष्ठे) ऊपर के लोक में (अनुभूत्वा) कर्मफल को भोगकर (इमम्) इस (लोकम्) मनुष्यलोक को (वा) या (हीनतरम्) इससे भी हीन रौरवादि नरक को (विशन्ति) प्रवेश करते हैं ॥१३॥

विशेषार्थ—अज्ञानीपुरुष यज्ञ आदि इष्ट और वापी कूप आदि खुदवानारूपपूर्त कर्म को परम श्रेष्ठ मोक्ष का मुख्य साधन मानते हैं और

दूसरे भगवदुपासनारूप वास्तविक श्रेय को नहीं जानते हैं। वे केवल कर्म निरत अपने पुण्य कर्म के फल से प्राप्त हुए स्वर्गलोक से ऊपर के लोक में कर्मफल को भोगकर इस मनुष्यलोक को अथवा इससे भी हीन पशु पक्षी आदि योनि को या रौरवादि नरक को प्रवेश करते हैं। क्योंकि लिखा है—

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'

(गी० अ० ९ श्लो० २१)

उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य के क्षीण होनेपर मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं॥ २१॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—इष्टापूर्त किसको कहते हैं। इसका उत्तर धर्मशास्त्र में लिखा है—

'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामुपलम्भनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥ १॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते॥' २॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्यभाषण, वेदपाठ, अतिथिसत्कार और वैश्वदेवकर्म इष्ट कहाता है॥ १॥ बावली कूप तालाव देवमन्दिरनिर्माण अन्नदान और बगीचा लगाना यह कर्म पूर्त कहाता है॥ २॥ इन पूर्वोक्त कर्मों को इष्टपूर्त कहते हैं।

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो-भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतःस पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥११॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय करके (ये) जो श्रवणमनन करके संयासी (शान्ताः) शान्त स्वभाववाले (विद्वांसः) भगवदुपासना करनेवाले विद्वान् (भैक्षचर्याम्) भिक्षावृत्ति को (चरन्तः) करते हुए (अरण्ये) वन में रहकर (तपःश्रद्धे) तप यानी परब्रह्म को और परब्रह्म के आदरातिशयरूप श्रद्धा को (उपवसन्ति) सेवन करते हैं (ते) वे (विरजाः) पाप की वासना से रहित (सूर्यद्वारेण) सूर्यमण्डल को भेदन करके (प्रयान्ति) वहाँ चले जाते हैं (हि) निश्चय करके (यत्र) जहाँ पर (सः) वह हेय प्रत्यनीक कल्याणैकतान (अमृतः) निरुपाधिक अमृत (अव्ययात्मा) नित्य अविनाशी (पुरुषः) परम पुरुष परब्रह्मनारायण है॥ ११॥

विशेषार्थ—निश्चय करके जो श्रवण मनन करके जितेन्द्रिय शान्त स्वभाववाले उपासना करनेवाले विद्वान् संन्यासी भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हुए स्त्रियों से रहित एकान्त वन में रहकर तप यानी परब्रह्म को और परब्रह्म

के आदरातिशयरूप श्रद्धा को सेवन करते हैं वे संन्यासी लोग पुण्य पाप की वासना से रहित होकर मरने पर सूर्यमण्डल को भेदन करके वहाँ पर चले जाते हैं जहाँ पर वह हेय प्रत्यनीक कल्याणैकतान निरुपाधिक अमृत नित्य अविनाशी परब्रह्म नारायण रहता है। क्योंकि लिखा है—

'ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तपइत्युपासते।'

(छा० उ० अ० ५ खं० १० श्रु० १)

जो वन में श्रद्धा के साथ परब्रह्म की उपासना करते हैं ॥१॥ इस श्रुति में तप शब्द से परब्रह्म कहा जाता है क्योंकि—

'ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते।'(बृह०उ०अ० ६ ब्रा० २ श्रु० १५)

जो वन में श्रद्धा के साथ सत्य की उपासना करते हैं ॥ १५ ॥ इस श्रुति में "तप" शब्द के स्थान में "सत्य" शब्द का प्रयोग किया गया है। और

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' (तैत्ति० उ० व० २ अनुवा० १)

सत्य, ज्ञान तथा अनन्त परब्रह्म है ॥ १ ॥ इस श्रुति के द्वारा सत्य का अर्थ परब्रह्म है। भिक्षावृत्ति के विषय में लिखा है—

'तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।'

(बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ५ श्रु० १)

उस परमात्मा को जानकर ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा, और लोकैषणा से अलग हटकर भिक्षावृत्ति को करते हैं ॥ १ ॥ मुण्डक की प्रस्तुत श्रुति में फलाभिसन्धिरहित ज्ञानी पुरुषों से अनुष्ठितकर्म परब्रह्म प्राप्ति के लिये होता है। यह कथन किया गया है। यतिपति भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथम मुण्डक के द्वितीय खण्ड की ग्यारहवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥ ११ ॥

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(कर्मचितान्) कर्म से प्राप्त किये जाने वाले (लोकान्) लोकों को (परीक्ष्य) मीमांसान्याय से भलीभाँति परीक्षा करके (ब्राह्मणः) अधीत साङ्ग सशिरस्क वेद वाला ब्राह्मणत्व जातिविशिष्ट ब्राह्मण (निर्वेदम्) वैराग्यको (आयात्) प्राप्त हो जाय (कृतेन) किये जाने वाले कर्मों से

(अकृतः) स्वतःसिद्ध नित्य परमात्मा (न) नहीं (अस्ति) मिल सकता है (सः) वह (समित्पाणिः) हाथ में समिधा आदि लिए हुए (तद्विज्ञानार्थं) उस परब्रह्म नारायण को जानने के लिए (श्रोत्रियम्) वेद—वेदान्त को भलीभाँति जानने वाले और (ब्रह्मनिष्ठम्) ब्रह्म साक्षात्कार करने वाले (गुरुम्) गुरु के (एव) निश्चय करके (अभिगच्छेत्) शरण में विनय पूर्वक जाये ॥१२॥

विशेषार्थ—मुमुक्षु पुरुष केवल कर्म से प्राप्त किये जाने वाले लोकों को भली भाँति परीक्षा कर के अधीत सांग सशिरस्क वेदवाला ब्राह्मण वैराग्य को प्राप्त हो जाय। ब्राह्मण के विषय में—

'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः।'

(पाणि० व्या० अ० ५ पा० १ सू० ११४)

के श्रीभाष्य में लिखा है—

'सर्वे एते शब्दाः गुणसमुदायेरु वर्तन्ते
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति।'

यह सब शब्द गुण समुदायों में वर्तते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

'तपः श्रुतं च योनिश्च एतद्ब्राह्मणकारकम्।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः॥'

(महाभाष्य०)

तथा गौरः शुच्याचारः, पिङ्गलः, कपिलकेश इति॥ तप करना, वेद पढ़ना, श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्म होना यह ब्राह्मण का लक्षण है। जो ब्राह्मण इन सबसे हीन है, केवल ब्राह्मण कुल में जन्ममात्र है, वह जाति से ब्राह्मण है। गौरवर्ण पवित्राचरण पिङ्गलकेश यह भी ब्राह्मण के लक्षण हैं।

'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत॥'

(मनु० अ० १ श्लो० ८८)

वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ कराना—करना, दान देना, दान लेना, यह कर्म ब्राह्मण के निमित प्रभु ने कल्पना किया॥८८॥

'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्मस्वभावजम्॥'

(गी० अ० १८ श्लो० ४२)

शम १, दम २, तप ३, शौच ४, क्षमा ५, आर्जव ६, ज्ञान ७, विज्ञान ८ और आस्तिकता ९ ये सब ब्राह्मण के स्वभावज कर्म हैं॥ ४२॥ मुमुक्षु पुरुष

ऐसा विचार करे कि--किये जानेवाले कर्मों से स्वतः सिद्ध नित्य परमात्मा नहीं मिल सकता है। इससे हाथ में समिधा आदिक को लिए हुए उस परब्रह्म नारायण को जानने के लिये वेद वेदान्त को भलीभाँति जानने वाले और परमात्मा को साक्षात्कार करने वाले गुरु के शरण में निश्चय करके विनयपूर्वक चला जाय। समिधा के लिये यज्ञीयवृक्षों का वर्णन है—

'पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः।
उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनोयज्ञियाश्च ये॥
सरलोदेवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा।
समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः॥
ग्राह्याः कण्टकिनश्चैवं यज्ञीया एव केचन।
पूजिताः समिदर्थेषु पितॄणां वचनं यथा॥'

(वायुपुरा०)

पलाश १, फल्गु २, वट ३, पाकड़ ४, पीपल ५, स्रुवावृक्ष ६, गूलर ७, श्रीफल ८, चन्दन ९, सरल १०, देवदारु ११, शाल १२, खैर १३, ये वृक्ष यज्ञ के समिधा के लिये विशेषरूप से प्रशस्त हैं और भी यज्ञ में ग्रहण करने योग्य काँटेवाले सुन्दर वृक्ष हैं वे समिधा के लिये श्रेष्ठ हैं। ऐसा पितरों का वचन है—

'नाङ्गुष्ठादधिकाग्राह्या समित्स्थूलतमा क्वचित्।
न निर्मुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥'

(कात्यायन०)

अंगूठे से अधिक मोटी समिधा कभी भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। विना छिलका के तथा कीट से युक्त और फारी हुई समिधा भी यज्ञ में नहीं ग्रहण करना चाहिये—

'प्रादेशान्नाधिका नोना न च शाखासमन्विता।
नत्वग्धीना न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता॥'

(आह्निकसू०)

एक बीता से अधिक या न्यून समिधा नहीं यज्ञ में ग्रहण करना चाहिये और होम के विधि को जाननेवाले शाखायुक्त तथा छिलकारहित और विना वीर्य की समिधा को यज्ञ में नहीं ग्रहण करते हैं।

'निवासा ये च कीटानां लताभिर्वेष्टिताश्च ये।
अयज्ञिया गर्हिताश्च वल्लीकैश्च समावृताः॥'

'शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान् महीरुहान् ।
अन्यांश्चैवंविधान् सर्वान् यज्ञीयांश्च विवर्जयेत् ॥'

(वायुपुरा०)

जिस वृक्ष में कीट निवास करते हों तथा लताओं से जो वेष्टित हों और यज्ञीय जो न हों तथा गर्हित हों और जिसपर पक्षी विशेष निवास करते हों तथा इस प्रकार के अन्य वृक्षों को समिधा के लिये यज्ञ में बरा देना चाहिये । और छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'आचार्याद्धयेव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति ।'

(छा० उ० अ० ४ खं० ६ श्रु० ३)

आचार्य से जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुता को प्राप्त कराती है ॥३॥

'आचार्यवान् पुरुषोवेद ।' (छा० उ० अ० ६ खं० १४ श्रु० २)

आचार्यवाला पुरुष परब्रह्म नारायण को जानता है ॥ २ ॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि गुरु या आचार्य किसको कहते हैं । इसका उत्तर यह लिखा है कि—

'आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
योगज्ञोयोगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः ॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञोविशेषतः ।
एवंलक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥'

(अद्वयतारकोप०)

जो वेद पढ़ा हो तथा विष्णु का भक्त हो और मत्सर रहित हो तथा योग को जाननेवाला हो और योगनिष्ठ हो तथा सर्वदा योगात्मक हो और पवित्र हो तथा अपने गुरु का भक्त हो और पुरुष को विशेषरूप से जाननेवाला हो तो इन लक्षणों से युक्त को आचार्य कहते हैं और गु कहते हैं अन्धकार को तथा रु कहते हैं प्रकाशको, तो जो अविद्यारूप अन्धकार को ज्ञानरूप सदुपदेश के प्रकाश से दूर करता है उसको गुरु कहते हैं ।

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

(मनु० अ० २ श्लो० १४०)

जो ब्राह्मण शिष्य का यज्ञोपवीत करके कल्प और रहस्य सहित वेद

को पढ़ाता है उसको आचार्य कहते हैं ॥ १४० ॥ और वृद्धहारीतस्मृति में लिखा है—

'आचार्यं संश्रयेत्पूर्वमनवद्यं च वैष्णवम् ।
शुद्धसत्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारकम् ॥
सत्सम्प्रदायसंयुक्तं मन्त्ररत्नार्थकोविदम् ।
ज्ञानवैराग्यसंपन्नं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥
शासितारं सदाचारैः सर्वधर्मविदांवरम् ।
महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेविणम् ॥
आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवः ।
तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः ॥'

(वृद्धहारीतस्मृ०)

पहिले अनवद्य श्रीवैष्णव शुद्धसत्वगुणों से युक्त रोज—रोज यज्ञादिक कर्म करनेवाले सत्संप्रदाय से युक्त और द्वयमन्त्र के अर्थ को जाननेवाले ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त वेदवेदाङ्ग पार किये हुए सदाचारों से शिक्षा देनेवाले सम्पूर्ण धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महाभागवत सदाचारसेवी ब्राह्मण को आचार्य के लिये आश्रयण करे। जो वैष्णव सम्पूर्ण शास्त्र और पुराणों को देखकर भगवत् के लिये आचरण करता है उसको आचार्य कहते हैं और पाद्मोत्तरखण्ड में लिखा है—

'आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मंत्रज्ञो मंत्रभक्तश्च सदा मंत्रात्मकःशुचिः ॥'

(पाद्मपु० उत्तर खं० ६ अ० २२३ श्लो० ५०)

'सत्संप्रदायसंयुक्तो ब्रह्मविद्याविशारदः ।
अनन्यसाधनश्चैव तथानन्यप्रयोजकः ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणोवीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः ।
सद्वृत्तोपासिता चैव मुमुक्षुः परमार्थवित् ॥ ५२ ॥
एवमादिगुणोपेत आचार्यः स उदाहृतः ॥' ५३ ॥

आचार्य वेद पढ़ा हो तथा श्रीविष्णु का भक्त हो और बिना मत्सर के हो तथा मन्त्र जाननेवाला हो और मन्त्रों का भक्त हो तथा सर्वदा मन्त्र के अधीन रहता हो और पवित्र हो ॥ ५० ॥ सत्संप्रदाय से युक्त हो और ब्रह्मविद्या में निपुण हो तथा अनन्योपाय हो और अनन्यप्रयोजक हो ॥ ५१ ॥ और रागरहित ब्राह्मण हो तथा क्रोध और लोभ से रहित हो शुद्ध आचारवाला हो तथा मोक्ष की

इच्छावाला हो और श्रेष्ठतत्त्व को जाननेवाला हो ॥ ५३ ॥ इन पूर्वोक्त गुणों से युक्त को आचार्य कहते हैं ॥ ५३ ॥

'यस्तु मंत्रद्वयं सम्यगध्यापयति वैष्णवः ।
स आचार्यस्तु विज्ञेयो भवबन्धविनाशकः ॥

(पाद्मपु० उत्तरखं० ६ अध्या० २२६ श्लो० ४)

जो वैष्णव द्वयमंत्र को अच्छे प्रकार से पढ़ाता है और संसार के बन्धन को नाश करने वाला है उसी को आचार्य जानना चाहिये ॥ ४ ॥ इन पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त को गुरु या आचार्य कहते हैं । प्रस्तुत मुण्डक की श्रुति में केवल कर्मफल में विरक्त कर्मानुगृहीत परब्रह्म की प्राप्ति में उपायभूत ज्ञान को जानने की इच्छा वाले पुरुष के लिये आचार्योपसदन विधान किया गया है । यतीन्द्र भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के पहले मुण्डक के दूसरे खण्ड की बारहवीं श्रुति को उद्धृत किये हैं ॥१२॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥

॥ इति प्रथममुण्डके द्वितीयखण्डः ॥

॥ इति प्रथममुण्डकः ॥

अन्वयार्थ—(सः) वह ब्रह्मनिष्ठ (विद्वान्) ब्रह्मवेत्ता-श्रोत्रिय आचार्य (सम्यक्) भले प्रकार से (प्रशान्तचित्ताय) परमशान्तचित्त वाले (शमान्विताय) बाह्येन्द्रियों को नियमन करनेवाले (उपसन्नाय) शरण में आये हुए (तस्मै) उस मुमुक्षु के लिये (येन) जिस विज्ञान से (अक्षरम्) स्वरूप से विकार रहित (सत्यम्) गुण से विकार रहित (पुरुषम्) परम पुरुष नारायण को (वेद) जानता है (ताम्) उस वेदान्त प्रसिद्ध (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (तत्त्वतः) यथावत् (प्रोवाच) भलीभाँति उपदेश करें ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य अन्तःकरण और बाह्येन्द्रियों को नियमन करनेवाले शास्त्रविधि के अनुसार श्रद्धा से युक्त विनयपूर्वक शरण

मे आये हुए मुमुक्षु शिष्य के लिये जिस विज्ञान से स्वरूप से विकार रहित अविनाशी और गुण से विकार रहित नित्य परम पुरुष-परब्रह्म नारायण को जानता है। उस वेदान्त प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या को यथावत् भली भाँति समझाकर उपदेश करे। अब यहाँपर यह प्रश्न होता है कि "पुरुष" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण है इसमें क्या प्रमाण है। इसका उत्तर यह लिखा है—

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।'

(ऋग्वे० अष्ट० ८ मण्ड० १० अध्या० ४ अनुवा० ७ सूक्त० ९० मं० १)

हजारों सिरवाला नारायण है ॥ १ ॥

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।' (यजुर्वे० अ० ३१ मं० १)

'सहस्रशीर्षा पुरुषः।' (सामवे० पूर्वार्चि० प्रपाठ० ६ सूक्त० १३ मं० ३)

'सहस्रबाहुः पुरुषः।' (अथर्व० कां० १९ अनुवा० १ सूक्त० ६ मं० १)

हजारों भुजावाला नारायण है ॥ १ ॥

'योऽसावसौ पुरुषः।' (ई० उ० श्रु० १६)

जो वह प्राण में नारायण है ॥ १६ ॥

'पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति।' (प्रश्नो० प्र० ६ श्रु० ५)

नारायण को प्राप्त करके अस्त हो जाती हैं ॥ ५ ॥

'य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते।' (छां० उ० अ० ४ खं० १२ श्रु० १)

जो यह चन्द्रमा में परब्रह्म नारायण देखा जाता है ॥ १ ॥

'योसावसौ पुरुषः।' (बृ० उ० अ० ५ ब्रा० १५ श्रु० १)

जो सूर्यमण्डल में वह नारायण है ॥ १ ॥

'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ९)

उस परब्रह्म नारायण से यह समस्त जगत् पूर्ण है ॥ ९ ॥

'पुरुषो ह वै।' (नाराय० उ० श्रु० १)

निश्चय करके परमपुरुष नारायण ॥ १ ॥

'पुरुषं ध्यायेत्।' (विष्णुस्मृ० अ० ९८)

परब्रह्म नारायण का ध्यान करे ॥ ९८ ॥

'एष वै पुरुषो विष्णुः।' (शंखस्मृ० अ० ७)

यह निश्चय करके विष्णु नारायण है ॥ ७ ॥

'सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।' (गी० अ० ११ श्लो० ३८)

आप सनातन परब्रह्म नारायण हैं ॥ ३८ ॥

'अव्ययः पुरुषः साक्षी।' (विष्णुस० श्लो० २)

अव्यय १, पुरुष २, साक्षी ३ ये नारायण के नाम हैं ।। २ ।।

'पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ।' (श्रीमद्भागव०)

समाहित होकर पुरुषसूक्त से नारायण का उपस्थान किये

'सर्वलोकपतिः साक्षात्पुरुषः प्रोच्यते हरिः ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽन्यः पुरुषशब्दभाक् ।।'

(नरसिंहपु०)

अखिल ब्रह्माण्डनायक साक्षात् परब्रह्मनारायण पुरुष शब्द से कहे जाते हैं। उस परब्रह्म नारायण कमलनयन भगवान् के विना दूसरा कौन पुरुष शब्द से कहा जा सकता है।

'यद्वा पुरुषशब्दोऽयं रूढ्या वक्ति जनार्दनम् ।'

(पद्मपुरा०)

अथवा यह पुरुष शब्द रूढ़ी से ही परब्रह्म नारायण को कहता है ।। इन श्रुति स्मृति इतिहास पुराणों से "पुरुष" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है । मुण्डक के प्रस्तुत श्रुति में आचार्य का कृत्य प्रतिपाद किया गया है । यतिसार्वभौम भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के पहले मुण्डक के दूसरे खण्ड के अन्तिम तेरहवीं श्रुति को उद्धृत किया है। यहाँ पर "मुण्डकोपनिषद्" के प्रथममुण्डक का दूसरा खण्ड और प्रथममुण्डक भी समाप्त हो गया ।। १३ ।।

।। अथ द्वितीयमुण्डकः ।।

।। अथ प्रथमखण्डः ।।

तदेतत्सत्यं यथासुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ।।१।।

अन्वयार्थ—(तत्) वह (एतत्) यह परब्रह्म (सत्यम्) नित्य उत्पत्ति विनाशादि षड्भावविकारशून्य है (यथा) जैसे (सुदीप्तात्) घर में खुब प्रज्वलित हुए (पावकात्) अग्नि से (सरूपाः) अग्नि के समान रूपवाली (सहस्रशः) हजारों (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारियाँ (प्रभवन्ते) उत्पन्न होती हैं (तथा) वैसे ही (सोम्य) हे प्रियदर्शन (अक्षरात्) सूक्ष्म चिदचित् शरीरक अविनाशी परब्रह्म से (विविधाः) अनेकों के स्थूल चिदचिद्रूप (भावाः) भाव यानी

कार्यवर्ग (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं (च) और (तत्र) उसी सूक्ष्मचिदद्विशिष्ट ब्रह्म में (एव) निश्चय करके (अपियन्ति) लीन हो जाते हैं ॥ १ ॥

विशेषार्थ—अङ्गिरामहर्षि कहते हैं कि हे प्रियदर्शन शौनक मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड की आठवीं नवमी श्रुति में वर्णित वह यह परब्रह्म नित्य उत्पत्ति विनाशादि षड्भाव विकारशून्य निरुपाधिक सत्य है । षड्भाव विकृति वराहोपनिषद् में लिखा है—

षड्भावविकृतिश्चास्ति जायते वर्धतेऽपि च ।
परिणामं क्षयं नाशं षड्भावविकृतिं विदुः ॥
(वराहो० अ० १ श्रु० ८)

है १ उत्पन्न होता है, २ बढ़ता है, ३ परिणाम होता है, ४ क्षय होता है, ५ नाश होता है, ६ इन छः को षड्भाव विकार महात्मा लोग जानते हैं ॥ ८॥ जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में से अग्नि के समानरूपवाली हजारों चिनगारियाँ उत्पन्न होती हैं । उसी प्रकार सूक्ष्म चेतनाचेतन शरीरक अविनाशी परब्रह्म नारायण से नाना प्रकार के स्थूल चिदचिद्रूप भाव यानी कार्यवर्ग उत्पन्न होती हैं और उसी सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट परब्रह्म में लीन हो जाते हैं । क्योंकि लिखा है—

'नारायणादेव समुत्पद्यन्ते । नारायणे प्रलीयन्ते ।'(नारायणो० श्रु० १)

नारायण से ही सब उत्पन्न होते हैं और नारायण में लीन होते हैं ॥ १ ॥ जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ ।'(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में और—

'प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० २)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की पहली श्रुति को उद्धृत किया है ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय करके (सः) वह (दिव्य) दिवलोक में स्थित (पुरुषः) परब्रह्म नारायण (अमूर्तः) हाथ पैर आदि प्राकृत आकार रहित (बाह्याभ्यन्तरः) सब चर अचर के भीतर बाहर वर्तमान (हि) निश्चय करके (अजः) प्राकृत जन्म से रहित (अप्राणः) प्राण से रहित (हि) निश्चय करके (अमनाः) मन रहित (शुभ्रः) अत्यन्त शुद्ध (हि) निश्चय करके

(अक्षरात्) अव्याकृत अक्षर प्रधान से और (परतः) समष्टि पुरुष जीव से (परः) श्रेष्ठ है ।। २ ।।

विशेषार्थ—वह परब्रह्म नारायण दिवलोक में स्थित है । क्योंकि लिखा है—

'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।'

(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ६)

एक परब्रह्म नारायण वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से दिवलोक में स्थित है उस परम पुरुष नारायण से यह समस्त जगत् परिपूर्ण है ।। ६।। और वह परमात्मा हाथ पैर आदिक प्राकृत आकार रहित है । क्योकि लिखा है—

'अपाणिपादः ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १६)

प्राकृत हाथ पैर से परब्रह्म रहित है ।।१६।। और सब के भीतर बाहर नारायण रहता है । क्योंकि लिखा है—

'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वंव्याप्य नारायणः स्थितः ।।'

(नारायणोप० श्रु० १३)

और जो कुछ संसार देखा जाता है या सुना जाता है उसके भीतर और बाहर व्यापक होकर नारायण स्थित रहता है ।। १३ ।। वह नारायण प्राकृतजन्म से रहित है तथा प्राणादि पाँच वायुओं से रहित है और संकल्प विकल्पात्मक मन से रहित अत्यन्त शुद्ध है । क्योंकि लिखा है—

निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पोनिराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणः ।

(नारायणो० श्रु० २)

कलङ्करहित, निरंजन, निर्विकल्प, निराख्यात, शुद्धदेव एक नारायण हैं ।।२।। निश्चय करके परब्रह्म नारायण अव्याकृत अक्षर प्रधानतत्त्व से श्रेष्ठ हैं और समष्टि पुरुष जीव से भी श्रेष्ठ हैं । क्योंकि लिखा है—

'प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः ।' (श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १६)

प्रकृति और जीवात्मा का स्वामी है ।। १६ ।। भवजलनिधिपोत भगवद्रामानुजाचार्य ने

'तत्तु समन्वयात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और—

'सर्वत्रप्रसिद्धोपदेशात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १

के श्रीभाष्य में तथा—

'अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में और —

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याश्च नेतरौ । (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में तथा—

'अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ६)

के श्रीभाष्य में और—

तथान्यप्रतिषेधात् । (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३५)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के प्रथमखण्ड की दूसरी श्रुति को उद्धृत किया है ॥२॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥३॥

अन्वयार्थ—(एतस्मात्) इस परब्रह्म नारायण से (प्राणः) प्राण (जायते) उत्पन्न होता है तथा (मनः) मन उत्पन्न होता है (च) और (सर्वेन्द्रियाणि) समस्त इन्द्रियाँ (खम्) आकाश (वायुः) वायु (ज्योतिः) तेज (आपः) जल उत्पन्न होते हैं (च) और (विश्वस्य) समस्त संसार को (धारिणी) धारण करने वाली (पृथ्वी) पृथ्वी उत्पन्न होती है ॥३॥

विशेषार्थ—सर्वशक्तिमान् परब्रह्म नारायण से प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ये पाँच प्राणादिवायु उत्पन्न होते हैं और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार ये अन्तःकरण चतुष्टय उत्पन्न होते हैं तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पाँच महाभूत भी नारायण से उत्पन्न होते हैं । क्योंकि लिखा है—

'नारायणात्प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥' (नारायण० श्रु० १)

परब्रह्म नारायण से प्राण, मन और सब इन्द्रियगण, आकाश, वायु, अग्नि, जल उत्पन्न हुए और समस्त विश्व के धारण करनेवाली पृथ्वी भी उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ भक्तमन्दार भगवद्रामानुजाचार्य ने

'न च कर्तुःकरणम् ।' (शा० मी० अ० २ पा० २ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और—

न वियदश्रुतेः ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १)

के श्रीभाष्य में तथा—

'अधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १३)

के श्रीभाष्य में तथा—

'विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ।'(शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १५)

के श्रीभाष्य में और—

'अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ।'
(शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० १६)

के श्रीभाष्य में तथा—

'तथा प्राणाः ।'(शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ।' (शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० ८)

के श्रीभाष्य में तथा—

'भेदश्रुतेर्वैलक्षण्याच्च ।' (शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० १६)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की तृतीय श्रुति को उद्धृत किया है ॥३॥

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशःश्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥४॥

अन्वयार्थ—(अस्य) इस परब्रह्म नारायण का (अग्निः) द्युलोक (मूर्धा) मस्तक है (चन्द्रसूर्यौ) चन्द्रमा और सूर्य (चक्षुषी) दोनों नेत्र हैं (दिशः) सब दिशाएँ (श्रोत्रे) दोनों कान हैं (च) और (विवृताः) प्रकट या प्रसिद्ध (वेदाः) समस्त वेद (वाक्) वाणी हैं तथा (वायुः) वायु (प्राणः) प्राण हैं (विश्वम्) संपूर्ण जगत् (हृदयम्) हृदय है और (पृथिवी) पृथ्वी (पद्भ्याम्) दोनों पैर हैं (हि) निश्चय करके (एषः) यह परब्रह्म नारायण (सर्वभूतान्तरात्मा) सब भूतों की अन्तरात्मा है ॥४॥

विशेषार्थ—मुण्डकोपनिषद् के द्वितीयमुण्डक के प्रथम खण्ड की दूसरी श्रुति में निर्दिष्ट परब्रह्म नारायण का अग्नि यानी द्युलोक मस्तक है । क्योंकि लिखा है—

'असौ वाव लोको गौतमाग्निः ।' (बृह० उ० अ० ५ खं० ४ श्रु० १)

हे गौतम यह द्युलोक ही अग्नि है ॥ १ ॥

'असौ वै लोकोऽग्निर्गौतम ।' (बृह० उ० अ० ६ ब्रा० २ श्रु० ६)

निश्चय करके हे गौतम यह द्युलोक अग्नि है ॥ ६ ॥ चन्द्रमा और सूर्यनारायण ये दोनों नेत्र हैं । तथा दशों दिशाएँ दोनों कान हैं । और प्रसिद्ध ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद वाणी हैं । क्योंकि लिखा है—

'चत्वारो वेदाः ।' (महाभाष्य० अ०१ पा० १ आह्नि० १) चार वेद हैं ॥१॥

'ऋचो यजूंषि सामानि अथर्वाङ्गिरसस्तथा ।' (सीतोप०)

ऋग्, यजुः, साम, अथर्व ये चार वेद हैं, महावायु देहाधारक प्राण है तथा समस्त जगत् हृदय है और पृथ्वी दोनों पैर हैं। निश्चय करके यह परब्रह्म नारायण सब भूतों को अन्तरात्मा है। क्योंकि लिखा है—

'एष सर्वभूतान्तरात्मापहतपाप्मा दिव्योदेव एकोनारायणः ।'

(सुबालोप० खं० ७)

यह सब प्राणियों की अन्तरात्मा पापों से रहित दिव्यदेव एक नारायण है ॥७॥ और महाभारत में लिखा है—

'यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।
सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रं तस्मैलोकात्मने नमः ॥'

(महाभार. शान्तिप. राजधर्म. अध्या. ४७ श्लो. ७०)

जिस नारायण का अग्नि मुख है, द्युलोक मस्तक है, आकाश नाभि है, पृथ्वी दोनों पैर है, सूर्य नेत्र है और पूर्वादिक सब दिशाएँ कान हैं उस सब लोकों की आत्मा परब्रह्म नारायण के लिये नमस्कार है ॥७०॥ और श्रीभाष्य के वैश्वानराधिकरण में लिखा है—

'द्यां मूर्धानं यस्य विप्रा ब्रुवन्ति खं वै नाभिं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिशः श्रोत्रे विद्धि पादौ क्षितिं च सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रणेता ॥'

(श्रीभाष्य. अ. १ पा. २ सू. २६ अधिकर. ६)

विप्र लोग जिस नारायण के द्युलोक मस्तक कहते हैं, आकाश नाभि कहते हैं और चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र कहते हैं तथा सब दिशाएँ कान कहते हैं और पृथ्वी पैर कहते हैं उस नारायण को तुम जानो। वह अचिन्त्यात्मा सब भूतों का प्रणेता है ॥६॥ परमपदप्रापक भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'रूपोपन्यासाच्च ।' (शा. मी. अ. १ पा. २ सू. २४)

के श्रीभाष्य में और—

'स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ।' (शा. मी. अ. १ पा. २ सू. २६)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की चौथी श्रुति को उद्धृत किया है ॥४॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान्रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वयः प्रजाः पुरुषात्संप्रसूताः ॥५॥

अन्वयार्थ—(तस्मात्) उस परब्रह्म नारायण से (अग्निः) द्युलोकरूप अग्नि होती है (यस्य) जिस द्युलोकरूप के (समिधः) इन्धन (सूर्यः) सूर्य है (सोमात्) द्युलोकरूप अग्नि से निष्पन्न हुए सोम से (पर्जन्यः) दूसरा मेघरूप अग्नि होती है मेघ से वर्षा के द्वारा (ओषधयः) नाना प्रकार की ओषधियाँ (पृथिव्याम्) तृतीय पृथ्वीरूप अग्नि में होती है (पुमान्) चौथा पुरुषरूप अग्नि (योषितायाम्) पाँचवीं स्त्रीरूप अग्नि में (रेतः) वीर्य का (सिञ्चति) सींचता है (पुरुषात्) पञ्चाग्निविद्योक्त क्रम करके परब्रह्म नारायण पुरुष से (बह्वयः) बहुत से (प्रजाः) जीव (संप्रसूताः) उत्पन्न हुए हैं ॥५॥

विशेषार्थ—उस परब्रह्म नारायण से—

'अग्निर्मूर्धा ।' (मुण्डकोप० मु० २ खं० १ श्रु० ४)

में निर्दिष्ट द्युलोकरूप अग्नि उत्पन्न होती है जिस द्युलोकरूप अग्नि के इन्धन सूर्य हैं। द्युलोकरूप अग्नि से निष्पन्न हुए चन्द्रमा से मेघरूप दूसरी अग्नि उत्पन्न होती है। मेघ से वर्षा के द्वारा अनेक प्रकार के अन्नादिक ओषधियाँ तृतीय पृथ्वीरूप अग्नि में उत्पन्न होती हैं। चौथा पुरुषरूप अग्नि पांचवीं अपनी स्त्रीरूप अग्नि में वीर्य को सिञ्चन करता है। इस प्रकार के उक्त पञ्चाग्निविद्या के नियमानुसार परमपुरुष नारायण से बहुत सी ब्राह्मणादि प्रजा उत्पन्न होती है। पञ्चाग्निविद्या का वर्णन स्पष्ट छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

'असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ।'

(छा० उ० अ० ५ खं० ४ श्रु० १)

'तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥' २ ॥

हे गौतम ! यह प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है, उसका सूर्य ही इन्धन है, किरणें धूम हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अङ्गार है और नक्षत्र चिनगारियाँ हैं ॥१॥ उस इस द्युलोकरूप अग्नि में देवगण श्रद्धा को हवन करते हैं, उस आहुति से सोमराजा उत्पन्न होता है ॥२॥ यह श्रुति थोड़े पाठभेद से (बृह० उ० अ० ६ ब्रा० २ श्रु० ९) में भी है।

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादुनयो विस्फुलिङ्गाः (छा० उ० अ० ५ खं० ५ श्रु० १)

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमं राजानं जुह्वति तस्य आहुतेर्वर्षं सम्भवति ॥ २ ॥

हे गौतम ! प्रसिद्ध मेघ ही अग्नि है, उसका वायु ही इन्धन है, बादल धूम है, वज्र अङ्गार है तथा गर्जना चिनगारियाँ है ॥१॥ उस इस मेघरूप अग्नि में देवगण राजा सोम को हवन करते हैं, उस आहुति से वर्षा होती है ॥२॥ यह श्रुति भी थोड़े पाठभेद से (बृहदा. उ. अ. ६ ब्रा. २ श्रु. १०) में है—

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ।

(छा. उ. अ. ५ खं. ६ श्रु. १)

'तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नं सम्भवति ॥२॥

हे गौतम ! पृथ्वी ही अग्नि है, उसका संवत्सर ही इन्धन है, आकाश धूम हैं, रात्रि ज्वाला है, दिशाएँ चिनगारियाँ हैं ॥१॥ उस इस पृथ्वी रूप अग्नि में देवगण वर्षा को हवन करते हैं उस आहुति से अन्न उत्पन्न होता है ॥२॥ यह श्रुति थोड़े पाठभेद से (बृह. उ. अ. ६ ब्रा. २ श्रु. ११) में भी है—

'पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वार्चि-श्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ।' (छा. उ. अ. ५ खं. ७ श्रु. १)

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौदेवाअन्नं जुह्वति तस्या आहुतेरेतः सम्भवति ॥२॥

हे गौतम ! प्रसिद्ध पुरुष ही अग्नि है, उसकी वाणी ही इन्धन हैं, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वाला है, नेत्र अङ्गार है और कान चिनगारियाँ हैं ॥१॥ उस इस पुरुष रूप अग्नि में देवगण अन्न को हवन करते हैं, उस आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है ॥२॥ यह श्रुति भी थोड़े पाठभेद से (बृह. उ. अ. ६ ब्रा. २ श्रु. १२) में है—

'योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते सधूमोयोनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ।'

(छा. उ. अ. ५ खं. ८ श्रु. १)

'तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥२॥

हे गौतम ! स्त्री ही अग्नि है, उसका उपस्थ ही इन्धन है, जो उपमन्त्रण करता है वह धूम है, योनि ज्वाला है और जो योनि के भीतर करता है वह अङ्गारे हैं तथा मैथुन से जो सुख होता है वह चिनगारियाँ हैं ॥ १ ॥ उस इस स्त्रीरूप अग्नि में देवगण वीर्य को हवन करते हें उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है ॥२॥ यह भी श्रुति थोड़े पाठभेद से (बृह. उ. अ. ६ ब्रा. २ श्रु. १३)

में पठित है। इस नियमानुसार परम पुरुष से सब ब्राह्मणादि प्रजा उत्पन्न होती है ॥५॥

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च। संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥६॥

अन्वयार्थ—(तस्मात्) उस अक्षर पुरुष से (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (दीक्षा) पंचसंस्कारादि दीक्षा (च) और (सर्वे) समस्त (यज्ञाः) अग्निहोत्रादि महायज्ञ (क्रतवः) ज्योतिष्ठोमआदिक्रतु (च और (दक्षिणाः) दक्षिणाएँ (च) और (संवत्सरः) संवत्सर आदिकाल (यजमानः) यज्ञकर्ता (च) और (लोकाः) कर्म के फलस्वरूप स्वर्गादिक लोक उत्पन्न हुए हैं (यत्र) जिन लोकों में (सोमः) चन्द्रमा (पवते) अपनी किरणों से पवित्र करता है (यत्र) जिन लोकों में (सूर्य) सूर्य अपनी किरणों से प्रकाश करता है ॥६॥

विशेषार्थ—उस अक्षर पुरुष—परब्रह्म नारायण से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ। ऋग्वेद के विषय में लिखा है—

'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।' (मी०अ० २ पा० १ सू० ३५)

जिसमें अर्थवश से पाद की व्यवस्था होती है उसी को ऋग्वेद कहते हैं ॥३५॥

'एकविंशतिधा बह्वृच्यः।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्नि० १)

इक्कीस शाखाएँ ऋग्वेद की हैं ॥१॥　　परब्रह्म से सामवेद और यजुर्वेद भी उत्पन्न हुए। सामवेद के विषय में लिखा है—

'गीतिषु सामाख्या।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३६)

गान में सामवेद नाम आता है ॥३६॥

'सहस्रवर्त्मा सामवेदः।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ अ० १)

और यजुर्वेद के विषय में लिखा है—

'शेषे यजुःशब्दः।' (मी० अ० २ पा० १ सू० ३७)

शेष में यजुर्वेद कहा जाता है।

'एकशतमध्वर्युशाखाः।' (महाभाष्य० अ० १ पा० १ आह्नि० १)

एक सौ एक शाखाएँ यजुर्वेद की हैं ॥१॥

परब्रह्मनारायण से पञ्चसंस्कार के नियमरूप दीक्षा तथा समस्त अग्निहोत्र आदि महायज्ञ और ज्योतिष्ठोम आदिक्रतु तथा गौ से लेकर सर्वस्वपर्यन्त की दक्षिणा

और संवत्सर आदि काल तथा यज्ञकर्ता और कर्म के फलस्वरूप स्वर्गादिक लोक उत्पन्न हुए। जिन लोकों में चन्द्रमा अपनी किरणों से पवित्र करता है और सूर्य अपनी किरणों से प्रकाश करता है ॥६॥

तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्याः मनुष्या पशवो वयांसि । प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धासत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

अन्वयार्थ—(च) और (तस्मात्) उस परब्रह्मनारायण से (बहुधा) कर्मज, अजानज आदि भेद से बहुत प्रकार के (देवाः) देवता सब (संप्रसूताः) उत्पन्न हुए और (साध्याः) साध्यगण (मनुष्याः) मनुष्य (पशवः) ग्राम्य और आरण्यपशु (वयांसि) पक्षी (प्राणापानौ) प्राण और अपान वायु (व्रीहियवौ) धान और जौ आदि अन्न (च) और (तपः) कृच्छ्र चान्द्रायणादितपस्या (श्रद्धा) आस्तिक्यबुद्धि (सत्यम्) सत्य वचन तथा (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (च) और (विधिः) नित्य नैमित्तिकादि अनुष्ठान की विधि ये सब उत्पन्न हुए हैं ॥७॥

विशेषार्थ—उस परब्रह्मनारायण से वसु, रुद्र, आदित्य, कर्मज, अजानज आदि अनेक भेदवाले देवता लोग उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि लिखा है—

'नारायणाद्ब्रह्मा जायते । नारायणाद्रुद्रो जायते । नारायणादिन्द्रो जायते । नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते । नारायणाद्द्वादशादित्या रुद्रा वसवः सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते ।'

(नारायणोप० श्रु० १)

नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होता है। नारायण से रुद्र उत्पन्न होता है। नारायण से इन्द्र उत्पन्न होता है। नारायण से प्रजापति उत्पन्न होता है। नारायण से बारह आदित्य देव, ग्यारह रुद्रदेव, आठवसुदेव और सब छन्द उत्पन्न होते हैं ॥१॥ और देवताओं के विषय में लिखा है—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्योदेवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रादेवतादित्यादेवता मरुतोदेवता विश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणोदेवता ॥' (यजुर्वे० अ० १४ मं० २०)

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत, विश्वेदेव, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण ये देवता हैं ॥२०॥

'त्रयोदेवा एकादशा त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहितो देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तु मा ॥'

(यजु० अ० २० मं० ११)

तीन देवता या ग्यारह देवता या तैंतीस देवता अनेक संपत्ति वाले बृहस्पति हैं पुरोहित जिनके वे समस्त देवगण सविता देव की प्रेरणा से देवों के सहित हमारी रक्षा करें ।।११।।

'मध्याहुतयो ह वा एता देवानां यदनुशासनानि ।'

(शतप० अ० ११ प्र० ३ ब्रा० ८ कं० ८)

शास्त्र देवताओं की मध्यम आहुति है ।।८।।

'ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ।'

(केनोप० खं० ३ श्रु० १)

परब्रह्म नारायण ने देवताओं को जय दी, उसकी कृपाकटाक्ष से सब देवता महिमा को प्राप्त होते हुए फिर यह जाने कि यह संसार हमारा ही जय किया हुआ है और हमारी ही महिमा है ।।१।।

'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव ।' (मुण्डको० मु० १ खं० १ श्रु० १)

ब्रह्मा देवताओं में पहले उत्पन्न हुआ ।।१।।

'यान्ति देवव्रता देवान् ।' (गी० अ० ६ श्लो० २५)

देवताओं के व्रतवाले देवताओं को प्राप्त होते हैं ।।२५।।

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति । (निरु० दैवतकां० अ० ७ खं० ५)

ये तीन देवता हैं—अग्निदेवता पृथ्वी स्थान में, वायुदेवता और इन्द्र देवता अन्तरिक्ष स्थान में और सूर्य देवता द्यु स्थान में हैं। इन देवताओं के महाभाग्य होने से एक-एक के बहुत से नाम होते हैं ।५।।

इतीमा देवता अनुक्रान्ताः सूक्तभाजो हविर्भाज ऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः ।' (निरु० दैवतकां० अ० ७ खं० १३)

यह जो निरुक्त में देवता कहे हैं इनमें कोई सूक्तों को सेवन करते हैं। कोई हविष्य को, कोई ऋक् को, कोई दोनों को सेवन करते हैं ।।१३।।

'अर्थेन त्वपकृष्येत देवतानामचोदनार्थस्य गुणभूतत्वात् ।'

(मी० अ० २ पा० १ सू० १४)

देवताओं के अप्रेरणार्थ गुणभूत होने से अर्थ करके अपकर्षण करे ।।१४।।

'देवादिवदपि लोके ।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० २५)

जैसे देवादिक अपने लोक में स्वापेक्षित वस्तु को संकल्पमात्र से बनाते हैं वैसे ही परमात्मा सब संसार को बनाता है ॥२५॥ ये पूर्वोक्त प्रमाणदेव योनि में हैं और अजानज तथा कर्मज देवताओं के विषय में लिखा है—

ते ये शतं पितॄणां चिरलोकानामानन्दाः । स एक अजानजानां देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतमजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्मदेवानामानन्दः । ये कर्मणा देवानपि यन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः । स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवानामानन्दाः । स एक इन्द्रस्यानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दा । ए एको ब्रह्मण आनन्दः । (तैत्तिरीयो० व० २ अनुवा० ८)

चिरलोक वासी पितरों के सैकड़ों आनन्दों का स्मार्त कर्म से देवयोनि पानेवाले अजानज देवताओं को एक आनन्द है। कामनारहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है। अजानज देवताओं के सैकड़ों आनन्दों के समान वैदिक कर्म से देवयोनि पानेवाले कर्म देवताओं का एक आनन्द है। कामनारहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है। कर्म देवताओं के सैकड़ों आनन्दों के समान वसु आदिक वैदिक देवताओं का एक आनन्द है। कामनारहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है। अन्य देवताओं के सैकड़ों आनन्दों के समान देवराज इन्द्र का एक आनन्द है। कामना रहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है। इन्द्र के सैकड़ों आनन्दों के समान बृहस्पति का एक आनन्द है। कामनारहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है। बृहस्पति के सैकड़ों आनन्दों के समान प्रजापति यानी ब्रह्मा का एक आनन्द है। कामना रहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है। ब्रह्मा के सैकड़ों आनन्दों के समान परब्रह्म नारायण का एक आनन्द है। इस श्रुति से अजानज आदिक बहुत प्रकार के देवता सिद्ध होते हैं और साध्यगण परमात्मा से उत्पन्न हुए। साध्य के विषय में लिखा है—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥

(मनु० अ० १ श्लो० २२)

सब प्राणियों के प्रभु कर्मात्मा इन्द्रादि देवगण को और सूक्ष्म साध्यगण

को तथा सनातन यज्ञ को बनाया ॥ २२ ॥ और परमात्मा से ब्राह्मणादि मनुष्य उत्पन्न हुए। क्योंकि लिखा है—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥
(मनु० अ० १ श्लो० ३१)

लोकों की वृद्धि के लिये मुख से ब्राह्मण को, भुजा से क्षत्रिय को, जंघा से वैश्य को और चरण से शूद्र को उत्पन्न किया और परमात्मा से ही ग्राम्य आरण्य पशु और पक्षी उत्पन्न हुए। पशु के विषय में लिखा है—

'सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः।'　　(श्रुति)

सात ठो ग्राम में होनेवाले और सात ठो वन में होनेवाले पशु प्रसिद्ध है। उनका नाम विष्णुपुराण में लिखा है—

'गौरजः पुरुषो मेषश्चाश्वाश्वतरगर्दभाः।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥'
(विष्णुपुराण अंश० १ अध्या० ५ श्लो० ५१)

'श्वापदा द्विखुरा हस्ति वानराः पक्षि पञ्चमाः।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमाश्च सरीसृपाः ॥'५२॥

गौ १, बकरा २, पुरुष ३, भेंड़ा ४, घोड़ा ५, अश्वतर ६, गदहा ७, इन सात को ग्राम्य पशु महर्षि कहते हैं ॥५१॥ कुक्कुर १, दो खुरवाले २, हाथी ३, वानर ४, पक्षी ५, औदकजीव ६ और सरीसृप ७ ये सात वन में होनेवाले पशु हैं ॥५२॥ और परमात्मा से मनुष्यों का जीवन स्वरूप ऊपर को जानेवाला प्राणवायु तथा नीचे को जानेवाला अपान वायु तथा धान, जौ आदिक अन्न और कृच्छ्र चान्द्रायणादिक तपस्या तथा आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धा और सत्य ब्रह्मचर्य तथा नित्य नैमित्तिकादि कर्मानुष्ठान की विधि ये सब उत्पन्न हुए। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि तप सत्य और ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं। इसका उत्तर जाबालदर्शनोपनिषद् में लिखा है—

'वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः
शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः।'
(जाबालद० उ० खं० २ श्रु० ३)

वेद में बताये हुए प्रकार से और कृच्छ्रचान्द्रायणादिक व्रत से जो शरीर को सुखाया जाता है उसी को विद्वान् पुरुष तप कहते हैं ॥३॥

'चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर।
तस्यैवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ॥'(जा० द० उ० खं० १ श्रु० ६)

नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा जो जिस रूप में देखा सुना सूंघा और समझा हुआ विषय है उसको उसी रूप में वाणी के द्वारा प्रकट करना सत्य है। हे ब्रह्मन् इसके सिवा सत्य का और कोई प्रकार नहीं है ॥६॥

कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम्।
ऋतौ भार्यां तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते॥
(जा० द० उ० खं० १ श्रु० १३)

मन वाणी और शरीर के द्वारा स्त्रियों के सहवास का परित्याग करना और ऋतुकाल में धर्म बुद्धि से केवल अपनी पत्नी से संभोग करना यही ब्रह्मचर्य कहा गया है॥ १३॥ अथवा सर्वदा मन वाणी शरीर से आठ प्रकार के मैथुन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य कहा गया है॥ ७॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्तहोमाः। सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त॥ ८॥

अन्वयार्थ—(तस्मात्) उस परब्रह्म नारायण से (सप्त) सात (प्राणाः) शीर्षण्य इन्द्रियाँ (प्रभवन्ति) उत्पन्न होती हैं तथा (सप्त) सात (अर्चिषः) काली कराली आदि लपटें और (समिधः) इन्द्रियों के विषयरूप सात समिधाएँ और (सप्त) सात (होमाः) विषयों के विज्ञानरूप हवन तथा (इमे) ये (सप्त) सात (लोकाः) लोक उत्पन्न होते हैं (येषु) जिन लोकों में (गुहाशयाः) सुषुप्ति समय में हृदयरूप गुफा में शयन करनेवाले (सप्त सप्त) सात सात (निहिताः) धाता से सब प्राणियों में स्थापित किये हुए (प्राणाः) प्राण (चरन्ति) संचार करते हैं॥ ८॥

विशेषार्थ—उस परब्रह्मनारायण से ही दो कान दो आँख दो नाक के छिद्र और मुख की एक जीभ ये सात शीर्षण्य इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। क्योंकि लिखा है—

'सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः।' (यजु० ७।३।१)

दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो घ्राण और एक रसना ये सात मस्तकस्थ प्राण हैं ॥१॥ और परमात्मा से ही काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनि, विश्वरुची ये सात लपटें उत्पन्न होती हैं क्योंकि लिखा है—

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी। (मुण्डको० मु० १ खं० २ श्रु० ४)

काली १, कराली २, और मनोजवा ३, सुलोहिता ४, तथा सुधूम्रवर्णा ५, स्फुलिङ्गिनी ६, और विश्वरूची देवी ७ ये लपटें हैं॥ ४॥ तथा

परमात्मा से ही इन्द्रियों के शब्दादिक विषयरूप सात समिधायें उत्पन्न होती हैं और विषयों के जाननारूप सात हवन परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि लिखा है—

'यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति ।' (महानारा० २५।१)

इसका जो विज्ञान है उसी को हवन करता है ।।१।। और इन्द्रियों के स्थान-रूप सात लोक भी परब्रह्म नारायण से ही उत्पन्न होते हैं । जिन लोकों में सुषुप्ति समय में हृदयरूप गुफा में शयन करनेवाले सात-सात धाता से समस्त प्राणियों में स्थापित किये हुए प्राण विचरते हैं । यतिमूर्धन्य भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ।' (शा० मी० अ० २ पा० ४ सू० ४)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की आठवीं श्रुति के उत्तरार्ध को उद्धृत किया है ।।८।।

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः । अतश्च सर्वा ओषधयो रसाश्च येनैष भूतै-स्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ।।९।।

अन्वयार्थ—(अतः) इस परम पुरुष से (समुद्राः) सातसमुद्र (च) और (सर्वे) सब (गिरयः) हिमालय आदि पर्वत उत्पन्न हुए हैं (अस्मात्) इसी परमात्मा से (सर्वरूपाः) अनेक रूपवाली (सिन्धवः) गंगा आदि नदियाँ (स्यन्दन्ते) बहती हैं (च) और (अतः) इस परम पुरुष से (सर्वाः) समस्त (ओषधयः) ओषधियाँ (च) और (रसाः) मधुरादि रस उत्पन्न होते हैं (हि) निश्चय करके (येन) जिस कारण से (एषः) यह अविनाशी परम पुरुष (भूतैः) सब भूतों से परिवृत (अन्तरात्मा) सब प्राणियों की अन्तरात्मा होकर (तिष्ठते) वर्तमान रहता है ।।९।।

विशेषार्थ—अक्षर परब्रह्म नारायण से लवण १, इक्षुरस २, सुरा ३, सर्पि ४, दधिमण्ड ५, क्षीर ६, स्वादूदक ७ ये सात समुद्र उत्पन्न हुए हैं । क्योंकि सात समुद्र के विषय में लिखा है—

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।' (योग० अ० १ पा० ३ सू० २४)

'लवणेक्षुरससुरासर्पिर्दधिमण्डक्षीरस्वादूदकसप्त समुद्रवेष्टिताः ।'
(व्यासभाष्य०)

लवण १, इक्षुरस २, सुरा ३, सर्पि ४, दधिमण्ड ५, क्षीर ६, स्वादूदक ७ इन नाम वाले सात समुद्रों से चारों ओर घेरे हुए हैं तथा परमात्मा से ही सुमेरु, निषध, हेमकूट, हिमालय आदि पर्वत उत्पन्न हुए हैं । पर्वत के विषय में भी—

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।' (योग० अ० १ पा० ३ सू० २४)
के व्यास भाष्य में लिखा है—

'सप्तद्वीपा वसुमती यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः । तस्य राजतवैडूर्यस्फटिकहेममणिमयानि शृङ्गाणि तत्र वैडूर्यप्रभानुरागान्वितोत्पलपत्रश्यामो नभसो दक्षिणभागः श्वेतः पूर्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरुण्डकाभ उत्तरः दक्षिणपार्श्वे चास्य जम्बू यतोऽयं जम्बूद्वीपस्तस्य सूर्यप्रचाराद्रात्रिं दिवं लग्नमिव विवर्तते तस्य नीलश्वेतशृंगवन्त उदीचीनास्त्रयःपर्वता द्विसहस्रायामास्तदन्तरेषुत्रीणि वर्षाणि नवनवयोजनसहस्राणि रमणकं हिरण्मयमुत्तराकुरव इति ।'
(व्यासभा०)

यह भूमि सात द्वीपवाली धनवती है जिस भूमि के मध्य में सोने का सुमेरु नामक एक पर्वत है जो सब पर्वतों से बड़ा है । उस सुमेरु पर्वत के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की तरफ क्रम से राजत,मणिमय, वैडूर्यमणिमय, स्फटिक मणिमय और हेममणिमय शृङ्ग हैं । इन चार शृंगों में से दक्षिण की ओर वैडूर्यमणिमय शृंग है । उसकी प्रभा के अनुरागयुक्त नीलकमलवत् श्याम आकाश का दक्षिण भाग है और ऐसे ही राजतमणिमय शृंग के प्रभानुराग प्रभाव से पूर्व का आकाश भाग श्वेत है और पश्चिम का स्वच्छ है और उत्तर कुरुण्डकाभ नाम हरेपन से युक्त है क्योंकि स्वर्ण की छाया हरेपन के लिये होती है । इससे उत्तर भाग आकाश का सुवर्ण मणिमय शृंग की छायायुक्त होने से हरा है और सुमेरु के दक्षिण की तरफ जम्बू का वृक्ष है । इससे प्रथम सुमेरु की चारों ओर नवखण्डयुक्त जम्बू द्वीप है । इस पर्वत सुमेरु की चारो ओर सूर्य प्रचार से रात-दिन लग्नवत् भ्रमण करते हैं और इस सुमेरु की उत्तर दिशा में दो-दो हजार योजन दीर्घ नील श्वेत शृंगोंवाले तीन पर्वत हैं । उन पर्वतरूप अन्तराय के होते नौ-नौ हजार योजन तीन खण्ड हैं । रमणक हिरण्मय उत्तरकुरु नामवाले सुमेरु के समीप जो प्रथम पर्वत है नील शृंग-युक्त होने से नील और श्वेत शृंग पर्वत के मध्य में रमणक खण्ड है। वर्षखण्ड दोनों शब्द एकार्थक हैं और श्वेतशृंग पर्वतों के मध्य में हिरण्मय खण्ड है और श्वेतशृंग पर्वत तथा लवणोदधि उत्तर समुद्र के बीच में उत्तरकुरु नामक खण्ड है ।

निषधहेमकूट हिमशैलाद्दक्षिणतो द्विसाहस्रायामास्तदन्तरेषु त्रीणिवर्षाणि नवनवयोजनसाहस्राणि हरिवर्षं किं पुरुषं भारतवर्ष-मिति सुमेरोः प्राचीना भद्राश्वमाल्यवत्सीमानः प्रतीचीनाः केतु-मालगन्धमादनसीमानो मध्येवर्षमिलावृतम् । (व्यासभा०)

इलावृत खण्ड के दक्षिण में निषध नाम का पर्वत है उसके बाद हरिवर्ष है। हरिवर्ष और किं पुरुष के बीच में हेमकूट नाम का पर्वत है। किं पुरुष और भारतवर्ष के बीच हिमवान् पर्वत है। जिस तरह हिमवान् किं पुरुष वर्ष के दक्षिण एवं भारत के उत्तर में है इसी तरह प्रत्येक गिरि अपने से पहिले वर्ष के दक्षिण एवं भारत के उत्तर में हैं। ये तीनों गिरि भी दो दो हजार योजन पृथु हैं। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व वर्ष और उसकी सीमा का गिरि माल्यवान् है इलावृत के पश्चिम में केतुमाल वर्ष और उसका मर्यादागिरि गन्धमादन है और बीच में इलावृत है। ये सब पर्वत परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं और परमात्मा से ही उत्पन्न होकर गङ्गा, यमुना, सरयू आदि अनेक नदियाँ बहती हैं तथा नारायण से धान, जौ आदिक सब औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं और मधुर, आम्ल, लवण, कटु, कषाय, तींत ये छः रस भी परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं क्योंकि निश्चय करके जिस कारण से अविनाशी परब्रह्मनारायण सब भूतों से परिवृत सब प्राणियों के अन्तरात्मा होकर वर्तमान रहता है ॥९॥

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥१०॥

॥ इति द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः ॥

अन्वयार्थ—(इदम्) यह चेतनाचेतनात्मक (विश्वम्) समस्त संसार (एव) निश्चय करके (पुरुषः) परम पुरुषात्मक है (कर्म) उस परमात्मा के जगत् की सृष्टि के अनुकूल कर्म यानि व्यापार (तपः) स्रष्टव्यालोचनात्मक तप (परामृतम्) प्रकृति से उत्कृष्ट एक सदा शुद्ध निरुपाधिक अमृत परमानन्द (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण है (सोम्य) हे सोमार्ह प्रियदर्शन (यः) जो पुरुष (एतत्) इस अविनाशी परब्रह्म को (गुहायाम्) हृदयरूप गुफा में (निहितम्) स्थित (वेद) इस लोक में जानता है (सः) वह पुरुष (इह) इस मनुष्य शरीर में (अविद्या-ग्रन्थिम्) अविद्या के गांठ को (विकिरति) नष्ट कर देता है ॥१०॥

विशेषार्थ— हे सोमार्ह प्रियदर्शन शौनक ! यह चेतनाचेतनात्मक संसार सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट परब्रह्म से उत्पन्न हुआ है इस कारण से यह समस्त संसार पुरुषात्मक है। अर्थात परब्रह्मनारायण पुरुष के शरीर होने से यह सब जगत् पुरुष है। अब यहां पर यह प्रश्न होता है—परब्रह्म नारायण के सब चेतन अचेतन संसार शरीर है इसमें क्या प्रमाण है। इसका उत्तर यह लिखा है—

'यस्य पृथिवी शरीरम् ।' (बृह० उ० अ० ३ ब्राह्म० ७ श्रु० ३)

'यस्यापः शरीरम् ॥४॥ यस्याग्निः शरीरम् ॥५॥ यस्यान्तरिक्षं शरीरम् ॥६॥ यस्य वायुः शरीरम् ॥७॥ यस्य द्यौः शरीरम् ॥८॥ यस्यादित्यः शरीरम् ॥९॥ यस्य दिशः शरीरम् ॥१०॥ यस्य चन्द्रतारकं शरीरम् ॥११॥ यस्याकाशः शरीरम् ॥१२॥ यस्य तमः शरीरम् ॥१३॥ यस्य तेजः शरीरम् ॥१४॥ यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम् ॥१५॥ यस्य प्राणः शरीरम् ॥१६॥ यस्य वाक् शरीरम् ॥१७॥ यस्य चक्षुः शरीरम् ॥१८॥ यस्य श्रोत्रं शरीरम् ॥१९॥ यस्य मनः शरीरम् ॥२०॥ यस्य त्वक् शरीरम् ॥२१॥ यस्य विज्ञानं शरीरम् ॥२२॥ यस्य रेतः शरीरम् ॥२३॥

जिस नारायण की पृथिवी शरीर है (३) जिसका जल शरीर है (४) जिसका अग्नि शरीर है (५) जिसका अन्तरिक्ष लोक शरीर है (६) जिसका वायु शरीर है (७) जिसका दिवलोक शरीर है (८) जिसका आदित्य शरीर है (९) जिसकी दिशा शरीर है (१०) जिसका चन्द्रमा और तारा शरीर हैं (११) जिसका आकाश शरीर है (१२) जिसका तम शरीर है (१३) जिसका तेज शरीर है (१४) जिसका सब भूत शरीर हैं (१५) जिसका प्राण शरीर हैं (१६) जिसकी वाणी शरीर है (१७) जिसका नेत्र शरीर है (१८) जिसका कान शरीर है (१९) जिसका मन शरीर है (२०) जिसका त्वक् शरीर है (२१) जिसका जीवात्मा शरीर है (२२) जिसका वीर्य शरीर है (२३) और सुबालोपनिषद् में लिखा है —

यस्यपृथिवी शरीरम् । यस्यापः शरीरम् । यस्य तेजः शरीरम् । यस्य वायुः शरीरम् । यस्याकाशः शरीरम् यस्य मनः शरीरम् । यस्य बुद्धिः शरीरम् । यस्याहङ्कारः शरीरम् यस्य चित्तं शरीरम् । यस्याऽव्यक्तं शरीरम् । यस्याक्षरं शरीरम् । यस्य मृत्युः शरीरम् ।
(सुबालो० खं० ७)

जिस नारायण की पृथ्वी शरीर है। जिसका जल शरीर है। जिसका तेज शरीर है। जिसका वायु शरीर है। जिसका आकाश शरीर है। जिसका मन शरीर है। जिसकी बुद्धि शरीर है। जिसका अहंकार शरीर है। जिसका चित्त शरीर है। जिसका अव्यक्त शरीर है। जिसका जीवात्मा शरीर है। जिसका मृत्यु शरीर है ॥ ७ ॥

'जगत्सर्वं शरीरं ते ।' (वा० रामा० युद्ध० कां० ६ सर्ग० १२१)

समस्त संसार आपका शरीर है ॥१२१॥ ये प्रमाण हैं—नारायण का सब संसार शरीर है। उस परमात्मा का जगत् की सृष्टि के अनुकूल कर्म यानी व्यापार तथा स्रष्टव्यालोचनरूप तप। क्योंकि लिखा है—

'यस्य ज्ञानमयं तपः।' (मुण्डको० मु० १ खं० १ श्रु० ६)

जिसका ज्ञानमय तप है ॥६॥ और जो कुछ भी है, वह, प्रकृति से परे निरुपाधिक अमृत स्वरूप ब्रह्मात्मक है क्योंकि लिखा है—

'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्।' (छां० उ० अ० खं० १४ श्रु० ३)

यह समस्त संसार ब्रह्मात्मक है ॥३॥ जो पुरुष परब्रह्म नारायण को हृदयरूप गुफा में स्थित जान लेता है वह इस मनुष्य के शरीर में अविद्या की गाँठ को नष्ट कर देता है क्योंकि लिखा है—

'अन्तः शरीरे निहितो गुहायामज एको नित्यः।'
(सुबा० उ० खं० ७)

शरीर के भीतर हृदयरूपी गुफा में एक अजन्मा परब्रह्म नारायण स्थित है ॥७॥ प्रपन्नपारिजात भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्री भाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड के अन्तिम दशवीं श्रुति के चतुर्थ पाद को उद्धृत किया है। यहाँ पर द्वितीय मुण्डक का प्रथम खण्ड समाप्त हो गया ॥१०॥

॥ अथ द्वितीयखण्डः ॥

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(आविः) प्रकाश स्वरूप या योगियों के अपरोक्ष (सन्निहितम्) प्राणियों के हृदय में स्थित (गुहाचरम) हृदयरूप गुहा में स्थित होने के कारण दुर्विज्ञेयस्वरूप से (नाम) प्रसिद्ध (महत) सबसे महान् (पदम्) परम प्राप्य पद है (यत्) जो (एजत्) चलनेवाला या जागता हुआ (प्राणत्) प्राण धारण करता हुआ (च) और (निमिषत्) सोता हुआ तथा स्वप्न देखता हुआ (एतत) यह (सर्वम्) सब प्राणिसमुदाय (अत्र) इस अविनाशी परब्रह्म में (अर्पितम्) समर्पित हैं (सदसद्वरेण्यम्) स्थूल सूक्ष्म वस्तुओं करके प्रार्थनीय आधारभूत (एतत्) इस परब्रह्मनारायण को (जानथ) तुमलोग जानो (यत्) जो परब्रह्म (विज्ञानात्) जीवात्मा से (परम्) पर यानी उत्कृष्टतरत्व है तथा

(प्रजानाम्) समस्त प्राणियों में (वरिष्ठम्) अतिशय श्रेष्ठ है ॥१॥

विशेषार्थ—यह अविनाशी परब्रह्म प्रकाशस्वरूप योगियों के अपरोक्ष-स्वरूप सबके समीप में रहनेवाला सब प्राणियों के हृदयरूप गुफा में रहने के कारण दुर्विज्ञेय स्वरूप से प्रसिद्ध है। क्योंकि लिखा है—

'पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।'

(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १३)

अन्तर्यामी परमपुरुष सदा ही मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है ॥१३॥

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः ।' (गी० अ० १५ श्लो० १५)

मैं सबके हृदय में प्रविष्ट हूँ ॥१५॥ वह परमात्मा सबसे महान् परम प्राप्य पद है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति वाले सभी प्राणी इस परब्रह्म नारायण में समर्पित हैं। क्योंकि लिखा है—

'ब्रह्मणि मणय इवोताश्च प्रोताश्चेति । (सुबालो० खं० १०)

परब्रह्म में मणियों के समान ओत-प्रोत समस्त संसार है ॥१०॥ और सूक्ष्म स्थूल वस्तुओं करके प्रार्थनीय सब के आधारभूत इस परब्रह्म नारायण को तुम लोग जानो जो परब्रह्म नारायण जीवात्मा से उत्कृष्ट तत्त्व है क्योंकि लिखा है—

'प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः ।' (श्वे० उ० अ० ६ श्रु० १६)

प्रकृति और जीवात्मा के स्वामी हैं ॥१६॥ प्रस्तुत मुण्डक की श्रुति में "विज्ञान" शब्द जीवात्मा वाचक है। क्योंकि बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

'यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरोयं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।'

(बृ० उ० अ० ३ब्रा० ७ श्रु० २२)

जो जीवात्मा में रहनेवाला जीवात्मा के भीतर है जिसे जीवात्मा नहीं जानता है जीवात्मा जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर जीवात्मा का नियम करता है वह तुम्हारा अन्तर्यामी परमात्मा अमृत है ॥२२॥ वह परब्रह्मनारायण सब प्राणियों में अतिशय श्रेष्ठ है। यतिराज भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याञ्च नेतरौ ।'

(शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीयमुण्डक के द्वितीय खण्ड की पहली श्रुति के पहले पाद को उद्धृत किया है ॥ १ ॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिल्लोका निहिता लोकिनश्च तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ॥ तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो परब्रह्म (अर्चिमत्) दीप्तिमान् है (च) और (यत्) जो परब्रह्म (अणुभ्यः) सूक्ष्मों से (अणु) अति सूक्ष्म है (यस्मिन्) जिस परब्रह्म में (लोकाः) भूर्लोक आदि समस्त लोक (च) और (लोकिनः) उन लोकों में रहनेवाले सब प्राणी (निहिताः) स्थित हैं (तत्) वही (एतत्) यह (अक्षरम्) अविनाशी (ब्रह्म) परब्रह्म है (उ) निश्चय करके (सः) वह नारायण (प्राणः) प्राण है (तत्) वह परब्रह्म (वाङ्) वाणी है और वही (मनः) मन है (तत्) वह (एतत्) यह अविनाशी ब्रह्म (सत्यम्) त्रिकाल-बोधशून्य है और (अमृतम्) निरुपाधिक अमृत है (सोम्य) हे सोमार्हप्रियदर्शन (तत्) वह परब्रह्म (वेद्धव्यम्) समाहित मन से बेधने योग्य (विद्धि) जानो।२।

विशेषार्थ—जो परब्रह्म नारायण अतिशय देदीप्यमान प्रकाशस्वरूप है। क्योंकि लिखा है--

'रवितुल्यरूपः ।' (श्वे० उ० अ० ५ श्रु० ८)

सूर्य के समानरूपवाला परमात्मा है ॥८॥ और जो परमात्मा सूक्ष्मों से भी अतिशय सूक्ष्म है क्योंकि लिखा है--

'अणोरणीयन् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० २०)

सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है ॥२०॥ जिस परब्रह्म नारायण में भूर्लोक आदि समस्त लोक तथा उन लोकों के निवासी सब प्राणी स्थित हैं। वही यह अविनाशी परब्रह्मनारायण है और निश्चय करके वह परमात्मा प्राण है। क्योंकि लिखा है—

'प्राणस्य प्राणम् ।' (बृ० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० १८)

वह प्राण का प्राण है ॥ १८॥ और वाणी तथा मन आदिक सब ही ब्रह्मात्मक हैं। वह यह अविनाशी परब्रह्म त्रिकालबाध शून्य सत्य है तथा निरुपाधिक अमृत है। हे सोमार्ह प्रियदर्शन शौनक वह परब्रह्म समाहित मन का विषय जानो अर्थात् उस परब्रह्म में मन को समाहित करो ॥२॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संदधीत। आयम्य तद्भागवतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥३॥

अन्वयार्थ—(औपनिषदम्) उपनिषदों में प्रसिद्ध प्रणवरूप (धनुः) धनुष को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (हि) निश्चय करके (उपासानिशितम्) भगवान् की उपासना के द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर से विवेचन किया हुआ (महास्त्रम्) अष्टाक्षरादिलक्षण महान् अस्त्र से संयोजित (शरम्) आत्मलक्षण वाण को (संदधीत) चढ़ावे (भागवतेन) भगवत् प्रवण (चेतसा) चित्त करके (तत्) उस प्रणवरूप धनुष को (आयम्य) जीवात्मा परमात्मा के शेष शेषिभाव लक्षण अर्थ प्रकाशकत्व रूप से अनुसंधान करके (सोम्य) हे सोमार्ह प्रियदर्शन (तत्) उस (अक्षरम्) अविनाशी परब्रह्म को (एव) निश्चय करके (लक्ष्यम्) दर्शन या लाभ करने योग्य (विद्धि) जानो ॥३॥

विशेषार्थ—उपनिषदों में प्रसिद्ध प्रणवरूप धनुष को ग्रहण करके। क्योंकि लिखा है—

'प्रणवो धनुः ।' (मुण्डको० मुं० २ खं० २ श्रु० ४)

प्रणव धनुष है ॥ ४॥ निश्चय करके परब्रह्म नारायण की उपासना के द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर से विवेचन किया हुआ अष्टाक्षरादि लक्षण महान् अस्त्र से संयोजित आत्मलक्षण वाण को चढ़ावे। क्योंकि लिखा है—

'शरो ह्यात्मा ।'(मुण्डको० मुं० २ ख० २ श्रु० ४)

आत्मा ही बाण है ॥ ४॥ अष्टाक्षर का स्वरूप वर्णन है—

ओमित्यग्रे व्याहरेत् । नम इति पश्चात् । नारायणायेत्युपरिष्टात् । ओमित्येकाक्षरं नम इति द्वे अक्षरे । नारायणायेति पञ्चाक्षराणि । एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम् ॥ (नारायणोप० श्रु० ३)

ओम् ऐसा पहले कहे। इसके बाद नमः ऐसा कहे और अन्त में नारायण ऐसा कहे। ओम् यह एक अक्षर है। नमः ये दो अक्षर हैं। नारायण यह पाँच अक्षर है। निश्चय करके यही नारायण का अष्टाक्षर पद है ॥ ३ ॥ भगवत् प्रणव चित्त करके उस प्रणवरूप धनुष को जीवात्मा परमात्मा के शेष शेषिभावलक्षण अर्थ प्रकाशकत्वरूप से अनुसंधान करके हे सोमार्ह प्रियदर्शन शौनक उस अविनाशी परब्रह्म नारायण को लक्ष्य यानी लाभ करने योग्य तुम जानो। क्योंकि लिखा है—

'ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।' (मुण्डको० मु० २ खं० २ श्रु० ४)

वह ब्रह्मलक्ष्य कहा जाता है ॥ ४ ॥ वही ब्रह्म देखने योग्य या प्राप्त करने योग्य है ऐसा तुम जान लो ॥ ३ ॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥४॥

अन्वयार्थ—(प्रणवः) प्रणव (धनुः) धनुष है और (हि) निश्चय करके (आत्मा) आत्मा (शरः) बाण है (तत्) वह (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण (लक्ष्यम्) लक्ष्य यानी प्राप्त करने योग्य (उच्यते) कहा जाता है (अप्रमत्तेन) विषयान्तरविमुख एकाग्रचित्त करके (वेद्धव्यम्) वेधना चाहिये अर्थात् परब्रह्मैक-शेषत्वेन ध्यान करना चाहिये (शरवत्) जैसे लक्ष्य में निमग्न बाण लक्ष्य की अपेक्षा से भेदक आकार की स्फुरणा से रहित होता है वैसे ही (तन्मयः) परमात्मा में प्रणव से समर्पित प्रत्यगात्मा के परब्रह्म की समतालक्षणा - मुक्ति को प्राप्त किया हुआ ज्ञानैकाकार जीवात्मा के देव मनुष्यादि लक्षण भेदक आकार की स्फुरणा से रहित (भवेत्) हो जाना चाहिये ॥४॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्तरूपक में प्रणव धनुष है और जीवात्मा ही बाण है तथा परब्रह्मनारायण लक्ष्य यानी प्राप्त करने योग्य कहा जाता है । क्योंकि लिखा है—

'ओमित्यात्मानं युञ्जीत । (नारायणो० श्रु० ७६)

प्रणव से आत्मसमर्पण करे ॥ ७६ ॥ और प्रणव के विषय में लिखा है—

'अथ कस्मादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्राणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः ॥' (अथर्वशिर० श्रु० ४)

और प्रणव क्यों कहा जाता है—जिसके उच्चारण करने से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ब्राह्मणों के लिये प्रणाम कराता है तथा नम्र करता है इससे प्रणव कहा जाता है ॥ ४ ॥ विषयान्तरविमुख एकाग्रचित्त करके वेधना चाहिये अर्थात् परब्रह्मैकशेषत्वेन ध्यान करना चाहिये । जिस प्रकार से लक्ष्य में निमग्न बाण लक्ष्य की अपेक्षा से भेदक आकार की स्फुरणा से रहित होता है उसी प्रकार से परब्रह्म नारायण में प्रणव से समर्पित प्रत्यगात्मा के परब्रह्मनारायण की समता लक्षणा मुक्ति को प्राप्त किया हुआ ज्ञानैकाकार जीवात्मा के देव मनुष्यादि लक्षण भेदक आकार की स्फुरणा से रहित हो जाना चाहिये ॥४॥

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिस पर नारायण में (द्यौः) स्वर्गलोक (पृथिवी) पृथ्वीलोक (च) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (च) और (सर्वैः)

समस्त (प्राणैः) प्राणों करके (सह) सहित (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (ओतम्) गुथा हुआ है (तम्) उसी (एकम्) एक (आत्मानम्) परब्रह्म नारायण को (एव) निश्चय करके (जानथ) व्यापक जानो (अन्याः) दूसरी अनात्मविषयक (वाचः) वाणियों को (विमुञ्चथ) सर्वथा छोड़ दो (एषः) यह परब्रह्मनारायण (अमृतस्य) संसार सागर के पारभूत मोक्ष के (सेतुः) पूल है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—जिस परब्रह्म नारायण में स्वर्गलोक, पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक एवं समस्त प्राणों के सहित संकल्प विकल्पात्मक मन ओतप्रोत है। क्योंकि लिखा है—

'ब्रह्मणि मणय इवौताश्चप्रोताश्च ।' (सुबलोपनि० खं० १०)

परब्रह्मनारायण में मणियों के समस्त संसार ओतप्रोत है ॥१० ॥

'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।' (गी० अ० ७ श्लो० ७)

सूत्र में मणियों के समान यह सब संसार परब्रह्म मुझमें पिरोया हुआ है ॥७॥ उसी एक परब्रह्म नारायण को निश्चय करके तुम जानो। दूसरी अनात्मविषयक वाणियों को तुम परित्याग कर दो। यह परब्रह्म नारायण संसार समुद्र के पारभूत मोक्ष का पूल है। क्योंकि लिखा है—

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।'

(श्वे० उ० अ० ३ श्रु० ८)

उस नारायण को जानकर पुरुष मृत्यु को पार कर जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये दूसरा मार्ग नहीं है ॥ ८ ॥ यतिसार्वभौम भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० १)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड की पाँचवीं श्रुति के "अमृतस्यैष सेतुः" इस खण्ड को उद्धृत किया है ॥५॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ओमित्येवं ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(यत्र) जिस हृदय में (नाड्यः) समस्त देहव्यापिनी नाड़ियाँ (रथनाभौ) रथ की नाभि में (अराः) अरों के (इव) समान (संहताः) संगत हैं (सः) वह प्रकृत (एषः) यह परब्रह्म नारायण (बहुधा) बहुत प्रकार से (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (अन्तः) हृदय के मध्यभाग में (चरते) विराजता है (तमसः) अज्ञानमय अन्धकार से (परस्तात्) परे (पाराय) भवसागर के अन्तिम तीर प्राप्ति के लिये (ओम्) ओम् (इति) इस नाम के

द्वारा (आत्मानम्) परब्रह्मनारायण को (ध्यायथ) ध्यान करो (एवम्) इस प्रकार के (वः) ध्यान के लिये प्रवृत्त तुम लोगों के लिये (स्वस्ति) कल्याण हो ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—"सन्ततं शिराभिस्तु लम्बत्या कोशसंनिभम्" तै० नाराय० अनुवा० १३) निरन्तर शिराओं के द्वारा कोश के समान लटकता हुआ ॥१३॥ इस श्रुति में कही हुई रीति के द्वारा जिस हृदय प्रदेश में समस्त देहव्यापिनी नाड़ियाँ रथ के पहिये की नाभि में तिरछे काठों के समान एकत्र स्थित हैं। उसी हृदय में नाना रूप से प्रकट होने वाले परब्रह्म नारायण अन्तर्यामी रूप से रहते हैं। क्योंकि लिखा है—

'बहुधा विजायते ।' (यजुर्वे० अ० ३१ श्रु० १६)

बहुत प्रकार से प्रकट होता है ॥१६॥ अज्ञानमय अन्धकार से परे भव-सागर के अन्तिम तीर प्राप्ति के लिये प्रणव के द्वारा उस परब्रह्म नारायण को ध्यान करो। इस प्रकार के परमात्मा के ध्यान के लिये प्रवृत्त तुम लोगों के लिये कल्याण हो। उभयविभूतिनायक भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० १)

के श्री भाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के द्वितीयखण्ड की छठवीं श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है ॥६॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्वि-भाति ॥७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो परब्रह्मनारायण (सर्वज्ञः) सर्व विषयक ज्ञान-वाला है तथा (सर्ववित्) तत्तद्वस्तुगत सर्व प्रकार के ज्ञानवाला है (यस्य) जिस परमात्मा के (भुवि) भूलोक में (एषः) संसारतंत्र प्रवर्तकरूप यह (महिमा) महिमा है (हि) निश्चय करके (एषः) यह सुप्रसिद्ध (आत्मा) परमात्मा (दिव्ये) दिव्य प्रकाशयुक्त (व्योम्नि) परम आकाश (ब्रह्मपुरे) वैकुण्ठ नाम-वाले परब्रह्म के ग्राम में (प्रतिष्ठितः) पर वासुदेवरूप से स्थित है। (मनोमयः) मनोमय (प्राणशरीरनेता) सबके प्राण और शरीर के नायक (अन्ने) अन्नमय स्थल शरीर में (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठित है। उस परब्रह्मनारायण में (हृदयम्) चित्त को (सन्निधाय) सम्यक् प्रकार से स्थापित करके (यत्) जो (आनन्द-रूपम्) आनन्दस्वरूप (अमृतम्) स्पष्ट संसारगन्ध अविनाशी परब्रह्म (विभाति)

प्रकाशित होता है (धीराः) प्रज्ञाशाली बुद्धिमान् मनुष्य (तत्) उस परब्रह्म-नारायण को (विज्ञानेन) विज्ञानशब्दित दर्शन समानाकार उपासना के द्वारा (परिपश्यन्ति) भलीभाँति साक्षात्कार कर लेते हैं ।। ७ ।।

विशेषार्थ—जो परब्रह्मनारायण सर्वविषयक ज्ञानवाला है और तत्तद्वस्तुगत सर्व प्रकार के ज्ञानवाला है । क्योंकि लिखा है—

'यः सर्वज्ञः सर्ववित् ।' (मुण्डको० मु० १ खं० १ श्रु० ६)

जो सामान्यरूप से और विशेषरूप से सबको जानता है ।। ६ ।। जिस परब्रह्म नारायण की लीलाबिभूति में संसारतंत्र प्रवर्तकरूप यह महिमा है । निश्चय करके यह सुप्रसिद्ध परब्रह्म नारायण त्रिपाद्विभूति में परवासुदेवरूप से स्थित है । वह परमात्मा मन में व्याप्त होने के कारण मनोमय कहलाता है और सब प्राणियों के प्राण तथा शरीर का नेता है । क्योंकि लिखा है—

'मनोमयः प्राणशरीरः ' (छां० उ० अ० ३ खं० १४ श्रु० ३)

मनोमय प्राणशरीरवाला परमात्मा है ।।२।। वह परमेश्वर अन्नमय स्थूल शरीर में प्रतिष्ठित है । उस परब्रह्म नारायण में चित्त को सम्यक् प्रकार के स्थापित करके प्रज्ञाशाली बुद्धिमान् मनुष्य उस परब्रह्म नारायण को विज्ञानशब्दित दर्शन समानाकार उपासना के द्वारा भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं । जो आनन्दस्वरूप अस्पृष्ट संसारगंध अविनाशी परब्रह्म नारायण सर्वत्र प्रकाशित होता है । यतिराज भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० १)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के द्वितीयखण्ड की सातवीं श्रुति को उद्धृत किया है ।।७।।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।८।।

अन्वयार्थ—(तस्मिन्) उस (परावरे) सर्वोत्कृष्ट पर अवर शरीर वाले सर्वात्मभूत परब्रह्मनारायण के (दृष्टे) देख लेने पर (अस्य) इस साधक मुमुक्षु पुरुष के (हृदयग्रन्थिः) अन्तःकरण की गांठ के समान दुर्मोच रागद्वेषादिक (भिद्यते) छूट जाता है (च) और (सर्वसंशयाः) समस्त संदेह (छिद्यन्ते) कट जाते हैं तथा (कर्माणि) प्रारब्ध से व्यतिरिक्त अनेक जन्मार्जित समस्त शुभाशुभ कर्म (क्षीयन्ते) नष्ट हो जाते हैं ।।८।।

विशेषार्थ—ब्रह्मादि देवताओं से श्रेष्ठ सर्वात्मभूत परब्रह्म नारायण के साक्षात्कार हो जाने पर इस साधक मुमुक्षु पुरुष के अन्तःकरण की गांठ के समान

दुर्मोच रागद्वेषादिक अथवा ग्रन्थि के समान समस्त काम टूट जाते हैं क्योंकि लिखा है—

'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदि श्रिताः ।'

(कठो० अ० २ व० ३ श्रु० १४)

जिस समय संपूर्ण हृदय में रहने वाले विषयविषयक मनोरथ शान्त हो जाते हैं ॥१४॥

'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदि श्रिताः ।'

(बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० ७)

जिस समय समस्त हृदय में रहने वाले विषयविषयकमनोरथ नष्ट हो जाते हैं ॥७॥

'यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।'

(कठो० अ० २ व० ३ श्रु० ८)

जब गाँठ के समान दुर्मोच हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ रागद्वेषादिक नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ और समस्त संदेह कट जाते हैं तथा प्रारब्ध से व्यतिरिक्त समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है—

'नाभुक्तं क्षीयते कर्म ।'

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिखं० अध्या० २६ श्लो० ७०)

बिना भोगे हुए कर्म नष्ट नहीं होता ॥७०॥ इस शास्त्र से पूर्वोक्त श्रुति में विरोध ज्ञात होता है। इसका उत्तर यह है कि भिन्न विषय होने से दोनों में विरोध नहीं है। "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" यह वाक्य कर्मों के फलजनन सामर्थ्य द्रढ़िम विषयक है और—

'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि ।' (मु० उ० मु० २ खं० २ श्रु० ८)

यह वाक्य उत्पन्न विद्यावाले पुरुषों के पहले के किये हुए पापों का फलजनन शक्ति विनाश सामर्थ्य को और उत्पन्न होनेवालों के फलजनन शक्ति की उत्पत्ति के प्रतिबन्धकरण सामर्थ्य को प्रतिपादन करता है। प्रपन्नपारिजात भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और—

'उपमर्दं च । (शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० १६)

के श्रीभाष्य में तथा—

'तदधिगमउत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।'

(शा० मी० अ० ४ पा० १ सू० १३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीयमुण्डक के द्वितीयखण्ड की आठवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥८॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥९॥

अन्वयार्थ—(हिरण्मये) प्रकाशमय अत्यन्त कमनीय सुवर्णमय (परे) सबसे उत्कृष्ट (कोशे) कोश के तुल्य परमपद स्थान में (विरजम्) सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण से रहित (निष्कलम्) सोलह कलारूप अवयवों से रहित (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण है (तत्) वह परब्रह्म (ज्योतिषाम्) प्रकाशक इन्द्रियों के (ज्योतिः) प्रकाशक ज्योति है (आत्मविदः) आत्मा को जाननेवाले विवेकी पुरुष (यत्) जिस परब्रह्मनारायण को (विदुः) जानते हैं ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—प्रकाशमय अत्यन्त कमनीय सुवर्णमयाकार सबसे श्रेष्ठ कोश के तुल्य परमपद वैकुण्ठ स्थान में सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण से रहित और सोलह कलारूप अवयवों से रहित परब्रह्मनारायण विराजमान रहता है। वह परब्रह्मनारायण अनवद्य सर्वथा विशुद्ध है तथा वह परब्रह्म प्रकाशक इन्द्रियों का प्रकाशक ज्योति है। उस परब्रह्म नारायण को आत्मज्ञानी महात्मा जन ही जानते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—सोलह कलारूप अवयव कौन हैं? इसका उत्तर यह लिखा है—

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं ।
मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मंत्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥

(प्रश्नो० प्रश्न० ६ श्रु० ४)

उसने प्राण को १, रचा फिर प्राण से श्रद्धा को २, आकाश को ३, वायु को ४, अग्नि को ५, जल को ६, पृथ्वी को ७, इन्द्रियसमूह को ८, मन को ९, अन्न को १०, वीर्य को ११, तप को १२, मंत्र को १३, कर्म को १४, लोकों को १५, और लोकों में नाम को १६, उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ ये सोलह कलारूप अवयव हैं ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥

अन्वयार्थ— (यत्र) उस स्वप्रकाश परब्रह्म में (सूर्यः) सूर्य (न) नहीं (भाति) प्रकाश करता है (चन्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारागण (न) नहीं प्रकाश करते हैं और (इमाः) ये (विद्युतः) बिजलियाँ (न) नहीं

(भान्ति) प्रकाश करते हैं (अयम्) यह लौकिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहाँ से प्रकाश कर सकती है (तम्) उस परब्रह्म नारायण के (भान्तम्) प्रकाशित होने पर (एव) निश्चय करके (अनु) पीछे से (सर्वम्) सब संसार (भाति) प्रकाशित होता है (तस्य) उसी परमात्मा के (भासा) प्रकाश से (इदम्) यह (सर्वम्) समस्त जगत् (विभाति) प्रकाशित होता है ॥१०॥

विशेषार्थ—जिस परब्रह्म नारायण को सूर्य प्रकाशित नहीं कर सकता है और चन्द्रमा तथा तारागण नहीं प्रकाशित कर सकते हैं और ये बिजलियाँ भी नहीं प्रकाशित कर सकती हैं। फिर यह लौकिक अग्नि तो प्रकाशित करेगी ही कहाँ से, किन्तु सकल वस्तुएँ उस दीप्यमान परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित होती हैं। यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है, क्योंकि लिखा है—

'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम् ॥'

(गी० अ० १५ श्लो० १२)

जो सूर्यगत तेज समस्त जगत् को प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्रमा में है और जो अग्नि में है उस तेज को तू मेरा ही जान ॥१२॥ जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने "मुण्डकोपनिषद्" के द्वितीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड की दसवीं श्रुति को—

'ज्योतिर्दर्शनात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४१)

के श्रीभाष्य में उद्धृत किया है। प्रस्तुत मुण्डक की श्रु० (कठोप० अ० २ व० २ श्रु० १५) में और (श्वेताश्व० उ० ६ श्रु० १४) में भी स्पष्ट पठित है।१०।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥११॥

॥ इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ॥

॥ इति द्वितीयमुण्डकः ॥

अन्वयार्थ—(इदम्) यह (अमृतम्) अमृतस्वरूप (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण (एव) निश्चय करके (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में है और (ब्रह्म) परब्रह्म ही (पश्चात्) पश्चिम दिशा में है तथा (ब्रह्म) परब्रह्म ही (उत्तरेण) उत्तर दिशा में है (च) और (अधः) नीचे की ओर (च) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर

की ओर (प्रसृतम्) फैला हुआ (इदम्) यह परब्रह्म (वरिष्ठम्) सर्व श्रेष्ठ वरणीयतम है (इदम्) यह (विश्वम्) सकल जगत् (एव) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मात्मक है ॥११॥

विशेषार्थ—यह अमृत स्वरूप परब्रह्म नारायण ही पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशाओं में और ईशान अग्नि नैऋत्य वायव्य विदिशाओं में और नीचे तथा ऊपर बाहर भीतर सर्वत्र फैला हुआ है। क्योंकि लिखा है—

'दिशश्च नारायणः। विदिशश्च नारायणः। ऊर्ध्वं च नारायणः। अधश्च नारायणः। अन्तर्बहिश्च नारायणः।

(नारायणो० श्रु० २)

पूर्वादिक दिशा नारायण है। ईशानादिक विदिशा नारायण है। ऊपर नारायण है। नीचे नारायण है और भीतर बाहर नारायण है ॥२॥

'भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किंचिज्जीवसंज्ञकम्।
स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥

(ब्रह्मपु० अ० ५७ श्लो० २६)

और भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ चराचर है और स्थूल सूक्ष्म पर जो कुछ संसार है वह सब कुछ नारायणात्मक है ॥२६॥ यह परब्रह्म नारायण परमश्रेष्ठ—वरणीयतम है। यह समस्त जगत् निश्चय करके ब्रह्मात्मक है। क्योंकि लिखा है—

'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।'

(गी० अ० ११ श्लो० ४०)

आप सब को व्याप्त कर रहे हैं इसलिये आप ही सर्वरूप हैं ॥४०॥ यहाँ पर मुण्डकोपनिषद् के द्वितीयमुण्डक का द्वितीयखण्ड और द्वितीयमुण्डक समाप्त हो गया ॥ ११ ॥

॥ अथ तृतीयमुण्डकः ॥

॥ अथ प्रथमखण्डः ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(सयुजा) समान गुणवाले या एक साथ रहनेवाले (सखाया) अपहतपाप्मत्वादि गुणों करके परस्पर मित्रभाव रखनेवाले (द्वा) दो (सुपर्णा) पक्षी के समान जीवात्मा और परमात्मा (समानम्) एक (वृक्षम्) वृक्ष के

समान छेदन करने योग्य शरीररूप वृक्ष को (परिषस्वजाते) आश्रय लेकर रहते हैं (तयोः) उन दोनों में से (अन्यः) एक जीवात्मा (स्वादु) परिपक्व मीठे (पिप्पलम्) शरीररूप वृक्ष के कर्मरूप फल को (अत्ति) भक्षण करता है (अन्यः) और दूसरा परमात्मा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) भलीभाँति प्रकाश करता है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—समान गुणवाले या एक साथ रहनेवाले तथा अपहतपाप्मत्वादि गुणों करके परस्पर मित्रभाव रखनेवाले दो पक्षी के समान जीवात्मा और परमात्मा एक वृक्ष के समान छेदन करने योग्य शरीररूप वृक्ष को आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनों में से एक जीवात्मा परिपक्व स्वादयुक्त मधुर शरीररूप वृक्ष के कर्मरूप फल को खाता है और दूसरा परमात्मा नहीं खाता हुआ भलीभाँति प्रकाश करता है। यह श्रुति (ऋग्वे० मुण्ड० १ सू० १६४ मं० २०) में और (श्वेताश्व० उ० अ० ४ श्रु० ६) में भी है। भवजलनिधिपोत भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में और

'सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० ८)

के श्रीभाष्य में तथा

'अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ८)

के श्रीभाष्य में और

'अपि चैवमेके ।' (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० १३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीयमुण्डक के पहलेखण्ड की पहली श्रुति को उद्धृत किया है ॥१॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥

अन्वयार्थ—(समाने) एक (वृक्षे) वृक्ष के समान छेदन करने योग्य शरीररूपी वृक्ष में (निमग्नः) मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ इत्यादि तादात्म्य बुद्धि से पांसु उदक के समान एकता को प्राप्त किया हुआ (अनीशया) भोग्यभूता प्रकृति से (मुह्यमानः) मोहित हुआ (पुरुषः) जीवात्मा (शोचति) शोक करता है (यदा) जब यह जीवात्मा (अन्यम्) शरीरासक्ति में निमग्न अपने से धारकत्व, नियन्तृत्व, शेषित्व, आदि के द्वारा विलक्षण (जुष्टम्) स्वकर्मों से प्रीयमाण या भक्तों द्वारा नित्यसेवित (ईशम्) सर्वेश परब्रह्म नारायण को और (अस्य)

इस परमात्मा के (महिमानम्) अखिल ब्रह्माण्ड के नियमनरूप महिमा को (पश्यति) प्रत्यक्ष कर लेता है (इति) तब (वीतशोकः) शोक रहित हो जाता है ॥२॥

विशेषार्थ—समान—यानी एक वृक्ष के तुल्य छेदन करने योग्य शरीररूपी वृक्ष से मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ इत्यादि तादात्म्य बुद्धि से पांसु जल के समान एकता को आसक्ति के द्वारा प्राप्त किया हुआ अनीशा—यानी भोग्यभूता प्रकृति से मोहित हुआ जीवात्मा दुःखों का अनुभव करता है या शोक करता है। क्योंकि लिखा है—

'अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्।' (श्वे० उ० अ० १ श्रु० ८

जीवात्मा इस जगत् के विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के अधीन हो इसमें बँध जाती है ॥ ८ ॥ जब यह जीव शरीराशक्ति में निमग्न अपने से धारकत्व, नियन्तृत्व, शेषित्व आदि के द्वारा विलक्षण तथा स्वकर्मों से प्रीयमाण या भक्तों से सर्वथा नित्यसेवित सर्वेश परब्रह्मनारायण को और इस परब्रह्म नारायण के निखिल जगन्नियमनरूप महिमा को साक्षात्कार करलेता है तब सर्वथा शोक रहित हो जाता है। यह प्रस्तुत श्रुति (श्वेताश्वतरो० अ० ४ श्रु० ७) में भी है। अखिलभूमण्डलालङ्कार भगवद्रामानुजाचार्य ने

'भेदव्यपदेशात्।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० ४)

'न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात्।'

(शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ४)

इन दोनों सूत्रों के श्रीभाष्य में और —

'अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम्।' (शा० मी० अ० २ पा० १ सू० ८)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की दूसरी श्रुति को उद्धृत किया है ॥२॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥

अन्वयार्थ—(यदा) जिस काल में (पश्यः) ब्रह्मदर्शी मुमुक्षुजन (रुक्मवर्णम्) सुवर्ण के समान वर्णवाला (कर्तारम्) समस्त जगत् के रचयिता (ईशम्) सब जगत् के शासक (ब्रह्मयोनिम) अव्याकृतब्रह्मोपादानभूत या चतुर्मुख ब्रह्मा के भी आदि कारण (पुरुषम्) परम पुरुष परमात्मा को (पश्यते) प्रत्यक्ष कर लेता है (तदा) उसी समय में (विद्वान्) भगवदुपासक ज्ञानी महात्मा (पुण्यपापे) पुण्य और पाप को (विधूय) भलीभाँति हटाकर

(निरञ्जनः) प्रकृतिनिर्लेप—निर्मल हुआ (परमम्) अपहत पापात्वादि गुणाष्टकलक्षण परब्रह्म के परम (साम्यम्) समता को (उपैति) प्राप्त कर लेता है ॥३॥

विशेषार्थ—जब ब्रह्मदर्शी मुमुक्षु पुरुष सोने के समान वर्णवाला क्योंकि लिखा है—

हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ।'

(छा. उ. अ. १ खं. ६ श्रु. ६)

जिस परमात्मा की दाढ़ी सुवर्ण सदृश है और सब केश भी सोने की ही भाँति हैं और नख के अग्र भाग से लेकर चोटीतक सब ही स्वर्णमय है ॥६॥

आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।' (श्वे. उ. अ. ३ श्रु. ८)

अविद्यारूप अन्धकार से परे सूर्य के समान वर्णवाला ॥ ८ ॥ सब संसार के रचयिता सब जगत् के शासक और—

'तस्मादेतद्ब्रह्म ।' (मु. उ. मु. १ खं. १ श्रु ६)

इस श्रुति में निर्दिष्ट अव्याकृत ब्रह्मोपादानभूत अथवा चतुर्मुख ब्रह्मा के भी आदि कारण परब्रह्म नारायण को साक्षात्कार कर लेता है क्योंकि लिखा है—

'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।' (श्वे. उ. अ. ३ श्रु. ४)

जिस परमात्मा ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया था ॥ ४ ॥

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् ।' (श्वे. उ. अ. ६ श्रु. १८)

जो नारायण सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है ॥१८॥ उस परमपुरुष परमात्मा को प्रत्यक्ष कर लेता है । तब भगवदुपासक ज्ञानी महात्मा पुण्य और पाप को भलीभाँति दूर करके प्रकृति निर्लेप निर्मल हुआ अपहतपाप्मत्वादिगुणाष्टक लक्षण परब्रह्म की परम समता को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि लिखा है—

'अश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामि ।'

(छान्दो. अ. ८ खं. १३ श्रु. १)

अश्व जिस प्रकार रोएँ झाड़ कर निर्मल हो जाता है उसी प्रकार मैं पाप को त्याग कर तथा राहु के मुख से निकले हुए चन्द्रमा के समान शरीर को त्याग कर कृतकृत्य हो नित्य परब्रह्म के लोक को प्राप्त होता हूँ ॥१॥

'तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्ति अप्रिया दुष्कृतम् ।' (कौषीतकि ब्रा. उ. अध्या. १ श्रु. ४)

वहाँ वह भक्त पुण्य और पाप को छोड़ देता है। जो उसके प्रिय कुटुम्बी होते हैं वे तो उसका पुण्य पाते हैं और जो उससे द्वेष करने वाले होते हैं उन्हें उसका पाप मिलता है ॥४॥ भवभयभञ्जन भगवद्रामानुजाचार्य ने—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा. मी. अ. १ पा. १ सू. १)
के श्रीभाष्य में और—

'मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाच्च ।' (शा. मी. अ. १ पा. ३ सू. २)
के श्रीभाष्य में तथा—

'योनिश्च हि गीयते ।' (शा. मी. अ. १ पा. ४ सू. २८)
के श्रीभाष्य में और—

'हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात्कुशाच्छन्दस्स्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ।'
(शा. मी. अ. ३ पा. ३ सू. २६)
के श्रीभाष्य में तथा—

'विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ।' (शा. मी. अ. ३ पा. ३ सू. ५७)
के श्रीभाष्य में और —

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।' (शा. मी. अ. ४ पा. १ सू. १)
के श्रीभाष्य में तथा —

'अविभागेन दृष्टत्वात् । (शा. मी. अ. ४ पा. ४ सू. ४)
के श्रीभाष्य में और—

'जगद् व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ।'
(शा. मी. अ ४ पा. ४ सू. १७)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीयमुण्डक के पहले खण्ड की तृतीय श्रुति को उद्धृत किया है ॥३॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवतेनातिवादी । आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष हि ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥४॥

अन्वयार्थ—(यः) जो परमात्मा (सर्वभूतैः) सब प्राणियों करके (विभाति) प्रकाशित होता है (एषः) यह परमात्मा (हि) निश्चय करके (प्राणः) प्राण है (विजानन्) श्रवण और मनन से उस परमात्मा को जानता हुआ (विद्वान्) परमेश्वर की उपासना करनेवाला तुम (तेन) उस परब्रह्म नारायण के द्वारा (अतिवादी) सबको अतिक्रमण करके बोलने का स्वभाववाला (भव) हो जाओ (आत्मक्रीडः) आत्मा में क्रीडा करनेवाला और (आत्मरतिः) आत्मस्वरूप में

प्रीति करनेवाला (क्रियावान्) अननुसंहित फलयुक्त सत्क्रियानुष्ठान शीलवाला हो जाओ (हि) निश्चय करके (एषः) क्रिया करके अन्तःकरण परिशुद्ध होने पर ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति के द्वारा यह उपासक (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मवेत्ताओं में (वरिष्ठः) परम श्रेष्ठ होता है ॥४॥

विशेषार्थ—जो परब्रह्म नारायण सब प्राणियों करके आश्रित या प्रकाशित होता है। यह निश्चय करके प्राण यानी परमात्मा है। क्योंकि लिखा है—

'सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति ।'

(छान्दोग्यो० अ० १ खं० ११ श्रु० ५)

निश्चय करके ये समस्त प्राणी प्रलय के समय प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं ॥५॥

'ईशानः प्राणदः प्राणः ।' (महाभार० अनुशासनप० विष्णुस० श्लो० २१)

ईशान १, प्राणद २, प्राण ३, ये नारायण के नाम हैं ॥२१॥ श्रवण और मनन से उस परब्रह्म को जानता हुआ नारायण की उपासना करनेवाला तुम उस परब्रह्म नारायण के द्वारा अपने उपास्य परब्रह्म से अतिरिक्त सबको अतिक्रमण करके बोलने के स्वभाववाला तुम हो जाओ और केवल आत्मा में क्रीडा करनेवाला बनो। उद्यानादिक में क्रीडा मत करो तथा आत्मस्वरूप में प्रीति करनेवाला हो जाओ। माला चन्दनादिक विषयों में प्रीति मत करो और आसक्ति तथा फलेच्छा को त्याग कर सत्क्रियाओं का अनुष्ठान करो। निश्चय करके क्रिया से अन्तःकरण परिशुद्ध होने पर ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति के द्वारा यह भगवद्उपासक ब्रह्मवेत्ताओं में सबसे श्रेष्ठ हो जाता है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि क्रिया किस को कहते हैं? इसका उत्तर यह है।

पञ्चमहायज्ञाद्यनुष्ठानं शक्तितः क्रिया (वृत्ति०)

शक्ति के अनुसार ऋषियज्ञ १, पितृयज्ञ २, देवयज्ञ ३, भूतयज्ञ ४, नृयज्ञ ५, इन पाँच महायज्ञादिकों के अनुष्ठान को क्रिया कहते हैं ॥ श्रीवैष्णवमताब्जमार्तण्ड भगवद्रामानुजाचार्य ने--

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक के पहले खण्ड की चौथी श्रुति के चौथे पाद को उद्धृत किया है ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् । अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(क्षीणदोषाः) सब प्रकार के रागादि दोषों से रहित (यतयः) जितेन्द्रिय यत्नशील पुरुष (यम्) जिस आत्मा को (पश्यन्ति) साक्षात्कार करते हैं (हि) निश्चय करके (ज्योतिर्मयः) प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय (शुभ्रः) परम विशुद्ध वह परमात्मा (अन्तः शरीरे) शरीर के भीतर हृदय में विराजमान है (हि) निश्चय करके (एषः) यह (आत्मा) परमात्मा (सत्येन) जीवों के हित करनेवाला सत्यभाषण से और (तपसा) वाह्याभ्यन्तर इन्द्रियों की एकाग्रतारूप तप से (सम्यग्ज्ञानेन) और यथार्थ आगम से उत्पन्न ज्ञान करके और (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से (नित्यम्) सदा (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य हैं ॥ ५ ॥

विशेषार्थ—सब प्रकार के रागादि दोषों से रहित जितेन्द्रिय यत्नशील साधक पुरुष। क्योंकि लिखा है—

'यतयो वीतरागाः ।' (गी० अ० ८ श्लो० ११)

वीतराग यति लोग ॥११॥ जिस परब्रह्म नारायण को उपासना से साक्षात्कार करते हैं। वह परब्रह्म प्रकाश स्वरूप ज्ञानमय परम विशुद्ध सब के शरीर के भीतर हृदय में निश्चय करके विराजमान रहता है। क्योंकि लिखा है—

'सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० १३)

परमात्मा सदा ही सब प्राणियों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है ॥१३॥

'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ।'

(तै० आ० ३। ११)

प्राणियों का शासक सबकी आत्मा अन्तर में प्रविष्ट है ॥११॥

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः ।' (गी० अ० १५ श्लो० १५)

मैं सबके हृदय में प्रविष्ट हूँ ॥१५॥ निश्चय करके यह परब्रह्म नारायण सत्य से और तप से तथा यथार्थ आगम से उत्पन्न ज्ञान से और ब्रह्मचर्य से सदा प्राप्त होने योग्य है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—सत्य तथा तप और ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं ? इसका उत्तर यह लिखा है—

'चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर ।
तस्यैवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ॥'

(जाबालद० उ० खं० १ श्रु० ६)

हे मुनीश्वर नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा जो जिस रूप में देखा सुना सूँघा और समझा हुआ विषय है उसको उसी रूप में वाणी द्वारा प्रकट करना सत्य है। हे विप्र इसके सिवा सत्य का और कोई प्रकार नहीं है ॥६॥

'वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः ॥'

(जाबा० द० उ० खं० २ श्रु० ३)

वेद में बताये हुए प्रकार से कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतों द्वारा जो शरीर को सुखाया जाता है उसे ही विद्वान् पुरुष तप कहते हैं ॥३॥ अथवा

'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः ।'

(महाभार० शान्तिप० अ० २५० श्लो० ४)

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है ।

'कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम् ।
ऋतौ भार्यां तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥'

(जाबालद० उ० खं० १ श्रु० १३)

मन वाणी और शरीर के द्वारा स्त्रियों के सहवास का परित्याग तथा ऋतुकाल में धर्मबुद्धि से केवल अपनी ही पत्नी से सम्बन्ध यही ब्रह्मचर्य कहा गया है ॥१३॥ श्रीत्रिदण्डधर्ता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक के पहले खण्ड की पांचवीं श्रुति के "सत्येनलभ्यः" इस खण्ड को उद्धृत किया है ॥५॥

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(सत्यम्) लोक में सत्य (एव) निश्चय करके (जयति) विजयी होता है (अनृतम्) झूठ (न) नहीं जय पाता है (विततः) अर्चिरादिरूप से विस्तीर्ण (देवयानः) देवयान नामक (पन्थाः) मार्ग (सत्येन) सत्य से प्राप्त होता है (हि) निश्चय करके (आप्तकामाः) तृष्णारहित पूर्णकाम (ऋषयः) मन्त्रद्रष्टा ऋषिलोग (येन) जिस देवयान मार्ग से (तत्) उस परब्रह्म को (आक्रमन्ति) प्राप्त कर लेते हैं (यत्र) जिस स्थान में (सत्यस्य) सत्य वदन के (परम) परम प्रयोजनभूत (निधानम्) मूर्त ब्रह्म है ।

विशेषार्थ—लोक में सत्य की ही जय होती है झूठ की जय नहीं होती है । अर्चिरादिरूप से फैला हुआ देवयान नामक मार्ग सत्य से प्राप्त होता है और सत्य के विषय में लिखा है—

'चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर ।
तस्यवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत् ॥'
(जा० द० उ० खं० १ श्रु० ६)

हे मुनीश्वर नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा जो जिस रूप में देखा सुना सूँघा और समझा हुआ विषय है उसको उसी रूप में वाणी द्वारा प्रकट करना सत्य है। हे विप्र इसके सिवा सत्य का और कोई प्रकार नहीं है ॥ ६ ॥ निश्चय करके तृष्णारहित पूर्ण काम मंत्रद्रष्टा ऋषि लोग जिस देवयान मार्ग से उस परब्रह्मनारायण को प्राप्त कर लेते हैं। जिस वैकुण्ठ स्थान में सत्यवदन के परमप्रयोजनभूत मूर्तस्वरूप परब्रह्मनारायण सर्वदा रहता है। देवयान का वर्णन लिखा है—

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासांस्तान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसंचन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः ॥ (छां० उ० अ० ४ खं० १५ श्रु० ५)

स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एते न प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते ॥ ६ ॥

भगवदुपासक के शव कर्म करे या न करे मरनेपर वह अर्चि को प्राप्त करता है। अर्चि से दिवस को और दिवस से शुक्ल पक्ष को तथा शुक्ल पक्ष से उत्तरायण के छः मासों को प्राप्त होता है। उत्तरायण के छः मासों से संवत्सर को और संवत्सर से आदित्य को तथा आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत् को तथा विद्युत् से अमानव पुरुष को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वहाँ से अमानव पुरुष इसे ब्रह्म को प्राप्त करा देता है। यह देवमार्ग ब्रह्ममार्ग है इससे जानेवाले पुरुष इस मानवमण्डल में नहीं लौटते हैं ॥ ६ ॥ और कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् में लिखा है—

स एतं देवयानं पन्थानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्यारो ह्रदो मुहूर्ता येष्टिहा विरजा नदी तिल्यो वृक्षः सायुज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुं प्रमितं विचक्षणा सन्ध्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यादायावयतौ वै च

जगत्यम्बाश्चाम्बावयवाश्चाप्सरसोऽम्बया नद्यस्तमित्थं विदा गच्छति तं ब्रह्माहाभिधावत मम यशसा विरजा वायं नदीं प्रापन्न-वानयं जिगीष्यतीति ।

(कौषीतकिब्रा० उ० अ० १ श्रु० ३)

वह भगवदुपासक इस देवयान मार्ग पर पहुँचकर पहले अग्निलोक में आता है, फिर वायुलोक में आता है। वहाँ से वह सूर्यलोक में आता है। तदनन्तर वरुणलोक में आता है। तत्पश्चात् वह इन्द्रलोक में आता है। इन्द्रलोक से प्रजापतिलोक में आता है तथा प्रजापतिलोक से परब्रह्म के लोक में आता है। इस प्रसिद्ध परब्रह्मलोक के प्रवेश पथपर पहले "आर" नाम से प्रसिद्ध एक महान् जलाशय है। आर ह्रद से आगे "येष्टिहा" नाम से प्रसिद्ध मुहुर्ताभिमानी देवता हैं। येष्टिहा से आगे "विरजा" नाम से प्रसिद्ध नदी है। विरजा नदी से आगे "तिल्य" नाम से प्रसिद्ध एक महान् वृक्ष है। इसके सायुज्य मोक्ष का स्थान है। सायुज्य स्थान में "अपराजित" नाम से प्रसिद्ध परब्रह्मनारायण का निवासभूत विशाल मन्दिर है। इन्द्र और प्रजापति उस परब्रह्म मन्दिर के द्वाररक्षक हैं। अपराजित नामक निवास स्थान में "विभु प्रमित" नाम से प्रसिद्ध सभामण्डप है और विभुप्रमित नामक सभा-मण्डप के मध्यभाग में "विचक्षणा" नाम से प्रसिद्ध एक वेदी है। उस विचक्षणा वेदी पर "अमितौजाः" नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म का एक पलंग है। मन को आनन्दित करनेवाली मानसी प्रकृति उनकी प्रिया है और उसकी छायामूर्ति "चाक्षुषी" नाम से प्रसिद्ध है और समस्त जगत् परब्रह्म की वाटिका के पुष्प तथा उनके युगल वस्त्र हैं। अपराजित स्थान की अप्सराएँ साधारण युवतियाँ "अम्बा" और "अम्बावयवा" नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके सिवा वहाँ "अम्बया" नाम से प्रसिद्ध नदियाँ बहती हैं। उस परब्रह्म के लोक को जो इस प्रकार जानता है वह उसी को प्राप्त होता है। अमानव पुरुष द्वारा लाया हुआ भगवदुपासक को देखकर परब्रह्म नारायण अपने परिचारकों और अप्सराओं से कहते हैं कि—दौड़ो, उस महाभागवत महात्मा पुरुष का मेरे यश के अनुकूल स्वागत करो, मेरे लोक में ले आनेवाली उपासना से निश्चय ही यह विरजा नदी के समीप तक आ पहुँचा है, अवश्य ही अब यह उपासक कभी जरा अवस्था को नहीं प्राप्त होगा ॥३॥ इस प्रमाण से देवयान मार्ग तथा सायुज्य स्थान और दिव्य मङ्गलमय विग्रहयुक्त परब्रह्म नारायण सिद्ध होता है ॥६॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह परब्रह्म (बृहत्) स्वरूप से और गुण से बड़ा (दिव्यम्) दिव्य (च) और (अचिन्त्यरूपम्) वाणी और मन के अगोचर कमनीयरूप है (च) और (तत्) वह परब्रह्म (सूक्ष्मात्) सूक्ष्म जीव से भी (सूक्ष्मतरम्) अनुप्रवेश समर्थ होने से परमसूक्ष्म (विभाति) प्रकाशित होता है और (तत्) वह परब्रह्म (दूरात्) दूर से भी (सुदूरे) अत्यन्त दूर परमव्योम में है (च) और (इह) इस शरीर में रहकर (अन्तिके) अति समीप में है (इह) यहाँ सूर्यमण्डल में (पश्यत्सु) देखनेवाले ब्रह्मदर्शियों के (एव) निश्चय करके (गुहायम्) हृदयरूपी गुफा में (निहितम्) स्थित है ।।७।।

विशेषार्थ—वह परब्रह्म नारायण स्वरूप से और गुण से सबसे महान् है। क्योंकि लिखा है—

'महतो महीयान् ।' (श्वे० उ० अ० ३ श्रु० २०)

बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा है ।।२०।। और दिव्य यानी अलौकिक तथा वाणी और मन के अगोचर कमनीयरूप है। क्योंकि लिखा है—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।'

(तैत्तिरीयो. व. २ अनुवा. ४)

मन के सहित वाणियाँ न पाकर जिससे लौट आती है ।। ४ ।।

'यत्तेरूपं कल्याणतमम् ।' (ईशो. श्रु. १६)

तुम्हारा जो परम मङ्गलमयरूप है ।।१६।। वह परब्रह्म नारायण सूक्ष्म जीव से भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाशित होता है। क्योंकि लिखा है—

'अणोरणीयान् ।' (श्वे. उ. अ. ३ श्रु. २०)

वह परमात्मा अणु से भी अत्यन्त अणु है ।। २० ।।

'सूक्ष्मातिसूक्ष्मम् ।' श्वे. उ. अ. ३ श्रु. १४)

परमात्मा सूक्ष्म जीव से भी अत्यन्त सूक्ष्म है ।। १४ ।। और वह परब्रह्म दूर से भी अत्यन्त दूर परमव्योम में रहता है। तथा इस शरीर में रहकर निकट से भी अत्यन्त निकट रहता है, क्योंकि लिखा है—

'तद्दूरे तद्वन्तिके ।' (ईशो. श्रु. ५)

वह परब्रह्म सबसे दूर में रहता है और अत्यन्त समीप में भी रहता है ।। ५ ।। वह परब्रह्म नारायण यहाँ सूर्यमण्डल में देखनेवाले ब्रह्मदर्शियों के हृदयरूपी गुफा में निश्चय करके स्थित रहता है। क्योंकि लिखा है—

'आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।' (श्वे. उ. अ. ३ श्रु. २)

परमात्मा इस जीव की हृदयरूप गुफा में स्थित है ।। २० ।।

'सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।' (श्वे. उ. अ. ४ श्रु. १७)

परमात्मा सर्वदा सब जनों के हृदय में स्थित रहता है ॥१७॥

'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म ।'

(छा. उ. अ. ८ खं. १ श्रु. १)

जो इस ब्रह्मपुर यानी शरीर में हृदय कमल है वह परमात्मा का घर है ॥१॥

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः ।' (गी. अ. १४ श्लो. १५))

मैं सबके हृदय में प्रविष्ट हूँ ॥१५॥ इन प्रमाणों से सबके हृदय में स्थित परब्रह्म नारायण सिद्ध होता है ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥८॥

अन्वयार्थ—(वह) परमात्मा (चक्षुषा) चर्मचक्षु से (न) नहीं और (वाचा) वाणी से (न) नहीं तथा (अन्यैः) दूसरी (देवैः) इन्द्रियों से (अपि) भी (न) नहीं तथा (तपसा) चान्द्रायणादिक तप से (वा) या (कर्मणा) अग्निहोत्रादिक कर्म से (गृह्यते) ग्रहण किया जाता है (तु) किन्तु (निष्कलम्) प्राकृत कला रहित परमात्मा को (ध्यायमानः) निरन्तर ध्यान करता हुआ (ज्ञानप्रसादेन) परब्रह्म नारायण की प्रसन्नता से (विशुद्धसत्त्वः) भगवद्भक्त का अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण होता है (ततः) तदनन्तर उपासक पुरुष (तम्) उस परब्रह्म नारायण को (पश्यते) साक्षात्कार कर लेता है ॥८॥

विशेषार्थ—कोई भी मनुष्य परब्रह्म नारायण को इन प्राकृत आँखों से नहीं देख सकता है । क्योंकि लिखा है—

'न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।' श्वे. उ. अ. ४ श्रु. २०)

इस परमात्मा को कोई भी नेत्र से नहीं देख सकता है ॥ २० ॥ और वाणी आदि अन्य इन्द्रियाँ भी उस परमात्मा को ग्रहण नहीं कर सकती हैं । और नाना प्रकार के कृच्छ्रचान्द्रायणादि तपश्चर्या से परमात्मा को नहीं पा सकता है । क्योंकि लिखा है—

'न तपोभिरुग्रैः' 'न तपसा ।' (गी. अ. ११ श्लो. ४८ (५३))

उग्र तपों से मुझ को नहीं पा सकता है ॥४८॥ तपस्या से मुझ को नहीं पा सकता है ॥५३॥ और श्रौत स्मार्त कर्मों से भी नहीं परमात्मा को पा सकता है । क्योंकि लिखा है—

'न कर्मणा ।' (कैवल्यो. श्रु. ३)

कर्म से परब्रह्म को नहीं पा सकता है ॥ ३ ॥

'न च क्रियाभिः ।' गी० अ० ११ श्लो० ४८)

क्रियाओं से नहीं भगवान् को पा सकता है ॥४८॥ परन्तु निष्कल परब्रह्म नारायण को निरन्तर ध्यान करता हुआ भगवद्भक्त का अन्तःकरण परब्रह्म की प्रसन्नता से अत्यन्त शुद्ध हो जाता है, तदनन्तर वह उपासक पुरुष दर्शन समानाकार ज्ञान से उस परब्रह्म नारायण को साक्षात्कार कर लेता है।

क्योंकि लिखा है—

'धातुः प्रसादात् ।' कठो० अ० व० २ श्रु २०)

धारक परमात्मा की प्रसन्नता से देखता है ॥२०॥ अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि "ज्ञानप्रसादेन" इस पद में ज्ञान शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण कैसे होता है। इसका उत्तर यह लिखा है—

'प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ।' (श्वे० उ० अ० ४ श्रु० १८)

उसी से यह पुराना ज्ञान फैला है ॥१८॥ इस श्रुति में कही हुई रीति से ज्ञान प्रसरण हेतु परमात्मा परब्रह्म नारायण ज्ञान शब्द से कहा जाता है। अथवा—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।' (तैतीरीयो० व० २ अनुवा० १)

सत्य ज्ञान और अनन्त परब्रह्म है ॥१॥ इन श्रुति के प्रमाण से "ज्ञान" शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है। श्रीशेषमूर्ति भगवद्रामानुजाचार्य ने

'तत्तु समन्वयात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० ४)

के श्रीभाष्य में और—

'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।' (शा० मी० अ० १ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में तथा—

'तदव्यक्तमाह हि ।' (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० २२)

के श्रीभाष्य में और—

'अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।'(शा०मी०अ०३ पा० २ सू०२३)

के श्रीभाष्य में तथा—

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।' (शा० मी० अ० ४१ सू० १)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की आठवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥८॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश । प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥९॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिस आत्मा में (प्राणः) प्राणवायु (पञ्चधा) प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान इन पाँच प्रकार से (संविवेश) भलीभाँति प्रविष्ट हुआ है और (प्रजानाम्) समस्त प्राणियों का (सर्वम्) सब (चित्तम्) चित्त-मन (प्राणैः) अन्य इन्द्रियों के (ओतम्) जिसमें व्याप्त है (यस्मिन्) जिस परब्रह्म नारायण के (विशुद्धे) प्रसन्न होने पर (एषः) यह (आत्मा) जीवात्मा (विभवति) अपहत पाप्मत्वादिगुणाष्टक विशिष्ट रूप से आविर्भाव होता है (एषः) यह (अणुः) दुर्विज्ञेय अणु (आत्मा) जीवात्मा (चेतसा) विशुद्ध मन से (वेदितव्यः) जानने योग्य है ॥९॥

विशेषार्थ—जिस शरीर में प्राण अपान व्यान समान और उदान इन पाँच भेदोंवाला प्राणवायु भलीभाँति प्रवेश किया है और श्रोत्र चक्षु घ्राण रसना त्वचा आदिक इन्द्रियों के सहित सब प्राणियों का चित्त मन आदि अन्तःकरण जिसमें व्याप्त हो रहा है। जिस परब्रह्म नारायण के प्रसन्न होनेपर। क्योंकि लिखा है—

'धातुः प्रसादात् ।' कठो० अ० १ व० २ श्रु० २०)

धारक नारायण की प्रसन्नता से ॥२०॥

'ज्ञानप्रसादेन ।' (मुण्डको० मुं० ३ खं० १ श्रु० ८)

परब्रह्म नारायण की प्रसन्नता से ॥ ८ ॥ यह जीवात्मा अपहतपाप्मत्वादि गुणाष्टकविशिष्टरूप से प्रकट होता है। यह दुर्विज्ञेय अणु आत्मा विशुद्ध मन से जानने योग्य है। क्योंकि लिखा है—

'मनसा य एनमेवं विदुः (श्वे० उ० अ० ४ श्रु० २०)

जो लोग इस आत्मा को निर्मल मन से इस प्रकार जान लेते हैं ॥ २० ॥ यहाँ पर अणु जीवात्मा प्रतिपादन किया गया है। क्योंकि यह लिखा है—

'आराग्रमात्रो ह्यवरोऽपिदृष्टः ।' (श्वे० उ० अ० ५ श्रु० ८)

'वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च
भागो जीवः स विज्ञेयः ॥ ९ ॥,

आरे की नोक के समान अणु आकारवाली जीवात्मा भी निश्चय करके देखी गयी है ॥ ८ ॥ बाल की नोक के सौवें भाग के पुनः सौ भागों में कल्पना किये जाने पर जो एक भाग होता है उसी के बराबर जीवात्मा का स्वरूप समझना चाहिये ॥ ९ ॥ जीवजीवातु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ।' (शा० मी० अ० २ पा० ३ सू० २३)

के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की नवमी श्रुति के पूर्वार्ध को उद्धृत किया है ॥ ९ ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयति तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥१०॥

॥ इति तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः ॥

अन्वयार्थ—(विशुद्धसत्त्वः) विशेष शुद्ध अन्तःकरणवाला आत्मवेत्ता भागवत (यम्—यम्) जिस जिस (लोकम्) लोक को (मनसा) मन से (संविभाति) सङ्कल्प करता है (च) और (यान्) जिन (कामान्) स्त्री आदि भोगों को (कामयते) चाहता है (तम् तम्) उन उन (लोकम्) लोकों को (च) और (तान्) उन इच्छित (कामान्) स्त्री आदिक भोगों को (जयति) प्राप्त कर लेता है (तस्मात्) इसलिये (भूतिकामः) ऐश्वर्य आदि की इच्छा करने वाला पुरुष (हि) निश्चय करके (आत्मज्ञम्) आत्मज्ञानी महात्मा को (अर्चयेत्) साष्टाङ्गप्रणिपात पादप्रक्षालन शुश्रूषा आदि से पूजा करे॥१०॥

विशेषार्थ—विशेष शुद्ध अन्तःकरण वाला आत्मज्ञानी भागवत जिस जिस देवादिलोक को मन से संकल्प करता है और जिन जिन स्त्रीपुत्र आदिक भोगों को चाहता है। उन उन देवादिलोकों को और उन उन अपने इच्छित स्त्री-पुत्र आदिक भोगों को प्राप्त कर लेता है। इसलिये ऐश्वर्य आदि की इच्छा करने वाला पुरुष निश्चय करके आत्मवेत्ता भागवत महात्मा को साष्टाङ्गप्रणिपात तथा पादप्रक्षालन और सेवा आदि पूर्ण आदर सत्कार करे। क्योंकि वह अपने लिये और दूसरों के लिये भी जो जो कामना करता है वह पूर्ण हो जाती है। क्योंकि लिखा है—

'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।' (गी० अ० ७ श्लो० १८)

ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है ॥१८॥

'सहस्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो द्विजाः ।
सकृद्भागवतार्चायाः कलान्नार्हति षोडशीम् ॥'

(पराशरीयधर्मशा० उत्तरखं० अध्या० १० श्लो० ४)

मत्प्रणामाच्छतगुणं मद्भक्तस्य च वन्दनम् ।
मन्निवेद्याच्छतगुणं मद्भक्तस्य निवेदनम् ॥ ६ ॥
यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात् ।
तथा न तुष्यति श्रीशो विधिवत्स्वार्चनादपि ॥ ७ ॥

तेषां पादोदकं श्रेष्ठं तीर्थभूतं न संशयः ।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानि भुवने त्रये ॥२५॥
वैष्णवाङ्घ्रिजलात्पुण्यात्कोटिभागेन नो समः ।
सकृत्सम्पूज्यते पुण्यो महाभागवतो गृहे ॥२६॥
आकल्पकोटिपितरः परितृप्ता न संशयः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्णोराधनं फलम् ॥२७॥
सकृद्वैष्णवपूजायां लभते नात्र संशयः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैष्णवानर्चयेद् बुधः ॥२८॥

हे द्विजगण भगवान् विष्णु के हजार वर्ष की पूजा एक वार हुई भागवत पूजा की सोलहवीं कला को नहीं पा सकती है ॥४॥ मुझको प्रणाम करने से सौगुना फल मेरे भक्त को प्रणाम करने से होता है और मुझको निवेदन करने से सौगुणा फल मेरे भक्त को निवेदन करने से होता है ॥६॥ भगवान् जैसे महाभगवतों की पूजा करने से संतुष्ट होते हैं वैसे विधि पूर्वक अपनी पूजा करने से नहीं संतुष्ट होते हैं ॥ ७॥ भागवतों के चरणोदक श्रेष्ठ तीर्थभूत हैं इसमें संदेह नही है कि तीनों भुवन में साढ़े तीन करोड़ जो तीर्थ हैं ॥ २५ ॥ वह वैष्णवों के पवित्र चरणोदक के करोड़ों भाग के तुल्य नहीं हो सकता है यदि एक वार महाभागवत घर पर पूजा जाता है ॥ २६ ॥ तो करोड़ों कल्प पितर परितृप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं है जो साठ हजार वर्ष विष्णु भगवान् के आराधन फल होता है ॥ २७ ॥ वह एक बार भागवताराधन करने से फल होता है इसमें, संदेह नहीं है । इससे सब प्रयत्न करके बुधजन भागवतों को पूजें ॥ २८ ॥ यहाँ पर "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक का प्रथमखण्ड समाप्त हो गया ॥ १० ॥

॥ अथ द्वितीयखण्डः ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्। उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(यत्र जिस परब्रह्म में (विश्वम्) समस्त स्थावर जङ्गम जगत् (निहितम्) स्थित या समर्पित है और (शुभ्रम्) जो स्वयं निर्मल (भाति) स्वप्रकाश शुद्धरूप से प्रकाशित होता है (एतत्) इस पूर्वोक्त लक्षणवाला (धाम) समस्त कामनाओं के आस्पदतया धामशब्दित (परमम्) सबसे उत्कृष्ट (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण को (सः) वह पूर्व प्रकृत आत्मज्ञानी भागवत (वेद) जानता

है (हि) निश्चय करके (ये) जो प्रज्ञाशाली (अकामाः) कामनारहित मुमुक्षु पुरुष (पुरुषम्) आत्मज्ञानी महात्मा को (उपासते) परमात्मा के समान उपासना करते हैं (ते) वे (धीराः) बुद्धिमान् लोग (एतत्) इस (शुक्रम्) चरम धातु को (अतिवर्तन्ति) अतिक्रमण कर जाते हैं अर्थात् जन्मशून्य हो जाते हैं ॥१॥

विशेषार्थ—यहाँ पर आत्मज्ञानी महात्मा की पूजा से मोक्ष प्राप्त होता है यह श्रुति प्रतिपादन करती है कि वह आत्मज्ञानी महात्मा समस्त कामनाओं के उत्कृष्ट आश्रयभूत उस परब्रह्म नारायण को जानता है। जिस परब्रह्म में यह समस्त स्थावर जङ्गम विश्व समर्पित है और जो स्वयं शुद्धरूप से प्रकाशित हो रहा है। उस इस प्रकार के आत्मवेत्ता महात्मा को भी जो लोग निष्काम भाव से मुमुक्षु होकर परमात्मा के समान सेवारूप उपासना करते हैं। वे लोग शरीर धारण के कारणरूप वीर्य को लाँघ जाते हैं अर्थात् फिर योनि में प्रवेश नहीं करते हैं। जन्ममरणरहित हो जाते हैं ॥१॥

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र। पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो पुरुष (कामान्) देवत्व मनुष्यत्व आदि काम्य भोगों को (मन्यमानः) भोग्यतया मान करता हुआ (कामयते) उन विषयों की चाहना करता है (सः) वह कामकामी पुरुष (कामभिः) देवत्व मनुष्यत्व आदि कामनाओं के कारण (तत्र) उन (तत्र) उन स्थानों में (जायते) देव मनुष्य आदिक रूप से उत्पन्न होता है (तु) किंतु (पर्याप्तकामस्य) पर्याप्त यानी परिपूर्ण परब्रह्म में कामनावाले (कृतात्मनः) विदितात्मतत्त्व वाले पुरुष की (सर्वे) समस्त (कामाः) कामानाएं (इह) इस जन्म में (एव) ही (प्रविलीयन्ति) सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। अर्थात् जन्मान्तर प्रसक्ति नहीं होती है ॥२॥

विशेषार्थ—जो पुरुष देवत्व मनुष्यत्व आदि काम्य भोगों को भोग्यतया आदर करता हुआ उन विषयों की चाहना करता है। वह कामकामी पुरुष देवत्व मनुष्यत्व आदि कामनाओं के कारण मरने के बाद उन उन स्थानों में देव मनुष्य आदि रूप से उत्पन्न होता है। परन्तु पर्याप्त यानी परिपूर्ण परब्रह्म नारायण में कामना वाले विदितात्म तत्त्ववाले महात्मा की सब आशा इस जन्म में ही सर्वथा लुप्त हो जाती है। इससे जन्मान्तर प्रसक्ति नहीं होती है ॥२॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेम। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनं स्वाम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(अयम्) यह (आत्मा) परब्रह्म परमात्मा (प्रवचनेन) प्रवचन साधन मनन से (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है तथा (मेधया) निदिध्यसन से (न) नहीं प्राप्त होने योग्य है और (बहुना) बहुत से (श्रुतेन) सुनने से (न) नहीं प्राप्त होने योग्य है (एषः) यह परमात्मा (यम्) जिस उपासक को (वृणुते) स्वीकार कर लेता है (तेन) उस उपासक करके (एव) निश्चय करके (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (एषः) यह (आत्मा) परमात्मा (तस्य) उस उपासक के लिये (स्वाम्) अपने (तनूम्) स्वरूप को (विवृणुते) प्रकाशित करता है ॥३॥

विशेषार्थ—यह परब्रह्म नारायण श्रवण मनन निदिध्यासन से केवल नहीं मिल सकता है। किंतु वह नारायण तो उसी को प्राप्त होता है कि जिसको वह परमात्मा स्वयं स्वीकार कर लेता है। यह परब्रह्म नारायण भगवदुपासक के अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है। परब्रह्म नारायण प्रियतम का ही स्वीकार करता है और जिस उपासक के परब्रह्मनारायण निरतिशय प्रिय है वही नारायण के प्रियतम हैं। क्योंकि लिखा है—

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।'

(गी० अ० ७ श्लो० १७)

मैं ज्ञानी के अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी भक्त भी मेरा अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥ भगवान् प्रियतम के लिये स्वयं यत्न करते हैं—

'तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥'

(गी० अ० श्लो० १०)

उन निरन्तर मुझमें लगे हुए भजन करने वाले भक्तों को मैं प्रीतिपूर्वक वह बुद्धियोग देता हूँ कि जिससे वे मुझको प्राप्त हो जाते हैं ॥१०॥ प्रस्तुत मुण्डक की श्रुति में परगत स्वीकार के द्वारा "मार्जारकिशोर" न्याय प्रतिपादन किया गया है। (कठोपनि० अध्या० १ वल्ली २ श्रु० २६) में भी यह श्रुति है। वेदार्थसंग्रह-कर्ता भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ।'(शा०मी० अ० १ पा० २ सू० २३)

अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्।(शा०मी०अ० ३ पा० २ सू० २३)

'उपपत्तेश्च ।' (शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३४)

इन चार सूत्रों के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्' के तृतीय मुण्डक के दूसरे खण्ड क तृतीय श्रुति को उद्धृत किया है ।।३।।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(अयम्) यह (आत्मा) परमात्मा (बलहीनेन) अवसन्न मन से या उपासनारूप बल से रहित पुरुष से (न) नहीं लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (च) और (प्रमादात्) अनवहित चित्तता से (वा) अथवा (अलिङ्गात्) त्रिदण्ड काषायवस्त्र कमण्डलु शिखा यज्ञोपवीत जल पवित्रादि लक्षण रहित (तपसः) संन्यास से (अपि) भी (न) नहीं प्राप्त होने योग्य है (तु) किन्तु (यः) जो (विद्वान्) विवेकी पुरुष (एतैः) इन उपासनारूप बल तथा अप्रमाद और सलिङ्गसंन्यासादि (उपायैः) उपायों करके (यतते) परब्रह्म की प्राप्त के लिये यत्न करता है (तस्य) उस उपासक के (एषः) यह (आत्मा) जीवात्मा (धाम) प्राप्यस्थान (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण को (विशते) प्राप्त कर लेता है ।। ४ ।।

विशेषार्थ—यह परब्रह्म नारायण अवसन्न मन से या उपासनारूप बल से रहित पुरुष से नहीं प्राप्त होने योग्य है और स्त्री, पुत्र, धन आदिक विषयों की आसक्ति के कारण होनेवाली अनवहितचित्तता से भी परब्रह्म नहीं प्राप्त होने योग्य है और वैष्णव भागवत प्रपन्न तथा संन्यासाश्रमादि चिह्न रहित ज्ञान से भी परब्रह्म नारायण नहीं प्राप्त होने योग्य है । वैष्णवका लिङ्ग लिखा है—

'शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं दास्यलक्षणम् ।
तन्नामकरणं चैव वैष्णवं तदिहोच्यते ।।'

(वृद्धहारीतस्मृ० अध्या० १ श्लो० २४)

शंख चक्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना तथा भगवन्नामपूर्वक दासान्त नाम करना इसे धर्मशास्त्र में वैष्णव का लक्षण कहा जाता है ।।२४।।

**ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः ।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ।।**

(पाद्मपु० उत्तर० खं० ६ अध्या० २२४ श्लो० ७०)

जिन गले में तुलसी के काठ की और कमल के बीज की माला लटकी रहती है तथा जिनके बाहुमूल शंख और चक्र से चिह्नित हैं और जिनके

ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र विराजमान रहता है वे वैष्णव हैं। वे शीघ्र ही भुवन को पवित्र कर देते हैं ॥७०॥ तथा भागवत का लक्षण लिखा है—

'अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः।
आकारत्रयसंपन्नास्ते वै भागवताः स्मृताः ॥'

(पराशरीयधर्मशा० उत्तरखं० अध्या० १० श्लो० ६)

स्वस्वरूप, परस्वरूप, पुरुषार्थस्वरूप, उपायस्वरूप और विरोधिस्वरूप इन पाँच अर्थों के तत्त्वों को जो जानने वाले हों और ताप, पुंड्र, नाम, मंत्र और याग इन पाँच संस्कारों से जो संस्कृत हों तथा अनन्याहत्व, अनन्यभोग्यत्व तथा अनन्य-शरणत्व रूप तीन अकारों से जो संपन्न हों, उनको निश्चय करके भागवत कहे हैं ॥६॥ इसी तरह प्रपन्न का लक्षण है—

'प्रपन्नो जायते कोपि ह्येकान्ती चक्रलाञ्छितः।'

(बृहद्ब्रह्मसंहि० पा० १ अ० १३ श्लो० २३)

निश्चय करके कोई एकान्ती चक्र से लाञ्छित प्रपन्न होता है ॥ २३ ॥ तथा भक्त का लक्षण लिखा है—

'भक्तानां लक्षणं मातः शृणु गुह्यं समाहिता।'
शङ्खचक्राङ्किता नित्यं भुजयुग्मे वसुन्धरे ॥'

(स्कन्दपु० वैष्णवखं० वेङ्कटाचलमाहा० १ अध्या० ६ श्लो० ५१)

'एवं लाञ्छनयुक्ता ये भक्तास्ते वैष्णवाः स्मृताः।
तैरेव लभ्यं तद्ब्रह्म सदाचारसमन्वितैः ॥६६॥'

हे माँ वसुन्धरे! भक्तों के गुह्य लक्षण समाहित होकर तुम सुनो। जिनके दोनों भुजमूल शंखचक्र से सर्वदा अंकित हैं उनको भक्त कहते हैं ॥५१॥ इस प्रकार के जो तप्तशंखचक्र से अङ्कित बाहुमूल वाले वैष्णव हैं वे ही भक्त कहे गये हैं। सदाचार से युक्त उन चक्राङ्कितों से ही वह परब्रह्म प्राप्त होने योग्य है ॥६६॥

संन्यासाश्रम का लिङ्गवर्णन है—

त्रिदण्डमुपवीतं च वासः कौपीनवेष्टनम्।
शिक्यं पवित्रमित्येतद्बिभृयाद्यावदायुषम् ॥७॥
पञ्चैतास्तु यतेर्मात्रास्ता मात्रा ब्राह्मणे श्रुताः।
न त्यजेद्यावदुत्क्रान्तिरन्तेऽपि निखनेत्सह ॥८॥
विष्णुलिङ्गं द्विधा प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तमेव च।
तयोरेकमपि त्यक्त्वा पतत्येव न संशयः ॥६॥

त्रिदण्डं वैष्णवं लिङ्गं विप्राणां मुक्तिसाधनम् ।
निर्वाणं सर्वधर्माणामिति वेदानुशासनम् ॥१०॥

(शाट्यायनीयोप० श्रु० ७-१०)

संन्यासी जबतक जियें तबतक त्रिदण्ड और यज्ञोपवीत तथा कौपीनवेष्टन काषायवस्त्र और शिक्य तथा जलपवित्रा इन सबों को धारण करे ।। ७ ।। त्रिदण्ड यज्ञोपवीत, काषायवस्त्र, शिक्य और पवित्रा ये पाँच संन्यासी की मात्राएँ हैं । ये पाँच पूर्वोक्त मात्रायें ब्राह्मण के विषय में श्रुति प्रतिपादन की है । मरणपर्यन्त इन पाँच चिन्हों को संन्यासी परित्याग न करे मरने पर भी त्रिदण्ड आदिक पाँचो को शरीर के साथ ही भूमि में गाड़ दे ।। ८ ।। व्यक्त और अव्यक्त के भेद से विष्णुलिङ्ग दो प्रकार का कहा गया है । उन दोनों लिङ्गों में से एक को भी त्यागकर यति पतित हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।।९।। सब धर्मों के निर्वाण और ब्राह्मणों के मोक्ष का साधन वैष्णव चिह्न त्रिदण्ड है, इस प्रकार वेद का अनुशासन है ।। १० ।।

सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।
एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं ग्राममाविशेत् ॥

(नारदपरिव्राजकोप० उपदे० ३ श्रु० ५५)

सब जीवों का हित करे, शान्त रहे, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करे । एकाराम हो सबको त्यागकर भिक्षा के लिये गाँव में प्रवेश करे ।।५५।।

'त्रिदण्डमुपवीतं च शिखाकाषायमम्बरम् ।
कमण्डलुश्च भिन्नं हि यतीनां तु विधीयते ॥'

(पराशरीयधर्मशा० उत्तर खं० अध्या ५ श्लो० १३)

त्रिदण्ड तथा यज्ञोपवीत और शिखा तथा काषाय वस्त्र और कमण्डलु ये सब संन्यासियों के लिये सर्वदा विधान किये गये हैं ।।१३।।

यतिस्तर्जन्या शिरोललाटहृदयेषु प्रणवेनैव धारयेत् ।
परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत् ॥

(वासुदेवोपनि०)

संन्यासी तर्जनी अंगुली से शिर तथा ललाट और हृदय में प्रणवमंत्र करके ऊर्ध्व पुण्ड्र को धारण करे और परमहंस संन्यासी ललाट पर प्रणव मंत्र से एक ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करें ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो न्यासी भिक्षुको येन पूजितः ।
विष्णुः प्रपूजितस्तेन विष्णुलोके महीयते ॥

(ऊर्ध्वपुण्ड्रोप० खं० ५ श्रु० १३)

विष्णुचन्दनोर्ध्वपुण्ड्रं भाले स्वस्य च यो लिखेत्
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो विद्वान् त्रिदण्डी मोक्षमश्नुते ॥१४॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले संन्यासी की जो पूजा करता है वह विष्णु भगवान् की पूजा करता है और वह पूजक विष्णुलोक में पूजित होताहै ॥१३॥ जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण त्रिदण्डी संन्यासी अपने ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करता है वह संन्यासी मोक्ष प्राप्त करता है ॥१४॥ किन्तु जो विवेकी पुरुष इन उपासना रूप बल तथा अप्रमाद और सलिङ्ग संन्यासादि उपायों करके परब्रह्म की प्राप्ति के लिये यत्न करता है उस उपासक की यह जीवात्मा प्राप्य स्थान परब्रह्म नारायण को प्राप्त कर लेती है। इस श्रुति में आश्रम के लिङ्ग भगवत्प्राप्ति के लिये परमावश्यक प्रतिपादन किया गया है। श्रुतिसदर्थकार भगवद्रामानुजाचार्य ने

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

के श्रीभाष्य में 'मुण्डकोपनिषद्' के तृतीय मुण्डक के दूसरे खण्ड की चौथी श्रुति के पहले पाद को उद्धृत किया है॥ ४॥

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥५॥

अन्वयार्थ—(ऋषयः) तत्त्वदर्शी ऋषि लोग (एनम्) इस परमात्मा को (संप्राप्य) जीवदशा में ही अनुभव करके (ज्ञानतृप्ताः) उस अनुभव के ज्ञान से संतुष्ट (कृतात्मानः) लब्धात्मसत्तावाले (वीतरागाः) विषय की आशा रहित (प्रशान्ताः) निगृहीतेन्द्रिय परम शान्त हो जाते हैं (ते) वे विवेकी उपासक (सर्वतः) सर्वदेशावच्छेद से भीतर और बाहर (सर्वगम्) सर्ववस्तुगत परमात्मा को प्राप्य देशविशेष विशिष्ट पाकर (युक्तात्मानः) आविर्भूतवाह्यरूपीविशिष्ट आत्मा वाले (धीराः) धीर महात्मा (एव) निश्चय करके (सर्वम्) सर्वपदवाच्य परब्रह्म नारायण को (आविशन्ति) अनुभव करते हैं ॥५॥

अन्वयार्थ—तत्त्वदर्शी ऋषि लोग इस परब्रह्म नारायण को जीवदशा में अनुभव करके उस अनुभव के ज्ञान से संतुष्ट लब्ध आत्मसत्ता वाले विषय की आशा रहित निगृहीतेन्द्रिय परमशान्त हो जाते हैं। और वे परमशान्त विवेकी उपासक सर्वदेशावच्छेद से भीतर तथा बाहर सर्ववस्तुगत परब्रह्मनारायण को देशविशेषविशिष्ट पाकर आविर्भूत बाह्यरूपविशिष्ट आत्मावाले धीर महात्मालोग परब्रह्मनारायण को निश्चय करके अनुभव करते हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि—

"सर्व" शब्द का अर्थ परब्रह्मनारायण कैसे होता है। इसका उत्तर यह लिखा है—

सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।' (गी० अ० ११ श्लो० ४०)

आप सब व्याप्त कर रहे हैं ।।४० इस भगवद्गीता के प्रमाण से सर्व शब्द का अर्थ परब्रह्म नारायण होता है ।।५।।

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ।।६।।

अन्वयार्थ—(वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः) जिन्होंने वेदान्त के श्रवणजन्यज्ञान से परमात्मा को भलीभाँति जान लिया है तथा (संन्यासयोगात्) काम्यकर्म के त्यागरूप योग से (शुद्धसत्त्वाः) जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है (ते) वे जितेन्द्रिय (ब्रह्मलोके) ब्रह्मस्वरूपलोक में रहते हुए (यतयः) प्रयत्नशील या संन्यासी लोग (तु) तो (परान्तकाले) चरमदेहावसान समय में (परामृतात्) सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म नारायण की प्रसन्नता से (सर्वे) समस्त संसार के बन्धन (परिमुच्यन्ति) सम्यक् प्रकार से सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं ।।६।।

विशेषार्थ—वेदों का अन्त अथवा वेदों का चरम सिद्धान्त रूप होने से उपनिषदों को वेदान्त कहते हैं । जो लोग वेदान्त के श्रवणजन्य सम्यक् ज्ञान से परब्रह्म नारायण को भलीभाँति जान लिये हैं। वेदान्त के विषय में मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है—

'वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ वर्तन्ते कुत्र ते वद ।'

(मुक्तिको० अ० या० १ श्रु० ८)

श्रीहनूमान्जी ने पूछा कि हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीराम वेदान्त किसे कहते हैं और वेदान्त की स्थिति कहाँ पर है यह मुझसे कहिये ।।८।।

'हनूमञ्छृणु वक्ष्यामि वेदान्तस्थितिमञ्जसा ।'

(मुक्ति० उ० अ० १ श्रु० ८)

निवासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः ।
तिलेषु तैलवद्वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः ।।९।।

श्रीरामजी ने कहा—हे हनूमन् तुम सुनो मैं तुम्हें अविलम्ब वेदान्त की स्थिति बतलाऊँगा ।।८।। मुझ विष्णु के निःश्वास से सुविस्तृत चारो वेद उत्पन्न हुए । तिलों में तेल की भाँति वेदों में वेदान्त सुप्रतिष्ठित है ।।९।।

'राम वेदाः कतिविधास्तेषां शाखाश्च राघव ।
तासूपनिषदः काः स्युः कृपया वद तत्वतः ॥१०॥

श्रीहनुमान् ने पूछा कि हे राघव श्रीराम वेद कितने प्रकार के हैं और वेद की शाखाएँ कितनी हैं तथा उनमें उपनिषद् कौन से हैं ? यह कृपा करके यथार्थ रूप से कहिये ॥१०॥

'ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः ।
तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा ॥११॥
ऋग्यवेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः ।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज ॥१२॥
सहस्रसङ्ख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप ।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे ॥१३॥
एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता ।
तासामेकामृचं यश्च पठते भक्तितो मयि ॥१४॥
स मत्सायुज्यपदवीं प्राप्नोति मुनिदुर्लभाम् ॥१५॥

श्रीरामजी ने कहा कि—वेद चार कहे गये हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । उन चार वेदों की अनेक शाखाएँ हैं । उन शाखाओं की उपनिषद् भी अनेक हैं ॥११॥ ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ हैं । हे पवनतनय यजुर्वेद की एक सौ नौ शाखाएँ हैं ॥१२॥ और हे शत्रुतापन सामवेद से हजार शाखाएँ निकली हैं । हे कपीश्वर अथर्ववेद की शाखाओं के पचास भेद हैं ॥१३॥ एक एक शाखा की एक एक उपनिषद् मानी गयी है । जो व्यक्ति उन उपनिषदों के एक भी मंत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह व्यक्ति मुनियों के लिये भी दुर्लभ मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥१४॥

'विदेहमुक्ताविच्छा चेदष्टोत्तरशतं पठ ॥२९॥'

शरीर छोड़ने के बाद मुक्त होना चाहते हो तो एक सौ आठ उपनिषदों का पाठ करो ॥२९॥

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥३०॥
ब्रह्मकैवल्यजाबालश्वेताश्वोहंस आरुणिः ।
गर्भो नारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिरः शिखा ॥३१॥

मैत्रायणी कौषीतकी बृहज्जबालतापनी ।
कालाग्निरुद्रमैत्रेयी सुबालक्षुरिमंत्रिका ॥३२॥
सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम् ।
तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥३३॥
परिव्राट् त्रिशिखी सीता चूडा निर्वाणमण्डलम् ।
दक्षिणा शरभं स्कन्दं महानारायणाह्वयम् ॥३४॥
रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च मुद्गलम् ।
शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षु महच्छारीरकं शिखा ॥३५॥
तुरीयातीतसंन्यासपरिव्राजाक्षमालिका ।
अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका ॥३६॥
सावित्र्यात्मा पाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम् ।
त्रिपुरातपनं देवी त्रिपुरा कठभावना ।
हृदयं कुण्डली भस्म रुद्राक्षगणदर्शकम् ॥३७॥
तारसारमहावाक्यपञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम् ।
गोपालतपनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम् ॥३८॥
शाट्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम् ।
कलि जाबालि सौभाग्य रहस्य ऋचमुक्तिका ॥३९॥
एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम् ।
ज्ञानवैराग्यदंपुंसां वासनात्रयनाशनम् ॥४०॥

ईशोपनिषद् १, केनोपनिषद् २, कठोपनिषद् ३, प्रश्नोपनिषद् ४, मुण्डकोपनिषद् ५, माण्डूक्योपनिषद् ६, तैत्तिरीयोपनिषद् ७, ऐतरेयोपनिषद् ८, छान्दोग्योपनिषद् ९, बृहदारण्यकोपनिषद् १०, ब्रह्मोपनिषद् ११, कैवल्योपनिषद् १२, जाबालोपपनिषद् १३, श्वेताश्वतरोपनिषद् १४, हंसोपनिषद् १५, आरुणिकोपनिषद् १६, गर्भोपनिषद् १७, नारायणोपनिषद् १८, परमहंसोपनिषद् १९, अमृतबिन्दूपनिषद् २०, अमृतनादोपनिषद् २१, अथर्वशिर-उपनिषद् २२, अथर्वशिखोपनिषद् २३, मैत्रायण्युपनिषद् २४, कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् २५, बृहज्जाबालोपनिषद् २६, नृसिंहतापिन्युपनिषद् २७, कालाग्निरुद्रोपनिषद् २८, मैत्रेय्युपनिषद् २९, सुबालोपनिषद् ३०, क्षुरिकोपनिषद् ३१, मंत्रिकोपनिषद् ३२, सर्वसारोपनिषद् ३३, निरालम्बोपनिषद् ३४, शुकरहस्योपनिषद् ३५, वज्रसूचिकोपनिषद् ३६, तेजोबिन्दूपनिषद्

३७, नादविन्दूपनिषद् ३८, ध्यानबिन्दूपनिषद् ३६, ब्रह्मविद्यपनिषद् ४०, योगतत्त्वोपनिषद् ४१, आत्मप्रबोधोपनिषद् ४२, नारदपरिव्राजकोपनिषद् ४३, त्रिशिखब्राह्मनोपनिषद् ४४, सीतोपनिषद् ४५, योगचूडामण्युपनिषद् ४६, निर्वाणोपनिषद् ४७, मण्डलब्राह्मोपनिषद् ४८, दक्षिणामूर्त्युपनिषद् ४६, शरभोपनिषद् ५०, स्कन्दोपनिषद् ५१, त्रिपाद्विभूतिमहानारयणोपनिषद् ५२, अद्वयतारकोपनिषद् ५३, रामरहस्योपनिषद् ५४, रामतापिन्युपनिषद् ५५, वासुदेवोपनिषद् ५६, मुद्गलोपनिषद् ५७, शाण्डिल्योपनिषद् ५८, पैङ्गलोपनिषद् ५६, भिक्षुकोपनिषद् ६०, महोपनिषद् ६१, शारीरकोपनिषद् ६२, योगशिखोपनिषद् ६३, तुरियातीतोपनिषद् ६४, सन्यासोपनिषद् ६५, परमहंसपरिव्राजकोपनिषद् ६६, अक्षमालोपनिषद् ६७, अव्यक्तोपनिषद् ६८, एकाक्षरोपनिषद् ६६, अन्नपूर्णोपनिषद् ७०, सूर्योपनिषद् ७१, अक्ष्युपनिषद् ७२, अध्यात्मोपनिषद् ७३, कुण्डिकोपनिषद् ७४, साविन्त्र्युपनिषद् ७५, आत्मोपनिषद् ७६, पाशुपतोपनिषद् ७७, परब्रह्मोपनिषद् ७८, अवधूतोपनिषद् ७६, त्रिपुरातापिन्युपनिषद् ८०, देव्योक्तोपनिषद् ८१, त्रिपुरोपनिषद् ८२, कटरूद्रोपनिषद् ८३, भावनोपनिषद् ८४, रूद्रहृदयोपनिषद् ८५, योगकुण्डल्युपनिषद् ८६, भस्मजाबालोपनिषद् ८७, रुद्राक्षजाबालोपनिषद् ८८, गणपत्युपनिषद् ८६, जाबालदर्शनोपनिषद् ६०, तारसारोपनिषद् ६१, महावाक्योपनिषद् ६२, पञ्चब्रह्मोपनिषद् ६३, प्राणाग्निहोत्रोपनिषद् ६४, गोपालतापिन्युपनिषद् ६५, कृष्णोपनिषद् ६६, याज्ञवल्क्योपनिषद् ६७, वराहोपनिषद् ६८, शाट्यायनीयोपनिषद् ६६, हयग्रीवोपनिषद् १००, दत्तात्रेयोपनिषद् १०१, गरुडोपनिषद् १०२, कलिसंतरणोपनिषद् १०३, जाबाल्युपनिषद् १०४, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् १०५, सरस्वतीरहस्योपनिषद् १०६, बहवृचोपनिषद् १०७, मुक्तिकोपनिषद् १०८,

॥३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥३६॥३७॥३८॥३६॥ ॥४०॥ ये एक सौ आठ उपनिषदें मनुष्य के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों तापों का नाश करती हैं और इनके पाठ तथा स्वाध्याय से ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है तथा लोकवासना शास्त्रवासना एवं देहवासनारूप त्रिविध वासनाओं का नाश होता है ॥४॥ एक सौ आठ उपनिषदों से अतिरिक्त मुद्रित अधोलिखित उपनिषदें प्राप्त होती हैं। अद्वैतोपनिषद् १, अद्वैतभावनोपनिषद् २, अनुभवशारोपनिषद् ३, अमनस्कोपनिषद् ४, अरूणोपनिषद् ५, अल्लोपनिषद् ६, आचमनोपनिषद् ७, आत्मपूजोपनिषद् ८, आथर्वण द्वितीयोपनिषद् ६, आयुर्वेदोपनिषद् १०, आरूणेय्युपनिषद् ११, आर्षेयोपनिषद् १२, आश्रमोपनिषद् १३, इतिहासोपनिषद् १४, ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषद् १५, कण्ठोपनिषद् १६, कठश्रुत्यपनिषद् १७, कात्यायनोपनिषद् १८, कामराजकीलितोद्धारोपनिषद् १६, कालिकोपनिषद् २०, कालीमेधादीक्षितोपनिषद् २१, कौलोपनिषद् २२, गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् २३, गणेशपूर्वतापि-

न्युपनिषद् २४, गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २५, गान्धर्वोपनिषद् २६, गायत्र्युपनिषद् २७, गायत्रीरहस्योपनिषद् २८, गुह्यकाल्युपनिषद् २९, गुह्यषोढान्यासोपनिषद् ३०, गोपीचन्दनोपनिषद् ३१, चतुर्वेदोपनिषद् ३२, चाक्षुषोप० ३३, चित्युपनिषद् ३४, छागलेयोपनिषद् ३५, जाबाल्युपनिषद् ३६, तारोप० ३७, तुरीयोपनिषद् ३८, छागलेयोपनिषद् ३९, त्रिपुरामहोपनिषद् ४०, त्रिसुपर्णोपनिषद् ४१, दत्तोपनिषद् ४२, दुर्वासोपनिषद् ४३, द्वयोपनिषद् ४४, नारदोपनिषद् ४५, नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद् ४६, नारायणोत्तरतापिन्युपनिषद् ४७, निरुक्तोपनिषद् ४८, नीलरुद्रोपनिषद् ४९, नृसिंहषट्चक्रोपनिषद् ५०, परमात्मिकोपनिषद् ५१, पारायणोपनिषद् ५२, पिण्डोपनिषद् ५३, पीताम्बरोपनिषद् ५४, पुरुषसूक्तोप० ५५, प्रणवोपनिषद् ५६, बटुकोपनिषद् ५७, बाष्कलमंत्रोपनिषद् ५८, बिल्वोपनिषद् ५९, भगवद्गीतोपनिषद् ६०, भवसंतरणोप० ६१, मठाम्नायोपनिषद् ६२, मल्लायुपनिषद् ६३, मृत्युलाङ्गूलोप० ६४, यज्ञोपवीतोपनिषद् ६५, योगराजोपनिषद् ६६, योगोप० ६७, राजश्यामलारहस्योपनिषद् ६८, राधिकोप० ६९, राधोप० ७०, रुद्रोप० ७१, लक्ष्म्युप० ७२, लाङ्गूलोप० ७३, लिङ्गोप० ७४, वज्रपञ्जरोप० ७५, वनदुर्गोप० ७६, विश्रामोप० ७७, विष्णुहृदयोप० ७८, शिवसङ्कल्पोप० ७९, शिवोप० ८०, शौनकोप० ८१, श्यामोप० ८२, श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोप० ८३, श्रीचक्रोप० ८४, श्रीविद्यातारकोप० ८५, षोढोप० ८६, सङ्कर्षणोप० ८७, सदानन्दोप० ८८, सन्ध्योप० ८९, संहितोप० ९०, सामरहस्योप० ९१, सिद्धान्तविट्ठलोप० ९२, सिद्धान्तशिखोप० ९३, सिद्धान्तसारोप० ९४, सुदर्शनोप० ९५, मुमुक्ष्युप० ९६, सूर्यतापिन्युप० ९७, स्वसंवेद्योप० ९८, हंसषोढोप० ९९, हेरम्बोप० १००, माल्लवीयब्राह्मणोप० १०१ ।

अर्थात् जो लोग एक हजार एक सौ अस्सी उपनिषदों के सम्यक् ज्ञान से परब्रह्म नारायण को भलीभाँति जान लिये हैं और काम्यकर्म के त्यागरूप संन्यासयोग से जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है । क्योंकि लिखा है —

'काम्यानां कर्मणांन्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।' (गी० अ० १८ श्लो० २)

कवि लोग काम्यकर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं ॥२॥ जितेन्द्रिय प्रयत्नशील संन्यासी लोग चरम देहावसान समय में सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म नारायण की प्रसन्नता से समस्त संसार के बन्धन को सम्यक् प्रकार से सदा के लिये परित्याग कर देते हैं। अर्थात् मुक्त हो जाते हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है—संन्यासी कितने प्रकार के होते हैं । इसका उत्तर यह लिखा है—

कुटीचको बहूदको हंसः परमहंसइत्येते परिव्राजकाश्चतुर्विधा भवन्ति । एते सर्व विष्णुलिङ्गिनः शिखिन उपवीतिनः ।

(शाट्यायनीयोप० श्रु० ११)

कुटीचक, वहूदक, हंस, परमहंस, भेद से चार प्रकार के संन्यासी होते हैं। ये चारो विष्णु लिङ्ग यानी त्रिदण्ड धारण करनेवाले और शिखा तथा यज्ञोपवीतवाले होते हैं ॥११॥

'चतुर्विधा भिक्षवस्तु प्रख्याता ब्रह्मणोमुखात्।
कुटीचको बहूदकः हंसश्चैव तृतीयकः ॥,
(भाल्लवीयब्राह्मणोप० अध्या ३ श्रु १)
चतुर्थो परमहंसश्च संज्ञाभेदैः पृथक्कृतः।
वृत्तिभेदेन भिन्नास्ते नैव लिङ्गात्तु ते द्विजाः ॥ २ ॥
सर्वे भिक्षवः विप्राः प्रोक्ता वेदे त्रिदण्डिनः।
लिङ्गं तु वैष्णवं तेषां सजलं च पवित्रकम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मा के मुख से प्रख्यात चार प्रकार के सन्यासी होते हैं। कुटीचक तथा बहूदक और तृतीय हंस ॥ १ ॥ तथा चौथा परमहंस वृत्ति के भेद में चार नाम अलग किया गया है, लिङ्ग के भेद से नहीं ॥ २॥ वेद में सब संन्यासी ब्राह्मणजाति के त्रिदण्डवाले कहे गये हैं। चारों संन्यासियों के त्रिदण्ड काषायवस्त्र और पवित्रा-सहित जलयुक्त कमण्डलु बाह्य लिङ्ग है ॥३॥ इन प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि—कुटीचक १, बहूदक २, हंस ३, और परमहंस ४, वेद से संन्यासी चार प्रकार के होते हैं। प्रस्तुत मुण्डक की श्रुति (कृष्ण यजुर्वेद तैत्ति० आर० प्रपाठ० १० अनु-वा० १०) में और (कैवल्योप० श्रु० ४) में भी पठित है ॥६॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति-देवतासु। कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥७॥

अन्वयार्थ—(पञ्चदश) देहारम्भक प्राणादि पन्द्रह (कलाः) कलाएँ (प्रतिष्ठाः) अपनी अपनी प्रकृति में संश्लेषविशेषयुक्त (गताः) प्राप्त होती हैं (च) और (सर्वे) सब (देवाः) नेत्र आदिक इन्द्रियाँ (प्रतिदेवतासु) अपने अपने अधिष्ठाता आदित्यादि देवताओं में संसर्गविशेषको प्राप्त होती हैं तथा (कर्माणि) अदत्तफल समस्तकर्म (च) और (विज्ञानमयः विज्ञानमय (आत्मा) जीवात्मा (सर्वे) ये सबके सब (परे) सबसे उत्कृष्ट पर (अव्यये) अविनाशी परब्रह्म नारायण में (एकीभवन्ति) लीन हो जाते हैं ॥७॥

विशेषार्थ—जब भगवदुपासक का देहपात होता है उस समय में देह के आरम्भक प्राण १, श्रद्धा २, आकाश ३, वायु ४, तेज ५, जल ६, पृथ्वी ७, इन्द्रिय ८, मन ९, अन्न १०, वीर्य ११, तप १२, मन्त्र १३, लोक १४ और नाम १५ ये पन्द्रह कलाएँ अपने अपने कारण में जाकर स्थित हो जाती हैं। पन्द्रह के विषय में लिखा है—

'प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मंत्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥
(प्रश्नो० प्र० ६ श्रु० ४)

उस परमपुरुष ने प्राण को रचा, फिर प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन और अन्न को तथा अन्न से वीर्य, तप, मंत्र, कर्म और लोकों को एवं लोकों में नाम को उत्पन्न किया ॥४॥ इस श्रुति में कहे हुए कर्म को छोड़कर शेष पन्द्रह कलाएँ हैं और चक्षु आदिक समस्त इन्द्रियाँ अपने अपने अधिष्ठाता आदित्यादि देवताओं में जाकर स्थित हो जाती हैं, क्योंकि लिखा है—

'यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रम् ॥' (बृहदा० उ० अध्या० ३ ब्रा० २ श्रु १३)

जिस समय इस मरे हुए पुरुष की वाणी अग्नि में तथा प्राण वायु में और चक्षु आदित्य में तथा मन चन्द्रमा में और श्रोत्र दिशा में जाकर स्थित हो जाते हैं ॥ १३ ॥ और अदत्तफल समस्त कर्म तथा विज्ञानमय जीवात्मा ये सब ही सबसे उत्कृष्ट अविनाशी परब्रह्म नारायण में लीन हो जाते हैं ॥ ७ ॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (स्यन्दमानाः) अपनी उत्पत्ति स्थान से बहती हुई (नद्यः) गङ्गा, यमुना आदि नदियाँ (नामरूपे) गङ्गा, यमुना आदिक नाम को तथा शुक्ल कृष्ण आदिक रूप को (विहाय) छोड़कर (समुद्रे) समुद्र में (अस्तम्) अदर्शन (गच्छन्ति) हो जाती हैं (तथा) वैसे ही (विद्वान्) ज्ञानी महात्मा (नामरूपात्) नाम और रूप से (विमुक्तः) छूटा हुआ (परात्) पर यानी ब्रह्मादि से (परम्) परमश्रेष्ठ (दिव्यम्) दिव्य (पुरुषम्) पुरुष परब्रह्म नारायण को (उपैति) प्राप्त कर लेता है ॥८॥

विशेषार्थ—जैसे स्वोत्पत्तिस्थान से बहती हुई गङ्गा यमुना आदिक नदियाँ अपने-अपने गङ्गा यमुना आदिक नाम को और शुक्ल कृष्ण आदिक रूप को त्यागकर समुद्र में अस्त हो जाती हैं। वैसे ही ज्ञानी महात्मा देवदत्त यज्ञदत्त आदिक नाम को और श्याम गौर आदिक रूप को त्यागकर परात्पर दिव्य पुरूष परब्रह्म नारायण को प्राप्त कर लेता है। ज्ञानियों की गति के विषय में लिखा है—

शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य च।
पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानवतां गतिः॥

(महाभार० शान्ति० अ० २३६ श्लो० २४)

जिस प्रकार आकाश में पक्षियों के जल में जलचरजीव के पैर दिखायी नहीं देते उसी प्रकार ज्ञानियों की गति नहीं जानी जाती है ॥२४॥ प्रातः स्मरणीय भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (शा० मी० अ० १ पा० १ सू० १)

'मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्।' (शा० मी० अ० १ पा० ३ सू० २)

'उत्क्रमिष्यत एवम्भावादित्यौडुलोमिः।' (शा० मी० अ० १ पा० ४ सू० २१)

'परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः।'

(शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० ३०)

'तथान्यप्रतिषेधात्।' शा० मी० अ० ३ पा० २ सू० ३५)

'पुरुषार्थोऽतःशब्दादिति बादरायणः।' (शा० मी० अ० ३ पा० ४ सू० १)

इन छः सूत्रों के श्री भाष्य में "मुण्डकोप०" के तृतीयमुण्डक के दूसरे खण्ड की आठवीं श्रुति को उद्धृत किया है ॥८॥

स यो ह वै तत्परं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्या ब्रह्मवित्कुलेभवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९॥

अन्वयार्थ—(यः) जो भगवदुपासक (वै) निश्चय करके (ह) प्रसिद्ध (यत्) उस (परम्) सबसे श्रेष्ठ (ब्रह्म) परब्रह्मनारायण को (वेद) उपासना से जानता है (स) वह भगवदुपासक (ब्रह्म आ इव) ब्रह्म के समान भलीभाँति (भवति) हो जाता है (अस्य) इस भगवदुपासक के (कुले) कुल में (अब्रह्मवित्) परब्रह्म नारायण को न जाननेवाला (न) नहीं (भवति) होता है (शोकम्) शोक को (तरति) पार हो जाता है (पाप्मानम्) सब पाप को (तरति) तर जाता है (गुहाग्रन्थिभ्यः) हृदयरूप गुफा में गाँठ के समान

दुर्मोच राग द्वेष आदिक से (विमुक्तः) सर्वथा छूटा हुआ (अमृतः) आविर्भूतगुणाष्टक अमर (भवति) हो जाता है। अर्थात् जन्म मरण से रहित होता है ॥६॥

विशेषार्थ—यह सच्ची बात है कि जो कोई भगवदुपासक उस प्रसिद्ध परब्रह्म नारायण को उपासना से भली भाँति जान लेता है वह परब्रह्म नारायण के समान हो जाता है। ब्रह्म साक्षात् नहीं होता है क्योंकि लिखा है—

'साम्यमुपैति ।' (मुण्डकोप० मुं० ६ खं० १ श्रु० ३)

जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करती है ॥ ३ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपिनोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥

(गी० अ० १४ श्लो० २)

इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरी समता को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि काल में न तो उत्पन्न होते हैं और न प्रलयकाल में व्यथित होते हैं ॥ २ ॥

'भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ।' शा० मी० अ० ४ पा० ४ सू० २१)

भोगमात्र में परब्रह्म की समता मुक्त जीव पाते हैं ॥ २१ ॥ भगवदुपासक के कुल में अर्थात् शिष्य अथवा सन्तान परम्परा में कोई भी मनुष्य परब्रह्म को न जाननेवाला नहीं होता है। वह भगवदुपासक सब प्रकार के शोक को सर्वथा पार हो जाता है और समस्त पाप समुदाय को तर जाता है। तथा हृदयरूप गुफा में ग्रन्थि के समान दुर्मोच राग द्वेष आदिक से सर्वथा विमुक्त हुआ आविर्भूतगुणाष्टक अमृत हो जाता है। क्योंकि लिखा है—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिः ।' (मुण्डको० मुं० २ खं० २ श्रु० ८)

हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है ॥ ८ ॥ मुक्त जीव जन्म-मरण से रहित हो जाता है। क्योंकि लिखा है—

'न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः ।'(सांख्यशा० अ० ६ सू० १७)

मुक्त जीव को फिर से बन्धन का संयोग नहीं होता है। अनावृत्ति अर्थात् नहीं लौटता हैं। ऐसी श्रुति होने से ॥१७॥

'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ।' (न्याय. मी. अ. १ आह्नि. १ सू. २२)

दुःख जन्म प्रभृतिदोष मिथ्याज्ञान की अत्यन्त निवृत्ति को मोक्ष कहते हैं ॥२२॥

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।' (शा. मी. अ. ४ पा. ४ सू. २२)

मुक्त जीव का फिर से जन्म नहीं होता है, श्रुति प्रमाण होने से ॥ ॥

'धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।' (केनो. खं. १ श्रु. २)

धीर पुरुष इस लोक से जाकर मरणरहित हो जाते हैं ॥२॥

'य एतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति ।' (कठो. अ.　व. ३ श्रु. ६)

जो इस परमात्मा को जानते हैं वे मरणरहित हो जाते हैं ॥६॥

'एतस्मान्नपुनरावर्तन्ते ।' प्रश्नो. प्रश्न. १ श्रु. ६)

इस मोक्ष स्थान से फिर नहीं लौटते हैं ॥१०॥

'ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।'

(छां. उ. अ. ८ खं. १५ श्रु. १)

मुक्त जीव परब्रह्म के लोक को पाता है फिर जन्ममरण चक्र में नहीं लौटता है, नहीं लौटता है ॥१॥

'तेषां न पुनरावृत्तिः ।' (बृह. उ. अ. ६ ब्रा. २ श्रु. १५)

मुक्त जीवों की पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥१५॥

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।' (गी. अ. ८ श्लो. १६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन मुझे पा लेने के बाद पुनः जन्म नही होता है ॥१६॥प्रातः स्मरणीय भगवद्रामानुजाचार्य ने

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।' (शा. मी. अ. १ पा. १ सू. १)

'तत्तु समन्वयात् ।' (शा. मी. अ. १ पा. १ सू. ४)

'सुखविशिष्टाभिधानादेव च ।' (शा. मी. अ. १ पा.　सू. १५)

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।' (शा. मी. अ. ४ पा. १ सू. १)

इन चारों सूत्रों के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीयमुण्डक के द्वितीयखण्ड की नवमी श्रुति को उद्धृत किया है ॥८॥

तदेतदृचाभ्युक्तम् क्रियावन्तःश्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाःस्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः । तेषामेतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(तत्) सो (एतत्) यह विद्यासंप्रदान के विधान (ऋचा) आगे के ऋग्वेद के मंत्र से (अभ्युक्तम्) भलीभाँति कहा गया है (क्रियावन्तः) जो निष्काम भाव से नित्य नैमित्तिक कर्म करने वाले तथा (श्रोत्रियाः) वेदाध्ययन किये हुए (ब्रह्मनिष्ठाः) और परब्रह्म को जानने की इच्छावाले तथा (श्रद्धयन्तः) श्रद्धा रखते हुए (स्वयम्) अपने से (एकर्षिम्) एकर्षि नामवाले प्रज्वलित अग्नि को (जुह्वते) शास्त्र के नियमानुसार आहुति देते हैं (तु) और (यैः) जिन्होंने (विधिवत्) शास्त्रोक्त विधि के अनुसार (शिरोव्रतम्) मस्तक पर अङ्गारपात्र को धारण करना रूप अथर्ववेदियों के प्रसिद्ध वेदव्रत शिरोव्रत को (चीर्णम्) अनुष्ठान

किया है (तेषाम्) उन्हीं अधिकारियों से (एव) निश्चय करके (एताम्) इस ब्रह्म प्रतिपादिका (ब्रह्मविद्याम) वेदविद्या को (वदेत) उपदेश करे ॥१०॥

विशेषार्थ—इस मुण्डकोपनिषद् में वर्णन की हुई विद्या के संप्रदान का विधान आगे के मंत्र से भलीभाँति कहा गया है। ऋग्वेद के विषय में लिखा है—

'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ।' (मीमांसाशा. अ. २ पा. १ सू. ३५)

जहाँपर अर्थ के वश से पादकी व्यवस्था होती है उसको ऋग्वेद कहते हैं।३५।

'एकविंशतिधा बह्वृच्यः ।' (महाभाष्य. अ. १ पा. १ आह्नि. १)

इकीस शाखाएँ ऋग्वेद की हैं ॥ १ ॥

'एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा ॥'

(कूर्मपु. अध्या. ४६ श्लो. ५१)

पहले ऋग्वेद को इक्कीस शाखा के भेद से आविर्भाव किया ॥५१॥ जो अपने अपने वर्ण आश्रम और परिस्थिति के अनुसार नित्य नैमित्तिक कर्म को निष्कामभाव से करनेवाले हैं और वेदाध्ययन कर चुके हैं तथा परब्रह्म नारायण को जानने की इच्छावाले हैं और स्वयं श्रद्धा से युक्त होकर जो एकर्षि नामवाली प्रज्वलित अग्नि में शास्त्र के नियमानुसार हवन करनेवाले हैं। उन्हीं शुद्ध चित्तवाले अधिकारियों को यह मुण्डकोपनिषद् की विद्या बतलानी चाहिये। जिन्होंने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार शिरपर अङ्गारपात्र को धारण करनारूप शिरोव्रत का अनुष्ठान किया है। अथर्ववेदियों का सुप्रसिद्ध वेदव्रत शिरोव्रत है। अन्यत्र भी लिखा है—

'यमेव विद्याश्रुतमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् ।
अस्मा इमामुपसन्नायसम्यक् परीक्ष्य दद्यात् ॥'

(शाट्यायनीयो. श्रु. ३४)

जिसने वेदाध्ययन किया है तथा जो समाहित मनवाला हो और पूर्णब्रह्मचर्यव्रतपालन किया हो तथा मेधावी हो और शास्त्र की विधि के अनुसार पास में आया हो उस भक्त अधिकारी के लिये भलीभाँति परीक्षा करके इस ब्रह्मविद्या को दे ॥३४॥ अर्थात् शास्त्रोक्त विधि के अनुसार जिसने शिरोव्रत किया है उसी से यह मुण्डकोपनिषद् कहनी चाहिये। श्रीपूज्यपाद भगवद्रामानुजाचार्य ने

सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ।' (शा. मी. अ. ३ पा. सू. १)

'स्वध्यायस्य तथात्वे हि समाचारेऽधिकाराच सववच तन्नियमः ।'

(शा. मी. अ. ३ पा. ३ सू. ३)

इन दोनों सूत्रों के श्रीभाष्य में "मुण्डकोपनिषद्" के तृतीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड की दशवीं श्रुति के उत्तरार्ध को उदधृत किया है ॥१०॥

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः प्रोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥११॥

॥ इति तृतीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ॥

॥ इति तृतीयमुण्डकः ॥

॥ इति मुण्डकोपनिषत्समाप्ता ॥

अन्वयार्थ—(अङ्गिराः) अङ्गिरा नामवाला (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि (पुरा) पहले (तत्) उस (एतत्) इस अक्षर पुरुष (सत्यम्) सत्य को (प्रोवाच) शौनक ऋषि से कहा था कि (अचीर्णव्रतः) जिसने शास्त्रानुसार शिरोव्रत का आचरण नहीं किया हो (एतत्) इस ग्रन्थरूप मुण्डकरहस्यको (न) नहीं (अधीते) पढ़ सकता है (परमऋषिभ्यः) यह ब्रह्मविद्या जिन ब्रह्मा आदि से परम्परा क्रम से प्राप्त हुई है उन परम ऋषियों के लिये (नमः) नमस्कार है (परमऋषिभ्यः) ब्रह्मा, अथर्वा, अङ्गिर् , सत्यवाह, अङ्गिरा, आदि परम ऋषियों के लिये (नमः) नमस्कार है ॥११॥

विशेषार्थ—इस अक्षर पुरुष रूप सत्य वेदविद्या को पूर्वकाल में अङ्गिरा ऋषि ने अपने समीप विधिपूर्वक आये हुए प्रश्नकर्ता मुमुक्षु शौनक ऋषि से कहा था। इससे अन्य सद्गुरु को भी उसी प्रकार अपने समीप विधिपूर्वक आये हुए कल्याणकामी मुमुक्षु पुरुष को उसके मोक्ष के लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश करना चाहिये। जिन्होंने मस्तक पर अङ्गारपात्र को धारण करना रूप अथर्ववेद में वर्णित शिरोव्रत को शास्त्र में कही विधि से नहीं किया है। वह पुरुष इस ग्रन्थरूप मुण्डकरहस्य को नहीं अध्ययन कर सकता है। क्योंकि जिसने शिरोव्रत को किया है उसकी विद्या संस्कारसम्पन्न होकर फलवती होती है। यह ब्रह्मविद्या जिन ब्रह्मा आदि से गुरु परम्परा के क्रम से प्राप्त हुई है उन ब्रह्मा, अथर्वा, अङ्गिर, सत्यवाह, अङ्गिरा, आदिक परम मंत्रद्रष्टा ऋषियों को साष्टाङ्ग प्रणिपात है। क्योंकि लिखा है--

'ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचण्डालगोखरम् ॥'

(याज्ञवल्क्योप० श्रु० ४)

परब्रह्म नारायण जीव की कला से सब में प्रवेश किया है इससे कुत्ता से लेकर जितने चण्डाल गौ और गदहा आदिक हैं उनको भूमि में दण्ड के समान पड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात करू ॥४॥ यह ब्रह्मविद्या जिन ब्रह्मा आदि से गुरे परम्परा के क्रम से प्राप्त हुई उन ब्रह्मा अथर्वा अङ्गिर सत्यवाह अङ्गिरा आदिक परम ऋषियों को साष्टाङ्ग प्रणिपात है। यहाँ "नमः परम ऋषिभ्यः नमः परमऋषिभ्यः" यह दो बार कहकर इस मुण्डकोपनिषद् की समाप्ति की सूचना दी गयी है। यहाँ मुण्डकोपनिषद

के तृतीय मुण्डक का द्वितीय खण्ड तथा तृतीय मुण्डक और मुण्डकोपनिषद् ग्रन्थ समाप्त हो गया। इस मुण्डकोपनिषद् में तीन मुण्डक हैं। और प्रत्येक मुण्डक में दो दो खण्ड हैं सब मिलकर इस ग्रन्थ में छः खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में दश मंत्र हैं और द्वितीय खण्ड में तेरह मंत्र हैं तथा तृतीय खण्ड में दश मंत्र हैं। चतुर्थखण्ड में ग्यारह मंत्र हैं तथा पञ्चमखण्ड में दश मंत्र हैं और षष्ठखण्ड में ग्यारह मंत्र हैं। संकलन करने से मुण्डकोपनिषद् में सब पैंसठ मंत्र हैं। जगदगुरु भगवद्रामानुजाचार्य ने

'स्वाध्यायस्य तथात्वे हि समाचारेऽधिकाराच्च सववच्च तन्नियमः ॥'

(शा० मी अ० ३ पा० ३ सू० ३)

के श्रीभाष्य में "कठोपनिषद्" (मुण्डकोपनिषद्) के तृतीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड की अन्तिम ग्यारहवीं श्रुति के द्वितीयपाद को उद्धृत किया है ॥११॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रं
श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम् ।
श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधं
भक्तया भजामि गुरुवर्यमनन्तसूरिम् ॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्यश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवदनन्तपादीयश्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यत्रिदण्डिस्वामिविरचिता "गूढार्थदीपिका" समाख्या 'अथर्ववेदीया' "मोदा" शाखान्तर्गता— "मुण्डकोपनिषद्" भाषा— व्याख्या समाप्ता ।

॥ ईशादिपञ्चोपनिषदः समाप्ताः ॥